पक्षपातरहित

अनुभवप्रकाश





बं.
१८

बाबु हरिराम गोयका का दान
बहुत

अनुभव प्रकाश

जिस को बाबा काली कमल
ने शुद्ध करके छपाया

हेड कलर्क र of Baidya



अथ

पक्षपातरहित अनुभवप्रकाश।

स्वामी विशुद्धानन्दजी प्रसिद्ध कामलीवाले बावा विरचित।

जिसको

शिवहरवाले—स्वामी युगलानन्दजी भारतपथिक द्वारा संशोधनकराय,

खेमराज श्रीकृष्णदासने

बंबई

निज "श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) यन्त्रालयमें मुद्रितकर प्रसिद्ध किया।

आश्विन संवत् १९६४, शके १८२९.





हृषीकेशीय स्वामी विशुद्धानन्दजी प्रसिद्ध कामलीवाले बाबा ।



प्रस्तावना।

प्रस्तावना।

इस अनादि कालके द्वन्द्वज संसारमें, नानाप्रकारके द्वन्द्वमें फँसे हुये प्राणी. कभी सुख और कभी दु:खको अनुभव करते हुये, आशा और भयके वश हो, नानाप्रकारके कर्म्मोंको करके, वारम्वार आवागमनको प्राप्त होते हैं।

इस प्रकारके दु:खपूरित इस संसारसागरमें, अत्यन्त दु:खसे व्याकुल हो, जब प्राणी अतिशय सुखकी इच्छा करते हैं और नानाप्रकारके प्रयत्न करने परभी सच्चा सुख नहीं मिलता है तब धर्म्मकी ओर प्रवृत्त होते हैं।

परन्तु कालके प्रभावसे धर्मके ओटमें नानाप्रकारके पक्षपातने ऐसा जाल बिछाया है जिसमें फँसा हुआ जीव अधिकसे अधिक दु:खोंको ही अनुभव करता है। हाय! ऐसे दु:खोंको अनुभव करते हुये भी रोचक और भयानक वचनोंके पाशमें फँसे हुये आशा और भयसे विह्वल होनेपर भी जीव उस दु:खसे अलग नाहीं होसक्ते।

ऐसे धर्मके नामसे दु:खसागरमें डूबते हुओंको निकालनेके हेतु सत्यधारी सत्योपदेशक महात्माओंके धर्म्मव्याख्यानरूप वाणीका उपदेश ही मात्र सहारा है। ऐसे सत्योपदेशमय ग्रन्थोंका तो पवित्र संस्कृत भाषामें भण्डार भरा है। यदि भाषामें भी सत्योपदेशके ग्रन्थ कुछ कम नहीं हैं, परन्तु वे ग्रन्थ गद्यरूपमय सारगर्भित कठिन कवितामें होनेके कारण, सरलबुद्धिवाले वर्तमान कालके धर्माभिलाषी मुमुक्षुओंको, उनका समझना भी अत्यन्त कठिन होजाता है, यदि वे उसको समझना चाहें तो, अपना सब काम छोड या तो साधु बनकर अथवा घरवालोंके नानाप्रकारके वचनरूपी कुठारोंका प्रहार सहकर, उसके समझनेके लिये बहुत समयकी आवश्यकता होती है। ऐसे करनेपर भी भाग्यवश सारतत्वको पागया तो वाह वाह! नहीं तो उभयतोभ्रष्ट हो, अज्ञानके ऐसे गहरे समुद्रमें जा पडता है जिससे निकलना तो अलग, श्वास लेनेका भी अवसर नहीं मिलता। ऐसी २ अनेक कठिनाइयाँ हैं कहांतक वर्णन किया जावे। ऐसी कठिनाइयों और आवश्यकताको देखकर हृषीकेशनिवासी प्रसिद्ध ब्रह्मनिष्ठ परमोपकारी सत्यधारी महात्मा श्री० १०८ गोस्वामी विशुद्धानन्दजी प्रसिद्ध कामलीवाले बाबाने अत्यन्त अनुग्रह और करुणाकर सत्य धर्मके मुमुक्षुओंके हेतु यह अमूल्य ग्रन्थ "पक्षपातरहित अनुभवप्रकाश" लिखा है।

इस पुस्तकमें चार वेद, षट् शास्त्रका सार और अठारह पुराणोंकी वे सब कथायें जिनको प्राय: अर्द्धप्रबुद्ध अथवा कलियुगी विचारके लोग असम्भव अथवा गप्प बतलाकर, नानाप्रकारके सन्देह करके, उनकी निन्दापर उतारू होते हैं, सबका आध्यात्मिक अर्थ ऐसा स्पष्ट और प्रत्यक्ष युक्तियोंद्वारा वर्णन किया है, जिससे एकवार भी इस पुस्तकको बाँचनेवाला कभी सन्देह और शंकामें नहीं पडसक्ता।

ऐसे धर्म्मरत्नके भण्डाररूप पुस्तकके कर्ता बाबाजीका जीवन चरित्र कैसा उपदेश पूरित और पुण्यरूप होवेगा परन्तु शोक है, इस बातकी बहुत प्रयत्न करनेपर भी बाबाजीका पूर्ण जीवनचरित्र नहीं मिलसका इस कारण एक छोटासा संक्षिप्त जीवनचरित्र दिया है।

इस पुस्तककी भाषा प्रथम पंजाबीभाषामिश्रित थी और वर्तमान कालकी प्रचलित हिन्दीभाषासे विलग नवीनही ढंगकी थी, तथा पुस्तकमें विषयोंका विभाग कुछ भी नहीं था जिससे किसी भी विषयको ढूँढनेके लिये बहुत समय और बहुत परिश्रमकी आवश्यकता होती थी। सो स्वामी युगलानन्द कबीरपंथी भारतपथिकने,अत्यन्त शुद्ध और प्रचलितभाषाकी परिपाटीके अनुसार शुद्ध हिन्दीभाषा करके विषयोंका विभाग भी करदिया है तथा बाबाजीकी एक संक्षिप्त जीवनीभी लिख दी है जो आगे छपीहै। अनुक्रमणिकाभी बहुत सुन्दर बनाई गई है जिससे किसीभी विषयके निकालनेमें विशेष परिश्रम होना सम्भव नहीं है। प्रथमावृत्ति पत्रेनुमा छपी थी परन्तु अबकी आवृत्ति बहुत सज्जनोंकी आग्रहसे बुकसाइजमें उत्तम कागज और उत्तम जिल्दकी छपवाई गई है।

सत्य धर्म्म और लोक परलोकमें सुखप्रद आत्मज्ञानके जिज्ञासुओं तथा मुमुक्षुओंसे निवेदन है कि, जिस प्रकार प्रथमावृत्तिको लेकर सज्जनोंने अपनी उदारता प्रगट की है उसी प्रकार इस आवृत्तिको भी आश्रय देकर इसके द्वारा धर्म्ममें स्वयम् प्रवृत्त होंगे और दूसरे अधिकारियोंको प्रवृत्त करावेंगे जिससे मैं अपने परिश्रमको सफल और अपनेको कृतकृत्य मानूंगा।

सर्वसज्जनोंका कृपाभिलाषी–

खेमराज श्रीकृष्णदास,

"श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) प्रेस–बंबई.



हृषीकेशीय स्वामी श्रीविशुद्धानन्दजी प्रसिद्ध कामलीवाले बाबाका संक्षिप्त जीवनचरित्र ।

यद्यपि बाबाजीका पूर्ण जीवनचरित्र लिखनेका विचार था और यदि पूर्ण जीवनचरित्र लिखा जाता तो गृहस्थसे लेकर संन्यासीतक सर्व श्रेणीके लोगोंको परम उपदेशप्रद और लौकिक पारलौकिक पथका सहायक बनजाता । परन्तु शोक है कि, बहुत परिश्रम करनेपर भी कामना पूर्ण नहीं होसकी इस कारण जहांतक फुटकर बातें बाबाजीके विषयमें प्राप्त होसकीं हैं उनका संक्षेप लिखता हूँ ।

बाबाजीने गृहस्थ त्यागनेपर बहुत दिनोंतक सत्संग और देशाटन, तीर्थाटनमें बिताया । प्रथम अवस्थामें समय २ पर आकर हृषीकेशमें निवास करतेथे ॥ यह हृषीकेश हरिद्वारसे बारह कोश उत्तर बदरीनाथके मार्गमें तपोवनके नामसे प्रसिद्ध स्थानहै जहां विचारवान् विद्वान् और तितिक्षु संतलोग नियत समयतक (प्रत्येक वर्षमें) वास करके ब्रह्म विचारमें निमग्न रहते हैं और ब्रह्मजिज्ञासु लोग भी वहां वासकर ब्रह्मनिष्ठ महात्माओंसे आत्मज्ञानका लाभ प्राप्त करते है.।

कुछ दिनों उपरान्त बाबाजीको यह स्थान (हृषीकेश) ऐसा भाया कि, अपना बहुत समय वहांही विताने लगे ।

उस समय हृषीकेशमें न तो आजके समान कोई क्षेत्र था न विशेष सेठ साहूकारोंका आवागमनथा । उस समय वहाँके रहनेवाले साधु महात्मा बडे परिश्रम और कष्टसे जंगली फल और पदार्थोंसे शरीरयात्रा करते और इधर उधर पहाडके गुफाओं आदि स्थानोंमें रहते थे यद्यपि उस स्थानका नामही तपोवन है तथापि साधु संतोंको वहां बहुत कष्ट उठाना पडता था ।

संतोंके ये कष्ट बाबाजीसे सहन नहीं होसके आपने परोपकारकोही परमधर्म जानकर संतोंको सुख देनेकी इच्छासे क्षेत्र लगानेका विचार किया ।

हृषीकेश छोडकर बाबाजी फिरते हुए कलकत्ता पहुँचे । कलकत्तेके प्रसिद्ध महाजन सूर्य्यमलको उपदेश देकर हृषीकेशमें अन्नक्षेत्र स्थापित कराया जिसके पीछे सन्तोंको किसी प्रकारसे कष्ट नहीं हुआ ।

प्रसिद्ध (बदरीनाथके मुख्य मार्गका पुल) लक्ष्मणझूलेका पुल, हरिद्वारमें धर्म्मशाला व क्षेत्र आदि; जो सेट सूर्य्यमलने स्थापन किये बाबाजीकेही उपदेशका फल था ।

इतने ही पर नहीं वरन जिस शहरमें आप पधारते वहाँके सेठ साहूकार रईसोंको इस प्रकार उपदेश देकर पुण्यमार्गमें लगा देते कि, जिससे उनका दोनों लोक सुधरता। साधु ब्राह्मण तथा दीन दु:खियोंको देखकर आप अति विह्वल होजाते यही कारण था कि, आपका कोई समय भी दीन दु:खियों और साधु ब्राह्मणकी सहायता विना नहीं जाता था। आप केवल लौकिक सहायता ही नहीं करते थे वरन् आपने अधमसे अधम पुरुषको दुष्टाचरणसे हटाकर सदाचारमें लगा देनेकी ऐसी शक्ति और युक्ति थी कि, कोईभी आपका वचन सुनने पीछे पुण्यमार्गपर चले विना नहीं रहता था।

भारतवर्षके पुण्यशाली कौन ऐसे शेठ साहूकार हैं जिन्होंने, बाबाजीका दर्शनकर धर्म्ममार्गमें प्रवृत्ति नहीं की हो।

आत्मज्ञानके उपदेश करनेमें आप ऐसे कुशल थे कि, मुमुक्षुओंको आपकी थोडीही सत्संगतिसे आत्मसाक्षात्कार होजाता था।

आपने सहस्रों नवीन शिक्षा पाये हुये नास्तिकतुल्य सनातन धर्म्म और स्वदेशके अश्रद्धालु पुरुषोंकों, उपदेश देकर ईश्वरभक्ति और–परोपकारमें लगा दिया।

आपके वचनमें ऐसी मोहित करलेनेवाली आकर्षणशक्ति थी कि, जिसने आपका वचन सुना वह सदाके लिये आपकी वाणीके सुननेका अनुरागी बनगया।

आपको किसी मत अथवा वेष विशेषसे कुछ सम्बन्ध न था। आप केवल दो कमल रखते थे। ऐसे निरपेक्ष और अलिङ्ग होने परभी सर्व वेषोंके साधुओं तथा सर्व धर्म्मोंके लोगोंपर आपकी समदृष्टि रहती थी। सर्व धर्म्मोंको आप समान समझकरही सर्व लोगोंको अपने २ धर्म्ममेंही रहकर सदाचरणमें वर्तनेका उपदेश किया करते थे।

आपने अन्तसमयमें अपने विचारोंको स्थायी रहने और जीवोंको सदाके लिये शिक्षकके समान वर्तमान रहने अथवा ऐसे कहा जाय कि, अपने समानही उपदेश कर्ता स्वरूपमें "पक्षपातरहित अनुभवप्रकाश" नामक एक अमूल्य पुस्तक लिखा है।

यदि इस पुस्तकको धर्म्मका भण्डार सत्यका अगार और सदाचारका कोश कहा जावे तो अत्युक्ति न होगी।

इस पुस्तकमें एक २ विषयका ऐसा स्पष्ट और नित्यके लौकिक उदाहरणोंद्वारा निरूपण किया है कि, धर्म्ममार्गसे अत्यन्त अनभिज्ञ और अश्रद्धालु पुरुष भी इसको सुनकर धर्म्मके तत्वको समझने लगता है और धर्म्मपथमें प्रवृत्त होजाता है इस ग्रन्थके आठ सर्ग किये हैं। प्रत्येक सर्गमें संसारभरमें प्रतिष्ठित ईश्वरीनियमके अनुकूल और सबके मनभावन निष्पक्ष साधारण धर्म्मका निरू-

पण किया है। पुराणोंकी नानाप्रकारकी आश्चर्यमय कथाओंका यथार्थ सार और अध्यात्मक अर्थ तथा भाव इस प्रकार स्पष्ट करके समझाया है कि, जैसा आजतक किसी अन्य पुस्तकमें देखनेमें नहीं आता। इस पुस्तकका एकबार श्रवण करनेवाला अथवा पाठ करनेवाला अवश्य धर्ममें श्रद्धालु होजावेगा।

मनुष्य जीवनको सुखपूर्वक वितानेवाले, अपने धनके रक्षा करनेवाले, अपने संतानको सुधारने की इच्छा रखनेवाले तथा सर्व प्रकारके लौकिक पारलौकिक सुखकी इच्छा रखनेवाले इस पुस्तकको पाकरही सर्व ज्ञान प्राप्त करसकेंगे।

यद्यपि बाबाजीके जीवन वृत्तान्त और भी बहुत कुछ सुनेगये हैं तथापि यहाँ दिग्दर्शनमात्र लिखा है। बाबाजीके पूर्णचरित्र लिखनेके हेतु प्रयत्न कररहा हूं सफलता होनेपर सज्जनोंके सन्मुख फिर उपस्थित करूँगा।

इति श्रीकामलीवाले बाबाका संक्षिप्त "जीवनचरित्र" स्वामी युगलानन्द कबीरपंथी भारतपथिक (शिवहरवाले) द्वारा संकलित व संशोधित

समाप्तहुआ।

Kanhaiyalal



Sharma

Calcutta

Baro

ॐ

अथ पक्षपातरहित अनुभवप्रकाशकी विषयानुक्रमणिका ।

अनुक्रमणिका ।

अथ सप्तमः सर्गः ७.

इत्यनुक्रमणिका समाप्ता ।





श्रीगुरुभ्यो नमः ।

अथ

पक्षपातरहित अनुभवप्रकाश ।

प्रथम सर्ग १.

एक समय किसी एक एकांत स्थानमें वसिष्ठके पौत्र और शक्तिके पुत्र पराशरजी अपनी इच्छापूर्वक बैठेथे, तिसही कालमें मित्राके पुत्र मैत्रेयने आकर वेदबिधिपूर्वक पराशरको गुरु जानके आप अपनी पूर्ण श्रद्धासे शिष्यभावको प्राप्त हो, हाथ जोडकर, शिष्य रीत्यनुसार प्रश्न किया कि,

हे भगवन् ! इस संसाररूपी देहमंदिरमें मैं कौन हूं ? क्या श्रोत्रादिक ज्ञान इन्द्रियोंका समूह हूं ? अथवा एक २ ज्ञानेन्द्रिय हूं ? वाक्आदिक कर्म इन्द्रियोंका समूह हूं ? एक एक वाक् आदिक इन्द्रियरूप हूं ? प्राणादिक वायुओंका समुदायरूप हूं ? वा एक एक प्राणादिक वायुरूप हूं ? मनआदिक चतुष्टय अंतःकरणरूप हूं ? वा मन बुद्धि आदिक एक एक रूप हूं ? स्थूल सूक्ष्मरूप जो आकाशादि पंचमहाभूत हैं, उनका समुदायरूप हूं ? वा आकाशादि एक एक रूप हूं ? वा तिन्होंका कार्यरूप जो देह सो हूं ? काम क्रोधादिक पचीस प्रकृतिरूप हूं ? स्थावररूप हूं ? वा जंगमरूप हूं ? व्यापकरूप हूं ? परिच्छिन्नरूप हूं ? परमाणुरूप हूं ? वा अपरमाणु-रूप हूं ? भूत पिशाचादिरूप हूं ? किसीका प्रतिबिंब हूं ? वा बिंबरूप हूं

हे भगवन् ! मैं जीव हूँ ? वा ईश्वररूप हूँ ? वा ब्रह्म हूँ ? वा जडरूप हूँ?वा चैतनरूप हूँ?वा सर्व शक्तिमान् हूँ?वा सर्व शक्तिरहित हूँ ? माया और अविद्याके संबंधवाला हूँ ? वा तिनके संबंधते रहित हूँ?माया वा अविद्याकरके मोहित हूँ ? वा अमोहित हूँ? सुख दुःखका कारण जो धर्माधर्म, उनवाला हूँ ? वा तिनते रहित हूँ ? धर्माधर्मका कार्य जो सुख दुःख उनका भोक्ता हूँ ! वा अभोक्ता हूँ ? क्रियावान् हूँ ? वा अक्रिय हूँ ? शांति आदि मनके धर्मरूप हूँ ? वा धर्मीरूप हूँ ? वा तिनते रहित हूँ?समाधिरूप हूँ ? वा विक्षेपरूप हूँ ? वा तिनते रहित हूँ?रूपादिक विषयरूप हूँ ? वा तिनते रहित हूँ ? नित्य हूँ ? वा अनित्य हूँ ? दृश्य हूँ ! वा द्रष्टा हूँ ? वा दृश्य द्रष्टा उभयरूप हूँ?वा तिनते रहित हूँ ? ब्राह्मणादिक वर्णी हूँ?वा ब्रह्मचारी आदि आश्रमी हूँ ? वा तिनते रहित हूँ ? हे दीनबंधु ! कृपालु गुरो ? इस देहविषे मैं सगुणरूप हूँ ? वा निर्गुणरूप हूँ? देव हूँ ? वा मनुष्यरूप हूँ ? स्त्री हूँ ? वा पुरुषरूप हूँ ? वा नपुंसकरूप हूँ? पर करके देखनेमें आता हूँ ? वा नहीं ? ग्रहणरूप हूँ ? वा त्यागरूप हूँ? इयत्तावाला हूँ ? वा इयत्तारहित हूँ ? सारांश यह कि, अनंत हूँ ? कि, अंतवाला हूँ ? मधुर रसादिकरूप हूँ?वा तिनते रहित हूँ ? ऋषि हूँ ? वा मुनि हूँ?अनेक शास्त्ररीत्यनुसार पचीस(२५)वा एकसौपचीस (१२५) वा सत्ताईस(२७)आदि प्रकृतिरूप हूँ ? वा तिनते रहित हूँ व्यापक हूँ ! कि, अव्यापक हूँ?कि, असंग हूँ?कि,संगी हूँ?मैं मृत्युको प्राप्त होता हूँ?कि नहीं?चक्षु आदि ज्ञानेंद्रियोंके प्रकाशक और अभिमानी सूर्यादि देवतारूप हूँ ? वा तिनते रहित हूँ ? वाक् आदि कर्मेन्द्रियोंके अभिमानी अग्नि आदि देवता रूप हूँ ? कि, तिनते रहित हूँ?तैसेही मनादि चतुष्टय अंतःकरणके अभिमानी चन्द्रमादि देवता हूँ ? कि, नहीं ? वा मनादिकोंके संकल्पादि धर्मरूप हूँ ? वा नहीं ? तात्पर्य यह है कि, पंचज्ञानेंद्रिय, पंचकर्मेन्द्रिय, अंतःकरण चतुष्टय और शब्दादिक चतुर्दश

(श्रोत्रादिक इंद्रियोंके विषय) तथा चतुर्दश तिनके देवता, आदि चतुर्दश त्रिपुटीरूप हूँ? वा नहीं? वा तिनते रहित हूँ ? वा श्रोत्रादिक इन्द्रियोंके बधिरत्वादिक धर्मरूप हूँ? वा तिनते रहित हूँ? तथा दूर हूँ? कि, समीप हूँ? लंबा हूँ? कि, चौडा हूँ? ऊर्ध्वरूप हूँ? कि, अधोरूप हूँ ? दिशा वा उपदिशा रूप हूँ ? वा तिनते रहित हूँ? प्रयागादि तीर्थरूप हूँ? वा नहीं? वा प्रयागादि तीर्थोंके अभिमानी, वेणीमाधव आदिक हूँ? वा नहीं? वक्ररूप हूँ? वा अवक्ररूप हूँ? मातारूप हूँ? वा पितारूप हूँ ? वा पुत्ररूप हूँ ? वा मातादिभावते रहित हूँ? समव्याहृतिरूप भूरादि ऊपरके लोक हूँ ? वा अतलादि नीचेके लोक हूँ? तिन लोकोंमें रहनेवाला हूँ? वा नहीं ? रसादि सप्तधातुरूप हूँ ? वा नहीं ? आकाशादि पंचभूतोंके शब्दादि गुणरूप हूँ? वा तिनते रहित हूँ? कोई उत्तमपदार्थ हूँ ? वा मध्यम हूँ ? वा कोई निकृष्ट पदार्थ हूँ ? जाग्रतरूप हूँ ? वा स्वप्नरूप हूँ? वा सुषुप्तिरूप हूँ ? वा तुरीयरूप हूँ? वा तुरीयातीत हूँ ? वा जाग्रत् स्वप्न सुषुप्तिके अभिमानी विश्व तैजस प्राज्ञनामा जीव हूँ? वा जाग्रतादि अवस्थाके अभिमानते रहित हूँ ? व्यष्टिस्थूल शरीर हूँ ? या व्यष्टि सूक्ष्म शरीर हूँ? वा व्यष्टि कारण शरीर हूँ ? वा स्थूल, सूक्ष्म, कारण, समष्टि रूप हूँ ? वा तिनते रहित हूँ? पंचकोश रूप हूँ? वा तिनते रहित हूँ? बैखरी मध्यमा पश्यंती परा वाणीरूप हूँ? वा तिनते रहित हूँ? समष्टि कारण शरीर हूँ? वा समष्टि सूक्ष्म शरीर हूँ ? वा समष्टि स्थूल शरीर हूँ ? वा तिन समष्टि स्थूलादि शरीरोंके अभिमानी वैराट् हिरण्यगर्भ ईश्वर क्रमते हूँ? वा समष्टि स्थूलादि अभिमानते रहित हूँ? सत्वगुणरूप हूँ? वा रजो गुणरूप वा तमोगुणरूप हूँ ? वा तिनते रहित हूँ? अमानित्वादि दैवी संपदारूप हूँ? वा दंभादि आसुरी संपदारूप हूँ? षट्ऊर्मिवान् हूँ ? वा नहीं हूँ ? षट्भावविकारवान् हूँ ? वा नहीं हूँ ? श्रोत्रादिक

इंद्रियोंका तथा मनादिकोंका मैं विषय हूँ ? वा अविषय हूँ ! तात्पर्य यह कि, मनादिक इंद्रियके द्वारा मैं जाननेमैं आता हूँ ! वा नहीं ? स्वप्रकाश हूँ ? वा परप्रकाश हूँ ? कर्मवान् हूँ ? वा नहीं हूँ ? कर्म उपासनाका फल भोक्ता हूँ ? या नहीं ? तथा कर्म और उपासनाका मैं कर्ता हूँ ? कि, कोई अन्य कर्ता है, और मैं निष्कर्तव्य हूँ ? कि, सकर्त्तव्य हूँ ? मैं बंधरूप हूँ ? कि, मोक्षस्वरूप हूँ ? वा तिनते रहित हूँ ? कारण स्वरूप हूँ ? कि, कार्य्य स्वरूप हूँ ? वा तिनते रहित हूँ ! गुरुके उपदेश वा शास्त्रद्वारा मैं जाननेमें आता हूँ ? कि, नहीं ? देश, काल, वस्तु, स्वरूप हूँ ? कि, तिनते रहित हूँ नाम, रूप, स्वरूप हूँ ? वा तिनते रहित हूँ ?

हे भगवन् ! मैं आदि हूँ ? कि, अनादि हूँ ? सच्चिदानंदस्वरूप हूँ ? कि, नहीं ? यज्ञ दानादि रूप हूँ ? कि, तिनते रहित हूँ ? पंडित हूँ ? कि, अपंडित हूँ ? स्वमी हूँ ? कि, दास हूँ ? स्थावर हूँ ? कि, जंगम हूँ ? बालक हूँ ? कि, युवा हूँ ? वृद्ध हूँ वा बालकादि अवस्था रूप हूँ ? वा नहीं ? सुंदररूप हूँ ? कि, असुंदर रूप हूँ ? अधंकार रूप हूँ ? कि, प्रकाशरूप हूँ ? सुख-दुःख-रूप हूँ ? कि, तिनते रहित हूँ ? लक्ष्यरूप हूँ ? कि, वाच्यरूप हूँ ? हेयोपादेय रूप हूँ ? कि, तिनते रहित हूँ ? कर्मरूप हूँ ? कि, अकर्मरूप हूँ ? सब जगत्का उपादान कारण अज्ञान वा मायारूप हूँ ? वा तिसते रहित हूँ ? इत्यादि उक्त पदार्थोंके मध्ये मैं कौन हूँ ? हे शांतिदायक कृपालो ! सर्वहितेच्छू सर्व शिष्योंके संताप नाशक करुणानिधे ! हे अज्ञाननाशक दीनबंधो ! हे यथार्थदर्शी ! हे संशयविध्वंसक सद्गुरो ! इस संशयरूपी समुद्रसे आप कृपा करके मुझको पार करो, क्योंकि मैं तुम्हारी शरणको प्राप्त हूँ.

इस प्रकार श्रद्धावान् शिष्य मैत्रेयकी रसभरी हुई वाणी सुनके श्री पराशर मुनिने सर्व प्रश्नोंका केवल एकही उत्तरसे समाधान किया कि, हे मैत्रेय ! पूर्वोक्त, जो तुमने देहसे लेकर अज्ञान पर्यंत सब पदार्थ कहे हैं, सो तू नहीं है. क्योंकि अज्ञान और अज्ञानके कार्य जो सर्व पदार्थ हैं; वे परस्पर व्यभिचारी हैं, परस्पर अपेक्षावाले हैं, आपसमें कार्यकारण भाववाले हैं, चेतनके दृश्य हैं. देश, काल, वस्तु, परिच्छेदवाले हैं, षड्भाव विकारवाले हैं, अतिशयतादि दोषवाले हैं। भ्रम ज्ञानके विषय हैं, जडहैं, वाचारंभण मात्र हैं, स्वप्नवत् प्रतीतिमात्र हैं, अविद्याके परिणामहैं, चेतनके विवर्त हैं और रज्जुसर्पकी न्याँई केवल मिथ्याही तुम्हारे स्वरूपमें कल्पित प्रतीतिमात्र होते हैं. स्वप्नदृश्यकी न्याँई हैं, वस्तुतः सत्य नहीं हैं, हे मैत्रेय ! वास्तवसे जो तुमने देहसे लेकर अज्ञानपर्यंत पूर्वपदार्थ कहे हैं तथा अन्यभी अनेक पदार्थ हैं सो सर्व मन वाणीके गोचरहैं और तुम्हारा स्वरूप अवाङ्मनसगोचर है। सो साक्षात् कहनेको हमभी समर्थ नहीं, तैसेही तुमभी उसको साक्षात् दृश्यरूपता करके जाननेको समर्थ नहीं। काहेते सर्वजीव जिस विषयसुखको नित्य प्रति अनुभव करते हैं, वह जो शब्द स्पर्शादिक विषयजन्य सुख है, तिसको भी जब साक्षात् दृश्यकी न्याँई, कहनेको तथा जाननेको कोईभी समर्थ नहीं होता, तो सर्वप्रकारसे अवाङ्मनसगोचर जो सर्वका आत्मस्वरूप सुख है; तिसको साक्षात् किसी मिसबिना विद्वान् कैसे कहेंगे और कैसे मुमुक्षु जानेंगे किंतु कहना और जानना कुछभी नहीं होगा; किसी एक मिससे इसका कहना और जानना दोनोंही होसक्ता हैं; जैसे मनकरकेभी अचिंतनीय है रचना जिसकी, ऐसा जो यह जगत् है, तिस जगत्की उत्पत्ति पालना और संहाररूप व्यवहार जो करनेवाला है, सोई जगत्का स्वामी पर-

मात्माहै। इस तटस्थ लक्षणकर जैसे परमात्माका रूप जाननेमें आताहै तथा जैसे चित्रोंको देखकर चित्रेलेका होना अनुमान कियाजाता है; तैसेही हे सुबुद्धिमान् मैत्रेय ! सुख दुःखादि सर्वपदार्थ जिसकरके सिद्ध होते हैं; वही तुम्हारा स्वरूप है । तथा—जो मनके फुरनेते प्रथम स्वतःसिद्ध है, पुनः मनके शुभाऽशुभ फुरनेका जो साक्षीरूप करके निर्विकार स्थितहै, पुनः मनके फुरणेके अभावका जो अवधिरूप करके स्थित है, सो तुम्हारा स्वरूपहै । जैसे षट्प्रकारके रूपकी न्यून अधिकताको परिणामकरनेवाला चक्षु इंद्रिय रूपसे भिन्न, सर्वरूपके विकारोंसे रहित, रूपका उपचारक द्रष्टाहै । तथा—जैसे शब्दके न्यून अधिकताको परिमाण करनेवाला, श्रोत्र इंद्रिय शब्दसे भिन्न; शब्द विकारोंसे रहित, शब्दका उपचारक ज्ञाताहै । तथा—जैसे गंधके उत्तम मध्यमभावको तथा गंधकी उत्पत्ति नाशको परिमाण करनेवाला घ्राण इंद्रिय; गंधसे भिन्न, सर्व गंधके विकारोंसे रहित, गंधका उपचारके द्रष्टाहै । जैसे—षट्प्रकारके रसके न्यून अधिकताको परिमाण करनेवाला, रसनेंद्रिय, रससे भिन्न, सर्व रसके विकारोंसे रहित और रसका मुख्यज्ञाता जो आत्मा उसकी उपाधि होनेते गौणज्ञाता; रससे भिन्न है, जैसे—स्पर्श विषयके न्यून अधिक भावको परिमाण करनेवाला, स्पर्शके सर्व विकारोंसे रहित, स्पर्श विषयका उपचारक, ज्ञाता, त्वचा इन्द्रिय स्पर्शते भिन्न है—काहेते रूपादिक पदार्थ भिन्न देशमें स्थित हैं और रूपादिकोंके परिमाण करनेवाले चक्षु आदिक उपचारक द्रष्टा भिन्न देशमें अर्थात् देहविषे स्थित हैं इसीते रूपादिकोंके गुणदोषको चक्षुआदिक इंद्रियरूप द्रष्टा स्पर्श नहीं करते, तथा रूपादिक पदार्थ अपने द्रष्टा चक्षु आदिकोंको जानते भी नहीं । तैसेही प्रत्यक् आत्माभी इस देहरूप संघात विषे, मन, वाणीके कथन चिंतनते रहित, स्थित हुआभी, जिसकर काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, लज्जा, अलज्जा, धृति, भय, अभय,

शांति, अशांति, यथार्थज्ञान, अयथार्थज्ञान, स्मृति, अस्मृति; दंभ, अदंभ, मान, अमान, सर्व, मनका शुभाशुभ स्फुरणा, हर्ष शोक; ध्यान, अध्यान, बंध, मोक्ष, ग्रहण, त्याग, जाग्रत्, स्वप्न सुषुप्ति, मरण मूर्च्छा, समाधि आदिक. सारांश यह कि, दैवी आसुरी गुण वा मन संहित सर्व मनके धर्म जिसकर सिद्ध होते हैं. तात्पर्य यह कि, जिस करके पूर्वोक्त सर्व पदार्थ जाननेमें आतेहैं सोई तुम्हारा स्वरूप है दुःख सुखादि पदार्थोंको अंतर कडीवत् [तराजू] जो परिणाम करनेवाला है जिसका मनादिकों करके परिणाम कियाजासक्तानहीं सो मनादिकोंका साक्षी, प्रकाशक, परमात्मासे अभिन्न, महाकाशसेअभिन्न घटाकाशकी न्याँई, प्रत्यक्आत्मा तुम्हारा स्वरूप है। तथा—प्राणादिकोंके क्षुधा पिपासादिक धर्मोंको जो जानता है, तथा प्राण, अपानादिकके न्यून अधिक भावको जो जानता है, सो प्रत्यक्आत्मा तुम्हारा स्वरूप है जो शरीर तथा शरीरके शयनादिक सर्व धर्मोंको जानता है, बहिर्घट द्रष्टाकी न्याँई, तथा—चक्षुआदिक इंद्रियोंका और चक्षुआदिक इन्द्रियोंके मंद बधिरत्वादिक सर्व धर्मोंकी न्यूनता अधिकताको, जो अंतर जाननेवाला है, सोई प्रत्यक्आत्मा तुम्हारा स्वरूप है। जो शरीरात्मक पंचभूतोंको तथा शरीरके अंतर रहनेवाले पंचमहाभूतोंके कार्यरूप क्रोधादिक पचीस वा सत्ताईस वा एकसौ पचीस (१२५) प्रकृतियोंको तथा भूत, भविष्यत्, वर्तमान कालको जो सिद्ध करता है तथा भूत भविष्यत् वर्तमानकालमें होनेवाले पदार्थोंका जो सिद्ध करनेवाला है; सो तुम्हारा स्वरूप है। जो मन बुद्धि अहंकार चित्तादिक अंतःकरणको तथा अंतःकरणकी सात्त्विकादिक वृत्तियोंको सिद्ध करनेवाला है सो तुम्हारा स्वरूप है। जो सगुण वा निर्गुण परमेश्वरके ध्यान अध्यानका अंतर साक्षी ज्ञाता है और भाव अभावको तथा सर्व अस्तिनास्ति पदार्थोंको जो सिद्ध करताहै।

सोई तुम्हारा स्वरूप है । जो सात्त्विकी वृत्तियोंकी उत्पत्ति अनुत्पत्तिको तथा राजसी वृत्तियोंकी अनुत्पत्ति उत्पत्तिको तथा तामसी वृत्तियोंकी उत्पत्ति अनुत्पत्तिको जानता है, सोई तुम्हारा प्रत्यक् स्वरूप है ॥ जो सात्त्विकी वृत्ति अंतःकरणते उदय होकर नष्ट होगई, और जबतक राजसी वा तामसी वा पुनः सात्त्विकी वृत्ति उदय भई नहीं, तिस संधिमें स्थित होकर दीपकदेहली न्यायकर सात्विकी वृत्तियोंके अस्तभावको और दूसरी राजसी तामसी तथा सात्त्विकी वृत्तियोंके अनुदयको अपने स्वप्रकाश रूप करके जो सिद्ध करता है सोई तुम्हारा स्वरूप है । तैसे जब राजसीवृत्ति उदय होकर नष्ट होगई और सात्विकी तामसी वा पुनः राजसी वृत्ति उदय नहीं भई, तैसेही जब तामसी वृत्ति उत्पन्न होकर पुनः नष्ट होगई और जबतक सात्त्विकी वा राजसी वा पुनः तामसी वृत्ति उत्पन्न हुई नहीं, तबलग तिसकालमें, जिस शांतरूप निर्विकल्प प्रकाश करके पूर्वोक्त व्यवहार सिद्ध होताहै, सोई सत्‌रूप तुम्हारा स्वरूपहै । तात्पर्य यह कि, सर्व वृत्तियोंकी सन्धियोंमें स्थित हुआ दीपक देहली न्यायवत् सर्व वृत्तियोंके भाव अभावको जो सिद्ध करनेवाला है सो प्रत्यक् आत्मा तुम हो । जिसको मन मनन कभीभी नहीं कर सक्ता, जिसको बुद्धि निश्चय नहीं करसक्ती, और जिसको चित्त चिंतन करसक्ता नहीं और जिसको अहंकार अहंपना नहीं करसक्ता क्योंकि जाति गुण क्रियादि संबंधवाले पदार्थोंकोही, ये मनादिक चिंतन करसक्ते हैं और यह प्रत्यक्आत्मा जाति गुण क्रियादि संबंधवान् दृश्यपदार्थोंसे रहित है, तिनका द्रष्टा है, तथा यह नियम है, कि, दृश्य द्रष्टाको प्रकाश नहीं करसक्ता उलटा द्रष्टाही दृश्यको प्रकाश करता है सूर्य दीपकादिकोंमें यह प्रसिद्ध द्रष्टांतहै । इसीलिये मनआदिकोंके साक्षी द्रष्टा आत्माको पूर्वोक्त मनादिक प्रकाश

नहीं करसकते। किन्तु मन बुद्धिआदिकोंके भावाभावको तथा उन्हों-के न्यूनाधिक भावको तथा मनआदिकोंके शांति अशांति धृति अधृति आदिक धर्मोंको जो जानताहै; सोई सत्य वस्तु तुम्हारा स्वरूप है। यह जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्त्यादि प्रपंच जिसकरके सिद्ध होते हैं, और जिसकरके पंच कोशोंका परिमाण होता है तथा जो पंचकोशोंसे अतीत, पंचकोशोंका साक्षी, प्रकाशक वा स्वामीहै, सोई चैतन्य वस्तु तुम्हारा स्वरूपहै।

हे शिष्य! सर्व पदार्थ व्यभिचारी हैं इसीसे मिथ्या हैं, जो अव्यभि-चारी वस्तु है सोई सत्य है; जैसें घटमें पट नहीं है और पटमें घट नहीं है किन्तु सर्व घट पटादिकोंमें मृत्तिका अनुस्यूत अव्यभिचारीहै; तैसे-अज्ञानसे लेकर देहपर्यंत सर्व पदार्थ परस्पर एक दूसरेमें नहीं है अर्थात् सबका सबमें अभावरूप व्यभिचारहै; इसीसे मिथ्याहैं; परंतु अस्ति; भाति, प्रियरूप, प्रत्यक् आत्मा तिन सर्व पूर्वोक्त पदार्थोंमें, अनुस्यूत अव्यभिचारीहै, इसीसे वह सत्य है; जैसे—भूषण व्यभि-चारी हैं अरु सुवर्ण अव्यभिचारीहैं। और भी अनेक दृष्टांतहैं सोई दिखलातेहैं, जैसे—वर्तमान जाग्रत् अवस्थाके सिद्धकर्ता, प्रत्यक् आत्माका, जाग्रत् अवस्थाके साथ अन्वय नाम अभेद है और स्वप्न, सुषुप्ति; मूर्च्छा, मरण, समाधि आदिक अवस्थाका जाग्रत् अवस्थासे व्यतिरेकनाम अभावहै। तथा जाग्रत् अवस्थाके सिद्धकर्ता आत्मासे भी इनका व्यतिरेक नाम अभावहै; तैसेही—स्वप्नावस्थामें आत्माका स्वप्न अवस्थाके साथ अन्वय नाम अभेद है और जाग्रत्, सुषुप्ति, मरण, मूर्च्छा, समाधिका, स्वप्न अवस्थाके साथ व्यतिरेकहै तथा आत्माके साथभी व्यतिरेक है, तैसेही—सुषुप्ति अवस्थाको सिद्धकर्ता. प्रत्यक् आत्मा सुषुप्तिसे अन्वय नाम मिला है और जाग्रत्, स्वप्न, मरण, समाधि, आदिक अवस्थाका सुषुप्ति अवस्थासे व्यतिरेकहै

अर्थात् भेदहै तथा उक्त आत्मासे भी उनका व्यतिरेक नाम भेदहै। सारांश यह कि, जब जाग्रत् अवस्था है तब स्वप्नादिक अवस्थाका अभावहै, परन्तु जाग्रत्के सिद्ध करनेवाले, केवल आत्मस्वरूपका अभाव कदाचित् नहीं; किंतु हाजिरहजूर है, उलटा स्वप्नादिकोंका अभाव और जाग्रत्का भाव प्रत्यक् आत्मा करकेही सिद्ध होताहै। तैसेंही-जब स्वप्नकी अवस्था होतीहै तब जाग्रतादिक अवस्थाका अभाव होताहै; परंतु स्वप्नके सिद्धकर्ता आत्माका अभाव नहीं होता, उलटा जाग्रतादिकोंके अभावको और स्वप्नके भावको सिद्धकर्ता यह प्रत्यक् आत्माही है। तैसेही--जिसकालमें सुषुप्ति होतीहै, तिसकालमें स्वप्नादिक अवस्थाका अभावहै, परन्तु सुषुप्तिके सिद्धकर्ता आत्माका अभाव नहीं,उलटा सुषुप्तिकेभावको और स्वप्नादिकोंके अभावको तुम्हारा प्रत्यक् आत्मा स्वरूपही सिद्धकर्ताहै। इसीरीतिसे जब समाधि नाम चित्तकी एकाग्र अवस्था होतीहै तब जाग्रतादिक अवस्थाका अभाव होता है सही, परंतु तिसकालमें जाग्रतादिक विक्षेप अवस्थाके अभावको,तथा समाधिरूप एकाग्रताके भावको;सिद्ध करनेवाला प्रत्यक् आत्माका अभाव नहीं है; यहीरीति मरण आदिक अवस्थामें भी जानलेनी।तैसेही-घटादिक पदार्थोंका पटादिक पदार्थोंमें अभावहै, तथा पटादिक पदार्थोंका घटादिक पदार्थोंमें अभावहै, परंतु जिस सच्चिदानंद शब्दोंके पर्य्यायरूप यह अस्ति भाति प्रियशब्दोंका अर्थरूप प्रत्यक्--आत्मा करकेही, घट पटादिकोंकी सिद्धि होतीहै, तिसका अभाव कदाचित नहीं है। तैसेही-जब सत्त्वगुणहोताहै तब रजोगुण और तमोगुण नहीं होते, परंतु सत्त्वगुणके भावको और रजोगुण तथा तमोगुणके अभावका जो सिद्धकर्ता, प्रत्यक् आत्माहै। तिसका अभाव नहीं; तैसेही-जब रजोगुण आताहै तब, सत्त्व और तमोगुणका अभाव होता है; परन्तु रजोगुणके भावको और सत्त्व तमगुणके अभावका

सिद्धकर्ता आत्माका अभाव नहीं है तैसेही–जब तमोगुण आताहै तब सत्त्वगुण रजोगुणका अभाव होताहै, परंतु तमोगुणके भावको अरु रज तथा सत्त्वगुणके अभावको जो आत्मा सिद्धकर्ता है, तिसका आभास नहीं। तैसेही–जब अज्ञान होताहै तब ज्ञान नहीं होता, और जब ज्ञान होता है तब अज्ञान नहीं होता; परंतु आत्मा, तिनको सिद्ध करने वाला, हाजीर हजूर सदा सर्वदाही वर्तमान है। तैसेही–जब शुभसंकल्प चिंतन निश्चय और शुभ अहंपन होताहै, तब अशुभ संकल्प, अशुभ निश्चय अशुभचिंतन और अशुभ अहंपन नहीं होताहै। तैसेही–जब अशुभ संकल्प, निश्चय, चिंतन, अहंपन होताहै, तब शुभ, संकल्प, निश्चय चिंतन, अहंपन नहीं होता परंतु तिनके सिद्धकर्ता आत्माका कदाचित्भी अभाव नहीं होता, सदा हाजिर हजूर है। तैसेही–काम वृत्तिके उदय होनेसे क्रोधादिक वृत्तियोंका अभाव होता है और जब क्रोधवृत्ति उदय होतीहै तब कामादिक वृत्तियोंका अभाव होताहै परंतु तिनके सिद्धकरनेवाले आत्माका अभाव नहीं होता। इसी रीति-से–सर्व पदार्थोंमें जानलेना। सारांश यह कि, जब सम्यक् विचार करे तो यही सिद्ध होता है कि, घट और भूषणादिक सब कल्पित पदार्थ, मृत्तिका सुवर्णादिक; अपने २ अधिष्ठान विषे हैंही नहीं, केवल सुवर्णादिक अधिष्ठानहीं हैं; परंतु यह बात अलौकिक बुद्धिसे नेत्रोंसे देखी जाती है; चर्म बुद्धि रूपी नेत्रोंसे यह देखी नहीं जाती। हे मैत्रेय ! जो पदार्थ किसी कालमें होवे और किसी कालमें नहीं होवे और तैसेही जो पदार्थ किसी देशमें होवे, किसीमें नहीं होवे, तैसेही जो पदार्थ किसी वस्तुमें होवे और किसी वस्तुमें नहीं होवे, सो पदार्थ व्यभि-चारी नाम मिथ्या होताहै और जो सर्व देशमें सर्वकालमें होवे और जो सर्व वस्तुमें होवे, सोई वस्तु अव्यभिचारी नाम सत्य होती है, जैसे–सर्प दंड माला लकीर वृक्षकी जड इत्यादिक पदार्थ आपसमेंभी व्यभिचारी

नाम भिन्न भिन्नहैं; और रज्जुसेभी भिन्न है; तात्पर्य यह है कि, सर्प प्रतीति कालमें दंडकी प्रतीति होती नहीं, जब दंडकी प्रतीति होती है, तब सर्पादिकोंकी प्रतीति होती नहीं। तैसेही—जब मालाकी प्रतीति होतीहै, तब सर्प दंडादिकोंकी प्रतीति होती नहीं, परंतु रज्जुका अभाव किसीकालमेंभी नहीं बरन् इदं रूप रज्जुही सर्पादिकोंमें अनुस्यूत नाम व्यापक है। तैसेंही—भूषणोंकाभी आपसमें व्यभिचार नाम भेद है क्योंकि वे आपसे भिन्न २ हैं, परन्तु कल्पित भूषणोंको सिद्ध करने-वाले सुवर्णका भूषणोंमें व्यभिचार नाम अभाव नहीं, इत्यादि अनेक दृष्टांत हैं। इसलिये हे शिष्य! जो कल्पित तथा अव्यभिचारी जाग्रतादिक; सत्य, असत्य, सर्व पदार्थोंका सिद्धकर्ता परमात्मा, महाकाशसे अभिन्न घटाकाशकी न्याईं, सर्वत्र व्यभिचारी, जो प्रत्यक् आत्मवस्तु है, सोई तुम्हारा स्वरूप है। जो प्रत्यक्षादि प्रमाणों करके जाननेमें नहीं आता किंतु जिस करके प्रत्यक्षादि प्रमाण सिद्ध होते हैं और प्रमाता, प्रमाण, प्रमेय, ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय, द्रष्टा, दर्शन, दृश्य इत्यादि त्रिपुटी जिसकी सत्तामात्रसे सिद्ध होती है, सोई चैतन्य तुम्हारा स्वरूपहै। जो प्रत्यक्षादि षट् प्रमाणों करके जान-नेमें आताहै सो मायातत्कार्य जगत्का रूप है तुम्हारा रूपनहीं। सर्व जगत्का उपादान कारण अज्ञान तथा सुषुप्ति कालका आवृत्तसुख सुषुप्तिमें जिसकी सत्तासे सिद्ध होता है तथा जाग्रत्‌मेंभी भ्रम अभ्रम वा भूल अभूल वा स्मरण अस्मरण रूप ज्ञान अज्ञान जिसकरके सिद्ध होताहै, सोई तुम्हारा स्वरूपहै।

हे शिष्य! मस्तक पर चन्दन लगानेसे शीतलता होतीहैं तथा पाँवमें अग्निका स्पर्श होनेसे वा पाँवमें कांटाही लगनेसे जलन होतीहै, सो मस्तककी शीतलता तथा पाँवमें जलन, जिस बुद्धि उपहित चैतन्य करके, एकही कालविषे, जानी जाती है; सोई निराकार, सच्चिदानंद;

पूर्वोक्त शीतलादिक पदार्थोंके भावाभावको जाननेवाला,प्रत्यक् आत्मा तुम्हारा स्वरूपहै । हे शिष्य ! यदि यह कहो कि,सर्व पदर्थोंको बुद्धि जानती है, सो नहीं क्योंकि जो बुद्धिको प्रकाशता है, सोई सर्व पदार्थोंको प्रकाशता है, किन्तु बुद्धि आदिक किसीकोभी नहीं प्रकाश करसक्ते। जैसे-बारियांवाले मंदिरमें वा छिद्रोंवाले घटमें; अँधेरीरात्रिमें दीपक धराहोवे तथा मंदिरकी बारियोंके वा घटके छिद्रोंके अग्रभागमें स्वाभाविकही,अनेक प्रकारोंके नीलपीतादि रंगोंवाले पदार्थभी धरे होवें इसमें तुमको विचार करना चाहिये कि मंदिरकी बारियोंके वा घटके छिद्रोंके अग्रभाग धरे जो नील पीतादि रंगवाले पदार्थ हैं सो किसकरके तिन पदार्थोंका प्रकाश होताहै । बारियों करकेभी तिन बारियोंके अग्रभागधरे पदार्थोंका प्रकाश नहीं होता, तथा मंदिरकी दिवालोंसेभी तिन बारियोंके अग्रभागधरे पदार्थोंका वा मंदिरके अंतर धरे पदार्थोंका प्रकाश नहीं होता तथा मंदिरभीतर धरे जो पलंग बर्तनादिक अनेक पदार्थ हैं, तिनसेभी बारियोंके अग्र धरे पदार्थोंका वा मंदिरका प्रकाश नहीं होता । तथा तेलका आधारभूत जो मिट्टीरूप काँचकी गिलासहै तिससेभी किसी पदार्थका प्रकाश नहीं होता । तथा गिलासके मध्यधरे तेलसेभी उस अपने आधारभूत परंपरा गिलासका तथा अन्य किसी पदार्थका प्रकाश नहींहोता । परंपरा करके पृथ्वीके कार्यभूत रुईकी बत्तीसे भी अपना, साक्षात, वा परंपरा करके आधारभूत जो, तेल गिलास तथा मंदिरादिक पदार्थोंका मंदिरकी दीवालोंका तथा बारियों-के आग्रभागमेंधरे पदार्थोंका तथा मंदिरभीतरधरे अनेक पलंग आदिक पदार्थोंका, किसी रीतिसेभी प्रकाश नहीं होता । तथा बारियोंके आग्रभागमें धरे नील पीतादिक पदार्थोंसे किसीभी पदार्थका प्रकाश नहीं होता। किंतु-शेषरही जो चम्पेकी कलीकी नाँई अग्निरूप लाट ज्योति सोई बारियोंके अग्र धरे नील पीतादि रंगोंवाले पदार्थोंको,

बारियोंको दीवालोंको, मंदिरको मंदिरभीतरधरे पलँग आदिक पदार्थों को, गिलासको, तेलको, तथा पूर्वोक्त वत्तीको, बत्तीपर आरूढ अग्निरूपी लाटही सर्वको प्रकाश करता है । पूर्वोक्तरीतिसे अन्य कोई पदार्थ प्रकाश करता नहीं, लाटको अन्य लाटभी प्रकाश करता नहीं; यह दृष्टांत अपरोक्ष, सर्वके, अनुभव सिद्ध है । तैसेही यहां पंचभूतोंका कार्य, जो देह मंदिररूपहै और श्रोत्रादि इंद्रिय बारियां रूपहैं. शब्द स्पर्शादिक, श्रोत्रादिक इंद्रियोंके विषय, बारीके अग्र भागधरे पदार्थोंकी न्याईं हैं । त्वचा दीवालरूपहैं, मांस चूना और गारेके तुल्यहै; पृष्ठमें दीर्घ अस्थि शहतीर तुल्य है, छोटी अस्थियां बालिया [कडी] आदिक अनेक काष्ठरूप हैं । पचीस प्रवृत्तियां मंदिर भीतरधरे पलँग वर्तन आदिकके समान हैं। प्राण १ श्रद्धा २ सूक्ष्मआकाश, वायु, ज्योति, अप और पृथ्वी ७ दशइंद्रिय ८ मन, अन्न वीर्य्य ११ तप, मंत्र, कर्म्म लोक लोकोंके विषय १६ ये षोडश कला हैं; वा पंच ज्ञानेंद्रिय, पंचकर्मेंद्रिय पंचप्राण, एक अंतःकरण गिननेते उन्नीस होते हैं; इन षोडश कला प्रधान सूक्ष्म शरीर गिलास तुल्यहै षोडश तत्त्व हुये, मन बुद्धि दो गिननेते सत्रह हुये; चार गिननेते तिनके मध्यमें प्राण रुधिरके तुल्य है; काहेते जैसे शरीरमें रुधिर व्यापक है तैसे प्राण भी शरीरमें व्यापक है अन्तःकरण तेल तुल्यहै बुद्धि बाती तुल्यहै, मंदिरमें आकाशके तुल्य अज्ञान है; जैसे बत्ती आरूढ, अग्निही बत्तीसहित सर्व पदार्थोंको प्रकाशता है, तैसेही बुद्धि पर आरूढ, प्रत्यक् चैतन्य आत्माही बुद्धि सहित देह आदि अज्ञान पर्य्यंत, सर्व जड अनात्म पदार्थोंको प्रकाशता है; ताते बुद्धि आदिक सर्व पदार्थोंके जाननेहारे, साक्षी आत्माको, तुम अपना स्वरूप जानो । हे शिष्य ! सुख दुःख हर्ष शोक तथा धर्माधर्मका जो ज्ञाता है, जिस करके ग्रहण और त्याग दोनों सिद्ध होतेहैं तथा स्थूल

सूक्ष्म, कारण, शरीर और तिन तीनों शरीरोंके धर्मोंका, जिस करके प्रकाश होताहै और जिसको कोईभी दृश्य पदार्थ प्रकाश नहीं करसकता सो प्रत्यक् चैतन्य स्वयं ज्योति तुम्हारा स्वरूप है। तात्पर्य यह कि, बुद्धि, आकाश, काल, दिशा अतिसूक्ष्म अज्ञान आदिक सर्व अनात्मा दृश्य पदार्थोंको तथा पृथ्वी, अप, तेज, वायु और तिनके कार्य, देह पर्वतादिक अतिस्थूल पदार्थोंको, आत्मा समही प्रकाशक है। जैसे–हमलोगोंकी दृष्टिसे परमाणु अतींद्रिय है और देह पर्वत आदिक अतिस्थूल हैं परन्तु सूर्यकी दृष्टिसे परमाणु सूक्ष्म नहीं और देह पर्वतादिक स्थूल नहीं–काहे कि, सूर्य परमाणु आदिक पदार्थको तथा पर्वतादिक पदार्थको तुल्यही प्रकाशता है–तैसे–पृथ्वी आदिक कार्य्योंकी अपेक्षा करके पृथ्वी आदिक कार्योंके कारण अज्ञानको अनादि, अतुच्छ तथा सूक्ष्मपनाहै, चैतन्यकी तरफसे नहीं । तू अस्ति, भाति, प्रिय, समान, चैतन्य, स्वमहिमामें स्थित हुआ, अंतःकरणरूप अविद्या, मायादिक उपाधिके योगते–जीवत्व, ईश्वरत्व भाव, ब्रह्मभाव, सर्वदृश्यका साक्षि भाव, तथा सच्चिदानंदादिक, विशेपरूप करके अंतःकरणमें, तथा मायामें स्फुरण - होताहै, परंतु समान विशेष भावमें तो चैतन्य स्वरूप सम है, उपाधि करके समान विशेष भाव है; वास्तव नहीं । जैसे-रूप मात्र, समान अग्नि, सर्व घट पटादिक पदार्थोंमें सूर्यकांतिमणिमें तथा सूर्य्यमें सम है, परन्तु सूर्य्य और सूर्य्यकांतिमणिके संयोगरूप उपाधिके संबंधसे समान अग्निही, दाहकता, उष्णता, प्रकाशकता, विशेष अग्निभावको प्राप्त होजाती है, नहीं तो अग्नि निजस्वरूपसे समान विशेषभावमें सम है । तात्पर्य यह कि, जो बुद्धि आदिक सर्व अनात्म दृश्य पदार्थोंकी इयत्ता नाम परिमाण करनेवालाहै और जिसकी किसी बुद्धि आदिक दृश्य अनात्म पदार्थोंसे इयत्ता नाम परिमाण करा जाता नहीं, सोई, तुम्हारा स्वरूपहै।

काहेते द्रष्टासेही दृश्यकी इयत्ता होतीहै, दृश्यसे द्रष्टाकी इयत्ता नहीं होतीहै—जैसे—चक्षु आदिक इंद्रियोंसेही रूपादिक दृश्य पदार्थोंकी इयत्ता होतीहै, रूपादिक दृश्य पदार्थोंसे चक्षु आदिक इंद्रिय गौण द्रष्टाकी इयत्ता नहीं होती। जो सर्व देश काल वस्तुमें, अस्ति भाति, प्रियस्वरूपसे, तिन देश कालादिकोंका अधिष्ठान, सर्वदा हाजिरहजूरहै, जो हृदय देश विषे; मन आदिकोंका साक्षी, चैतन्य पुरुष स्थितहै, जो मनके चिंतनमें नहीं आता, जो मन आदिकोंके देखनेहाराहै; तिसीको तुम अपना स्वरूप ब्रह्म जानो और जो मन वाणीके चिंतन कथनमें आताहै तिसको तुम अज्ञान, माया तत्कार्य प्रपंच जानो; सो तुम्हारा स्वरूप ब्रह्म नहीं, वह संसारी मायाका स्वरूपहै।

हे शिष्य! देह आदि माया पर्य्यंत सर्व दृश्य, अनात्म पदार्थ किसी कालमें होतेहैं और किसी कालमें नहीं होते, तैसेही—सर्व पदार्थ किसी देशमें होते हैं, किसी देशमें नहीं होते; तैसेही—सर्व अनात्म पदार्थ आपसमें एक दूसरेमें व्यभिचार स्वभाववालेहैं—इसीसे सर्व पदार्थ मिथ्या, जड और अप्रकाश स्वरूपहै, दुःख रूप तथा मायाके कार्य्यरूपहैं, उत्पत्ति विनाश और न्यून अधिक स्वभाववाले हैं, तथा आपसमें विरोधी अविरोधी स्वभाव वाले और तुच्छ रूपहैं—इसीसे मिथ्याहैं किंतु चैतन्य पूर्वोक्त सर्व पदार्थोंके स्वभावते अतीत है-इसीसे सत्यहै। यद्यपि पूर्वोक्त सर्व पदार्थोंका उपादान कारण, माया, अज्ञान अपने कार्यकी अपेक्षा करके, अनादि और अतुच्छहै तथा अव्यभिचारी है, सर्व देश काल वस्तुमें व्यापकहै, अतीन्द्रिय और सूक्ष्म है; तथापि, जबलग हृदयदेशमें प्रत्यक् आत्मासे अभिन्न, ब्रह्मवस्तुका बोध नहीं हुआ, तवतकही अज्ञान वा मायामें अनादिपना आदिक पूर्वोक्त धर्म हैं। जैसे-जबतक गुफामें वा ब्रह्मांडमें,

दीपक वा सूर्य्य उदय नहीं हुआ तबलगही अंधकारमें अनादि पना आदिक धर्म हैं, किन्तु जब दीपक वा सूर्य उदय हुआ तब गुफामें वा ब्रह्मांडमें, अंधकार खोजनेसे भी मिलता नहीं। तैसेही जब ज्ञानरूपी हृदय देशमें सूर्य उदय हुआ तब अज्ञान वा मायाका अत्यंताभावहै-क्योंकिघटादिकोंकी न्यांई अज्ञानभी आत्मामें कल्पित है और यह नियम है कि, जो कल्पित होताहै सो मिथ्या होताही है इससे कार्य्यकारण रूप कल्पित प्रपंचको, आत्मा चैतन्यका, सत्ता और स्फूर्ति देना समानही धर्महै, न्यून अधिक नहीं। तैसेही-कल्पित पदार्थोंमें भी स्वअधिष्ठानमें, कल्पितत्त्व धर्मभी समानही है, न्यून अधिक नहीं, अर्थात् कल्पित पदार्थोंमें कार्यकारण भाव नहीं होता स्वप्न पदार्थोंवत्। तातें-अज्ञानादि देहपर्य्यंत सर्व पदार्थ व्यभिचारी होनेतें मिथ्या हैं और तू चैतन्य एकरस अव्यभिचारी आनंद स्वरूपहै ॥

हे शिष्य! तू साक्षी चैतन्य आत्माही अस्ति, भाति, प्रिय, समानरूप करके समान अग्निकी न्यांई, सर्व देशमें, सर्व कालमें तथा सर्व वस्तुमें हाजिर हजूर और अपरोक्ष स्थित है। यह बात विद्वान् लोग जानते हैं। अस्ति, भाति, प्रिय, समान रूप तू ही अंतःकरण नामक उपाधिके विषे, सच्चिदानंद, बुद्धिआदिकोंका साक्षी रूपकरके विशेष स्फुरण होता है-परंतु समान विशेषमें तुझ चैतन्यका भेद नहीं; जैसे-सर्वत्र व्यापक, रूप मात्र समान अग्निही, काष्ठ मथनादि द्वारा दाहकता, उष्णता, प्रकाशता, विशेष रूपकरके स्थित होताहै, परंतु अग्निका समान वा विशेष स्वरूपसे भेद नहीं-तैसे-सूर्यका प्रकाश सर्वमें एकरस व्यापक है, परंतु वही प्रकाश सूर्यकांतमणिके संबंधसे, विशेष रूपताको प्राप्त होता है। तैसेही-अस्ति, भाति, प्रिय, रूप सर्वत्र सामान्य चैतन्य आत्माही,

अपनी महिमामें स्थित, अंतःकरण रूप अविद्या मायादिक उपाधिके योगसे, जीवभाव, ईश्वरभाव, ब्रह्मभाव, तथा सर्व दृश्य प्रपंचका साक्षी भाव और सच्चिदानंद भाव इत्यादिक विशेष रूप करके अंतःकरणमें तथा मायामें स्फुरित होता है—परंतु समान विशेष भावोंमें सामान्य चैतन्यस्वरूपसेसमही है क्योंकि,उपाधिकरके समान विशेष भाव है, वास्तव नहीं ॥

हे शिष्य ! तू अवाङ्मनसगोचर चैतन्य आनंद स्वरूप है,तेरेही आनंदकी लेश लेकर सर्व प्रपंच आनंदमान होरही है. तात्पर्य्य यह कि, यह जो असत्, जड और दुःखरूप सर्व दृश्य जगत् है सो तुझ सच्चिदानंद स्वरूपहीसे सत चित् और आनंद रूप हो रहा। हे साधो ! जैसेअन्न के बने हुये,मोदक, जलेबी, आदि मधुरपदार्थ स्वयं मधुर रहित होके भी एक गुडके द्वाराही मधुर होते हैं, आपसमें कौंचा कडाही आदि किसी अन्य साधन द्वारा मधुर नहीं होते और गुड किसी पदार्थसे मधुर नहीं होता, क्योंकि वह स्वरूपहीसे मधुर है। तैसेही देहादिक सर्वपदार्थ, तुझ चैतन्य आत्मा करकेही शोभायमान होरहे हैं और तुझ दृश्यके द्रष्टा आत्माको दृश्य पदार्थ कोई भी शोभायमान नहीं करसक्ते इसीसे—तुम्हारा स्वरूप प्रत्यक् आत्मा स्वयं प्रकाश रूपहै । हे बुद्धिमान् शिष्य ! जैसे पंच महाभूत, अपने कार्यरूप भौतिक पदार्थ में, लौकिक दृष्टि करके प्रविष्टभी हैं तथा अप्रविष्टभी हैं । जैसे सुवर्ण अपने कार्य भूषणोंमें प्रविष्टभी है तथा अप्रविष्टभी है।जैसे—मृत्तिका अपने कार्यरूप सर्व घटोंमें प्रविष्टभी है तथा अप्रविष्टभीहै। जैसे—रज्जु अपनेमें अध्यस्त सर्पादिकोंमें प्रविष्टभी है तथा अप्रविष्टभी है । जैसे-स्वप्न द्रष्टा अपनेविवर्त स्वप्नपदार्थोंमें प्रविष्टभी है.और अप्रविष्टभी है;ऐसेही और भी अनेक दृष्टांत हैं; तैसेही—सर्व नाम रूपात्मक जगत्का विवर्त उपादानकारण सच्चिदानंद

स्वरूप, तुम्हारा आत्माभी, अपनेमें कल्पित नाम रूप संबंध क्रियावान् सर्व पदार्थोंमें प्रविष्ट और अप्रविष्ट दोनों है। प्रविष्ट कैसे है सो सुनो-नामरूप संबंध क्रियावान् जगत् रूप भूषणोंका ऐसा अवयव कोई नहीं जो अस्ति भाति प्रिय रूप प्रत्यक् अभिन्न ब्रह्मात्मारूप सुवर्णसे खाली होवे. तात्पर्य यह कि-तू अस्ति भाति प्रियरूप-आत्मा सुवर्ण है और नामरूपात्मक जगत्रूपी भूषणोंमें ऐसा व्यापक होरहाहै, मानो-नामरूपात्मक भूषणोंका स्वरूप, तुझ आत्मा सुवर्णसे जुदा कुछ है ही नहीं। मानो आत्माने उनका अत्यंताभाव करदिया है, यह बात बुद्धिमान् जानते हैं जैसे-देख अस्ति भाति प्रिय ब्रह्मरूप सुवर्णके विना नामरूप भूषण कहीं खोजनेसे मिलते नहीं, किंतु-अत्मारूप सुवर्ण नाम रूप भूषणोंविषे व्यापक है; इसीलिये कहा गयाहै कि-अस्ति भाति प्रियरूप ब्रह्म सुवर्ण नाम रूप भूषणोंविषे प्रविष्ट है तैसेही अप्रविष्टभी है-क्योंकि, प्रविष्टपना एक वस्तु बिषे दूसरी वस्तुका होता है किन्तु-अस्ति भाति प्रिय स्वरूप ब्रह्मरूपी सुवर्णसे नामरूपात्मक भूषण पृथक् है नहीं, परन्तु अस्ति भाति प्रिय स्वरूप ब्रह्मरूपी सुवर्णका, नाम रूपात्मक जगत्रूपी भूषणों विषे,प्रविष्टपना भी नहीं बनसक्ता; अज्ञजनोंको यद्यपि प्रविष्टपना तथा अप्रविष्टपना, दोनों विरुद्ध धर्म, एक अधिकरणमें नहीं बनसक्ते तथापि इहां मुमुक्षुके बोधवास्ते यह सब वर्णन है,क्योंकि नामरूप कल्पित पदार्थोंके अधिष्ठान आत्माकी तो उन कल्पित पदार्थोंमें,अव्यापकताकी प्रतीति होती है और कल्पित पदार्थोंकी प्रधानता प्रतीति होती है इसवास्ते-कल्पित पदार्थोंमें अधिष्ठान की अनुस्यूतता, असंगता, सत्यरूपता तथा मुख्य प्रतीयमानता वा प्रधानता और अद्वैत रूपताके बोधवास्तेही यह युक्ति वर्णन की गई है। अथवा-अधिष्ठानके अज्ञानसे प्रतीत होता जो यह नाम रूपात्मक, कल्पित प्रपंच है तिसकी-तुच्छ रूपता तथा अत्यंताभावरूपता बोधनके लिये या अधिष्ठानसे

पृथक् अन्य पदार्थोंकी सत्ताके अभाव तथा, अधिष्ठानकी प्रतीति पूर्वकही कल्पित पदार्थोंकी प्रतीति वा, अधिष्ठानकी ही प्राप्तिसे सर्व कल्पित पदार्थोंकी प्राप्ति तथा, अधिष्ठानके स्फुरणसेही कल्पित पदार्थोंकी स्फूर्ति अथवा;अधिष्ठानके श्रवण मनन निदिध्यासन और साक्षात्कारसे,अधिष्ठानमें,कल्पित;सर्व पदार्थोंका श्रवण मनन निदिध्यासन और साक्षात्कार होताहै इत्यादि तत्त्व मुमुक्षुको बोध करने वास्तेही प्रविष्ट अप्रविष्ट इत्यादि पूर्वोक्त श्रुतिका परिश्रमहै, वास्तव-ते प्रविष्टता वा अप्रविष्टता आत्मामेंहै नहीं।दृष्टांत तथा दार्ष्टांतविषे यह अर्थ सर्व विद्वानोंको अनुभव सिद्ध है ताते—हे अधिकारी जनो ! जो तुम ऐसा मानतेहो कि; हम आत्माको जानते हैं; तो—तुम नहीं जानते काहेते, जो जाननेमें आता है, सो दृश्य होता है तथा जड अनित्य, किसीका कार्य्य,मिथ्या व्यभिचारी तथा न्यूनाधिकाभाव आदि विशेषणोंवाला होता है । जो तुम आग्रहसे आत्माको ज्ञानका विषयही मानोंगे तो वेदादिक सर्व शास्त्र और विद्वानोंके अनुभवसे विरोध होवेगा क्योंकि,किसी शास्त्र और विद्वानने आत्माको दृश्य नहीं माना है। अतएव,आत्मा ज्ञानकाविषय है,यह विपरीत बुद्धिहै,यथार्थ नहीं।ताते, यही जानों कि,सर्व प्रकारसे आत्मा,तुम्हारा स्वरूप,अवाङ्मनसगोचर है जो वस्तु मनादिकों करके जानने में न आवे,स्वयम् अपरोक्ष होवे और मन आदि जिसके द्वारा जानेजाँय अर्थात् उलटा मनादिकोंकोप्रकाशे सो वस्तु स्वयं प्रकाश स्वरूपहोतीहै । ऐसा लक्षण इस बुद्धि आदिकोंके साक्षी,आत्मामें ही घटता है अन्य दृश्य वस्तुमें नहीं घटताहै॥

हे शिष्य ! तू चैतन्य आत्मस्वरूप, सुषुप्ति स्वप्न कालमें भी सोवता नहीं,जो तू सोजावे तो तुझको सोनेका ज्ञान कैसे होवे । इसवास्ते तैलऔर बत्ती बिना, इस देहरूप मंदिरमें, तु चैतन्य दीपक, सर्वदा काल अखंड ज्योतिहै।हे साधु स्वभाववाले अधिकारी जनों!जैसे कोई

उदासीन पुरुष अटारीके चौथे अंबाले पर ऊंची जगह में स्थितहों तिसके नीचे चारों औरसे चौरस्ता चलता हो और तिन चौरस्तोंमें, आप अपनी कामनाके अनुसार कोई तो जर, जोरू, जमीनके ग्रहण वास्ते, अथवा मोक्षवास्ते, अनेक प्रकारकी स्त्री, पुरुष, राजा, साधु, पंडित, वेश्या, हस्ती, घोड़ा, रथ,भंगी आदि इधर उधर जाते, आते हो।तथा–शांतिमान्, अशांतिमान्, क्रोधी, आलसी, अभिमानी, दंभी अर्थात् अशुभ गुणवान् और शुभ गुणवान् स्त्री, पुरुष जाते आते हों, तथा अनेक विधिके नाटक करनेवाले जाते आते हों तथा बाजा बजानेवाले चलेजाते आते हों। सारांश यह है कि, राजसी,तामसी, सात्विकी पदार्थों सहित पुरुष और स्त्री इधर उधर जाते आते हों तथा अनेक विधिके इंद्रजालिक लोक,अपने गुण दोषों सहित आते जाते हों तथा उन्हीं रस्तोंमें अनेक शुद्ध, अशुद्ध आदिक दोषवाले पदार्थ भी पड़े हों, अनेक विधिके विवाद भी होते रहते हों, परंतु–तिन गुण दोष सहित स्त्री पुरुषादिक पदार्थोंका, शुद्धि अशुद्धि सहित रस्तोंका, नित्य स्थित ऊंचे मंदिरके गुण दोषोंका, रस्तोंके भी गुण दोषोंका, ऊंचेस्थित द्रष्टा पुरुषकूं स्पर्शभी नहीं होता। तैसेही–अन्य देहोंकी दृष्टिसे, यह पंचभौतिक मनुष्यशरीर, ऊंचे मंदिर स्थानापन्न समझो, पंच ज्ञानेंद्रियों और पंच कर्मेंद्रियोंके छिद्र रस्तोंके समान हैं, वा ज्ञानेन्द्रियोंके विषय–शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, और कर्मेन्द्रियोंको विषय शब्द उच्चारण; ग्रहण; त्याग, गमनागमन, मल मूत्र कात्याग इत्यादि तथा मनादिकोंके विषय रस्तोंके समान हैं। वा सात्विकी, राजसी,तामसी स्वभावको लियेही सर्व देहइंद्रिय मनादिकोंकी प्रवृत्ति निवृत्ति होती है इसलिये–सत्त्व, रज, तम गुणही रस्ता (मार्ग)केसमान है। देहरूप मंदिरके पंचभूतोंको चूना पत्थरकी न्यांई जानो,माया वा अज्ञानको भूमिरूप जानो, तथा समष्टि स्थूल सूक्ष्म

और कारण शरीरके अभिमानी जो, विराट्, हिरण्यगर्भ, ईश्वर वा स्थूल सूक्ष्म कारण शरीरोंके अभिमानी जो विश्व, तैजस, प्राज्ञ है, वही मंदिरके अभिमानी पुरुषोंके समान हैं । समष्टी वा व्यष्टी स्फुरणात्मक, आप अपने २ मतोंके अनुसार; जीवकी वा ईश्वरकी, फुरणाही मंदिरके बनानेवाले चेजारे (राज) के समान है । तथा दश इंद्रिय प्राण; अपान, समान, उदान, व्यान, ये पञ्चप्राण; और नाग कूर्म कृकल, देवदत्त, धनंजय, ये पंच उपप्राण; चतुष्टय अंतःकरण तथा पचीस वा एकसौ पचीस वा सत्ताईस२७जो प्रकृति हैं, वही भिन्न भिन्न आने जाने वाले लोगोंके समान हैं. चक्षु आदिक इंद्रियोंकी तथा चक्षु आदिक इंद्रियोंके सूर्य्यादिक देवताओंकी जो अपने२विषयोंमें स्वतंत्र प्रवृत्ति और निवृत्तिहै, वही आप अपनी कामनाके समान हैं। सुख, दुःख हर्ष शोक मान अपमान बंध मोक्षादिक पदार्थहीको सांसारिक पदार्थ (जर जोरू जमीन) केसमान जानना।तथा पुण्य पाप रस्तोंकी शुद्धि अशुद्धिके तुल्य है. तथा जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्तिकी अपेक्षा जो तुरीय नाम चतुर्थी अवस्था है, सो चौथे अंबालके समान जानना पूर्वोक्त सर्व दृश्यके न्यून अधिक भाव को जाननेवाला, तथा पूर्वोक्त सर्व पदार्थोंके भावाभावको तथा तिनके सर्व धर्मोंको जाननेवाला जो, "सच्चिदानंद, साक्षी, स्वप्रकाश, निर्विकार, निर्विकल्प, आत्माहै, सोई उदासीन पुरुषकी न्यांई स्थित तेरा स्वरूप है अर्थात् सो तूही है"। हे शिष्य ! तू चैतन्य आत्मा सर्व पदार्थोंमें स्थितभी, निर्विकार; स्थित है । जैसे आकाश कज्जलकी कोठडीमें स्थितभी निर्विकार और अचल स्थित है ।

हे शिष्य ! जैसे आकाशमें सप्तऋषियोंसे आदि लेके सर्व, चंद्र सूर्य्यादिक नक्षत्र, तारामंडलका चक्र दिन रात फिरता रहताहै. क्योंकि रात्रिके आदि कालमें, जिस स्थानमें जो नक्षत्र देखनेमें आतेहैं, रात्रिके

मध्यमें अन्य स्थानमें तथा रात्रिके अंत भागमें; वही नक्षत्र अन्य स्थानमें देखनेमें आतेहैं इससे जाना जाताहै कि तारोंका चक्र फिरता रहता है; परंतु ध्रुव तारा अचल एकरस रहता है,जो अन्यताराओंकी न्यांई ध्रुवभी चलाय होवे तो, तिसका नाम ध्रुव नहीं, किन्तु अध्रुव है। तैसे—माया वा अज्ञान रूप आकाशमें; नक्षत्र तारा के समान देहादिक पदार्थोंका चक्र निरंतर फिरता रहता है, कैसे सो सुनो—जैसे अनेक बार जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति अवस्था होती हैं; पुनः मिटजाती हैं, पुनः होतीहैं; पुनः मिट जाती हैं, तैसेही बालक युवा वृद्ध अवस्था अनेक शरीरोंमें अनेक बार प्राप्तहुई तथा मिट-गईं। तैसेही कभी भविष्यत् काल वर्तमान काल होजाताहै वही वर्तमान काल भूतकाल हो जाता है और पुनः पुनः भूत, भवि-ष्यत् और वर्तमान काल होता रहता है, तैसेही सत्वादिक गुणों का भी अदल बदल होता रहता है। जो जाग्रतादिक अवस्थाके अदल बदलसे जाग्रतादिक अवस्थाके अंतरभूत स्थूल,सूक्ष्म,कारण, शरीर तथा तिनके अभिमानी विश्व, तैजस, प्राज्ञ तैसेही पंचकोशोंका भी अदल बदल जानलेना। तैसेही वैखरी, मध्यमा,पश्यंति,परा नाम बाणीका, तैसेही ग्रहण, त्याग, दिन, रात, ज्ञान; अज्ञान, काम, क्रोध, लोभ; मोह; शांति; आदिकोंका अदल बदल जानलेना। तात्पर्य यह कि, कभी दैवी; गुण कभी आसुरी गुणोंका चक्र निरंतर फिरता रहताहै,कभी संयोग कभी वियोग होजाताहै,संयोगका वियोग होजाताहै, वियोगका संयोग होजाताहै। तैसेही—मन, बुद्धि; चित्त, अहंकारका चक्रभी फिरता रहताहै; इसीसे पूर्वोक्त सर्व चक्र मिथ्याहैं; परंतु जिसकरके पूर्वोक्त सर्व चक्र फिरते सिद्ध होते हैं,वा अदल बदल होते सिद्धहोतेहैं "सोई चैतन्य निर्विकार, निर्विकल्प,अचल, असंग, तुम्हारा स्वरूप है"जो प्रत्यक् आत्माभी पूर्वोक्त चक्रोंवत् चलायमान होगा तो अनित्य होजावेगा॥

इति पक्षपातरहित अनुभवप्रकाशस्य प्रथमस्सर्गः॥ १ ॥

ॐ

द्वितीयसर्ग २.

हे मैत्रेय ! इसी प्रसंग ऊपर एक इतिहास कहता हूँ सो अमृत समान है, जब बुद्धिरूपी श्रोत्रोंसे श्रवण करेगा और विचाररूपी पात्रसे पीवेगा; तब तू अमृत रूप होकर अमृत भावको प्राप्त होवेगा पर ऐसा न हो कि, एक कानसे सुने और दूसरे कानसे निकास देवे, इससे प्रयोजन तेरा सिद्ध न होगा ।

अथ ध्रुवाख्यान ।

स्वयंभू मनुके कुलमें; उत्तानपाद और प्रियवत नाम दो भाई; चक्रवर्ती राजा हुये।उत्तानपादकी दो स्त्रियांथीं, एकका नाम सुरुचि और दूसरीका नाम सुनीति था जिनमेंसे सुरुचि राजाको अत्यंत प्यारीथी पहिली स्त्री सुनीतिसे, ध्रुव नाम; पुत्र हुआ; वह पिताका अति प्रिय था एक दिन जब कि राजा सिंहासनपर बैठा था तब ध्रुव आकर राजाकी गोदमें बैठ गया, तिस कालमें सुरुचिभी राजाके पास बैठी थी। सुरुचिके मनमें यह बात सहन न हुई, क्रोधसे ध्रुवसे बोली-अरे ! तू राजाकी गोदसे निकस जा, नहीं तो तेरे प्राण चले जायँगे, जो तेरी इच्छा राजाकी गोदमें बैठनेकी थी तो मेरे उदर विषे आकर जन्म लेता । जब ध्रुव इतनेसेभीं गोदसे न उतरा तब तो बहुत क्रोधमें आके, सुरुचिने एक हाथसे ध्रुवके मुखपर ऐसी चपेट मारी कि ध्रुव मूर्च्छा खाकर धरतीपर गिरपडा । सचेतहोने पीछे, बहुत रुदन करता २ अपनी माताके पास आया ध्रुवको व्याकुल देखके माता बोली कि, हे पुत्र ! किसकारण व्याकुल हुआहै ? तव ध्रुवने सब हाल कह सुनाया। तब माताने कहा हे पुत्र ! सुरुचिने सत्य कहा है क्योंकि, जब

तेरे जन्मके ग्रह नीच थे, तभी मेरे उदर विषे आया, नहीं तो उसीके उदर विषे आता। सुन! अब क्रोध किये क्या होताहै हे पुत्र! राज्य और यश आदि ऐश्वर्य तिसीको प्राप्त होताहै जो तप करता है. ताते राज्यादिक पदार्थोंके भोगनेकी जो तेरी इच्छा होवे, तो गोविंदका भजन कर, जो पूर्णकाम होवे। जो तू पूछे कि, भजन कैसे करूं? तो सुन "अपने आत्मा सहित सर्व पदार्थोंका गोविंद स्वरूप जान"॥

इसप्रकार माताका वचन सुनके ध्रुव वनको चला। आगे सप्तऋषि ब्रह्माके पुत्र बैठे थे, तिनको देखकर ध्रुवने नमस्कार किया और उन्होंने जब पूछा तो अपना वृत्तांत सब कह सुनाया और प्रश्न किया, हे भगवन्! मुझको गोविंदके भजनका उपदेश करो? ऋषियोंने कहा कि, अरे ध्रुव अभी तू बालक है और इसी कारण तुझको वैराग्य हुवा है; शीतोष्णादि द्वंद्व तैने अभी सहन नहीं किया है, और संसारके सुखभी तूने भोगा नहीं, इससे तू उपदेशके योग्य नहीं है। तब ध्रुवने आग्रहसे कहा कि, जो आप मुझको उपदेश नहीं करोगे तो मैं प्राणोंका त्याग करूंगा। तब ऋषियोंने दृढ़ निश्चय देखके आश्चर्यमाना और मनहीमनमें कहने लगे, यह ध्रुवं नारायणको जरूर मिलेगा। ऋषि बोले कि, हे ध्रुव! तेरा क्या प्रयोजन है; तब ध्रुवने कहा कि, हे भगवन्! मैं मातापितासहित ऐसी पदवीको पाऊं जहां आगे कोई मनुष्य न पहुँचा हो। तब ऋषि बोले हे ध्रुव! जो तू आपा त्यागकर, गोविंदकी शरण प्राप्त होवे तो वांछा तेरी पूर्ण होवे। अत्रिने कहा हे ध्रुव! जो सर्व दृश्यते अतीत है तथा सर्वमें व्यापक है तिसको अपने मनविषे ऐसा जान कि; सर्व वही है, इस निश्चय करकेही तू वांछित पद पावेगा। पुनः अन्य ऋषियोंने कहा हे ध्रुव! सर्व जगत् जिसकी शरणागत है; तिसीको तू एकाग्र चित्त करके स्मरण कर, जिससे परमपद पावे। हे ध्रुव! सर्व कामनाते रहित होकर "सर्व जगत् विष्णुमय जान" जो संसारसे

निराश होकर, प्रेम संयुक्त, निष्काम होकर, तिस जनार्दनक ध्यान करता है, सो मन वांछित फलको पाताहै । तिससे तू भ जगत्की दृष्टि उठाकर, जो सगुण वा निर्गुण जनार्दनमें मनक जोडेगा तो तेरा कार्य्य सिद्ध होवेगा ।

इस प्रकार मुनियोंने अनेक प्रकारके उपदेश सहित मंत्र उपदेश किया, सो मंत्र यह है "ॐ नमो नारायणाय"। अब ध्रुव ह निश्चयको धार कर, तपका आरंभ करने लगा- जब ध्रुवका सब हा उसके पिता राजाने सुना, तब अपना एक अनुचर भेजा और उस द्वारा कहवाया कि, हे ध्रुव! तू चतुर्थांशराज्यले और इस निश्चयक त्याग कर, परन्तु ध्रुवने नहीं माना। पुनः कहा कि, अर्ध राज्य और इस प्रणका त्याग कर, तब भी ध्रुवने नहीं माना । पुन कहा कि, सर्व राज्य ले तब भी नहीं माना, बरन् अपने मन विचारने लगा कि, देखो एक पाँव संसारसे निराश होकर हरिकी तरफ रखनेसे, मुझे अब सर्व राज्य मिलता है, तो जो मैं सम्यक् हरिक चिंतन करूंगा तो अवश्यही अनंत फल पाऊंगा-इसीवास्ते अत्यंतदृ निश्चय धरकर कठिन तप करने लगा । यहाँ तक कि, एक अंगुष्ठके ऊपर सर्व शरीरका भार रखदिया। तब यह सर्व हकीकत इंद्रादि देवता सुनकर आश्चर्यवान् हुये और भयको भी प्राप्त हुये कि, यह बालक हमारा स्वर्ग छीनलेगा । तब इंद्रादिक देवताओंने, अनेक प्रकारसे ध्रुवके तपको नष्ट करनेके वास्ते राक्षस, अग्नि, वायु, अप्सरा, कामदेवसे आदि अनेक विघ्न भेजे, परंतु ध्रुव उनके विघ्नोंसे चलाय मान न हुआ । क्योंकि तिस कालमें ध्रुव अपने बीच न था, यह जानता था कि, गुप्त और प्रगट सर्वत्र एक नारायणही है। जब सर्व नारायणहै तो भय किसते होवे; भय दूसरेसे होताहै—जैसे— जहाँ सर्व अग्निही अग्नि हो, दूसरी काष्ठादि वस्तु न होवे, तब

अग्नि किसको जलावे, अग्नि अग्निको तो दाह करताही नहीं। तसेही–जहाँ सर्व वायुही है, दूसरी वस्तु नहीं, तो वायु किसको शोषण करे–तैसेही–जहाँ जलही जल है, अन्य वस्तु नहीं, तो जल किसको गाले, जल जलको गालही नहीं सक्ता–ताते महात्मा ध्रुव सूक्ष्म और स्थूल परिच्छिन्न अहंकारको त्यागकर "अपने सहित सर्व नारायणहै" इसी दृढ़ भावनाके कारण "अग्नि आदि सर्व जगत् नारायणही है" ऐसा देखने लगा, अब उसको भय, मोह कहाँसे होवे. पुनः उसी समयमें ध्रुवकी माताभी आकर, बहुत विलाप करके कहने लगी–हे पुत्र ! मैंने सारे संसारमें एक तुझीको पाया है, तू इस कठिन तपको छोड और मुझको सुखदे, क्यों अपना देह सुखाता है। इस प्रकार–अनेक प्रकारके, माताका, शब्द सुनकर भी मोहको न प्राप्त हुआ। पुनः राक्षसादिक क्या देखते हैं कि, ध्रुव नहीं, मानो भगवान् विष्णु बैठाहै। विष्णुको देखकर उलटा राक्षसादि भयको प्राप्त हुये। तिसके पश्चात् इंद्रादि देवता, विष्णुके पास जाके, ध्रुवका सब हाल तथा अपना वृत्तांतभी कहते भये। तब विष्णुने यह बात सुनकर, देवताओंको तो बिदा किया और स्वयं, देवताओंकी प्रेरणा तथा ध्रुवके ध्यानरूपी डोरीसेभी खिंचा हुआ, जहाँ ध्रुव तप करताथा तहाँ आये। वहां देखा कि, ध्रुव नहीं साक्षात् नारायण बैठा है। इस प्रकार ध्यानकी प्रबलताको देखके विष्णुने प्रसन्न होकर कहा कि, हे पुत्र ! तू धन्य है, जो दृश्यमान पदार्थोंसे दृष्टि उठाके मुझमें मनको जोड़ा है. इस हेतु जो तेरी इच्छा हो सो वर मांग। यह बात सुनकर ध्रुवने नेत्र खोला और देखा कि, मैं भीतर जिसका ध्यान करता हूँ वही रूप बाहर खड़ा है। देखतेही रोमांच खडे होगये, प्रेम करके मतवालासा होगया, मन करके प्रभुकी शरण पडा और प्रार्थना करने लगा. हे प्रभु! मैं बालक हूँ, कुछ

वेद पुराण पढ़ा नहीं हूँ, कैसे तुम्हारी स्तुति करूं पर स्तुति आप यही है जो मैं ध्रुव नहीं आपही हो । हे भगवन् ! आपही सर्व जगत अधिष्ठान हौ, आवागमनका आप विषे मार्ग नहीं, आप व्याप सर्वके अंतर्यामि हौ, योगियोंके ध्यानविषे आप विराजमान हौ, भ्रम करके हे भगवन् ! मै मूर्ख आपको बाहरखोजता था, नहीं जानताथा कि, आप मनमेंही छिपे हुये हौ । द्वैताद्वैत सर्व आ ही हौ आपही सर्व जगत्की उत्पत्ति, पालन और संहार करने वाले परन्तु निर्विकारहो। यह बहुत आनंद हुआ है कि, आप योगियों दुर्लभ होकेभी, मेरे नेत्रोंके सन्मुख हुएहो ।

इस प्रकार ध्रुवकी स्तुति सुनकर विष्णुने कहा हे, ध्रुव जो तेरी इच्छा हो सो वर माँग । ध्रुवने कहा–आदि अंत आप हौ, आप अंतर्यामी सब हाल जानते हो, तथापि हे भगवन् मुझको माता पिता संयुक्त, ऐसा ठौर देओ जो सबसे ऊं पदवी होवे और जहां जाके फिर कल्प पर्यंत गिरूं नहीं विष्णुने कहा–तथास्तु । हे ध्रुव ! तुझको देह त्याग अनंतर अटल पदवी मिलैगी जो यावत् चंद्र सूर्य गतिमान् हैं तावत् स्थि रहेगी। वरदान पानेपर एक बेरतो ध्रुवको कुछ अहंकार हुआ कि मैं सबसे ऊंचाहूँ परन्तु उसी समय तपके प्रतापसे तथा प्रभुके दर्शन प्रतापसे, निरहंकार और शुद्ध हुआहै अंतःकरण जिसका, ऐसा ध्रुव, सो प्रभुके आगे प्रश्न करने लगा। हे स्वामी ! मैं कौन अटल पदवी लेने वाला, आप कौनहौ अटल पदवी दे वाले और अटल पदवीका क्या स्वरूप है तथा जगत क्या रूप है ? हे यथार्थवक्ता ! यथार्थ कहो कि, मैं कौन हूँ यह मेरा संदेह दूरकरो । विष्णुने कहा हे ध्रुव ! तुझको इन बातों क्या प्रयोजन है, इस प्रश्नके उत्तर देनेसे न तू रहताहै, न मैं रहत

हूँ न यह जगत् रह सकताहै, न अटल पदवी रहती है, तिससे यह बात मत पूछ। अन्य प्रसंग पूछ। तब ध्रुवने कहा जो हो सो हो, पर प्रश्नका उत्तर मुझको यथार्थ कहो। तब विष्णुने कहा कि, हे ध्रुव! वास्तव तें न तू, न मैं, न जगत्, यह सब भ्रममात्र है, सत्य नहीं, सत्य एक अवाङ्मनसगोचर तुम्हारा हमारा तथा सर्व जगत्का जो साक्षी स्वरूप है–सोई है, तिसते व्यतिरेक वाणीका विलास मात्र है। जैसे–रज्जुमें मिथ्या, रज्जुसे भिन्न, सर्पादिक वाणीके विलास मात्र हैं। इसीकारणसे हे ध्रुव! मैं अद्वैत हूँ। तव ध्रुवने कहा, मेरी कामना पूर्ण न हुई, व्यर्थही भ्रम कर यह निश्चय किया है कि, विष्णुने मुझको अटल पदवी दीहै। जैसे–स्वप्नद्रष्टामें कल्पित जो स्वप्नके नर तिनको स्वप्नद्रष्टा अटल पदवी देवे और स्वप्न नर अटलपदवी लेवे सो भ्रम मात्र है। विष्णुने कहा, हे ध्रुव! अटल पदवीको मत त्याग। काहेते ज्ञानीको जैसे पदार्थ प्रारब्ध करके प्राप्त होवें तिन्हीसे प्रसन्न रहताहै। ध्रुवने कहा, जो सर्व तूही है तो, फिर ज्ञानी अज्ञानी जुदे कहां हैं, पर कहो मेरा स्वरूप क्या है? विष्णुने कहा, बडा आश्चर्य्य है, जो स्वप्ननर स्वप्नद्रष्टासे कहै कि, हे स्वप्नद्रष्टा मेरा स्वरूप क्या है–जैसे–सर्प रज्जुसे पूछे मेरा रूप क्या है–जैसे–भूषण सुवर्णसे पूछे मेरा रूप क्या है। पर स्वप्नके नर भूषण सर्पादिक जानते नहीं (जड होनेते) कि, हम सर्वथा स्वप्नद्रष्ट्रादिक रूप हैं. हे ध्रुव! यदि स्वप्नके नरादिक ऊंची भुजा करके पुकारें कि, हम स्वप्नद्रष्टा रूप नहीं किन्तु, स्वप्नद्रष्टाते भिन्न हैं स्वतंत्र हमारी सत्ता है, तो यह बात तिनकी सुनके विद्वान् लोग हँसेंगे और कहेंगे कि, ये वृथा प्रलाप करते हैं। जैसे कल्पित नाम रूप कहै, कि, अस्ति, भाति, प्रिय रूप जो अधिष्ठान सो रूप हम नहीं सो तिनका कहना हाँसीका आस्पद है। हे ध्रुव! तैसे तू मुझसे पूछता है मैं

कौन हूँ, यह भी हास्यका विषय है। हे ध्रुव ! अहंभाव त्वंभावका मुझ मार्ग नहीं. केवल स्वयंप्रकाशस्वरूप अद्वितीय मैं हूँ। ध्रुवने कहा, तो मैंने व्यर्थ देहको कष्ट दियाहै, काहेसे कि, जब आप अद्वितीय हो मैं नहीं हूँ ? जब मैंही नहीं, तब अटलपदवीसे. आपसे भजनसे त इस लोक परलोकसे क्या प्रयोजन है। विष्णुने कहा, हे ध्रुव ! बाल की न्याँई विलाप मतकर, अविद्या करके जो काम हुआ, सो हु तिसका क्या पश्चात्ताप है, जो तैंने किया है सो अपनी वास करकेही किया है, मैंने तेरेको कछु दिया नहीं। ध्रुवने कहा आश्च है कि, मुझ मूर्ख, ज्ञाननेत्रोंसे अंधको अंधे कूपमें आपने डाल क्योंकि, आप चैतन्यसे, पृथक् यह अटलपदवीसहित संपूर्ण ज अंधकूपरूप है, तथा मिथ्या है। ताते हे प्रभु ! अब सोई उपाय क जिससे इस अंधकूपते निकसें। विष्णुने कहा, उपाय निकसनेका य है कि, अपने सहित तथा अटलपदवीसहित सर्व जगत्को गोवि जान और पश्चात्तापका त्यागकर। हे ध्रुव ! जबतक निद्रा नहीं होती तबतक स्वप्ननरको, स्वप्नके स्थानोंमें, कहीं न कहीं या करनीहीं होगी. और स्वप्न स्थानोंमें बुद्धिमानोंको न्यूनाधिक भाव नहीं। हे ध्रुव ! "सर्व शरीरसहित स्वप्न जगत् मिथ्या है और स्वप्नद्र ही सत्य है" यह जाननाही संसाररूपी अन्धकूपसे निकसना है। त ध्रुवने कहा—कुछ चिंता नहीं, जब सर्व गोविंद है तो पश्चात्ताप गोविन्द है और न पश्चात्तापभी गोविंद है। विष्णुने कहा, अब ह जाते हैं, तुम्हारा कल्याण हो और संत तुझको मिलैंगे।

ऐसे कहकर विष्णु अंतर्धान हुये और ध्रुव तिसी वनमें विचरने लगा। ध्रुव अपने मनमें विचार करनेलगा कि, संत अचा होतेहैं, मुझ सचाहको संत कैसे मिलेंगे, सचाह पुरुषसे वृक्षभी भय पाते हैं ताते मैं चाहसे अचाह होऊँ, तब संतसंग हो। पुनः यही निश्च

किया कि, सर्व नारायण है, जब सर्व नारायण है तो लोक परलोक से क्या प्रयोजन है ?

हे मैत्रेय ! ध्रुव ऐसाही विचार कर रहाथा कि, वामदेवादिक संत आगये कैसे संत थे कि, देह अभिमान रूपी पहरावेते नग्न थे और यही कहतेथे कि,हम अवाङ्मनसगोचरभी सर्वरूपहैं तथा सर्वरूप हुये भी हम द्रष्टा असर्वरूप हैं।जैसे-स्वप्नद्रष्टा स्वप्न प्रपंचसे अवाङ्मनसगोचर हुआ हुआभी स्वप्नमें सर्वरूप है, तथा सर्वरूप होकर भी असर्वरूपहैं—और सर्वभोक्ताभी हम अभोक्ता हैं, अभोक्ताभी हम भोक्ताहैं, विकल्पसहितभी हम निर्विकल्प हैं। नीच, ऊंच, ग्रहण त्यागादिक सर्वरूप हमही हैं। यह संपूर्ण नामरूप प्रपंच हमारे स्वरूपभूत सूर्य, तथा लालकी किरणा दमका हैं। सविकार सहित,स्वमायाकर प्रतीति होते हुयेभी हम निर्विकार हैं, चलतेभी हम अचलते हैं और अचलते भी हम चलते हैं। उपाधिद्वारा करतेभी हम अकरते हैं; अकर्ताभी हम कर्ता हैं, निद्रा सहितभी निद्रा रहित हैं, निद्रा रहितभी सनिद्रा हैं। इस रीतिसे परस्पर सर्व पदार्थोंको उलट पलट कर लेना; शरीरसहितभी अशरीर हैं, माया अविद्या सहितभी, माया अविद्या रहितहैं, निर्गुणरूप हुयेभी, हम स्वमायाकर सगुणरूप हैं, मन वाणीके अविषय हुये भी सर्व मन वाणीके विषयरूपभी हमही हैं। अरूपभी स्वरूप हैं, अरस भी हम सरस हैं, सशब्दभी अशब्दरूप हैं, अशब्द भी सशब्दरूप हैं, अस्पर्श भी सस्पर्श रूप हैं, सस्पर्शभी, अस्पर्श रूप हैं, सगंधभी निर्गंध रूप हैं, निर्गंधभी सगंध रूपहैं, जैसे स्वप्नद्रष्टा निद्रा कर स्वप्नमें सर्वरूप प्रतीत होता हुआ भी, वास्तवते शुद्ध,निर्विकार, निर्विकल्प, अद्वितीय, असर्वरूप है। पंचकोशोंते रहित भी हम चैतन्य पंचकोशरूप हैं, अपंचकोश हुयेभी पंचकोश रूप हैं, षट्भावविकारोंते

रहितभी हम चैतन्य षट्भावविकार रूप हैं, षट्भाव विकार हु भी षट्भाव विकारोंते रहित हैं।

सत, रज, तम गुणोंते तथा तिन गुणोंके कार्य जाग्रत, स्व सुषुप्ति तथा स्थूल, सूक्ष्म, कारण शरीर तथा इंद्रिय, त मन, बुद्धि, चित्, अहंकार तथा प्राण और प्रकृतियोंते अ गीभी संगी हैं, तथा संगीभी असंगी हैं। तात्पर्य्य यह कि, सर्व ना रूप स्वरूपभी हम नामरूपते रहित हैं और सर्वनामरूपते रहित हम चैतन्य नाम रूप स्वरूप हैं। सर्व शब्द, स्पर्श, रूप, र गंध, तथा पृथ्वी, आप, तेज, वायु, आकाश, अहंका महत्तत्त्व तथा प्रकृतिरूपभी हम चैतन्यहीं हैं। और इनते रहित हमही चैतन्य हैं। काम क्रोधादि रूपभी हमही स्वप्न द्रष्टारूप तथा तिनते रहित तिनका साक्षीरूपभी हमही हैं। अमानित्व दिक दैवी गुण तथा दंभादिक आसुरी गुणरूपभी हमहीं हैं त तिनते रहित तिनका साक्षीरूप असंगभी हमहीं चैतन्य हैं। ज्ञा अज्ञान, शुभ, अशुभादि सर्व द्वंद्वरूप स्वप्नभी हमही हैं, त तिनते रहित तिनका द्रष्टारूपभी हमही स्वप्नद्रष्टा हैं, स्वप्न ब्रह्मा, विष्णु, शिवादि मूर्तिरूप हुये हुये भी, हम स्वप्नद्रष्टा असंग निर्विकार, तिनके प्रकाशक, चैतन्य, साक्षी-भूत हैं। षट्ऊर्मीं रूप हम षट्ऊर्मीं रहित हैं।

जीव ईश्वर रूपभी, हम चैतन्य, जीव ईश्वर भावते रहित हैं आत्मा नात्मा भेद सहितभी हम चैतन्य तिस भेदसे रहित हैं कायिक, वाचिक, मानसिक, सर्व चेष्टा करतेभी हम चैतन्य अक हैं। फुरणारूपभी हम चैतन्य वास्तवते अफुररूप हैं। माया क महाकर्ता, महाभोक्ता, महात्यागी, हम चैतन्य आत्मा, वास्तव अकर्ता अभोक्ता, अत्यागी हैं। सर्व देश, काल, वस्तुरूपभी हम पू

चैतन्य आत्मा वास्तवते, देश, काल, वस्तुते तथा तिनके भेदते रहितहैं। धर्माधर्म रूपभी, हम चैतन्य वास्तवते धर्माधर्मते रहितहैं। सुख,दुःख रूपभी, हम अनंतात्मा वास्तवते, सुख दुःखते रहित हैं। माया अविद्यामें, हम चैतन्य सूर्य्यका वा आकाश का आभास पडताहै तिसीको जीव, ईश्वर, कहतेहैं और तिन आभासोंमेंही सर्वज्ञतादिक धर्म्म हैं; समुद्र तथा तलावडीमें सूर्य्य वा आकाशके आभासवसत- जैसे-सूर्य्य वा आकाश रूप बिम्ब,समुद्र वा तलावडीके आभास सहित तिनकी सर्वचेष्टाते, निर्लेप, असंग, शुद्ध, निर्विकार है-तैसे-हम, बिम्बभूत चैतन्य, माया अविद्या सहित जीव, ईश्वर आभासोंकी सर्वचेष्टाते रहित, निर्विकार निर्विकल्प हैं हम चैतन्यही इस नाम रूप जगत्की, स्वमाया कर, उत्पत्ति पालन, संहार, करते हुयेभी वास्तवते निर्विकार हैं-स्वप्नद्रष्टावत । हम नित्य सुख, चिद्रूपही सर्व जगत्कर पूज्य हैं-जैसे-स्वप्न जगत्करस्वप्नद्रष्टाही पूज्य होताहै ।

हम चैतन्यही इस मनआदिक जड जगत्की चेष्टा करातेहैं-जैसे तंत्री पुरुष जड पुतलियोंकी चेष्टा कराते हैं । हम चैतन्य आधार रहितभी सर्वके आधारहैं। हम चैतन्यही, सर्व मनआदिक, नामरूप जगत् के प्रकाशक, द्रष्टा, अधिष्टान हैं । हम चैतन्यका प्रकाशक द्रष्टा, अधिष्ठान, अन्य नहीं इसीसे-हम चैतन्य स्वयंप्रकाश रूप हैं। भूत भविष्यत् वर्तमान तीनों कालोंके तथा तीनों कालोंमें वर्तने वाले पदार्थोंके हम चैतन्यही सिद्धकर्ता हैं, हमारा कोई सिद्धकर्ता नहीं । हमारे चैतन्य स्वरूपमें, ज्ञान अज्ञान नहीं-जैसे-सूर्य्यमें दिन राति नहीं, उलटा सूर्य करही दिन रात्रिकी सिद्धी होती है-तैसे-ज्ञान अज्ञा- नकी हम चैतन्य करही सिद्धी होती हैं । सुख दुःखादिकोंके साक्षी हम चैतन्य आत्माको, सुख दुःखकी प्राप्ति निवृत्ति वास्ते किंचित्

मात्रभी कर्तव्य नहीं—जैसे—दो पुरुषोंके झगडेमें, साक्षी, पुरुषक तिनकी हानि लाभमें, किंचित्भी कर्तव्य नहीं—काहेते—अकर्तव्य कर्तव्यबुद्धिही भ्रांति है ।

भ्रांतिकी निवृत्ति करने वास्ते वेदांत शास्त्रका विचार चिंतनहीं मुख्यसाधनहै अन्य जप, तपादि साधन नहीं—जैसे—अं कारके दूरकरनेका साधन, केवल दीपकका चसाना (जगाना) अन्य नहीं । प्रारब्ध करके प्राप्त हुआ जो सुख दुःख तथा सु दुःखके साधन, स्त्री पुत्र इष्ट पदार्थ तथा ज्वरादिक अनिष्ट पदार्थ तिनको अनुभव करते हुयेभी, हम चैतन्य समहैं । इसी समत रूप पुष्पोंकर, नित्य निजात्मा देवका, यत्न बिना पूजन हो है । अपने स्वरूपका सम्यक्, अपरोक्ष जानना रूप पुष्पों कर सम्यक् देवका पूजन होताहै । अथवा शम, दमादिक दैवी गुणहै आत्मदेवकी प्रसन्नता वास्ते पुष्प हैं । जन्मना मरना, हर्ष, शोक पुण्य, पाप, स्वर्ग, नरक, बंध, मोक्ष, श्रवण, मनन, निदिध्या नादि सर्व, देवके आगे पुष्प हैं । हेयोपादेय बुद्धि रहित, प्रारब्ध वेगकर, जो प्राप्त होवे, सोई आत्मा देवको भोग लगावे तथा आप परिछिन्न अहंकारको देवके आगे अर्पण करना यही देवकी पूजा है । मानों हम चैतन्य, मनके पास बैठे हुये, निरंतर मन रूप पुजारीकी पूजाके द्रष्टाहैं तथा मनरूप पुजारीके भी द्रष्टाहैं ।

हे संतो ! पूर्वोक्त जितना विचार कथन चिंतन कराहै, सो सर्व मायारूप मनका धर्म है, हम चैतन्य इस कथन चिंतनसे रहितहैं देहरूप घटकाही गमनागमनहै, टूटना फूटना है तथा घटमें जलका शुद्ध मलिनपनाहै स्थिर चलनपनाहै, वास्तवते जलमें प्रतिबिम्बका भी नहीं है, तो मुझ घटाकाश रूप असंग चैतन्य बिंबका, पूर्वोक्त कोईभी धर्म कैसे होगा अर्थात् नहीं है, ताते हमारी हमको नमस्कार है, हमकोही सर्व दृश्य नमस्कार करता है हमारीही जयहै ।

जैसे—स्वप्नद्रष्टा कोही स्वप्न सृष्टी नमस्कार करता है, स्वप्नद्रष्टा विना स्वप्नसृष्टी सिद्धही नहीं होती, यही नमस्कार है। तद्वत् इस मिथ्या नामरूप प्रपंचके हमहीं पूज्य हैं, इस पंचभूत रूप संघात देवलमें, हम साक्षी चैतन्यही, लिंगरहित शिवलिंग हैं। कर्म, उपासना, ज्ञान, इन तीनों कांडोंकर हमहीं (नित्य सुखचिद्रूप आत्माही) मुमुक्षुओंको प्राप्त होने योग्यहैं-जैसे-फल,पत्र और पुष्पों-की उत्पत्ति नाशमें, वृक्ष ज्यों का त्यों है;तैसे-यह देह इंद्रिय,सुख दुः-खादिक, सुषुप्ति आदि अवस्थामें अभाव होनेसे, जाग्रतादि अव-स्थामें उत्पत्ति होनेसे, तथा जाग्रतादिकोंकी उत्पत्ति नाश होनेसे भी हम आत्मा ज्यों के त्यों हैं।

हे मैत्रेय! इस प्रकार उत्तम, उदार, अमृतरूप वाणी ध्रुव सुनकर आश्चर्य्यमान हुआ और उसके रोम खडे हो आये शास्त्र रीति अनुसार, विनयपूर्वक, उन महानपुरुषोंको प्राप्त हुआ।

पराशरने कहा, हे मैत्रेय! ध्रुव माताका वचन सुनके,वैरागको प्राप्तहुआ; पर तुझको मैंने अनेक वचन वैराग्यके कहे हैं तौभी तुझको वैराग्य नहीं हुआ। मैत्रेयने कहा—मुझको ध्रुवकी न्याईं किसीने दुःख नहीं दिया जो वैराग्य होवे पर कथा ध्रुवकी कहो? पराशरने कहा हे मैत्रेय! कथा ध्रुवकी यही है, जो अपने सहित सर्वको वासुदेव (निश्चय कर) जाने। मैत्रेयने कहा—जाननेसे सर्व वासुदेव होता नहीं, स्वतः सिद्धही सर्व वासुदेवहै, जाननेसे क्या प्रयोजन है। जो कृत्रिम है सो नाशी है, और जो अकृत्रिम है सो अविनाशी है। मैं आत्मा, सापेक्षक शब्दों ते तथा शब्दोंके अर्थते रहित हूँ, मुझ विषे जानने न जाननेका मार्ग नहीं। पराशरने कहा—देह अभिमान रूपी कपटकी कफनी पहरे हुये, खान पानादिक विषयोंमें बँधा है और कहता है, सर्व मैंही वासुदेव हूँ, यह कपट है। मैत्रेयने कहा—सर्वव्यापक

इसीकारण हूँ जो कामनामें तथा सर्व विषयोंमें, चाहना अचाहना कपटमें, खान पानमें; कपट करनेवाले इत्यादि सबमें व्याप हूँ। पराशरने कहा—हे मैत्रेय! जबलग जीवता न मरे और कर न जीवे, तबलग अमृत (निश्चयका) न पावेगा—मरना नाम अभिमानका सांगोपांग त्यागनाहै। त्रिकालाबाध्य स्वरूप शिवसा रूप आत्मा मैं हूँ; कदाचित्तभी देहादिक संघात मैं नहीं, इसी निश्चयका नाम जीवनाहै। हे मैत्रेय! जो पुरुष चाहनामें बंध है नारायणसाक्षी निजआत्माको पहिचान नहीं करसक्ता। अज्ञानी कह है कि, मैंने सारी राति दिन भजन गोविंदका किया पर दर्शन देखा। हे मूर्ख! विचार नेत्रोंसे अंध! गोविंद आत्मा तुझको प्राप्त होवे, काहेते गोविंदको प्राप्त होनेवालेका—गोविंद—निज रूप तिसका तू अभ्यास कर्ता नहीं, बरन् उससे उलटा इंद्रियों विषयसुखकी प्राप्तिका अभ्यास करताहै। माता पितादिक संबंधी तैंने अग्निमें जलाये परन्तु यह न समझा कि, मेरी अवस्थाभी य होगी, उलटा माता पितादिक संबंधियोंसे ही अहंता ममता अधि बढाई। ताते शरीरको नाशी और आपको अविनाशी जान कर, बंध मोक्षके कर्तव्यसे रहित हो, पर तैंने तो मानाहै कि, परमऋषि हूँ, पंडित हूँ, परमहंस हूँ, तब जिसमें मन वाणीका मा नहीं, तिसको तू देह अभिमानी कैसे जानेगा। हे मैत्रेय! जि अवाङ्मनसगोचर पदविषे संत स्थित हैं, तिस पदको वेदभी लज्ज मान होकर कथन करताहै। हे मैत्रेय! जिनने निजस्वरूप जाना है कहना तिनका चुपहै वे अपने स्वरूपके पहिचाननेविषे लज्जा रहितहुये हैं, इस झूठे देह रूप पहरावेते नग्न और निज स्वरू पमेंही मग्न हुये हैं। मैत्रेयने कहा, कथाध्रुवकी कहो पराशरने कह कथा ध्रुवकी यही है कि, जाने सर्व हरि है। हे मैत्रेय! ध्रु

माता पितादिक सर्व जगत्की लज्जाको त्यागकर गोविंद स्वरूप हो-गया, पर तेरी क्या शक्ति है कि, उसके जैसा होवे । मैत्रेयने कहा मैं उस जैसा नहीं होता पर कथा उसकी कहो। पराशरने कहा उस जैसा नहीं होता तो कथा उसकी सुननेसे क्या प्रयोजन है ? मैत्रेयने कहा–तुम मेरे गुरुहो उस जैसे करो। पराशरने कहा–श्रद्धा तेरी जगतके पदार्थों में है, मेरे में नहीं, इससे कैसे करूं ?

मैत्रेयने कहा–हे गुरो ! मुझको अतीत करो अपना शिष्य करके मंत्र उपदेश करो, शिखा सूत्रको लेकर परमहंस बनाओ, भेपका भगवा बस्तर देओ और कंठी बाँधो। पराशरने कहा मेरे करनेसे कुछ प्रयोजननहीं क्योंकि, एक पैसेकी गेरी लेकर कपड़े रंगले, शिखासहित रोम मूछ नाईसे दूर करवादे, यज्ञोपवीत आप उतारदे। बहुत भेषधारी हैं उन्होंका चेला होजा, एक पैसे की दशकंठी मिलती हैं सो लेकर बांधले, मंत्र उन्ही अतीतों भेपधारियोंसे सुनले।हे मैत्रेय! इन देह इंद्रियादिकोंके वाहरकी व्यवहारके त्यागनेसे अतीत नहीं हो-ता–काहेसे कि, देह इंद्रियादि संघातही कर्म हैं, संघात संघातसे अ-तीत नहीं होसक्ता। जो देहके कर्त्तव्योंके त्यागसे अतीत होता होवे, तो आलसी, दालिद्री, रोगी, चिंतातुर, मूर्छित, इत्यादि मनुष्यभी (देहके कर्तव्योंकेत्यागसे) अतीत होवें परन्तु अतीत होनेका फल, जो जन्ममरणादिकों की निवृत्ति है; सो तिनको नहीं होती; ताते कायिक, वाचिक, मानसिक, चेष्टामें परिच्छिन्न अहंकारका त्याग कर, जो ठीकठीक अतीत होवे, क्योंकि प्रथम अहं होता है; पश्चात् त्वं मम होता है, जब अहंही नहीं तब त्वं मम और ममताके विपय, देह पुत्रादि पदार्थ, कैसे होवेंगे किंतु नहीं होवेंगे–ताते त्याग के अहंकारपनका भी त्याग कर। हे मैत्रेय ! अज्ञान आदि देह पर्यंत कार्य्य कारण प्रपंचके पहरावेसे जो नग्न है सोई अतीत है। तात्पर्य्य

यह कि, जैसे आकाश सब में स्थित भी सबसे नग्न अतीत
जैसे—रज्जुमें सर्पादिकोंकी प्रतीति होते भी रज्जु सर्पादि
ते अतीत नाम नग्न है । तैसे—तू चैतन्य आत्माही इन देहादि प्रपंच
नग्न है, अन्य कोई अतीत नहीं । मैत्रेयने कहा—मैं जलता हूँ. दुः
से छूट जाऊँगा और सुखको पाऊँगा, अतीत तो नहीं होता प
देहको जलाता हूँ पराशरने कहा हे मैत्रेय ! इस अनादि संसारमें
खों बार, तेरी और सब लोगोंकी देह उत्पन्न होकर जलती खाक
ती पृथिवीमें मिलती आयी हैं परंतु दुःख न मिटे, (ताते) जड़देह
जलानेसे दुःख नहीं मिटता । हे मैत्रेय ! बंबीके मारने जलाने गा
नेसे सर्प नहीं मरता, विष सर्पमें है, बंबीमें नहीं । तैसे देहरूप बं
में, स्थित अहंकार रूप सर्पमें, जन्म, मरण, बंध, मोक्ष अहं, त्वं, ह
शोक, सुखदुःखादिक विष हैं, देह रूप बंबीमें नहीं । जब तू अहंक
रूप सर्पको ज्ञानाग्नि करके राख करेगा, तब अहंकार रूप सर्प सा
त पंचभूत देहरूप बंबी भस्मीभूत हो जावेगी । अहंकार रूप कारण
नाशसे, नाम रूप, जगत् कार्य यत्न विना आपसेही नाश होगा । जै
दीपकके प्रकाशकरनेसे यत्न विना अंधकार नाश होता है । प्रकाश
होनेसे अंधकार जातानहीं दीखता कि, कहांगया ताते, हे मैत्रेय ! स
अनर्थोंका देनेवाला जो देहादिकोंविषे अहंकार है, तिसको जब
जलावेगा (राखकरेगा) तब शेष जो पद रहाहै जिसमें मनवाणीक
मार्ग नहीं । जो मैं वर्णन करूं और तू सुने; परंतु देहके जलाने
सुख होता नहीं । देह जलानेसे सुख हो तो सतीको भी सुख होवे
सो होता नहीं क्योंकि, आवागमनसे छूटनेका नाम सुखहै इसलि
तुझे भी, जन्म मरणादि अहंकारके जलानेसेही सुख होगा । मैत्रेय
कहा, अहंकार मुझ चैतन्य स्वरूप विषे है नहीं और विन
हुयें वस्तुका त्याग करना लज्जाकाकाम है । जब अहंका

मुझमें है नहीं तब क्या त्यागूँ और क्या ग्रहण करूँ। जैसे–आकाशको भूत भौतिक पदार्थोंका ग्रहण त्याग नहीं बनता। हे गुरो! जैसे मल स्पर्श बिना मलके दूर करनेका उपाय करना मूर्खता है। ग्रहण त्यागते रहित यत्न विनाही, निर्विकल्प निर्विकार मुझ चैतन्यमें, स्वतःही अहंकारका अत्यंताभाव है; लाखोंतरहके अहंकार अरु कोटानकोटितरहके संकल्प, कोटानकोटि तरहके निश्चय, हजारों तरहके चिंतन, हजारों तरहके शोक मोहादिक, हजारों तरहके खानपान और शयनादिक तथा अनेक प्रकारके चक्षु आदिक इंद्रियोंके रूपदर्शनादिकव्यवहार। सारांश यह कि, मनादिक धर्मी और तिन अनात्म मनादिकोंके संकल्पादिक धर्म, मुझ अवाङ्मनसगोचर, चैतन्य पूर्ण आकाश विषे बिजली मेघादिवत् हजारों दफा होकर मिट जाते हैं और उत्पन्न होते हैं, परंतु मुझ चैतन्य आकाशका रोम मात्रभी छेदन नहीं होता। जैसे–भूताकाशमें मेघ, बिजली, वर्षा, अंधेरी, अंधकार, प्रकाश, सूर्य्य, चांद, तारामंडल स्वर्ग, नरक, मलीन, और शुद्धपदार्थ इत्यादिक अनेक पदार्थ होते हैं, पुनः मिटजाते हैं; परंतु आकाश ज्योंका त्यों है। जैसे–समुद्रमें तरंग, बुद्बुदा, फेन, उत्पन्न होकर मिट जातेहैं परंतु समुद्र ज्योंका त्यों है। तैसे–मुझ चैतन्य समुद्र विषे, अनंत ब्रह्मांडरूपी तरंग, उत्पन्न होकर मिट जाते हैं परन्तु मैं चैतन्य ज्योंका त्यों हूँ पराशरने कहा–हे मैत्रेय! बडा आश्चर्य्य है अहंकार बिना, वा अंतःकरण बिना, "मुझ निर्विकल्प चैतन्य विषे अहंकार है नहीं और जगत् रूप तरंग होने मिटनेसे हानि लाभका मुझमें अभावहै" यह वृत्तांत तुझ निर्विकल्प चैतन्यको कैसे मालूम हुआहै। हे मैत्रेय! मुझ चैतन्यमें अहंकार नहीं, यह जाननाही अहंकारहै। इसीसे कहता हूं "तू अवाङ्मनसगोचर निजस्वरूप विषे, यह जानना रूप अन होता

अहंकारका त्याग कर" जो सुखी होवे । मैत्रेयने कहा; मैं सुखी नं होता क्योंकि सुखी होना न होनाभी अहंकारही है । पराशरने क यही समझ संतोंकी है परंतु तैंने तो निर्विकल्पको सविकल्प जा है और सविकल्पको निर्विकल्प जानाहै । हे मैत्रेय ! तू सम्यकृद हो जो संत पदवी पावै मैत्रेयने कहा-जब मैं ही नहीं तो संत पदवी क है और संतकहां हैं । पराशरने कहा—हे मैत्रेय ! जब तू नहीं तब अपना अभाव तैंनेजाना कैसे जैसे—वंध्यापुत्र शशशृंग अपने अभ वको जानते नहीं परंतु तू चैतन्य भावरूप नाम सत्यरूपहै । प तुझ चैतन्यमें जाननेका मार्ग नहीं- काहेते, तुझ सच्चिदानंद स्वरू भिन्न असत् जड दुःखरूप सर्व कल्पित पदार्थ हैं और सर्वत्र कलि पदार्थ अधिष्ठानको जानतेही नहीं, केवल चैतन्य अधिष्ठान अपनेमें कल्पित पदार्थोंको जानताहै बुद्धिद्वारा अद्वैत होने जानताभी नहीं- काहेते; मनकी कल्पनारूप विकारसे आत्मा निर्वि ल्पहै, जाने तो निर्विकल्प नहीं, इस्से जानता हुआभी आत निर्विकल्पहै, स्वप्नद्रष्टावत् । जैसे—रज्जु शुक्तिमें कल्पित स दंडमाला रजतादिक, अपने अधिष्ठान शुक्ति रज्जुको जानते न तथा जैसे स्वप्ननर स्वप्नद्रष्टाको जानतेही नहीं, स्वप्नद्रष्टा चैत न्यही जानताहै जैसे—स्वप्न नर स्वाधिष्ठानको जानतेही नहीं कि हमारा कोई स्वामी है वा नहीं, रूपवान् है वा नहीं, महानहै व तुच्छहै, सत्य वा असत्यहै; इत्यादि । तैसेही—अधिष्ठान रज्जु शुक्ति सुवर्णादिकभी अपनेमें कल्पित—सर्प, दंड, माला, रजत, भूषणादि पदार्थोंको जानतेही नहीं । जैसे—स्वप्नद्रष्टा अपनेमें कल्पित स्वप्न न घट, पट, सर्पादि नाम रूपको जानताही नहीं कि, स्त्री पुरुष घट प सर्पादिक हैं वा नहीं, रूपवानहै वा नहीं, किसी दूसरेने हममें कल्पन कियाहै वा नहीं, दीर्घकालके प्रतीतिवान् हैं वा अल्पकालके प्रतीतिवा

हैं, उत्पन्न होकर नष्ट होते हैं वा नहीं, सुखरूप हैं वा दुःखरूपहैं, व्यवहारक सत्तावाले हैं वा प्रातीतक सत्तावाले हैं, सत्यरूप हैं वा असत्यरूप हैं, अनादि हैं वा सादिहैं, सोते जागते मूर्छापाते हैं वा नहीं, बंध मोक्षवान् हैं वा नहीं, माया अज्ञानके कार्य्य हैं वा नहीं, दृश्यरूप हैं वा नहीं, हर्ष शोकके देनेवाले हैं वा नहीं, क्रियावान हैं वा नहीं, विकारवान् हैं वा नहीं, आपस में कार्य कारण भाववाले हैं, वा नहीं, इत्यादिक उपरोक्त अनेक विकल्पोंको स्वप्नद्रष्टा अधिष्ठान जानताही नहीं; अथवा उपाधिसे जानता भी है तो वास्तवते नहीं, अद्वितीय निर्विकार होनेते, क्योंकि, जानना द्वैतमें होता है। स्वप्न कल्पित पदार्थोंकी अधिष्ठानते, पृथक् सत्ता होती नहीं किंतु तिस स्थलमें स्वप्नदृष्टाही है, स्वप्ननर, घट, पट, रज्जु सर्पादिकोंका अत्यंताभाव है बल्कि स्वप्नद्रष्टा आपको भी नहीं जानता आत्माश्रय दोष होनेते। जानना जुदापदार्थ है, जिसको जानता है वह जुदापदार्थ है और जानने वाला जुदा पदार्थ है। जानना अहंकार त्रिपुटी बिना होता नहीं और आत्मामें अहंकार है नहीं तो हे मैत्रेय! तू चैतन्य अधिष्ठान कैसे जानता है कि, कल्पित अहंकारादिक मुझमें हैही नहीं। मधुरता शीतलता द्रवतारूप जल, अपनेमें अन्यकर कल्पित तरंगोंको, जानताही नहीं, तैसेही अस्ति भाति प्रियरूप, तुझ आत्मामें, अन्यकर कल्पना स्वरूप जगत्को तू कैसे जानता है। जैसे—मंदिरमेंका दीपक, मंदिर और मंदिरमें स्थित पदार्थोंको, जानताही नहीं, अपनी महिमामेंही स्थित है, तैसेही—मंदिरमें स्थित पदार्थ भी, अपने प्रकाशक दीपकको भी नहीं जानते और अपनेकोभी नहीं जानते। मैत्रयने कहा—ठीकहै वह रज्वादिक अधिष्ठान तथा दीपकादिक जड पदार्थ हैं परन्तु मैं चैतन्य हूँ, इसी कारणसे दृष्टांत विषे, रज्जु आदिकोंके और मुझ चैतन्यके, विवत, स्वप्नके पदार्थ अपने अधिष्ठान, स्वप्नद्रष्टा को ठीक ठीक नहीं

जानते कि हमारा कल्पक स्वामी कौन है परंतु स्वप्न पदार्थोंके अधिष्ठान चैतन्य स्वप्नद्रष्टाकरही कल्पित स्वप्न पदार्थोंकी सिद्धि होती है, अन्य कर नहीं। जो मैं स्वप्नद्रष्टा स्वप्नपदार्थोंको न प्रकाशूं तो स्वप्न पदार्थोंको ज्ञानही नहीं हुआ चाहिये क्योंकि, अविद्यामें वा अंतःकरणमें, चैतन्यके आभाससे भी, स्वप्न कल्पित पदार्थोंका प्रकाश नहीं होता क्योंकि, अविद्या बुद्धिकी न्याईं आभासभी जड कल्पित होनेसे कल्पितका प्रकाशक नहीं होता और अन्य कोई स्वप्नका प्रकाशक है नहीं, इससे शेष मुझ चैतन्य, स्वप्नद्रष्टाकरही स्वप्नके अहंकारादिक पदार्थ सिद्ध होते हैं। तैसेही—सुषुप्ति समाधि आदिक अवस्थामेंभी अज्ञान और समाधि सुख, मुझ चैतन्य करही सिद्ध होताहै। यद्यपि जाग्रत् की मुवाफ़िक़ सुषुप्ति समाधि अवस्थामें कहना सुनना, चिंतनकरना, आपको द्रष्टा, साक्षी प्रकाशक, निर्विकार निर्विकल्प, सत् चित् आनंदस्वरूप, ज्ञानी, अज्ञानी इत्यादि विशेषणों संयुक्त मानना और दृश्यको असत्, जड दुःखरूप, कल्पित मानना नहीं है, क्योंकि कहने चिंतन करनेके साधन वाक् मनादिकों का अपने उपादान कारण अज्ञानमें लीनताहै, तथापि सुषुप्तिमें अज्ञानके अनुभव और आवृत सुखका तथा समाधिमें निरावरण सुखके अनुभव का बाध नहीं होता वरन् अनुभवपूर्वकही स्मृति होती है। जो कल्पित पदार्थोंका ज्ञाता प्रकाश चैतन्य नहीं मानोगे तो स्वप्न पदार्थोंके न्यून अधिकताके वृत्तांतका ज्ञान, सुषुप्तिके अज्ञानका ज्ञान, समाधिके सुखका ज्ञान आदि सर्वके अनुभव सिद्ध कथाका विरोध होवेगा ताते मुझ निर्विकार चैतन्य करकेही कल्पित अहंकारादिकोंके भावाभावकी सिद्धि होती है, अन्यकर नहीं। पराशरने कहा-हे मैत्रेय! अवाङ्मनसगोचर जो तुम्हारा हमारा तथा सर्व कल्पित जगत्का स्वरूपहै, सो उसका उपाधि विना प्रकाश्य प्रकाशक भाव

नहीं बनसक्ता क्योंकि, सुषुप्तिमें यद्यपि अंतःकरण जाग्रतकी न्याईं न-हीं भी है तथापि अज्ञानमें संस्कार रूप करके स्थित है और तिसकालमें अज्ञानही उपाधिहै। तैसेही-विद्वानपुरुषको, समाधि अवस्थामें भी, अंतःकरण यद्यपि जाग्रतकी न्याँईं स्पष्ट नहीं भी है. तथा स्वरूप अज्ञात अवस्थाकी न्याँईं अज्ञानभी नहीं भी है तथापि, प्रारब्ध क्षय पर्य्यंत ज्ञानाग्नि कर, बाध रूप दग्ध अज्ञान तिस समाधी कालमेंभी है, सोई तिस कालमें उपाधि है, तिसीको लेसा विद्या भी बोलते हैं। जैसे—अश्वत्थामाके बाणकर दग्ध अर्जुनका रथसे कृष्णरूप प्रतिबंधकसे, पूर्वकी समानही सर्वको प्रतीत होता रहा, तैसेही ज्ञानाग्नि कर दग्ध, कार्य कारण संघातभी, प्रारब्ध रूपी कृष्ण प्रतिबंधकके विद्यमान होनेसेही प्रतीत होता है; यही काय्र्य कारण संघातकी प्रतीतही उपाधि है। हे मैत्रेय ! प्रारब्धरूपी उपाधिके क्षय हुये तात्पर्य्य यह कि, उपाधि निर्मुक्त विदेह कैवल्यमें पूर्वोक्त व्यवहार नहीं। हे मैत्रेय ! तिस अवस्थाका कोईं दृष्टांत हैं नहीं क्योंकि, समाधि सुषुप्तिमें भी उपाधि पूर्व कथन करि आये हैं, ताते-हे मैत्रेय! तू श्रवण कर्ता हुआ, स्पर्श करता हुआ, देखता हुआ; रस लेता हुआ, सूंघता हुआ, वास्तवते आपको निर्विकार निर्विकल्प जान। हे मैत्रेय ! कल्पित उपाधिको अंगीकार करके उपाधि संयुक्त विशेष अग्निही काष्ठादिकोंका दाहक, उष्ण, प्रकाशादि व्यवहार करता है. उपाधि रहित समान अग्नि दाह उष्ण, प्रकाशादि व्यवहार नहींकरती है इसलिये, कल्पित अहंकारादिकोंके भावाभावको अनुभव करनाभी उपाधिसेही है, उपाधि बिना नहीं। जैसे—उपाधि सहित और उपाधि रहित अग्निमें भेद नहीं व्यवहारमें भेद है। जैसे —वायु चलने ठहरनेमें आप एकसरीखी है परन्तु चलनेमें भासती है और अचलमें नहीं भासती। जैसे-आकाश, घटादिक उपाधि सहितमें भी और घटादिक उपाधि रहित भी, आपको एक रस जानता है-तैसे—हे मैत्रेय ! "तू

अपने निजात्मा स्वरूपको, माया अहंकारादिक कल्पित, उपा सहितमें भी और कल्पितमाया अंतःकरणादिक, उपाधि रहितमें भी निर्विकल्प निर्विकार जान" (यही संतजनोंका निश्चय है)।

मैत्रेयने कहा—कथा ध्रुवकी कहो कि, संत और ध्रुवकी आपस क्या चर्चा हुई। पराशरने कहा कथा ध्रुवकी यहीहै जो, जान "आ संहित सर्व हरिहैं"। हे मैत्रेय ! चाहसे अचाहहो; ग्रहणत्यागका त्या कर देह अभिमान रूपी वस्त्रते नग्न हो, "मैं निर्विकल्प, निर्विका चैतन्यमात्र हूँ, मुझे चैतन्यको; बंध मोक्षकी निवृत्ति प्राप्तिवास्ते किंचित्मात्रभी कर्तव्य नहीं" (क्योंकि; बंध मोक्षादि व्यवहार भ्रमम है) इस निश्चयरूप कफणीको पहन और सूक्ष्म अहंकारको जला मैत्रेयने कहा मैंही नहीं तो, अहंकारको कौन जलावे। पराशरने क "यही अहंकारका जलाना है कि मैं नहीं" जब मैं नहीं तो अहंका कहा है; शेष जो पद है उसमें मन वाणीकी गम नहीं। हे मैत्रेय जैसे आकाश, सर्व प्रकारसे सर्व पदार्थोंते अतीत है; तैसे—तू अतीतहो। जो कहता है कि, मैं शिवको जानता हूँ वही गृहस्थ क्योंकि, शिवमें जाननेका मार्ग नहीं; शिवको ज्ञानका विषे जान नाही गृहस्थपना है और ऐसा जाननेवालाही गृहस्थ है—क्योंकि उसने निज स्वरूप शिवको ज्ञानका विषय, दृश्य मिथ्या, जानत है। हे मैत्रेय ! जहाँ ग्रहण त्यागकी इच्छा नहीं, तहाँ आपसे आप है। नग्न वही है जो, शरीर होते इस लोक परलोककी, चाहनाते रहित है। हे मैत्रेय ! इतने कहनेका प्रयोजन मेरा यहीहै जो, तू अपने स्वरूपको जाने और मनुष्य देहको दुर्लभ जानके भजन गोविंदकाकर जो तू पूछे कि, भजन गोविंदका क्या है तो, "आप सहित सर्व गोविंद है गोविंदते ब्रितरेक कछु नहीं" यही भजन है। जब सर्व गोविंद हैं तो खाना, पीना, देना, लेना, सोना, जागना, बैठना, चलना, ध्यान करना

न करना इत्यादिक सर्व भजनही है। हे मैत्रेय ! जो तुझको नग्न होने की इच्छा है तो सूक्ष्म अहंकारका त्यागकर और जान कि, न मैं हूँ न मेरा कोई है, क्योंकि जन्म मरण सूक्ष्म अहंकारसेही हैं। जो पूछे सूक्ष्म अहंकार क्या है तो, अस्ति भाति प्रियरूप जो अपना वास्तव स्वरूप है तिससे दृश्यको भिन्न जाननाही सूक्ष्म अहंकार है और उसका त्यागहै सोई त्यागहै। हे मैत्रेय ! चाहिये कि, भ्रम और प्रीति (शरीरकी) त्याग कर और गोविंदसे मिल रह। जैसे—घटाकाश, भ्रम सिद्ध परिछिन्न घटाकाश पनेको त्यागे तो, महाकाशको मिलता है अर्थात् अभेद रूप होनेपर भी पुनः अभेदरूप होता है।

मैत्रेयने कहा, कथा ध्रुवकी कहो। पराशरने कहा, तुझे ध्रुवकी कथासे क्या प्रयोजन है, आपतो शरीरके भ्रममें बंध है चाहता है कि, ध्रुव जैसे होऊँ पर इस्से शांति न होवेगी। जब देह अभिमान रूप भ्रमका त्याग करे तब तूही ध्रुव होवे ताते, दृश्य अहंकारते अतीत हो जिस्से निर्वाणपदको पावे। मैत्रेयने कहा-जब सर्व मैंहीं हूँ तब निर्वाणपदकी प्राप्ति तथा अनिर्वाण रूप बंध भ्रम भी मैंहीं हूँ तो त्यागूँ क्या औ ग्रहण क्या करूँ ? वा बाणरूप संघातते रहित, मैं आपही निर्वाण हूँ, निर्वाणपद पाऊँ कैसे ? पर भ्रमके त्यागका उपाय कहो। पराशरने कहा—जैसे अँधेरा दूर करनेका उपाय दीपकका चसाना है—तैसे—दृश्य अहंकारते अतीत होनाही, भ्रमके त्यागका उपाय है।

मैत्रेयने कहा—क्यों ढीलकरते हो, जो कुछ कहो सो करता हूँ ? पराशरनेकहा—मेरे हाथमें, दंडकमंडलु नहीं न मैं संन्यासी हूँ, न मैं बैरागी हूँ, न मैं लौकिक अतीत हूँ, तुझको अतीत कैसे करूँ। मैत्रेयने कहा—मैं क्या करूँ ? और कहां जाऊँ ? पराशरने कहा कछु कर नहीं—अलौकिक अतीत हो। हे मैत्रेय ! दाढी शीश तेरा मुंडित करता हूँ तो, रोम फेर उपज आवेंगे क्योंकि, नख केश सदा स्वाभाविक

आपसे आप बढ़ते रहते हैं और मैं मंत्र नहीं पढ़ा जो तुझको सिखा मैत्रेयने कहा मैं रोता हूँ। पराशरने कहा—द्रष्टाका दुःख दृश्यको अपना रूप जाननाही रोना है, द्रष्टाको दृश्यसे मिला न जा नाहीं हँसना है। पूर्णको अपूर्ण, असंगको संगी, सत चित् सुखरूप असत् जड दुःख रूप जाननाही रोना है—ताते तू इस रोनेसे अती हो। मैत्रेयने कहा—बडा आश्चर्य है जो अतीत होता हूँ तो करते न और कहते हो, अतीत हो। क्या करूँ? मैंने समझाथा कि, गृहकी स सामग्री मैंने त्यागी है, ईश्वर कृपा करेगा तो मैं परमशांत होऊँग मुझको इन अटलादि पदवियोंकी भी चाहना नहीं, जगत् सुखों अचाह हूँ केवल यही चाहना है कि, स्वरूपको पाऊँ। पराशरने कहा बिलाप मतकर, ध्रुवकी न्याई निश्चय कर, मूलको खोज, जो स्वरू स्थित होवे; पर स्वरूपका पावना निर्लज्जोंका काम है क्योंकि, का कारण संघातरूपी वस्त्रते रहित होनाही नग्न होना है और यह निर्ल ज्जोंका काम है। मैं पंडित नहीं हूँ जो तुझको अनेक प्रकारका सिद्धां तथा कथा सुनाऊँ पर सिद्धांत यही है कि, "सर्व त ही है को और नहीं"

मैत्रेयने कहा—मुझको ब्रह्मचारी करो। पराशरने कहा—जो ब्रह्मको अपना रूप जानता है सोई ब्रह्मचारी है; जैसे—घटाकाश, महाकाशको अपना स्वरूप जाने अन्य नहीं। जो सर्व ब्रह्मही है तो ब्रह्मविषे चारी पना क्या? मैत्रेयने कहा—कुछ उपदेश करो। पराशरने कहा—मैं श्रोताको नहीं देखता, आपही आप हूँ, किसको उपदेश करूँ। मैत्रेयने कहा—मुझको तुमसे भय हुआ है अब प्रश्न करूँगा तो, दीनता पूर्वक करूँगा। पराशरने कहा—हां ऐसी शक्ति रखता हूँ कि सर्वको भस्मीभूत करडालूँ परंतु कपटियोंकी न्याई भय मतकर; ऐसा भय कर जिस्से जीव, ईश्वर, ब्रह्म, माया, जगत् इत्यादि, भेदका त्याग

होवे और द्वैतभय रहित, अभय रूप, स्थितिको पावे। मैत्रेयने कहा—यह काम मुझसे नहीं हो सक्ता। पराशरने कहा—तुझसे नहीं होता तो तुझ चैतन्यसे व्यतिरिक्त कौन है, जिससे होवेगा। मैत्रेयने कहा—जीव, ईश्वर, दोनों शास्त्र प्रमाण कर सिद्ध हैं, कैसे त्यागूँ। पराशरने कहा—जीव, ईश्वर, सहित सर्व जगत् तेरी अविद्यासे प्रतीति होते हैं, नहीं तो जीव ईश्वर कहां हैं। यदि जीव ईश्वरकी एकता भी श्रुतिसिद्ध है अप्रमाण नहीं, परंतु तुझ चैतन्य विषे तो जीव ईश्वर भाव हैही नहीं। सत्य जाने तो तू ही चैतन्य, अविद्या कर, जीव संज्ञाको प्राप्त हुआ है और माया कर ईश्वर संज्ञाको प्राप्त होता है। जैसे—एकही आकाश घट उपाधि कर घटाकाश संज्ञाकोपाता है, मठ उपाधि का मठाकाश संज्ञाको पाता है, वास्तवसे नहीं। हे मैत्रेय! जब तू अपने चैतन्य स्वरूपको सम्यक् जानेगा तो जीव ईशादि संज्ञा कहीं खोजे भी न मिलेंगी। मैत्रेयने कहा—जब जीव ईश अपनी अविद्यासे उपजे है तो, मेरा क्या घाटा है। जैसे—स्वप्नमें जीव ईश्वरके निद्रा दोषकर प्रतीत होनेसे, स्वप्नद्रष्टाका एकरोम भी छेदन नहीं होता। पराशरने कहा—ठीक ऐसेही है परंतु स्वप्न और जाग्रत् कालमें भी, यद्यपि वास्तव स्वप्न पदार्थ स्वप्नद्रष्टाको स्पर्श नहीं करते तथापि निज स्वरूपके अज्ञानसेही भ्रमकर, आप निर्विकार, निर्विकल्प, होतेहुये भी, सविकार सविकल्प मानता है, महानभी आपको तुच्छ मानताहै और भ्रमके निर्वृत्त हुये ज्योंका त्यों आपको मानता है, हर्ष शोकभी नहीं करता। हे मैत्रेय! और कुछ कर्तव्य मतकर, भ्रमकी निवृत्तिवास्ते, ज्ञानरूपी दीपकको जगा। मैत्रेयने कहा आपके कहनेसे जानता हूँ कि, भ्रमको त्यागूं और अभ्रमको ग्रहण करके कुछ बनूँ परंतु यथार्थ में तो स्वयं प्रकाश अद्वितीय हूँ, मुझमें ग्रहण त्यागका मार्ग नहीं।

मैत्रेयने कहा-प्रथम मैंने आपसे प्रश्न किया था कि, मोक्ष उपाय कहो तो, आपने कहा था कि, तू आपही आप स्वयं प्रका स्वरूप है, तेरेको बंध मोक्ष रूप अंधकारकी निवृत्ति प्राप्ति वा किंचित् मात्रभी कर्तव्य नहीं, अब कहते हो कुछकर जो होवें। पराशरने कहा-यही कर कि, न मैं हूँ, न जगत्, न जी न ब्रह्म, एक अद्वितीय नारायण है। मैत्रेयने कहा-जब मैं परिच्छि अहंकार रूप जीव नहीं तो नारायणसे क्या प्रयोजनहै प मैं तो जीवत्वके अहंकारमें बँधा हूँ कैसे कहूँ "जीव ब्रह्म है" पराशरने कहा-जीव ब्रह्मका रूप क्या है? मैत्रेयने कहा- जीव ब्रह्मका रूप नहीं देखा। पाराशरनेकहा-जब रूप नहीं दे तो नाम कैसे धरा। मैत्रेयने कहा-सुनकर कहता हूँ। पराश कहा-जिससे तूने सुनाहै, तिसीसे जीव ब्रह्मका रूप पूछ। मैत्रे कहा-उसनेभी सुनकर कहाहै। पराशरने कहा-सर्व सुनकर क हैं पर मूल नहीं खोजते। हे मूर्ख, जैसे-सुनकरही जीव ब्रह्म निश्चय कियाहै, वैसेही-मुझसे भी सुन करके जीव, ब्रह्मरूप है ऐ निश्चय कर और जो तुझको इच्छा देखनेकी हो तो, अतीत हो

मैत्रेयने कहा-मुझे वैराग्य हुआहै, चाहता हूँ कि गृहस्थसे उ सीन होऊँ। पराशरने कहा-जिन, भूत, मृग, वनचर, आदि अनेक जी बनोंमें फिरते हैं तूभी तिनकी पंक्तिमें प्रवेश कर। हे मैत्रेय! लोगों जो पुत्र, स्त्री, धन, गृहादिकको गृहस्थ समझा है सो झूठहै क्यों गृह शरीरको कहतेहैं, जो शरीरके अहंकारमें बंधहै सोई गृहस्थ और जो इस अहंकारसे मुक्तहै सोई वैरागीहै। हे मैत्रेय! एक आश्र मको त्यागना दूसरे आश्रमको ग्रहण करना, तैसेही-एक ना त्यागके दूसरा नाम रखना तथा-सफेदरंगके वस्त्रको छोडके दू रंगके वस्त्र पहरना, यज्ञोपवीत तोडके, कंठी आदिक अनेक पदा बांधना, शास्त्र प्रतिपाद्य संबंधियोंसे प्रीति त्यागके, अशास्त्रोक्त संबं

बनाकर प्रीति करना, सर्वको अपना आत्मा जानकर प्रीति न करना, किन्तु रागपूर्वक प्रीति करना, ये व्यवहार विद्वानोंको हँसने योग्यहैं। हे मैत्रेय! अतीत वही है जो, "अपने सहित सर्वको आत्मारूप जानताहै" जो शरीरके अहंकारमें बंधा है और चाहसे अचाह नहीं हुआ सो, मेरे वचनोंको सुनकर प्रसन्न नहीं होता और जो नाम रूप बंधनते छूटाहै सो आपही आप सुखरूप है। जब भेद नाम रूपका मिटता है तब जीवना मरना भ्रम हो जाताहै क्योंकि, नाम रूप स्वप्रकाश नहीं, परप्रकाश हैं, तुझसेही प्रकाश राखतेहैं, ताते इस नामरूपात्मक देहादिकोंके अहंकारको त्याग,यही अहंकार चौरासीमें डोलाताहै। हे मैत्रेय! आदि, अंत, मध्य अपने सहित सर्वको नारायण जान। जब अस्ति,भाति,प्रिय,रूप अधिष्ठान, सर्व नारायण है तब कल्पितरूप अहंकार जुदा कहाँ रहेगा किंतु, अहंकारभी नारायणहै, यही अहंकारका त्यागहै। जैसे-नाम रूप कल्पित भूषण सुवर्णरूप हैं वा सुवर्णमें भूषण हैं ही नहीं, केवल सुवर्णही, अपनी महिमामें स्थित है, यही जानना भूषणोंका त्यागहै। हे मैत्रेय! जैसे घट पटादिक पदार्थ मृत्तिका रूप जानना वा मृत्तिका विषे तिन घट मठादिकोंका अत्यंताभाव जानना, यही घट मठादिकोंका त्यागहै। जैसे—स्वप्नद्रष्टामें कल्पित स्वप्नपदार्थ स्वप्नद्रष्टारूप हैं वा स्वप्नद्रष्टामें स्वप्नपदार्थ हैंहीं नहीं क्योंकि, अधिष्ठानमें कल्पित पदार्थ प्रतीति मात्रहीहैं, स्वरूपते पृथक् सत्तावाले नहीं क्योंकि,जागनेसे स्वप्नपदार्थोंकी प्रतीतिका अत्यंताभाव होता है यदि पदार्थ होते तो जागेपर दूर न होते।

हे मैत्रेय! कल्पित पदार्थोंके त्यागमें शारीरक वा मानसिक कर्तव्य नहीं चाहिये किंतु, निजात्म अधिष्ठानके जानने मात्रसेही कल्पितकी निवृत्ति होती है। इसीसे बंध मोक्षकी निवृत्ति, प्राप्ति वास्ते शारीरक कर्तव्य कुछ नहीं, केवल बोधरूप आत्माका जाननाही कर्तव्य है। हे मैत्रेय! "कल्पित पदार्थ मुझको प्रतीतही न होवें, जब कल्पित

पदार्थोंका नाश होवेगा तबही ज्ञानी होऊंगा" ऐसे नहीं जानना कि कल्पित पदार्थोंकी प्रतीति होतेभी, तिनको अधिष्ठानरूप जानना तिनका मिथ्यात्व (अभाव) जानना, यही कल्पित पदार्थोंका ना त्याग है, यही ज्ञानीपना है। हे मैत्रेय ! कोई ऐसा मानते हैं, " खाता, पीता, देता, लेता है सर्व व्यवहार कर्ता है, भले बुरेको भ बुरा जानता है, स्त्रीको स्त्री जानता है, पुरुषको पुरुष जानता है ज्ञानी नहीं अथवा जिसको शीत उष्ण होते हैं, जिसको षट्रस प्रती होते हैं जिसको, खान पानादिकोंकी इच्छा होती है सो ज्ञानी नहीं जिनको ज्ञान हुआ है वे जंगलोंमेंही रहते हैं, उनको किसीसे बोलने क्या प्रयोजन है, सुगंधि दुर्गंधि उनको आतीही नहीं। तात्पर्य्य यह मन चक्षुआदिइंद्रियोंका दर्शनादि व्यवहार तिनको होताही नहीं, इत्या दि अनेक विकल्प तर्क उठाते हैं। ऐसे अनुमानकरने अथवा कहनेवा शास्त्रके सिद्धांतको नहींजानते, बरन् ज्ञानको तिनोंने बीमारी समझ है–अर्थात् जैसे–बीमार पुरुष चेष्टा रहित जड़सा हो जाता है, तैसे ज्ञानरूपी बीमारी करके विवेकी जड होजाता है। अज्ञानियोंका ऐसा समझना शास्त्र अनुभव विरुद्ध है, ताते हे मैत्रेय ! सर्व प्रकार कर कायिक, वाचिक, मानसिक, सर्व देह चक्षुरादि इंद्रियों दर्शनादि व्यवहार, ज्ञानी अज्ञानीका समही है, केवल दृष्टिमात्रक भेद है, अन्य भेद नहीं। जैसे–धर्मात्मा, अधर्मात्माके देह चक्षु आदि इंद्रियोंके, दर्शनादि व्यवहारमें भेद नहीं किन्तु, दृष्टिक भेद है। जैसे–धर्मात्मा रूपको धर्मपूर्वक चक्षु इंद्रियसे देखता है और अधर्मात्मा अधर्मपूर्वक देखता है, रूपका देखना दोनोंका तुल्य है केवल दृष्टिका भेद है। जैसे–नील पीतादि रूपवान् हीरेके देखनें जौहरी अजौहरी समही हैं परंतु अजौहरी जौहरीकी दृष्टिरूप विचार भेद है, देखनेमें भेद नहीं। जैसे–भ्रमस्थलमें सर्व पुरुषोंके चक्षुका रज्जु

आदिक पदार्थोंसे संबंध तुल्यही है परंतु सदोष चक्षुवान्को रज्जुमें सर्पभान होता है और निर्दोष चक्षुवान्को रज्जुही भान होताहै।तैसेही ज्ञानी अज्ञानीकी दृष्टिमें विवेकका भेदहै, देह चक्षुरादि इंद्रियोंके दर्शनादि व्यवहारका भेद नहीं। अथवा ज्ञानीके शिरमें, शृंगादियोंकी विलक्षणता नहीं होजाती। कोई देह इंद्रियादिकोंके रोग बिना, दर्शनादि व्यवहारका बाधा नहीं हो सक्ता। हे मैत्रेय! देह इंद्रियोंके दर्शनादि व्यवहारका बाधा मानोगे तो—पूर्व दत्तात्रेय, वामदेवादिक परमहंसोंके, वसिष्ठादिक ब्रह्मऋषियोंके, जनकादिक राजऋषियोंके, देह चक्षुरादि इंद्रियोंका दर्शनादि व्यवहार, वर्तमान विद्वान पुरुषोंके समानही सुननेमें आताहै अन्यथा नहीं; बरन् ब्रह्मा, विष्णु, शिवादिकोंके भी, देह चक्षुरादि इंद्रियोंके, दर्शनादिक व्यवहार,अस्मदादिक जीवोंके समानही सुननेमें आते हैं, विलक्षण नहीं। काहेते—आदि ईश्वरकी नियति ऐसेही हुई है कि, देह इंद्रियोंके दर्शनादि व्यवहार, ब्रह्मासे लेकर चींटी पर्य्यंत, ज्ञानी अज्ञानी सर्व जीवोंका समही होगा। इस ईश्वर संकेतको अबतक कोईभी उल्लंघन नहीं कर सक्ता।

हे मैत्रेय! अपने २ वर्णाश्रमके अनुसार—सर्व जीवोंके, देह चक्षुरादि इंद्रियोंके, धर्मपूर्वक दर्शनादि व्यवहारका, किसी शास्त्रमें तथा किसी विद्वानने, निषेध नहीं किया तथा अनुभव सिद्ध वस्तुका निषेध भी नहीं हो सक्ता किंतु, अधर्मपूर्वक देह चक्षुरादि इंद्रियोंके दर्शनादि व्यवहारकाही निषेध है ताते—धर्मपूर्वक—अपने स्वरूप आत्माको सम्यक् जानकर देख, सुन, स्पर्शकर, रसले, गंध सूँघ; ग्रहण त्यागकर, बोल, चाल. तात्पर्य्य यह कि, कायिक, वाचिक, मानसिक,सर्व व्यवहार कर,आकाशकी न्याँई तुझको बाधा न होगा। हे मैत्रेय! भ्रम सिद्ध जो बंध मोक्षादिक पदार्थ हैं सो, तुझे प्रत्यक् आत्मामें वास्तवते है नहीं इसीसे—तुझको बंधरूप दुःखकी निवृत्ति

वास्ते तथा मोक्षरूप सुखकी प्राप्ति वास्ते, किंचित् मात्रभी क
नहीं । जैसे—निद्रा दोषकरके प्रतीत हुये जो—स्वप्नेमें बंध मोक्षा
अनेक पदार्थ, तिनकी निवृत्ति प्राप्तिवास्ते स्वप्नद्रष्टाको किंचित्
भी कर्तव्य नहीं। क्योंकि, स्वप्नद्रष्टा स्वरूपसेही बंध मोक्षसे र
परंतु भ्रमकरके बंध मोक्षवान् आपको मानता है। इसलिये, हे मैत्रे
तूँ सम्यक्दर्शी हो, असम्यक्दर्शी मत हो; काहेते—सम्यक्दर्शी जै
पदार्थ होता है तैसाही जानता है और असम्यक्दर्शी औरका
जानता है ।

मैत्रेयने कहा धर्मपूर्वक, सर्व विषयोंकी, प्राप्तिहुये भी पूर्व और
महात्मा क्यों त्यागते हैं । पराशरने कहा—हे मैत्रेय ! ज्ञानके वि
विषयोंका, पूर्व और अब भी महात्मा पुरुष त्याग करते हैं,
योग्य भी है, परंतु चक्षुरादि इंद्रियोंका दर्शनादि व्यवहार तो
त्यागा जाता।काहेते—जहाँ इंद्रियादि धर्मी हैं, वहां चक्षुरादि इंद्रिय
दर्शनादि धर्म भी होगा, धर्मीके होते धर्मका अभाव नहीं होता।
धर्मपूर्वक, चक्षुरादि इंद्रियोंका दर्शनादि व्यवहार ज्ञानका विरोधी
नहीं अधर्मही विरोधी है (ज्ञानका) धर्मपूर्वक दर्शनादि व्यव
उलटा ज्ञानका साधक है । जो धर्मपूर्वक,चक्षुआदिक इंद्रियोंके
नादि व्यवहार करते, अस्मदादिकोंकी दुर्गति होती है तो; होने
काहेते—इसकी निवृत्तिका उपाय कोईभी नहीं, शरीर नाश विन
जैसे—किसी वैश्यने कहा है—दाल रोटी खानेसे घाटा पडता है
पडने दे; इससे नीचे दरजा न होने ते ।

हे मैत्रेय ! गुप्तकी बातें मैं तुझपर प्रगट करता हूँ कि, न
मैत्रेय, न मैं पराशर, न कोई और एक नारायणही है—ऐसा जिस
निश्चय है वही अतीत है; ताते—तूँ अतीत हो । मैत्रेयने कहा—
ऐसा कहतेहो, जिसमें अतीत और गृहस्थ दोनों नहीं बनते,

कहते हो अतीतहो। पराशरने कहा—वही अतीतहै जो आप सहित जाने सर्व गोविंद है। आप सहित सर्व गोविंद जाननाभी मनका चिंतन है, इससेभी तू अतीत नाम निर्विकल्पहै। जब तूने ऐसा जाना तब अतीत गृहस्थ कहां है गोविंदहीहै। मैत्रयने कहा जब मैंही नहीं तब नारायणको कौन जाने कि, सर्व गोविंद निर्विकल्प नारायण है क्योंकि, जानना,—ज्ञाता, ज्ञान,ज्ञेय—त्रिपुटी विना होता नहीं। और स्वरूपमें त्रिपुटी हैही नहीं, जानना कैसे होवे। पराशरने कहा जब सर्व तूही है तो, त्रिपुटी भी तूही है, जैसे—स्वप्नमें ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय, त्रिपुटी, भानपूर्वक सर्व पदार्थोंकी, प्रतीति होती है परंतु स्वप्नका द्रष्टा सर्व त्रिपुटीरूप; निद्रा दोषकर प्रतीत होताहै, वास्तवते त्रिपुटीरूप, हुआ नहीं, अपनी महिमामेंही स्थित है। तातें—हे मैत्रेय! जैसे स्वप्नदृश्य पदार्थोंसे स्वप्नद्रष्टा अतीत नाम भिन्नहै तैसे-ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय रूप त्रिपुटी तथा इस कार्य कारण संघातते अतीत अर्थात् भिन्न, तू आपको साक्षीद्रष्टा जान, यही अतीत होना है। जब तू अतीत न होगा काल तुझको दुःख देवेगा। मैत्रेयने कहा कालका भय मुझको नहीं रहा क्योंकि, नामरूप मुझ अधिष्ठानमें कल्पित है, तीन कालमें सत्त नहीं। कालभी नामरूप स्वरूप है, कल्पित नामरूप काल, मुझ अधिष्ठानको दुःख नहीं देता, उलटा अधिष्ठान करकेही, नामरूप कंपायमान होतेहैं अर्थात् तिस नाम-रूप कालकी मुझ अधिष्ठानसेही सिद्धि होती है। जैसे—रज्जुमें कल्पित सर्पादिक रज्जुको दुःख देते नहीं, कल्पित सर्पादिकोंके गुण दोष रज्जुको स्पर्श करते नहीं, उलटा रज्जु करकेही सर्पादिकोंकी सिद्धि होती है,तैसे-कल्पित काल मुझ अधिष्ठान चैतन्यको कैसे दुःख देवेगा किंतु—नहीं देवेगा, वा—सर्वनामरूप नारायण है तो कालभी नामरूप स्वरूप है, जब कालभी नारायण हुआ तो नारायण नाराय-

णको तो दुःख देता नहीं। जैसे—सर्वनामरूप भूषण सुवर्णस्वरूप और सुवर्ण सुवर्णको दुःख नहीं देता ॥

पराशरने कहा—अब तू ध्रुव हुआ कथा ध्रुवकी सुन। मैत्रेयने क मैं अतीत होता हूँ, मुझको अपना भेष कृपा करके दो। परा कहा—अतीतमें, भेष अभेष नहीं, मायामें भेष अभेषहै। हे मैत्रेय! मायारूप भेषते अतीतहै, वही अतीतहै। मैत्रेयने—कहा, कथा क पराशरने कहा तुझको निश्चय नहीं इसीसे तुझको भस्म क योग्यहै। मैत्रेयने कहा मैंतो हैही नहीं ईश्वरही है, ईश्वरको भ करो। पराशरने कहा इस परिच्छिन्न रूप सूक्ष्म अहंकार रूपी, क कोही भस्म करनाथा, कोई देहादिक संघातके भस्म करनेमें तात्पर्य्य नहीं, भला हुआ कि, तू भस्मीभूत हुआ. हे मैत्रेय! अ काम अचाहि खुद मस्ती कर मस्त स्वभाविक विचरते हुये ध्रुवको मिले, कुछ राजपुत्र ध्रुवके मिलनेकी कामनावास्ते न इसी निष्कामनाके ऊपर एक इतिहास सुन।

जडभरतका उपाख्यान।

एक कालमें; महात्मा जडभरतने, देवराज इंद्रकी शास्त्रोक्त त श्चर्य्या किया। तीन मास बीतनेपर इंद्रने दर्शन दिया और क जो इच्छा हो सो बरमांग। जडभरत सुनकर हँसा और कहा इंद्र! जो तुम दयालु हुये हौ तो, कहो मुझ बर लेनेवालेका क स्वरूप है? और तुम बर देनेवालेका क्या स्वरूप है वर क दोगे? और किसके बलसे बर दोगे? तुम्हारी हमारी आकृति समानही है तुम उपास्य बर देनेवाले, हम उपासक बर लेनेवाले विलक्षणता कैसेहै? इंद्रने कहा हे जडभरत! मेरे निमित्त तूने कठिन किया है, अब तू पूछता है तू कौन है—परंतु—मैंने सुनाथा कि जडभ परमहंस है पर देखा तो परमहंस और भरत छोडकर जड दे

क्योंकि, जड़ पदार्थ न आपको जानता है न परको । हे जडभरत! "मैं बर लेनेवाला कौनहूँ, तू बर देनेवाला कौन है" यह स्फूर्ति अंतर जिसकरके सिद्ध होती है सोई, तेरा मेरा स्वरूप है, तिस स्वरूपको मैं जाननेकी न्यांई जानता हूं, तू नहीं जानता, इसीसे–तू उपासक वर लेनेवाला है और मैं वर देनेवाला उपास्य सामर्थ्य हूँ। हे जडभरत! तेरा पूछना ऐसा है–जैसे–घटाकाशसे घटाकाश पूछे, जैसे–समुद्रके तरंगसे तरंग पूछे, जैसे–अग्निका चिनगारा अग्निके चिनगारेसे पूछे और जैसे–स्वप्न नर स्वप्न नरसे पूछे, सो सब अयोग्य है, काहेते–सर्व प्रकार करके पूछनेवालेका तथा जिससे पूछता है तिन दोनोंका एकही स्वरूप है उपाधि दृष्टिसेभी और (उपहित नाम:उपाधिवाले) आत्माकी दृष्टिसेभी । "तू कौन है ? मैं कौन हूँ?" ऐसा पूछना वहां होता है, जहाँ विलक्षणता होती है, विलक्षणता विना इस प्रश्नका पूछना मूर्खता है । आपको तूने क्या पंचभूत रूप जाना है वा चैतन्य रूप, जाना है। दृश्य वा द्रष्टा रूप, सत्य वा असत्य रूप, कार्य वा कारण रूप जाना है वा कल्पित वा अधिष्ठान रूप जाना है अथवा–अन्यको तूने पंचभूतसे बिना जानाहै वा चैतन्यसे विना जाना है वा दृश्य द्रष्टासे विना वा कल्पित वा अधिष्ठानसे विना वा कार्य कारणसे विना वा सत्य असत्यसे विना देखा है जो, पूछता है मैं कौनहूँ ? तथा तू कौन है ? हे बुद्धिखोये जान ! जो मैंही हूँ, सर्व रीतिसे सर्व सृष्टि मेरीही स्वरूप है अन्यथा नहीं, पूर्वकहे जलतरंगादिक दृष्टांतकी न्यांई । हे जडभरत ! संतोंका संगकर जो अपने स्वरूपको जाने । जड भरतने कहा, उपदेश करो । इंद्रने कहा–उपदेश यही है कि, कल्पित नाम रूप त्यागके अपने सहित सर्व नारायण जान; जैसे–समुद्रके तरंगको उपदेश यहीहै कि, नाम रूप त्यागके, आप सहित सर्व तरंगोंको जल रूप जाने, जैसे–चीनीके बनाये जडभरतको, स्वरूपकी प्राप्तिका, उपदेश

यहीहै कि, आप सहित सर्व खांडके खिलौनोंको चीनी रूप जा
इतना सुनकर जडभरत तूष्णी भया ।

तिसी कालमें ब्रह्मा,विष्णु,शिव,देवतों सहित वहां आये ॥ ब्रह्मा
कहा—हे जडभरत ! कुछ आत्मनिरूपण कर, तूष्णी मत हो। ज
भरतने कहा—आत्मनिरूपण, त्रिपुटी भ्रम बिना होता नहीं,
अद्वैत आत्मामें त्रिपुटी भ्रमहै नहीं तो कैसे निरूपण करूँ ब्रह्मा
कहा—तुझ चैतन्य आत्मा अधिष्ठानमें—यह कल्पित त्रिपुटी नहीं
किसमें है,अधिष्ठान बिना कल्पितकी प्रतीति होती नहीं इसलिये,
कल्पित नामरूप, जगत्का तूही चैतन्य अधिष्ठान है, तुझ चैतन
पृथक्,इस कल्पितका, अधिष्ठान नहीं, जैसे—कल्पित मनादि भूष
का अधिष्ठान सुवर्ण आत्माही है,अन्य नहीं।हे साधु!दृष्टि करके दे
तुझ चैतन्य अधिष्ठान विषे, इस, कल्पित नामरूप, संसारकी प्रती
होते हुयेभी तुझ चैतन्य अधिष्ठानका बिगाड़ कुछ नहीं,जैसे-सदोष
त्रवाले पुरुषके रज्जुमें सर्प कल्पना करनेसे, रज्जु विष सहित नहीं
निर्विकार ज्योंकी त्योंहै- क्योंकि,वास्तवसे रज्जुमें सर्पका अभाव
जैसे— स्वप्न प्रपंचकी प्रतीति होतेभी स्वप्नद्रष्टाको बोझ नहीं है काहे
जिस मनने नाम रूप कल्पाहै, उसी मनको प्रतीति होताहै, अन्य
नहीं।अधिष्ठानने नाम रूप प्रपंच कल्पा नहीं, तिस अधिष्ठानको ना
रूप प्रपंचकी प्रतीतिभी नहीं होती परंतु; नाम रूप पदार्थोंके कल्पना
का अधिष्ठान स्वप्नद्रष्टाही होगा, अन्य नहीं । ताते—हे जड़भरत
आत्मनिरूपण करनेसे, तुझ चैतन्य आत्माकी, टांगडी नहीं टूटती
भयमत कर । हे जड़भरत ! जैसे—किसीने मानासिक कल्पना कर
तेरे शीशपर पर्वत रक्खा परंतु कहो तुझको, उस पर्वतका, बोझ
लगेगा कि नहीं लगेगा; जो, तू परकी कल्पनाके पर्वतका शीशप
बोझ माने तो,तेरी बुद्धि हँसने योग्य है । तैसेही-आत्मनिरूपण करने

वाला और, तिस निरूपणमें गुण दोष विचारने वाला और है, श्रवण करने वाला श्रोत्रेंद्रिय है देखने वाला और है, इत्यादि, संघातमें सर्व इंद्रियोंके व्यवहारकी,भिन्न भिन्न, कल्पना होनेसे, तुझ असंग, निर्विकार, निर्विकल्प, स्वमहिमामेंस्थितको, क्या पीड़ाहै। उलटा आत्मनिरूपण करना, न करना तेरे आगे मनादिक नटोंका नाटकहै। हे जडभरत! तू इन मनादिक नटोंके नाटकका तमासा देखने वाला आपको जान, आप नाटकमें नटरूप मतहो, नाटकका कर्ताभी आपको मत मान तथा नाटकरूपभी आपको मतमान। हे जडभरत! यह मनादिक आप अपने व्यवहारमें प्रवृत्त होते हैं और इन व्यवहारोंमें हानि लाभ भी इनहीको होती है, तुझ बिकार रहित साक्षी आत्माका, यह मनादिक गरीब, कुछ हानि नहीं करते, तू नाहक इनसे राग द्वेष मतकर। तू अपने महत्वको देख, इनको संताप मतकर, तेरे लाखोंयत्नोंसेभी, इनके व्यवहारकी निवृत्ति नहीं होगी। हे जडभरत! संतापभी देनेवाला मनहीं है और लेनेवालाभी मनहींहै, "संतापके देने लेनेवालोंका साक्षीभूत जो मैं चैतन्य आत्माहूं, मेरा क्या अपराध है" ऐसे निश्चय कर। जैसे—

अंगरेजी सरकारने,इस हिंदुस्थानके बंदोवस्तवास्ते,चार हातोंका संकेत कल्पना कियाहै;तिन चार हातोंके अभिमानी मर्यादाके पालक चार लाट मुकर्रर कियेहैं; प्रजा सहित तिन चारों छोटे लाटोंके ऊपर, सत्यवादी, न्यायकारी, निर्लोभ, धर्मात्मा, धर्मपालक, अलौकिक, बलवान्, एक बडा लाट मुकर्रर कियाहै, चार लाटों सहित सर्वप्रजा जिसकी आज्ञामें स्थितहै। परंतु, सर्वप्रजा, भिन्न भिन्न, आप अपने नीच ऊँच व्यवहारमें निरंतर संस्कारोंके लिये बलात्कारते स्थितहै। आप अपने संस्कारके अनुसारही, तिन सर्व प्रजाकी हानि, लाभ, सुख,दुःख,तथा अपने अपने व्यवहारमें राग द्वेष स्वभाविक हुआक-

रताहै । प्रजाके दुःखकी निवृत्ति व सुखकी प्राप्तिवास्ते, कायदा, शा
अनुसार, बना दिया है, तिसको धारण करनेवालेको, लौकिक व
हारमें, सुख होता है, न करनेवालेको दुःख होताहै परंतु बलात्का
(बडे लाट) अर्थात् गवर्नमेंट सरकार प्रजाको यह नहीं कहती
तुम यह व्यवहार करो वा न करो, इस व्यवहारमें रागद्वेष करो वा न क
इसमें तुमको हानि लाभ होगी वा न होगी, सुख दुःख इस व्यव
तुमको होगा वा न होगा इत्यादि । पूर्वोक्त लाट वा सर्कार अ
स्वस्थानमें सुखपूर्वक स्थितहैं यदि बडे लाट(वा सर्कार)गरीब प्रज
साथ लडाई भिडाई करेंगे तो सर्वके अधिपतिपनेका सुख (अ
मदारी) महत्वपना, जाते हुयेकी न्याई, जाता रहेगा, तथा तुच्छ
सिद्ध होगा । प्रजाके भिन्न भिन्न व्यवहारके दूर करनेका तथा ए
करनेका यत्न करनेसे भी, सर्व प्रजाके भिन्न भिन्न, स्वस्व व्यापा
प्रवृत्ति निवृत्तिका, बाधा न होगा । ईश्वरकी नियति आदि ऐसेही
है परंतु, गवर्नमेंटकी हुकूमत तो सब प्रजापर है, हुकूमतको अन्य
कोई कर सक्ता नहीं फिर, गरीबोंसे राग, द्वेष कर निज महत्वता
इज्जत क्यों खोवे निष्कारण क्यों सतावे तैसे—पंचभूतोंका कार्य
जो यह मनुष्य देहहै, सो हिन्दुस्तानके समानहै; जाग्रत्, स्वप्न, सुषु
तुरीय अवस्था चार हातोंके समान है । समष्टी, व्यष्टी, स्थूल, सू
कारण, महाकारण शरीर—अथवा उनकी, जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरी
चारों अवस्था चारों हातोंके समान हैं। अथवा सब जगत्रूप ओंका
आकार, उकार, मकार, अर्द्ध मात्रा रूप चार मात्रा हैं; सोई चार हा
रूप हैं । पूर्वोक्त जाग्रतादि अवस्थाके अभिमानी, विश्व, तैजस, प्रा
प्रत्यगात्मा चार छोटे लाट हैं वा जाग्रतादिक अवस्थाके व्य
अभिमानी विश्वादिकोंसे अभिन्न, वैराट्, हिरण्यगर्भ, ई
और ईश्वर साक्षी, समष्टी अभिमानी, चारों छोटे लाटों

समान हैं। दश इन्द्रियें, पंच प्राण, पंच उपप्राण, चतुष्टय अंतः-करण—वैखरी, मध्यमा, पश्यन्ति, परा; चार प्रकारकी वाणी, पच्चीस वा एकसौ पच्चीस वा सत्ताईस आदि प्रकृति, सत, रज, तम, गुणादि प्रजारूप माया, अज्ञान प्रकृति, प्रधान, अविद्या इत्यादि नामवाली माया, हिंदुस्थानकी पृथ्वीरूप है । गवर्नमेंट लाट स्थानी, केवल चैतन्य मात्र तू है। तुझ निर्विकल्प निर्विकार चैतन्य लाटकी सत्ता स्फूर्तिसे ही, मनादिक सर्व प्रजाका, व्यवहार सिद्ध होता है यह कायदा है। वा—ऐसे जान।

जाग्रतादि चार अवस्था चार होते हैं, तद अभिमानी चार चीफ-कमिश्नर हैं, शब्दादि विषय चौकीदार हैं, २५ प्रकृति प्रजा हैं, इन्द्रिय तहसीलदार हैं, तद अभिमानी सूर्य्यादि देवता डिपुटी कमि-श्नर हैं, चतुष्टय अंतःकरण कमिश्नर हैं, तदः अभिमानी चंद्रमादि देवता सेक्रेटरी हैं, प्राण डाक है, शबलब्रह्म मुल्की लाट है, वेद कायदा है;और शुद्धब्रह्म मलका विक्टोरिया है,सो तू है। सर्व चक्षु मनादिक प्रजाका तथा तिनके रूप दर्शनादिक,संकल्प विकल्पादिक, समाधि विक्षेपादिक सर्व धर्मोंका,स्वमहिमा में स्थित,तुझ शुद्ध चैतन्य मल-काको स्पर्श भी नहीं होता। हे जडभरत! तू चैतन्य मलका, नाहक मन,चक्षुआदिक प्रजाके साथ,क्यों राग द्वेष करताहै।मन विक्षेपवान न होवे, एकाग्र होवे, यह बुद्धि भला निश्चय करे बुरा निश्चय न करे, चित्त परमेश्वरकाही चिंतवन करे अन्य न करे, मिथ्याहंकार न होवे, सत-हंकार होवे, चक्षु अच्छे रूपको देखें, बुरे रूपको न देखें इत्यादि, अन्य इंद्रियादि प्रजाके धर्मनको भी जानलेना,तू निश्चय सत न्याय पूर्वक सोच देख,भ्रमविना तुझे चैतन्यका तो,बुरा,भला,शुभ,अशुभ, संकल्प विकल्पादि स्वभाव वह हुआ, प्रजाकाही हुआ। यदि बुद्धि आदिक भले पदार्थोंका निश्चय करें वा समाधि करें, बुरे पदार्थका

निश्चयादिक तथा विक्षेपादिक न करें तो बुरे पदार्थोंका नि वा विक्षेपादिक, बुद्धिविना कौन करे सो कह । तुझ आत्माका संकल्पादि धर्म नहीं, तथा अन्य इंद्रियादिकोंका भी धर्म नहीं मनादि बिना विक्षेपादि निश्चय व्यवहार कैसे होगा किंतु होगा । तैसे–चक्षु आदिक भलेहीरूपादिकोंको देखें तो, रूपादिकोंको कौन देखे चक्षु आदिकों बिना सो कह ? काहेते दर्श व्यवहार चक्षुबिना अन्यका है नहीं । यद्यपि हे जड़भरत ! चैतन्य, निर्विकार साक्षी, आत्मानेही, कल्पित मनादिक प्रजा हर्ष शोकादिक, भिन्न भिन्न यथायोग्य स्वभाव रचा है तथा मनादिक प्रजाके वर्तमान होते, तिनके धर्मोंका अभाव वा अन तुझ (रचक) से भी नहीं होगा । जैसे–स्वप्नके मन चक्षु आ इन्द्रिय भी तथा तिन मन चक्षुआदिक इंद्रियोंके, धर्म रूपादिक वि भी स्वप्नद्रष्टाने ही यथा योग्य भिन्न भिन्न कल्पना कियाहै स्वप्न पदार्थ रचक,स्वप्नद्रष्टासेभी,स्वप्न पदार्थोंका वा तिनके स्व का स्वप्न कालमें अन्यथा वा अभाव, कदाचित् भी नहीं हो सक यदि अन्यथावत् अन्यथा करेगा तो एक अपने संकेतका आपही दोष,दूसरा सर्व पदार्थोंके व्यवस्थाका भंग दोष, तीसरा अपनी प्रति ज्ञाका भंग दोष अर्थात् सत बादितादिक भंग दोष तथा अपनेमें भ्र विप्रलिप्सादि दोषकीभी प्राप्ति होगी । यहभी नहीं है कि, मनादि दृश्य स्वप्न पदार्थोंके पूर्व स्वभाव वर्तनेसे, स्वप्नद्रष्टाकी हानि और मनादिकोंके अन्यथा स्वभाव करनेसे, स्वप्नद्रष्टाको ला है । ताते स्वप्नद्रष्टाको उनके अन्यथा स्वभाव करनेमें यत्न कर अर्थात् विषयोंमें लंपट, मन इंद्रियोंके स्वभावोंको उलटाय सज्जनोंवत् अतिमनकी वृत्तिको,अंतर्मुख स्वरूपाकार करनेमें क्यों स्वप्नद्रष्टाकी, सर्व प्रकार करके मनादिक दृश्य स्वप्न पदार्थ, किंचि

मात्रभी हानी लाभ नहीं कर सक्के। तैसेहि—स्वप्नद्रष्टाकी न्यांई, तुझ चैतन्य साक्षी आत्माकी, यह मनादिक जाग्रतादिकोंमें वर्तनेवाले पदार्थ, किसी प्रकार करके किंचित् मात्रभी हानि लाभ नहीं कर सक्के। जैसे अनेक प्रकारके अंधकार आदिक, पदार्थ होने तथा मिटनेसे, आकाशकी हानि लाभ नहीं करसक्के। इसप्रकार हे जड़भरत! बुद्धि आदिकोंके, आत्मनिरूपण करनेसे, तुझ चैतन्य आकाशका क्या बिगडताहै? अर्थात् कुछ नहीं बिगडता, जो बिगडतामाने तो यही भ्रमहै। इस्से निःसंग होकर, आत्मनिरूपण कर।

जडभरतने कहा—हे ब्रह्मा! तू कौन है? जगत्की उत्पत्ति कैसे करताहै? ब्रह्माने कहा—साक्षात् मायाके कार्य्य भूत, पंचभूतोंका कार्य्यरूप यह संघात, मैं नहीं किंतु जिससे इस संघातकी तथा संघातके व्यवहारकी सत्ता स्फूर्ति होती है, सो चैतन्य आत्मा मैं हूँ, अन्य नहीं। हे जडभरत। जैसे तू स्वप्नमें स्वप्न पदार्थोंमें मट्टी, गारा, पत्थर आदि कहींसे लेकर तथा अस्थि, मांस, रुधिर; मेद, मज्जा, वीर्य्यादि सप्तधातु कहींसे लेकर तथा कहींसे पृथिवी आदि पंचभूतोंको लेकर वा स्त्री पुरुषके संयोगकर, नहीं रचता। सूक्ष्म स्वप्न नाडीमें, स्वप्न पदार्थोंके योग्य अन्य देश काल वस्तु, कारणभी नहीं हो सक्के, तात्पर्य्य यह कि, और किसी रीतिसेभी तू स्वप्नमें स्वप्न पदार्थोंको नहीं रचसक्का, निद्रा दोष संयुक्त केवल फुरनेसेही रचता है। तैसेही—मै चैतन्य, मनादिकोंका साक्षी आत्मा, कोई मट्टी; गारा, पत्थरादिक, कहींसे अन्य सामग्री लेके, इस जगत्को नहीं रचता; किंतु—केवल मायारूप स्फुरनसेही, इस नामरूप जगत्को; मैं रचता हूँ। फुरनेसे इसकी उत्पत्ति होनेके कारण, यह जगत् मिथ्या है। यद्यपि-वर्तमान कालमें, स्त्री पुरुपके संयोगसे पुत्रकी उत्पत्ति; बीजसे वृक्षकी उत्पत्ति इत्यादि यथायोग्य कारणोंते कारजकी उत्पत्ति प्रतीत होती है, केवल

फुरने करके इस नामरूप जगत्‌की उत्पत्ति प्रतीति होती नहीं; तथा
निद्राके प्राप्त होतेही स्वप्नमें झटसेही, एक क्षणमें, पुत्र पौत्र सहि
आपको देखताहै; तथा—बाग, बगीचे, पर्वत,नदियां,देश, काल,
ताहै—सो तीस वा चालीसं वर्षमें होनेवाले पुत्र पौत्र एक क्षणमें
स्त्रीते उत्पन्न होते हैं, तथा किस बीजसें वृक्ष पर्वतादि उत्पन्न हो
तथा किस स्त्री पुरुषके संयोगसे पुत्र पौत्र उत्पन्न होते हैं, सो कह
निद्रा रूप अविद्या, स्त्री बीजादि करकेही, पूर्वोक्त पदार्थ उत्पन्न
हैं;अन्य किसी कारणसे नहीं उत्पन्न होते। पश्चात् जागनेपर निद्रा
अविद्यामें तिन पदार्थोंकी लीनता होती है; ताते—निद्रारूप अवि
द्वारा, स्वप्नद्रष्टा चैतन्यही, दृढ फुरणे करके, कार्य्य कारण
प्रतीत होता है, वास्तवसे स्वप्न प्रपंच, आदिमें भी नहीं तथा ज
पर अंतमेंभी नहीं रहता। मध्यमें अविद्यासे अनेक प्रकारकी प्र
होतेहुयेभी, आदि अंतकी न्यांई, मध्यमें भी अत्यंत अभावही स्व
प्रपंचका जानना,तैसेही—जाग्रत् प्रपंचभी जानना बल्कि स्वप्नप्र
तेभी, जाग्रत् प्रपंच,अति तुच्छहै;काहेते—स्वप्न प्रपंचके, यद किं
निद्रारूप अविद्या सहित,देश कालादिक कारण पाये जातेभी हैं
देश कालादिक भेद रहित केवल सच्चिदानंद निजात्माके अज्ञान
इस जाग्रत जगत्‌की प्रतीति होती है,रज्जुके अज्ञानते सर्प प्रतीति
ताते अति तुच्छ है। सिद्धांत यह है कि,—अस्ति भाति प्रिय
आत्माते भिन्न जो, नामरूप जगत्‌की प्रतीति है, सोई स्वप्न
सोई मिथ्या दृष्टी है, सोई मायाहै—,जैसे—मधुरता, द्रवता, शीतल
रूप जलसे भिन्न जो, फेन, बुद्‌बुदा, तरंगादिक नाम रूपकी प्रती
है, सो यथार्थ दृष्टी नहीं किंतु मिथ्यादृष्टी है, जब मधुरता, द्रवता
शीतलता रूप जलकी दृष्टी होतीहै, तब तरंगादिक नाम रूप
अत्यंताभाव प्रतीति होती है, शेष केवल जलही प्रतीति होताहै,

यथार्थ दृष्टी है। तैसेही-जब अस्ति, भाति, प्रियरूप निजात्माकी दृष्टी होतीहै तब, पृथिवीआदिक कल्पित नाम रूप जगत्का अत्यंताभाव प्रतीत होताहै, शेष अस्ति भाति प्रिय निजात्माही भासता है, सोई यथार्थ दृष्टी है। जाग्रत् स्वप्नका तथा व्यवहारिक प्रतिभासिक पदार्थोंका, भेद करना तथा कथन करना यहाँ सिद्धांत नहीं किंतु, यह कथन चिंतन पूर्वोक्त सिद्धांतका उपयोगी है। हे साधो! जैसे स्वप्नमेंही, रज्जु आदिकों विषे सर्पादिक प्रातिभासक प्रतीत होतेहैं, तथा घटादि व्यवहार प्रतीत होते हैं, इसी प्रकार—स्वप्नमेंही, जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, मरण; समाधि; विक्षेपादिक, बुद्धिकी अवस्था भी प्रतीत होती है-तथा-बंध, मोक्ष, शास्त्र, गुरु, समुद्र; नदियां; पर्वत हस्ती, घोडा घटपटादि, देश कालादि, कार्य कारण भाव तथा अनेक प्रकारके पदार्थ अनादि जाग्रतवत् प्रतीत होते हैं परंतु, स्वप्नमें स्वप्नांतरके पदार्थोंको तथा रज्जु आदिकोंमें कल्पित सर्पादिकोंको, मिथ्या नाम, प्रातिभासक जानता है अर्थात् प्रतीत होते हैं और घटपटादिक व्यहारक नाम सतरूप करके व्यवहारक सत् प्रतीत होतेहैं तथा देश कालादिक सर्व पदार्थोंके कारणरूप करके प्रतीत होते हैं, और सर्व पदार्थ कार्यरूप करके प्रतीत होते हैं गुरु शास्त्र, बंधकी निवृत्ति मोक्षकी प्राप्ति, करनेवाले दीखते हैं, तथा आपको अकृतार्थ जानता है, कोई पदार्थ अनादि कोई सादि प्रतीत होते हैं,—तथा राजा, रंक, ज्ञानी, अज्ञानी, जीव, ईश्वर, जाग्रतवत् प्रतीत होते हैं। परंतु—अविद्याके परिणाम, चैतन्यके विवर्त, निद्रा दोषसे एक क्षणमात्रमें सर्वकी प्रतिभा प्रतीत होनसे तिन स्वप्न पदार्थोंमें, कार्य कारण भाव तथा प्रातिभासक व्यवहारक नाम, सत् असत् विभाग, (भेद) नहीं परंतु—किसी पदार्थमें सत्पना, किसीमें असत्पना, किसीमें कारणपना, किसीमें कार्यपना, किसीमें अनादिपना, किसीमें सादिपना इत्यादि प्रतीत होता है, सो

यह सर्व अविद्याकी महिमा है, पदार्थोंमें भेद नहीं तैसेही-य
जाग्रत्में भी जोडलेना । हे साधो ! यहां जाग्रत् स्वप्नका भेद इ
तात्पर्य्य यह कि, असम्यक् दर्शनका नाम स्वप्न है, सम्यक् द
का नाम जाग्रत है । हे साधो ! स्वप्नकी अपेक्षासे यह जाग्रत
इस जाग्रत्की अपेक्षासे वह स्वप्न है, तुमही कहो जाग्रत् कौन
और स्वप्न कौन हुआ-तात्पर्य यह कि, न कोई जाग्रत् है, न
स्वप्न है, किन्तु आप अपने वर्तमानमें दोनों जाग्रत् हैं, पर
दोनों स्वप्न हैं, यदि जाग्रतादिकोंका स्वरूप कहैं भी तो, बहि
नेका नाम जाग्रत् है और अंतर्फुरनेका नाम स्वप्न है तथा
रहित निजकारणमें लीन वृत्तिका नाम सुषुप्ति और तीनों
साक्षीका नाम तुरीय है । तातें-हे बुद्धिमान् जडभरत ! व्यष्टि जी
समष्टि ईश्वरके फुरने मात्र करकेही इस नामरूप जगत्की उत्प
कोई मट्टीगारेसे, ईश्वर वा जीवने बनाया नहीं, इसीसे मिथ्या
जैसे-कामधेनु तथा कल्पतरु आदिकोंके नीचे खान पान धु
आदिक सर्वप्रकारके पदार्थोंकी, पुरुषको संकल्प मात्रसेही
होती है सो-तू विचार देख कि, अपरोक्ष कामधेनु और कल्प
पास, खान पानादिकोंके योग्य प्रत्यक्ष पदार्थ, धरे भी नहीं हैं
न कहींसे ले आतेहैं अपने शरीरसे भी निकास कर नहीं देते, ता
यह कि, तिन सर्व पदार्थोंका और कोई कारण मालूम नहीं
तातें-यह सिद्ध हुआ कि, सत् संकल्प चैतन्य पुरुष
आदि यही संकल्प किया है कि, पुरुष कर्म्मवशसे, काम
वा कल्पतरुके नीचे स्थित होकर, जिस पदार्थोंका संकल्प करे
पदार्थ तिस पुरुषको अपरोक्ष प्राप्त होवे, यह फुरणाही कारण
तपस्वी पुरुषोंके वर शापकी, सिद्ध, पुरुषोंके संकल्प सिद्ध पदार्थ
और मायावी पुरुषोंकीभी यही रीति जान लेनी । तातें-हे सा

यह नाम रूपात्मक जगत् फुरणेमात्र सेही प्रतीत होता है, अन्य इसका स्वरूप नहीं । सारांश यह कि, तू चैतन्य, सूर्य वा लालही, अपनी महिमा में स्थितहै, फुरणारूप जगत् तुझते भिन्न नहीं । जैसे–सूर्यकी किरणैं सूर्यते भिन्न नहीं, लालकी दमका लाल ते भिन्न नहीं । जो ईश्वरादि सत सामग्रीसे, संसार सत मानोगे तो "सत्की प्राप्तिकी इच्छा मात्रसे संसारको त्यागे" यह वेदका कहना निष्फल होगा । दूसरा–सतकी प्राप्ति वास्ते यत्न निष्फल होगा । काहेते–सत संसार सदा जीवोंको अपरोक्ष (यत्न बिना) प्राप्त है, तिसकी प्राप्ति-वास्ते यत्न निष्फलहै और सतकी निवृत्तिभी नहीं होती ।

ब्रह्माने कहा–हे जड़भरत ! तेरा स्वरूप क्या है ? जडभरतने कहा–ब्रह्मा, बिष्णु, शिवादिक नामरूप जिसकर सिद्ध होते हैं, सोई मेरा स्वरूपहै । विष्णुने कहा–मैं सर्व नामरूप जगतमें व्यापक हूँ, जैसे–सर्व नामरूप भूषणोंमें सुवर्ण व्यापक होताहै । जडभरतने कहा–मुझ चैतन्यके प्रकाशसेही, तुम ब्रह्मा विष्णु शिवादिक, सर्व नामरूप प्रकाश राखते हो । तुम केवल वृथाही अभिमान करते हो कि, हम इस जगत्की उत्पात्ति, पालना, संहार करते हैं, जैसे–रज्जु अधिष्ठानक ज्ञान अज्ञानसे ही,सर्पदंड मालादिक पदार्थोंकी उत्पत्ति, पालना, संहार होते हैं सो ज्ञान, अज्ञान, तम, प्रकाश मुझ चैतन्य सूर्य्यमें नहीं है, इसलिये भ्रम है । तैसे तुम सहित भ्रमरूप इस संसारकी मुझ चैतन्य आधिष्ठानके ज्ञान अज्ञानतेही, प्रवृत्ति निवृत्ति होती है. ताते तुमको भ्रम हुआ है कि, "हम शरीर करके जगत्की उत्पत्ति आदि करते हैं ।" शिवने कहा–हे जडभरत ! तुझको जडभरत क्यों कहते हैं ? जडभरतने कहा–जडवस्तु फुर्णे रहित होतीहै इसलिये फुर्णे-ति रहित होनस, मुझ चैतन्यको जड कहते हैं; सर्व नामरूप जगत्को, अपने अस्ति, भाति, प्रिय, सच्चिदानंद रूप करके, भर रहाहूँ

इस्से, मुझ चैतन्यको भरत कहते हैं। जैसे-अपनी मधुरता,शीतल द्रवता रूपसे जल,सर्व नामरूप फेन बुद्बुदे तरंगादिकों में भर र

जडभरतने कहा—हे ब्रह्मा विष्णु शिवादिको ! तुम्हारा क्या स है ? शिवने कहा—यह जो गंगाधर, अर्धंगी, गौरजा सहित तथा रुंडमाला सहित, त्रिनेत्र नीलकंठ, भूत पिशाच सेना सहित, स उपासक भक्तजनोंको, अतिप्रिय, शांति और मंगलकी देने कोटि कामदेवसेभी अतिसुंदर दूधके फेन तुल्य गौर, यह मेरी जगत् सहित नामरूप मायामात्रहै वा पंचभूतरूप है; मुझ क स्वरूप चैतन्य व्यापकका, यह नामरूप मूर्ति स्वरूप संघात, स्वरूप नहीं। किंतु,-जैसे-मैं चैतन्य, इस असत्त, जड दु (मूर्ति) संघात विषे, सच्चिदानंद स्वरूपसे, संघातके सर्व हारका साक्षी, द्रष्टा, प्रकाशक, असंग, आत्मा, प्रेरक, निर्वि निर्विकल्प रूपसे, स्थित हूँ। तैसेही—सर्व नामरूप संघातोंमें, मैं चैतन्यसाक्षी आत्मा, एकरूप करके स्थितहूँ वा सर्व नाम कल्पित जगत् ब्रह्मासे लेकर चींटी पर्यंत विषे, मैं अधिष्ठानही हिमामें स्थितहूँ, द्वैत हैही नहीं। तात्पर्य यह कि, निर्विकल्प कार, साक्षी, असंग, सच्चिदानंदादिक, अधिष्ठानके विशेषण कल्पित नामरूपके विशेषण—दृश्य मिथ्यात्वादिक—तथा सत्यत्व मुमुक्षुके बोधवास्ते, वाचा रंभणमात्र, प्रतीति होते हैं, वास्तवसे अस्ति, भाति, प्रियरूप आत्मा में नहीं। जैसे—सुवर्ण और भूषण भिन्न भिन्न स्वरूप कहना, पुनः सुवर्ण भूषणोंकी एकरूपता क सो केवल बालकोंके (स्व महिमास्थित सुवर्णके) बोधवास्ते वा रंभण मात्रहै, वास्तवसे नहीं। ऐसी अमृतरूपी, पक्षपातसे र यथार्थ, महादेवकी गंभीरवाणीको सुनकर, सर्व अपने स्वरूपमें स्थि हुये ब्रह्मा विष्णु आदिकभी श्लाघा करने लगे।

पुनः विष्णुभी यही कहने लगे—हे साधो ! शंख, चक्र, गदा, पद्म; लक्ष्मी सहित, सर्व भूषणोंसे भूषित मोर मुकुटवाली, चतुर्भुज, श्याम-सुंदर मूर्ति, मेरा स्वरूप नहीं। किंतु-मैं-साक्षी चैतन्य व्यापक सर्वात्मा हूँ। तैसेही-ब्रह्मानेभी कहा कि, दृश्यमान मूर्ति मैं नहीं, किंतुइस संघातका मैं साक्षी चैतन्य आत्माहूँ। इसी प्रकार—तिससभामें यही निश्चय हुआ कि, देहादिक संघात हमारा स्वरूप नहीं किंतु यह देहादि संघात, मायाका कार्य होनेते, मिथ्याहै तथा दृश्यहै और हम इस संघातके साक्षी द्रष्टा चैतन्य आत्मा सत्त हैं। हेमैत्रेय! तूभी यही निश्चय कर कि, "मैं यह पंचभौतिक देहादि संघात नहीं किंतु, देहादियोंका—साक्षी, चैतन्य, निर्विकार, निर्विकल्प, रूप.-स्वतःसिद्ध अकृतमदेव, ज्ञानस्वरूप हूँ। हेमैत्रेय! वह संत जो ध्रुवकेपास गये थे सो अपना स्वरूपही जानकर गये थे । मैत्रेयने कहा-स्वरूप तो एक है, एकविषे आना जाना कैसे होता है। पराशरने कहा—आना जाना भी स्वरूप विषेही होता है। इसीपर एक कथा सुनः—

पराशर तथा वामदेवका सम्वाद।

एक समय वामदेव, स्वाभाविक वनविषे एक हाथमें दंड और एक हाथमें कमंडलु लिये,विचरता था। मैं देखकर हँसा और पूछा हे रूप मेरे ! तुझे किसीसे राग द्वेष तो है नहीं, दंड क्यों हाथमें लिया है ? वामदेवने कहा-सच्चिदानंद स्वरूप आत्माते पृथक् जाननेवाली, विपरीति बुद्धिरूपी राक्षसीके दूर करनेवास्ते दंड लिया है; वा अधर्म विषे प्रवृत्त जो अशुद्ध मन है, तिसको, अंतर शुद्ध मन रूप दंडकर, वेदरीति अनुसार, अधर्मसे हटाकर, धर्ममें जोडताहूँ; जिससे मनका उपशम वे अंतर उपरोक्त दंड है, बाहिर दंड तो तिस अंतर दंडका-लखायकहै तथा तेरे नाशवास्ते है क्योंकि, हे सर्व शिव परंतु राग द्वेष

तथा दंडता शिवमें तू कल्पता है, तेरी विपरीत बुद्धि होनेसे, तुझ
दंड देना योग्य है। जैसे—धर्मात्माको कोई विपरीत बुद्धिवाला कलं
लगावे, तिसको दंड देना योग्यहै। तैसे—मन, वाणी अगोचर, बु
आदिकोंके साक्षी द्रष्टा, आत्मामें, तू द्वैत कल्पता है इस्से; तुझ
दंडदेना योग्यहै। मैंने कहा—कर्तव्यविना यह आत्मा शिव कैसे हो
है ? वामदेवने कहा—हे पराशर ! शिवनाम कल्याणकाहै, नाम
अकल्याणका साक्षी, यह आत्मा, स्वतःसिद्ध शिवरूपहै, करतव
शिवरूप नहीं होता। जैसे-घटादिकोंके व्यवहाररूपी अकल्या
रहित, घटाकाश स्वतःसिद्ध महाकाश स्वरूपहै। जो कुछ कर्तव्य क
प्राप्त होतेहैं सो अशिव होते हैं; उनका कालांतर करके नाश होत
सत्त नहीं होते। जैसे—रसायन द्वारा लोहा सुवर्ण होता है परंतु का
तर करके पुनः लोहेका लोहा हो जाता है। मैंने कहा—कमंडलु क
लिया है ? वामदेवने कहा—भ्रांति सिद्ध आत्मामें, बंधकी निवृत्ति अ
मोक्षकी प्राप्तिवास्ते जो कर्तव्य, तिसको तथा गोविंद व्यतिरेक
मनपर निश्चय है तिसको, धोता हूँ अथवा कर नाम हस्तोंकाहै, जै
हस्तोंका मंडल महान मंडलकी अपेक्षासे तुच्छ है तथा अपरोक्ष
तैसे-संसाररूप मंडलका अपने स्वरूपकी अपेक्षा; अपरोक्ष अत्यं
भाव है तात्पर्य यह कि, मैं चैतन्य आत्मा निष्कर्तव्य हूँ, यही कमं
डलुका अर्थ है। मैंने कहा—जब सर्व शिव है, तो शिवको धोता
क्यों ? वामदेवने कहा—जब सर्व शिव है तो धोवना अधोवना
शिव है-जैसे-हस्तीके पगमें सर्व पग समाते हैं. तैसे; पदमें स
अर्थ समाते हैं। मैंने कहा—हे वामदेव ! तुम कहाँ से आये हो ? औ
कहां जाओगे ? वामदेवने कहा—न किसी दिशासे आया हूँ न क
जाऊँगा क्योंकि, आकाशके समान पूर्ण हूँ, पूर्णमें आनाजाना नहीं
अपूर्णमेंही आनाजाना होता है। मैंने कहा—प्रत्यक्ष आनाजा

देखपडता है, कैसे कहते हो "मुझमें आनाजाना नहीं"। वामदेवने कहा—आनाजाना, तपस्याकरनी तथा खान पानादिक सर्व, आत्माही है, द्वैत नहीं। जैसे पंचभूतोंके कार्यरूप इस देहविषे आना जाना, सोना, जागना, खाना, पीना, लेना, देना, सारांश यह कि, सुख दुःख रूप भोगका भोगना प्रत्यक्ष देख पडता भी है, परंतु विचार कर देखे जब सर्व दृश्य पदार्थ पंचभूत रूप उससे हैं, तो आना जानादिक (दृश्य) से भिन्न कैसे होता है अर्थात् आना जानादिक भी पंचभूत रूपही है इससे, आना जाना भी स्वरूपही है। जैसे स्वप्ननरों का आना जाना स्वप्नद्रष्टासे भिन्न मिथ्या प्रतीति मात्र है, यथार्थमें तो स्वप्ननरों सहित तिनकी सर्व चेष्टा स्वप्नद्रष्टा रूप है। जैसे—तरंगादिकों सहित तरंगादिकों की सर्व चेष्टा जलरूप है।

हे मैत्रेय! अब ध्रुवका वृत्तांत सुन। तिन संतोंमें एकमैं था एक दत्तात्रेय एक वामदेव। तथा और भी अनेक संतथे। जब ध्रुवने संतोंको आकर दंडवत किया तब मैंने कहा—हे ध्रुव! तूने जो जाना है कि ये संत हैं, सो हम संत नहीं, जो हम संतहोते तो तेरे समान अटल पदवी मांगते। हे ध्रुव! जो देहादिक प्रंपच चल रूप है सो, निश्चय कर अचल नहीं होता और जो अचल रूप आत्मा है सो, चल रूप नहीं होता। इस्से तू सोचदेख दोनों रीतिसे अटल पदवी मांगना निष्प्रयोजन है। प्रत्येक निजस्वरूप आत्मा, चल रूप देहादिक, जगत्में, स्थित भी सदा अचल रूप है और यह नामरूप अटल पदवी सहित प्रपंच सदा चलरूप है, यह आबाध्य अर्थ है। ध्रुवने कहा तुम महान संतहो। अवधूतने कहा हमारे स्वरूपमें महानता अमहानता तथा संत असंतपना है नहीं। ध्रुवने कहा तू कौनहै? अवधूतने कहा जो तू है। ध्रुवने कहा मैं कौन हूँ? अवधूतने कहा, मैं हूँ। ध्रुवने कहा—रूप तेरा क्या है? अवधूतने कहा, जो रूप

तेरा है?ध्रुव यह वचन सुनकर आश्चर्यमान् होकर तूष्णी हुवा.अवधूत कहा तूष्णी मतहो,तूष्णी अतूष्णी होना मन और वाकका धर्म है।ध्रुव कहा—क्या करूं,वचन चलता नहीं । अवधूतने कहा—इसी कारण तूने अटलपदवी चाहीथी कि,मैं बहुत कालतक अटल रहूँगा।हे ध्रु तू आप अटल अरु अटल पदवी चाही,क्या तुझको लज्जा न आ हे मूर्ख! कभी तूने सुनाहै कि, आत्मा नाश होताहै अर्थात् आत्म का कभी भी नाश नहीं होता। जैसे घटाकाश, घटादिकोंके ना अचल विषे आपको अचल होनेकी इच्छा करे सो भ्रम है अथ घटाकाश घटादिकोंके अचल होनेकी इच्छा करे सोभी भ्रमहै जैसे—स्वप्नद्रष्टा स्वप्न पदार्थोंविषे आप अचल होनेकी इच्छा क सो भी भ्रम है। जैसे-वृक्ष अपने होनेवाले फल फूल पत्तोंके अच होनेकी इच्छाकरे सो असम्भवहै।यह देह अटल होनेकी नहीं,कल्प र्य्यंत यदि देह रहेभी अंतमें नाश है । हेध्रुव! सामान्य पुरुषभी मल नादि स्थानको शीघ्रही त्यागना चाहतेहैं क्योंकि, बीमारीका मल स्थान कारणहै परन्तु इसके उलटा मलमूत्र रूप जो यह दे नरकरूप, अतिमलीन स्थानहै, तिसविषे तूने बहुत काल रहने वास्ते तप कियाहै। हे ध्रुव ! महात्मा इस दुःखरूप देहके त्याग अनंतर, किसीभी देहके धारण की इच्छा नहीं करते परन्तु तूने की है, इस्से, तू धन्य है, तेरी बुद्धि हँसने योग्य है । अ तुझको अनात्म देहमें आत्मबुद्धि और अशुचि देहमें शुचिबुद्धि औ दुःखमें सुखबुद्धि, चल देहविषे अचल बुद्धि, इत्यादि विपर्यय बुद्धिकी तथा मैं सबसे बडा हूँ, इस अहंकारकी बीमारी होगी, तिसी बीमारीसे अनंत कल्प पर्यन्त (तू) दुःखको पावेगा। हे ध्रुव! मैं नहीं चाहता कि, यह देह मेरा सदा रहै वा न रहै क्योंकि,मैं अविनाशी चैतन्यपुरुष हूँ, मुझमें कर्तव्यनहीं तथा मेरा नाश नहीं,मैं देहके रहने

न रहनेमें एकरस हूँ। जैसे-घटाकाश घटके रहने न रहनेमें एकरस है। हे ध्रुव! अपनेसे कल्पित दृश्य पदार्थोंसे अधिष्ठान स्वतःसिद्ध बडा होताहै, जैसे-स्वप्नद्रष्टा, स्वप्न पदार्थोंसे, यत्न बिना स्वतःसिद्ध बडा सत और अचल है, तिसको अचल बडाई वास्ते तप करना भ्रम है। तू सच्चिदानंद द्रष्टा चैतन्य, सत्य, अचल, पुरुष इस नाम रूप कल्पित असत जड दुःखरूप, दृश्यप्रपंचसे स्वतःसिद्ध बडा तथा सच्चिदानंद है, कर्तव्यसे नहीं। हे ध्रुव! जब ईश्वर तुझपर दयालु हुआ तो; तूने क्या मांगा, विचार न किया कि, यह अटलपदवी तो ऐसी है जैसे किसी देशमें बडा ऊंचा निर्जन पर्वत होवे, तिसके शिखरपर एक मंदिर बना होवे, तिस मंदिरमें पुरुष बैठारहै-तैसे यह अटलपदवी है, इसमें क्या विशेषता है? हे ध्रुव! तू सच्चिदानन्द स्वरूप आत्मा; देश काल वस्तु परिच्छेद रहित, पूर्ण है क्या तू अटल पदवी विषे नहीं था? जो अटल पदवीकी चाहना करी। जैसे आकाश किसी ऊंचे पर्वत स्थित मंदिरमें बैठनेकी इच्छा करे सो भ्रमहै, क्योंकि आकाश सब नीची ऊंची ठौर में व्यापक (स्वभावसेही) है, यत्न करके नहीं। हे ध्रुव! जैसे इस लोकमें, अज्ञानी सर्व जीवोंको, दुःख देनेवाले श्रोत्रादिक इंद्रिय, मन और शब्दादिक पंच विषय, शत्रुहैं तथा षट् ऊर्मी हैं, षट्भाव विकार हैं, अध्यात्मादितापहैं,कालके भयादिहैं।इन विषय इंद्रियके संयोग वियोगसे सुख दुःख होता है। अनिष्ट विषय इंद्रियके संयोगसे दुःख होताहै इष्ट विषय इंद्रियके संयोगसे सुख होता है। जैसे-न्यूनाधिकादि भावसंयुक्त पंचभूतक सृष्टिहै,तैसेही सो अटल पदवी विषेभी,शरीरके होते, यह शत्रु तेरेसंगही रहैंगे अन्यथा नहीं होंगे, इससे अटलपदवी विषे क्या विशेषता हुई, सो कहो? नाम रूप प्रपंच यहाँभी है और तेरे अटलपदवीमेंभी है तो विशेषता क्या हुई।जो वैकुंठादिलोक अटल

पदवीमें, पूर्वोक्त नामरूप जगत् नहीं होता तो अटलपदवीकी इ करनी भी ठीक थी परंतु नामरूप वास्ते, व्यर्थ अटल पदवीकी इ तैंने की । हे ध्रुव ! सर्व दुःखोंसे रहित तू चैतन्य आत्माही अ पदवीहै, तुझ चैतन्यसे भिन्न अटलपदवी कोई नहीं, सर्व चल प है । जैसे—स्वप्नमें चल अचल पदवी प्रतीति होती है । तात्पर्य्य कि, किसी पदार्थ की बहुत काल स्थिति मालूम देती है, किसी प की अल्पकाल स्थिति मालूम होती है परंतु सर्व स्वप्नके पदार्थ क्षण त्रमें होनेवाले होनेसे तथा समान कल्पित होनेसे तुच्छही है ।। स्वप्नद्रष्टाही केवल अटल पदवी रूप है, अन्य नहीं । तैसे—चल घटपटादिकोंकी अपेक्षा कर, विष्णु करके दिया स्थान, अटल प है,तुझ अनादि अनंत चिद्घनकी अपेक्षासे नहीं तथा मायाकी अपे भी नहीं । क्योंकि, तेरी अटल पदवी मायाका कार्य है । ध्रुवने अब स्वरूपको कैसे पाऊँ ? दत्तात्रेयने कहा—जिस मार्गमें तूने अ पदवी पाई है उसी मार्गमें अपने स्वरूपको ढूँढ़ । ध्रुवने कहा— बतावो ? वामदेवने कहा—मार्ग स्वरूपके पावनेका यहीहै कि, अ सहित सर्व गोविंद जान । ध्रुवने कहा मुझको वैराग उपदेश क हे मैत्रेय ! मैंने कहा यहीं वैरागहै कि जान मैं संघात रूप परिच्छि ध्रुव नहीं जब तू नहीं तो परम वैरागका वैराग है।हे ध्रुव ! परिच्छि अहंकारके अभाव हुये जो शेषपद रहता है, तिसमें मन वाणीकी नहीं जो मैं कहूँ । ध्रुवने कहा—मैं नहीं हूँ तो कौन है ? मैंने मैं हूँ ध्रुवने कहा जो तू है तो मैं कैसे नहीं हूँ ? मैंने कहा परमात् एकहै दो नहीं, इससे मैं अहं त्वंसे रहित अद्वितीय हूँ । ध्रु कहा जो तू अद्वितीय है तो मैंभी अद्वितीय हूँ । मैंने कहा ध्रुव ! जब तू अद्वितीय है तो, अब कहो, अटलपदवी कैसे है ध्रुवने कहा—कहनेमात्र है । मैंने कहा—तब अटलपदवी क्यों तैंने चाहना की । ध्रुवने कहा—जो हुआ सो हुआ

मुझको मुक्तिकी इच्छाहै उपदेश करो। मैंने कहा उपदेश यही है कि, आप सहित जान, सर्व हरि है, परंतु हे ध्रुव! वासनाका त्यागकर। ध्रुवने कहा वासना कैसे त्यागूँ ? पिशाचके समान मनको लगी है। मैंने कहा ऐसा वैराग कर कि, मैं नहीं हूँ। जब तू ही नहीं तो वासना कहाँ है? वा—जान "सर्व मैं ही हूँ, जब सर्व तूही है वासना कहाँ है? जो त्याग वा अंतःकर्णसहित अंतःकर्णके धर्म रूप वासनाकाभी, मै द्रष्टा प्रकाशक आत्मा हूँ, ऐसे जान। हे ध्रुव ! जब तंत्रीका बजानेवाला होता है तब तंत्रीमें शब्द होता है, जब तंत्रीका बजानेवाला नहीं होता तब तंत्रीमें शब्द नहीं होता। तैसे-जब तू मायाके गुणोंके साथ मिलके कुछ बनता है, तब वासनाभी होती है, जब तेरी बनावट छूटी तब वासना कहाँ हैं। जैसे, जो माल लादेगा सोई जगात भरेगा, जो नहीं माल लादेगा सो जगातभी नहीं भरेगा। माल पर जगात है विना-माल नहीं। हे ध्रुव! सच्चिदानंद शब्दोंका पर्याय जो, अस्ति भाति प्रियरूप निजात्म तत्त्व है, उससे भिन्न जो कुछ प्रतीत होता है, सो मायाका स्वरूप है, तत्त्व नहीं। जैसे-मधुरता, द्रवता, शीतलता रूप जलसे भिन्न जो कुछ तरंगादिकोंकी प्रतीति है सो मिथ्या है, जलका स्वरूप नहीं। अंतर बाहर जो नामरूप प्रपंच है सो, तुझ चैतन्य देवसेही प्रकाश रखता है।

पराशरने कहा-हे मैत्रेय! ध्रुवने देहादिकों विषे अहं मम अभिमानको त्यागके पुनः तिस त्यागका भी त्याग किया, परंतु तूने भाभा अहंकारका त्याग न किया। मैत्रेयने कहा—जो मुझको अहंकार होवे, तो मैं त्यागूं, अहंकार पंचभूतोंका है, मैं कैसे त्यागूं? पंचभूत अहंकार त्यागो ना त्यागो, मुझे उससे क्या? और मुझको दूसरेकी वस्तुके त्यागनेका अधिकार भी नहीं क्योंकि, सब जीव आप अपनी वस्तुके त्यागग्रहणमें मालिक हैं। दूसरेकी वस्तुमें

त्यागादि करनेमें दूसरा मालिक नहीं । पराशरने कहा अहंकारको न त्यागेगा तो काल तुझको दुःख देवेगा मैत्रेयने कहा-अहंकार जिसको हो उसको काल दुःख देवे वा न दे, दूसरेकी पंचायतसे मुझ चैतन्यको क्या मतलब है। सूर्यमें अंधेरा और सूर्य्यको अंधेरा दुःख देता हो तब सूर्य अंधेराको त्याग करनेका वा नाश करनेका उद्यम करे परंतु सूर्यमें अंधेरा हैही नहीं तो अंधेरेके दूर करनेका उद्यम सूर्य्यको निष्फल है, नाहक उलूकके साथ सूर्य पंचायत क्यों करे, तुम मुझमें अंधेरा नाहक कल्पना करते हो ? जो तिन उलूकोंसे सूर्य लड़ाई भिडाई करेगा तो, विवाद करके सूर्य हाँसीका आस्पद होगा । तैसेही-मुझ निर्विकल्प चैतन्य साक्षी आत्मामें अहंकार हैही नहीं, अनहुये अहंकारके त्यागका आरंभ मुझ चैतन्यको निष्फल है, हाँसीका आस्पद है । पराशरने कहा-हे मैत्रेय ! अहंकारका क्या रूप है ? मैत्रेयने कहा-मुझ चैतन्यको क्या मालूम है, अहंकारवालोंसे अहंकारके रूपकी खबर मालूम होगी उनसे पूछो।राजासे तेल मूलीका हाल पूछना नादानी है। पराशरने कहा-तू कौन है ? मैत्रेयने कहा-बडा आश्चर्य्य है जो, आप पूछता है तू कौन है । जैसे-घटाकाश घटाकशसे पूछे, तू कौन है, सोई न्याय तुमको प्राप्त हुवा, यद्यपि घट अनेक हैं परंतु तिन घटोंका रहनेवाला आकाश एकही है,विचारदृष्टीसे घटभी अनेक नहीं,मृत्तिका रूप करके एकही हैं उपाधिसे अनेक हैं। पराशरने कहा अहंकारसे तू बंधा है, कहता है-मैं चैतन्य हूं-तुझको लज्जा नहीं आती। मैत्रेयने कहा-लज्जा उसको है जो है बंधनमें और जानता है मैं मुक्त हूं, जो मुक्तको मुक्त जानता है और बंधको बंध जानता है उसको लज्जा नहीं, उलटा मुझ चैतन्य अधिष्ठानविषे कल्पित अहंकारादिकोंकरके अन हुई बंध तुम आरोपण करते हो, यह तुमको अति लज्जाका स्थान

है। जैसे कल्पित सर्प दंडमाला आदिक अपने अधिष्ठान रज्जुको नहीं बांधसक्ते तथा परस्पर एक दूसरेको भी नहीं बाँध सक्ते। परंतु सर्पादिकों करके रज्जुमें बंधका आरोप करना आतिहाँसी है। जैसे स्वप्नके अहंकारादिक स्वप्नद्रष्टाको नहीं बाँधते तो आत्माको अहंकारादिक कैसे दखल करैंगे किन्तु नहीं करैंगे! यद्यपि जैसे व्यवहारक आकाशको महान् बलवान् वायु अग्नि जलादिकभी शोषण दाह गालना आदिक नहीं करसक्ते तथा देवता दैत्य राक्षसादिक महान् बलवान् भी; इस सूक्ष्म आकाशको रज्जुसे वा किसी अन्य साधनसे पूर्व तथा अब वर्तमान कालमें नहीं बांधसके; तो तुच्छ-जीव आकाशको बांधेंगे इसमें क्या कहना है। जो भूताकाशके बांधका उद्यम करेगा, तो निष्फल होगा क्योंकि, आकाश स्वरूपसे निर्बंध है। तैसेही—यह भूताकाश भी जिस शुद्ध चैतन्यके पास सुमेरुपर्वतकेसमान अतिस्थूल है; तब ऐसे अति महान् सूक्ष्म शुद्ध चैतन्य साक्षी आत्माको, तुच्छ पंचभूतोंके कार्य अहंकारादिक वा पंचविषय वा पंचभूत, कैसे बांध सकेंगे किंतु नहीं बांध सकेंगे, जैसे देवता, दैत्य, राक्षस, मनुष्यादिक जीवोंकाही, आपसमें बांधना और न बांधना होता है आकाशका नहीं; वैसेही—अहंकारादिकोंकाही आपसमें बंध मोक्ष होताहै, आकाशके समान अति सूक्ष्म, शुद्ध चैतन्य साक्षी आत्माका बंध मोक्ष नहीं होता किंतु, मैं चैतन्य नित्य मुक्त हूँ। परंतु कथा ध्रुवकी कहो? पराशरने कहा-कथा ध्रुवकी यही है कि, जान आप सहित सर्वं हरि है।

वामदेवने कहा हे ध्रुव! तेरा स्वरूप क्या है? ध्रुवने कहा जो जो मन वाणीके कथन चिन्तनमें आता है, सो सो मेरा रूप नहीं, सो रूप जगतका है—इससे-जब मनका सात्त्विकी वा राजसी वा तामसी कोई फुरना नहीं फुरता; पुनः जिस कालमें मनका कोई राजसी वा तामसी

वा सात्विकी फुरना फुरता है, पुनः फुरकर नष्ट होजाता है, पुनः
होता है, पुनः उदय होकर नष्ट होजाता है, मन रूप फुरनेकी
अवस्थाका जो निर्विकार निर्विकल्प साक्षी चैतन्य आत्मा है, स
रूप है और यह नामरूप जगत् स्वप्न जगत्के समान मिथ्या
वामदेवने कहा—जब सर्व गोविंद है तब बीचमें कुछ मिथ्या
सत्य यह भेद क्यों कल्पना करता है। ध्रुवने कहा—जब सर्व
दहै तो भेद कल्पना भी गोविंदहै. इससे भजनसे क्या प्रयोजन
मैंने कहा हे ध्रुव ! सर्व दृश्य जगत् भजन परमात्मा ईश्वरका
हैं, उसीको अल्ला खुदाभी बोलते हैं, सो परमात्मा ईश्वर सच्चि
स्वरूप है, तथा सर्वव्यापी अंतर्यामी है, जो ईश्वर परमात्माको
नहीं मानोगे तो, अंतर्यामी ईश्वर परमात्मा असत, जड, दुःख
च्छिन्न, सिद्ध होगा और ऐसा परमात्माका स्वरूप किसी शा
तथा विद्वानोंको मंजूर नहीं। इस हेतु पूर्वोक्त सच्चिदानंद
यामी सर्वव्यापक, इस बुद्धि आदिक सर्व नामरूप दृश्यका द्रष्टा
चैतन्यही है। इस साक्षी चैतन्यसे भिन्न देहसे लेकर माया
कार्य कारणरूप दृश्य प्रपंचमें उपरोक्त कोई भी गुण घटा
चाहे इस पिंड ब्रह्मांडमें खोज देखो. पूर्वोक्त विशे
परमात्माको इस नामरूप दृश्य ब्रह्मांडसे बाहर मानोगे तो
मात्मा विषे सर्वव्यापकता सर्व अंतर्याम्यता सिद्ध न हो
जो सर्व जड पदार्थोंका नियमन करता है सोई चैतन्य पर
है, अन्य नहीं, जब चैतन्य परमात्मा ब्रह्मांडसे बाहर हुआ
यह सर्व जड पदार्थ चेष्टा कैसे करेंगे ? किंतु नहीं क
प्रत्यक्ष विरोध होगा। चैतन्य बिना जडकी चेष्टा कैसे हो
सारग्राहीको, आग्रह नहीं होता, जिस वस्तुमें वेदोक्त पू
सच्चिदानंदादिक विशेषण घटेंगे सोई, परमात्माका स्वरूप
मानना योग्य है। आत्मासे वा अन्यसे भाईचारा

किंतु सरलबुद्धिसे वस्तु निर्णय करनी चाहिये, इससे विवादको छोडके न्याय रीतिसे पूर्वोक्त विशेषण, साक्षी चैतन्य आत्मामेंही घटेंगे अन्यमें नहीं। "परमात्मा चैतन्य पुरुषने इस नामरूप जगत्‌को रचकर आपही तिसमें प्रवेश किया" इस श्रुतिसे जैसे स्वप्नद्रष्टा, स्वप्नके पदार्थोंको रचकर आपही उनमें प्रवेश करता है। जैसे महाकाशही, कुलाल रचित घटमें, घटाकाशसंज्ञाको प्राप्त होता है तैसेही, जो पृथिवीके अंतर स्थित हुआ हुआ पृथिवीको नियमन करता है, पृथिवी जिसको नहीं जानती और पृथिवीको जो जानताहै, सो तुम्हारा आत्मा अंतर्यामी अमृत स्वरूप है। तैसेही–जो मनके अंतर स्थित हुआ मनको नियमन करताहै परन्तु मन अपने नियम करताकोभी नहीं जानता और जो मनको जानताहै, सो अंतर्यामी तुम्हारा आत्मा अमृतस्वरूप है। यही रीति प्राणादिकोंमेंभी जान-लेनी। इस प्रकार इक्कीस (२१) वार पुनः पुनः अंतर्यामी, ब्राह्मण वेद भागमें परमत्माको आत्मारूपही कथन कियाहै। वैसेही-छांदोग्यउपनिषदके षष्ठ अध्यायविषे पुनः पुनः नववारी, परमात्मा चैतन्यको, आत्मारूप चैतन्यही कथन किया है। वैसे सामवेदकी केन उपनिषदमें भी वारंवार इस आत्माकोही ब्रह्मरूपता कथन किया है. कैसे सो सुनो–जैसे हे अधिकारीजनो! जो मन बुद्धि आदिकों करके जान-नेमें नहीं आता और जो मन बुद्धि आदिकोंको जानता है, उसको तुम ब्रह्म जानो जिसको तुम इदंरूपता करके उपासना करते हो सो ब्रह्म नहीं, इत्यादि अनेक श्रुति कथन करती हैं, जो झूठ बात होती तो, श्रुति वारंवार नहीं कहती। झूंठ बातको वारंवार कहना बावंलोंका काम है श्रुति तो सत्यवक्ता है। आत्मासे ब्रह्म भिन्न होगा तो, ब्रह्म अनात्मा होगा, घटवत् और पूर्ण वस्तु ब्रह्मसे, आत्मा पृथक् होगा तो, आत्मा परिच्छिन्न मिथ्या घटवत् होगा, इससे

घटाकाश महाकाशके समान ब्रह्म आत्मा नाम दो है, एकही है । तात्पर्य यह कि, सच्चिदानंदस्वरूप वस्तुसेही ज उत्पत्ति, पालना, संहार होता है, न अन्यसे इससे, अब यह सि कि, सच्चिदानंद वस्तुकोही परमात्मा कहो, चाहे परमेश्वर कहो, ईश्वर कहो, चाहे अल्ला कहो, चाहे खुदा इको, चाहे आत्मा क साक्षी चैतन्य कहो, चाहे प्रत्यक् आत्मा कहो, चाहे बुद्धि आदि नामरूप दृश्य पदार्थोंका द्रष्टा कहो, केवल नामांतरका भेदहै, भेद नहीं, वस्तु एकही है तैसे—देह बुद्धि आदि मायापर्य्यंत स रूप जगत् भी दृश्यत्वरूपता करके एकही रूपहै । हे ध्रुव! जब आदिक नामरूपका, आपको द्रष्टा साक्षी चैतन्य जानताहै सच्चिदानंद स्वरूपकाही ब्रह्मासे लेकर चींटी पर्य्यंत स जगत् यजन करता है और तेरेही निमित्त तपस्या करते हैं सर्व प्रार्थना करते हैं, सर्व दृश्य जड तुझ चैतन्यके ही गुल तू नहीं तू चैतन्य अपनी दृश्य गुलामका भजन क्यों करता पुरुष अपने गुलामके आगे प्रार्थना करताहै, उसको लज्जाका नहीं तो, हे ध्रुव ! तू आपको बुद्धि आदिकोंका द्रष्टा सत् आनंद स्वरूप मत जान, जो तेरा आपको सच्चिदानंद माननेसे होता है, तो आपको असत् जड दुःख रूप दृश्य जान तो तबही तुझ असत जड दुःखरूप दृश्यकी प्रार्थना तथा भ व्यवहार, सत् चित् आनंद परमेश्वरके आगे बनसक्ता है, अ नहीं । परंतु तू, असत् जड दुःखरूप दृश्य मनादिकोंका, द्रष्ट असत्य जड दुःखरूप दृश्य होगा किंतु, नहीं होगा । आगे जो इच्छा होय सो कर । हे ध्रुव ! जो तू आपको सच्चिदानंदरूप मानेगा तो, उसते भिन्न असत् जड दुःखरूप आपको नाही तुझको पडेगा, ध्रुवने कहा परमेश्वरमें महानता

अपनेमें अल्पताकी भ्रांति जीवोंको तथा मुझको होतीहै, मैंने कहा हे ध्रुव ! महानता अल्पताकी पूर्वोक्त प्रकरणमें सिद्धिही नहीं होती । एक असत् जड दुःखरूप दृश्य पदार्थ है और एक सत् चित् आनंद रूप द्रष्टा पदार्थ है, दोही पदार्थकी सिद्धि होती है, तीसरा पदार्थही नहीं । ये दोनों परस्पर विलक्षण हैं, एक नहीं होते । सच्चिदानंद द्रष्टा परमेश्वर परमात्मा है और असत् जड दुःख रूप दृश्य जगत्है । दोनोंको विचार कर जो बुद्धिमें तुले सोई आपको मान परंतु "जिस दृश्यको तू जानताहै सो दृश्य तू नहीं द्रष्टा है" जीव ईश्वरसे यहां क्या मतलब है । हे ध्रुव ! दाहकता, उष्णता, प्रकाशकता, यह अग्निहीका स्वरूप है, तिस अग्निते भिन्न, पृथिवी, जल, वायु, आकाशादिक पदार्थोंका तथां तिनके कार्योंका नहीं; जहां दाहकता उष्णता, प्रकाशता, बुद्धिमान देखते हैं तहांही अग्निको जानते हैं, यह नहीं कि, किंचित् चिनगारेमें, जो दाहकता उष्णता प्रकाशकता है सो अग्नि नहीं किन्तु, सूर्य बडवानल तथा महान् काष्ठ आरूढ़ लौकिक अग्निमेंही दाहकता, उष्णता, प्रकाशकता रूप अग्नि है । ऐसा नहीं, सारग्राही, सरल बुद्धिमान् विद्वान् लोग ऐसा जानते हैं कि, जो दाहकता, उष्णता, प्रकाशकता, रूप अग्नि किंचित् चिनगारेमें है, सोई दाहकता, उष्णता, प्रकाशकता रूप अग्नि सूर्य्यमें है, सोई दाहकता, उष्णता, प्रकाशकता रूप अग्नि महान् काष्ठ आरूढ लौकिक अग्निमें है । हे साधो ! महानता, अल्पता, दीपना उपाधिमें है। दाहकता, उष्णता, प्रकाशकता रूप अग्निमें नहीं। किञ्चित् चिनगारे आरूढ अग्नि किञ्चित् दाहकता, उष्णता, प्रकाशकता करती है और वही चिनगारे आरूढ अग्नि सूर्यरूप होकर सारे ब्रह्मांडको दाह उष्ण प्रकाश करती है, अग्नि जहां है, तहाँ दीपक सुर्य्यादिकोंमें एक रूपही है । तैसेही—हे साधो ! जैसे इस देहविषे बुद्धि

आदिकोंका साक्षी, द्रष्टा, चैतन्य, बंध, मोक्ष रहीत, निर्विकल्प, नि
कार, स्वभाविक अपनी महिमामें स्थित है, तैसेही-ब्रह्मा, विष्णु
व, सूर्य्यादिकोंकी देहोंमेंभी चींटीकी देहोंमें, राक्षसादिकोंकी देहोंमें
आदिकोंकी देहोंमेंभी यह साक्षी चैतन्य आत्माही निर्विकार निर्वि
रूप करके स्थित है। जैसे-एकही दाहकता, उष्णता, प्रकाश
रूप अग्नि बत्ती आरूढ़ होकर, एक मंदिरको तथा मंदीर भीतर
पदार्थोंको प्रकाशती है सूर्य्य आरूढ़ होकर वही अग्नि सारे ब्रह्मांड
तथा ब्रह्मांड अंतरवर्ती पदार्थोंको प्रकाशती है।हे ध्रुव! जिस
दृश्यको तू जानता है, उनका साक्षी है, सो दृश्य तुम कैसे हो
घटद्रष्टाके समान, इससे हे ध्रुव! पृथिवी, जल, तेज, वायु, आ
इन पंचभूतोंकी दृष्टीसे भी तेरी ऊंची अटलपदवीकी अधिकता
क्योंकि, ऊंचा नीचा रूप सर्व पंचभूतहीहैं। ऊंचे सुमेरु आदिक
लोक स्थानमें पंचभूत कुछ अधिक नहीं, नीचे पातालादिकों
मध्य मनुष्यलोकमें न्यून नहीं इस्से, तेरी अटलपदवीका तुझको
निष्फल है। तैसेही, मायाकी दृष्टीसे भी तेरी अटलपदवी निष्फ
क्योंकि, नीच ऊंच स्थान अटलपदवी सहित सर्व नामरूप प्रपंच मा
का कार्य होनेसे मिथ्याही है। क्या मायाका कार्य अटलपदवी न
किन्तु मायाका कार्यही है। हे ध्रुव! अब पूर्वोक्त विचार रीति अनु
यही निश्चयकर कि, मैं ही सर्व चैतन्य आत्मा हूँ अटल पदवी
है। हे ध्रुव! संत अटल पदवीसे मुक्त हैं और अपने स्वरूपमें मग

हे ध्रुव! एकसमय किसी निमित्तको पाके, मुझको शिवने क
हे पराशर! तुझको राज्य त्रिलोकीका देता हूँ। मैंने कहा राज
क्या होगा? शिवने कहा जो चाहेगा सो मिलेगा, चाहना तेरी न रहै
मैंने कहा-जब मैं ईश्वर होऊँगा तब तुम तीनों देवताओंको म
होगा कि, पराशर संसारका ईश्वर हो बैठा है। इससे मुझको रा

लेनेसे क्या प्रयोजन है क्योंकि, अप्राप्त वस्तुकी प्राप्तिवास्ते इच्छा होती है, इससे हे शिव ! मैं चैतन्य आत्मा इस नामरूप अनंतकोटि ब्रह्मांडरूप प्रपंचका स्वतः सिद्धही स्वामी हूँ; कोई कृत्रिम नहीं हूँ क्योंकि, मुझ चैतन्य आत्माहीसे इस बुद्धि आदिक जड दृश्य प्रपंचकी चेष्टा होती है अन्यथा नहीं। जैसे—पुतलियां सर्व प्रकार करके चैतन्य पुरुषकेही अधीन होती हैं, उन जड पुतलियोंका चैतन्य पुरुषही राजा है; वैसेही मैं अनंतकोटि ब्रह्मांडरूप पुतलियोंका एकही चैतन्य राजा हूँ, दूसरे चैतन्यका अभाव होनेसे। तुम्हारी त्रिलोकी मेरे राज्यके अंतर्भूत होनेसे स्वराज हूँ। ध्रुवने कहा—हे पराशर ! तुम मुझसे अटल पदवी लो। मैंने कहा मुझको क्या प्रयोजन है, जो मैं एक जगहमें बंधहोऊँ, संत स्वतंत्र विचरते हैं, पराधीन है नहीं। हे ध्रुव ! लौकिक पुरुष भी बलवानके दिये सांकेतिक स्थानमें अति दुःख पाते हैं, मुझ स्वेच्छाचारीके बंधनरूप अटलपदवी तेरी कैसे न दुःखरूप होगी किन्तु, अवश्य होगी। पुनः दत्तात्रेयको कहा—तुम अटलपदवी लो। अवधूतने कहा—यह अविद्या तुझहीको है, मुझको अटलपदवीकी इच्छा नहीं। पुनःवामदेवको कहा—तुम अटलपदवी लो। वामदेवने कहा, यह नीच बुद्धि तुझहीको है; जब एक आत्माही है तो चल अचल कहां है। तब ध्रुव वनविषे बालकके समान पुकारने लगा। कोई अटलपदवी ले. तब पशु, पक्षी, वृक्षादिकोंने जवाब दिया कि, अंतर बाहर एक हम चैतन्य आत्माही हैं; चल अचल कहां है, जो हम स्थिरको लेवें, चलको त्यागें। ध्रुव मृतककी समान विशुद्ध होकर पृथिवीपर गिरपडा। मैंने कहा हे ध्रुव ! बालकके समान विलाप क्यों करताहै, तू आकाशकी न्याईं व्यापक चैतन्य स्वरूप है, तुझमें ग्रहण त्याग है नहीं, तू एकरस निर्विकार निर्विकल्प स्वमहिमामें समस्थित है। हे ध्रुव ! अटलपदवीके लेने देनेवाले मनादिक हैं, तिनहीको सुख दुःख

होवेगा, तुझको नहीं. तू निर्विकार चैतन्य दूसरे मनादि व्यवहारमें किन्तु क्यों करता है? जैसे मनुष्योंके घट पट पदार्थोंके लेन देनरूपी व्यवहारमें, असंग आकाश किंतु करता, करे तो हँसने योग्य है। हे ध्रुव! इस असत् सं आत्मविचारशील पुरुष, शरीरकी प्रारब्ध करके, जो कुछ होवे, सो ग्रहण त्याग बुद्धिरहित भोगते हैं, कुछ खेद मानते. क्योंकि, भोगता, भोग, भोग्य, द्रष्टा, दर्शन, दृश्य इ त्रिपुटी अनात्म धर्म हैं, असंग निर्विकार साक्षी चैतन्य आ को धर्म नहीं। हे ध्रुव! स्वप्न पदार्थोंका क्या हर्ष शोक कर उठो अपने स्वरूपकी गंभीरताको स्मरण करो, मृगतृष्णाके तो मत पकडो, इस शरीरको कहीं न कहीं रहनाही है. जिमि गुजरी गुजरी, योंभी वाह वाह त्योंभी वाह वाह। भावे जहाँ रह तु अपने स्वरूपकी ही गुलजार है, कोई अनात्म पदार्थोंकी तुमको जार नहीं, संसार बगीचेमें सुखपूर्वक विचर, कर्तृत्व भो अभिमानरूपी फूल मत तोड। पुष्प तोडके सुगंधलेनेमें मजा किंतु, अहंकार रहित दर्शन दीदारसेही मजाहै,नहीं तो कर्तृत्व भो त्वरूपी पुष्पोंके तोडनेसे, बगीचेवाला, अहंकाररूपी मालिक, तु दुःख देवेगा। यह कायदेकी बात ठीकही है, बेठीक नहीं। क्य कर्तृत्व भोक्तृत्व अभिमान करनेसे दुःख होताही है। यह संसा बगीचा तुझ चैतन्यका धर्म नहीं। यह मनका धर्म है, तात्पर्य कि, सर्व नामरूप प्रपंच अन्वय व्यतिरेक करके मनोमात्र है; अपने, रस्तेसे चलेगा. तात्पर्य्य यह कि, जैसा तेरा निर्विकार वि कल्प सर्वदृश्यके धर्मोंसे रहित, स्वरूप है, तैसेही सांगो दृढ़ निश्चय कर, तो जीवन्मुक्त होकर विचरेगा जो वि चलेगा, नाम दृश्यका धर्म अपना मानेगा तो दुःख पावेगा

ध्रुव! अब हम वांछित स्थानको जाते हैं। तू भी वांछित स्थानको जावो।
हे मैत्रेय! यह अमृतसमान उपदेश ध्रुव सुनकर, अपने स्वरूप अमृतभावको प्राप्त हो, स्थिर अनास्थिर पदार्थोंमें समताको प्राप्त भया। हे मैत्रेय! जो संतोंका वचन बुद्धिके श्रवणोंसे सुनता है सो, तत्कालही स्वस्वरूपकी प्राप्तिरूप अमृत भावको प्राप्त होताहै॥

इति श्रीअनुभवप्रकाशे पराशरमैत्रेयसंवादे द्वितीयस्सर्गः॥ २॥

तृतीय सर्ग ३.

मैत्रेयने कहा, हे गुरो! इस संसाररूप बंधनग्रहसे कैसे मुक्त होवे, सो उपाय कहो। पराशरने कहा, हे मैत्रेय! सर्व शास्त्र, विद्वानोंके अनुभवसे, अपरोक्ष बंधनकी निवृत्ति, सुखकी प्राप्तिवास्ते स्वरूपका सम्यक् ज्ञानही साधनहै, अन्य नहीं। ज्ञानका साधन लोक ईक्षणा, पुत्रईक्षणा, धनईक्षणा तथा उन तीन ईक्षणाके अंतर्भूत जो लोक वासना, शास्त्र वासना, देह वासनादिकोंका त्याग रूप वैराग्य, विवेक, शम, दमादिक हैं। जैसे—यद्यपि अंधकारके दूर करनेका, निर्भयताकी प्राप्तिका तथा अंधकारमें धरे पदार्थोंके दर्शनादि व्यवहारका साधन दीपकका चसानाही है, अन्य नहीं। तथापि दीपकके सम्यक् चसानेवास्ते अनेक सामग्री चाहिये। मैत्रेयने कहा-तिन ईक्षणादिकोंका त्याग कैसे होवे और वैराग्यादिकोंकी प्राप्ति कैसे होवे? हे मैत्रेय! तिन ईक्षणादि पदार्थ संघातकी धर्म है. तिनके साक्षी तुझ आत्माकी नहीं, यह जाननाही ईक्षणादिकोंके त्यागका उपाय है वा विचारपूर्वक सम्यक् अपरोक्ष देहादिकोंमें परिच्छिन्न अहंकारका त्यागनाही परमउपाय है वा समान ते यह उपायहै। जिसकालमें सम्यक् दोपदर्शनपूर्वक, जगतके पदार्थोंकी

सर्व ईक्षणा अंतर बाहरते, सम्यक् त्यागता है, तिसी क्षणमें
दमादिक सर्व ज्ञानके साधनोंकी सम्यक् प्राप्ति होती है, ईक्षा
त्यागसे भिन्न शमादिकोंकी प्राप्तिका साधन जुदा नहीं, तात्पर्य यह
आसुरी संपदाके त्यागसेही वैराग्यादि दैवीसंपदा प्राप्त होती हैं,
ग्यादि रूप दैवीकी प्राप्तिवास्ते भिन्न साधन नहीं। जैसे रोगके
सेही आरोग्यता होती है, आरोग्यताकी प्राप्ति करने वास्ते भिन्न सा
नहीं। जैसे रात्रिके जानेसेही स्वाभाविक दिन प्राप्त होताहै। मैत्रेयने
पदार्थोंमें दोषदर्शन कैसे करना? पराशरने कहा—स्त्री आदिक
पदार्थोंमें दोष शास्त्रोंमें विस्तृत लिखे हैं यहाँ कछु कहनेका प्रयो
नहीं परंतु संक्षेपसे कहते हैं। हे मैत्रेय! सच्चिदानंद निजस्वरू
पृथक्, सर्व नामरूप दृश्य पदार्थोंमें, असत् जड दुःखरूप
सांगोपांग भलीप्रकार जैसे है तैसेही जाननी—इसका नामही
दर्शन है। हे शिष्य! देहादिक सर्व अनात्म पदार्थोंमें आत्मबु
देहादिक सर्व अशुचि पदार्थोंमें शुचि बुद्धि; देहादिक सर्व अनि
पदार्थोंमें नित्य बुद्धि तथा देहादिक सर्व दुःखरूप पदार्थों
सुख बुद्धि है सो भलीप्रकार इस चार प्रकारकी अविद्या
त्याग कर। पूर्वोक्त चार प्रकारकी अविद्यासे भिन्न, आत्मा नित्
शुचि, सुखरूप वस्तु है, सोई तुम्हारा स्वरूप है तिसीको तू अहं
करके जान। देहादि संघातमें अहं मत मान, यही वैराग्य है। जैसे की
फिरतीको मिश्रीका डला मिल जावे तो कटु पदार्थ तिससे यत्न बिना
आपही छूट जाता है तैसे सुखरूप आत्माको जब तूने अपना आ
जाना तो दुःखरूप प्रपंच बलात्कारसे छूट जावेगा क्योंकि, सुखमें
सबकी प्रवृत्ति होतीहै, दुःखमें नहीं और सुखरूप आत्माही है, अन्
नहीं, यही सर्व शास्त्रोंका सिद्धांतहै। हे मैत्रेय! शास्त्र पढताहै और अपने
स्वरूपको नहीं जानता, तो पढना निष्फल है और जाने पीछेभी पढ

निष्फल है जैसे कोई पुरुष पराल (फूस) से धान नहीं निकासता पुनः पुनः पराल कूटताहै तो मिथ्या परिश्रम है और धान निकासके पुनः परालको कूटता है तो भी निष्फल है, बिना निजतत्त्व जाने उभयरूपसे निष्फल है। हे मैत्रेय ! तेरीभी मुक्तिहोनी कठिन है, क्योंकि, तेरी बुद्धि पुराण शास्त्रोंमें लगरही है। आपको तू पंडित परमहंस सर्वते बडा मानता है और अन्यको तू मूर्ख जानता है, क्योंकि, गुरु और सत् शास्त्रमें तेरी भक्ति नहीं तुझको स्वरूप प्राप्त होना कठिन है। मैत्रेयने कहा—अब मैं गुरुशास्त्रमें श्रद्धा करूँगा, इंद्रियोंको वैराग्यसे अष्टांगयोगसे वा सांख्ययोगसे रोकूंगा परन्तु तत्त्व उपदेश करो। पराशरने कहा—हे मैत्रेय ! इंद्रियोंको केवल हठसे रोकनेसे मुक्ति नहीं होती किंतु, शास्त्ररीति अनुसार, सर्व इंद्रियोंसे धर्मपूर्वक यथायोग्य,व्यवहार कर,और अपनेको असंग,निर्विकार,निर्विकल्प,आत्मा जान,देह इंद्रियोंके व्यवहारमें,कर्तृत्वभोक्तृत्व बुद्धि मतकर ये सब अनात्म धर्म हैं, तू आत्मा चैतन्य अपने धर्ममें स्थित रह। हे मैत्रेय ! जब यह देहादिक अनात्मा अपने धर्मको नहीं त्यागते,तो तू आत्मा अपने असंगादि धर्मोंको क्यों त्यागता है, ये देहादिक अनात्मा तेरा स्वरूप नहीं, यह पंचभूतोंका स्वरूप है; वा मायाकाहै। हे मैत्रेय ! मल मूत्र रूप देह अभिमानी पुरुष, मेहतरोंके बडे भाई हैं, क्योंकि, मेहतर चारघंटे मलका काम करता है, फिर नहीं करता यह देह अभिमानी पुरुष तो, आठ प्रहर चौंसठघडी, मल, मूत्र, रूप, देह विषेही अहंबुद्धिपूर्वक बिराजमान रहता है, मलके कीडेके समान ग्लानि नहीं करता। इससे देह अभिमानी मेहतरसे भी अति नीच है। कारण कि, मेहतर आपको मलते जुदा जानताहै-और यह देहाभिमानी आपको मलरूपही जानता है, इससे स्पर्श करनेकेभी योग्य नहीं। जो इस देह अभिमानमें बंध है, सोई पाखानेरूप देह नरकमें बंध है,जो

इससे मुक्त है, सोई मुक्त है। हे मैत्रेय ! इस भोगमय संसाररूप वृक्षके तीन फल हैं—मधुर, खाटा, कटु—सांसारिक पदार्थ भोगकालमें मीठे हैं वियोगकालमें खट्टे हैं, और शरीर नाश कालमें यह कटु होते हैं। जैसे—मेवा आदि पदार्थ मधुर होते हैं, जलमें दिन रहनेसे खट्टे हो जाते हैं। पुनः वह खटाई पडी रहनेसे होजाते हैं। इससे हे मैत्रेय ! अभिमानको त्याग और पवित्रहो, मेहतरकी तुल्यताको प्राप्त होवेगा, जब तू देहादिकोंका अभिमान गा, तब देहादिकोंके धर्म हर्ष शोकादिक भी तुझको न होवेंगे हित सर्व जगत्को हरिरूप जाने, "यही परमभजन है, वा मैं निर्विकार, निर्विकल्प, सच्चिदानंदसाक्षी आत्मा हूँ, यह असत् दुःखरूप संघात देह मैं नहीं, मैं देहादिक दृश्यका द्रष्टा आत्मा इस परमभजनसे द्वैतसे पवित्र होवेगा। इसीपर एक कथा कहताहूँ सो तू श्रवण कर।

वेश्याकी कथा।

एकसमय सब संत एक पर्वतपर बैठे थे, और ब्रह्मविचार मग्नहो हँसतेथे कि, विचार बिना जो यह अनहुआ संसार हो रहा है वास्तवते नहीं, यह मायाकी अद्भुत लीला है। अवस्थामें—किसी संतको संगीत करके हुआ है आत्मज्ञान जिसको तथा निवृत्त होगई है, देह अध्यासपूर्वक जगत्की वासना जिसकी—ऐसी एक वृद्ध वेश्या आई कैसी वह वेश्या है, सम्यक् अपरोक्ष वैराग्यपूर्वक, ज्ञान अग्नि करके सम्यक् दग्ध होगया सूक्ष्म स्थूल अहंकार जिसका तथा जाना है अपरोक्ष आत्मस्वरूप जिसने। किसी निमित्तसे कुसंग करके वेश्या होगई थी किसी पुण्यप्रतापसे सत्संगत करके महान् भावको (स्वरूपको

प्राप्त हुई है क्योंकि, कर्मोंकी गति अद्भुत है। ऐसी ब्रह्मवित् वेश्या, हम हँसते हुओंको देखकर, कहने लगी—हे संतो! तुमने शरीर (दृष्टिकर) मुझको जाना है सो तो, सम्यक् विचाररूपअग्नि, मेरी दृष्टीसे भस्म होगया है। जैसे अश्वत्थामाके बाणकर कृष्णकी दृष्टिसे रथ भस्म होगया था परंतु अर्जुन तथा लोगोंकी दृष्टिमें वैसाही प्रतीत होता था। जैसे—भींतपर रंगकी स्त्री पुरुषादिकोंकी पुतलियां प्रतीति मात्रहैं, रंगसे पृथक् स्त्री पुरुषादिक कछु वस्तु नहीं, परंतु बालकोंकी दृष्टिमें भिन्न भिन्न स्त्री पुरुषादिकोंके आकार हैं, रंग और भीतके ज्ञाता पुरुषको नहीं। हे साधो! जैसे किसीके स्वप्नमें वा जाग्रत्में, एकही गऊको स्वप्ननर वा जाग्रतनर देखकर, स्वप्ननरोंकी वा जाग्रत् नरोंकी, भिन्न भिन्न दृष्टि होती है। चमारकी दृष्टि चमडेपर जाती है, कसाईकी दृष्टि मांसपर जाती है, गूजरादिकोंकी दूधकी दृष्टिहै. कि, इतना दूध इस गऊमें है; त्रिवर्णक पुरुष गऊको पूज्य जानते हैं और आत्मदर्शी गऊको आत्मा जानतेहैं, परंतु पास जाग्रत् पुरुषको, वा सम्यक् अपरोक्ष आत्मबोध रूप जाग्रत् पुरुषको, पूर्वोक्त स्वप्नादि व्यवहारका अत्यंताभाव है। तैसेही—हे संतो! इस स्वप्नवत् मेरे शरीरको कोई वेश्या जानता है, कोई माता जानताहै, कोई भगनी, कोई बेटी, कोई भूआ, कोई मौसी, और कोई पत्नी जानते हैं; कोईक विद्वान् पुरुष, इस मेरे रुधिर, अस्थि, मांस, मल, मूत्र, शरीरको मायाके कार्य्य पंचभूतरूप मानते हैं और ब्रह्मवेत्ता मुझको आत्मरूप जानतेहैं। परन्तु मुझ अस्ति, भाति, प्रियरूप आत्माकी दृष्टिसे, इस शरीर सहित सर्व नामरूप जगत्का अत्यंताभाव है। केवल जीवोंके फुर्णे मात्रमेंही मेरा शरीर है, स्वदृष्टिसे नहीं। जैसे—स्वप्न नरोंकोही निद्रा कर स्वप्न प्रपंच प्रतीत होताहै, परन्तु स्वप्न द्रष्टाकी दृष्टिसे स्वप्न दृश्यका अत्यंताभाव है, वा पास जाग्रत् पुरुषको अत्यंताभाव

है । इससे मैं गऊ तुमको संत जानकर आई हूँ, तुम शरीरदृष्टि
करो, शरीर सबके पांचभौतिक मल मूत्रके एकही सरीखे हैं। संत
पवित्र दृष्टि होतीहै और असंतोंकी अपवित्र दृष्टि होतीहै । हे संत
वेश्या संज्ञा शरीरकी है मैं तो, अवाङ्मनसगोचर, सर्वाधिष्ठान, जन्मो
ध्वंस, प्रकाशक, अवेद्यत्व, सदा अपरोक्ष साक्षी, सच्चिद्घन, शु
द्धानंद हूँ । नहीं जानती थी कि, मांस चमडेकी संत दृष्टि करेंगे स
संत वही हैं जो, आप सहित इस सर्व नामरूप प्रपंचको हरिरूप जा
हे संतो ! मैं मूर्खतासे, पूर्व हाड मांस चमडा, मलमूत्ररूप इस शरी
तथा शुद्ध निर्विकार निर्विकल्प असंग आत्माको; एकरूप जानती
उसीके अपराधसे संसारमें, सत्यत्व बुद्धिपूर्वक, महान् भोगोंकी
सना करके दुःखी हुई तथा परपुरुषके संयोगकर सुखी और वि
कर दुःखी होती रही तथा आपको वेश्या जानती रही परन्तु अ
तुम संतोंकी कृपासे; कल्पित बंध मोक्षादि, सर्व संसारके धर्मोंसे र
सच्चिदानंद रूप आत्मा, अपनेको जानती हूँ । पूर्व अज्ञात अवस्था
स्मरण कर हँसती हूँ क्योंकि, मैं क्या जानती थी कि, मैं देश, का
वस्तु, परिच्छेदसे रहित सर्वकाल एक रस हूँ ।

संत दत्तात्रेयने कहा—हे वेश्या ! तू कहांसे आई है, क
जावेगी और कहां रहती है ? वेश्याने कहा—अपने आपसे आई
अपने आपमें जाऊँगी, अपने आपमें स्थित हूँ। जैसे—तरंग जल
आया है, जलमेंही जावेगा और जलमेंही स्थित है । वामदे
कहा—हे वेश्या ! मन तेरा महान् चंचल है; मनको जब अफुर करे त
स्वरूपको पावे, बिना समाधि स्वरूपका पाना कठिन है । वेश्या
कहा—जिसको समाधि (चित्तकी एकाग्रता) करनेसे सुखहो, चित्त
फुरनेसे दुःख हो, सो समाधि करे वा न करे, मुझ चैतन्य असं
आकाशको तो, वायुरूप मनके फुरणे अफुरणेमें हर्ष शोक है नहीं

हे वामदेव ! वायुके फुरणे अफुरणेमें, वायुको सुख दुःख हो वा न हो परन्तु सर्वथा असंग आकाशको, हर्ष शोक नहीं। जो आकाश वायुके फुरणें अफुरणेमें हर्ष शोक मानेगा, तो आकाश विद्वानों करके हँसने योग्य होगा क्योंकि, आकाश आप चल अचलते रहित पूर्ण भी हुआ चल अचल वायुके धर्मोंको अपना धर्म मानता है सो भ्रम है। भ्रमी पुरुष सुखी नहीं होता। तैसे मुझ, निर्विकार निर्विकल्प पूर्ण चैतन्य, आत्माको मनके धर्म समाधि असमाधि करनसे सुख दुःख नहीं। मनके धर्म मनकोही सुख दुःख देवेंगे मुझ, निष्कर्तव्य निरपराधको नहीं। यह अनीति नहीं होसक्ती कि, मूली, जहर, शराब, अमृत, आदि पदार्थ भोजन और करे उसका गुण दोषादि औरको होवे। हे वामदेव ! विद्वान् पुरुषको विपरीत बुद्धि है नहीं, विना विपरीत बुद्धि विपरीत व्यवहार होता नहीं, उलटा परधर्म दुःखका देनेवाला होता है, स्वधर्मही सुख देता है; यह सर्व शास्त्रोंका सिद्धांत है इससे मैं अपने नित्य चित् सुखस्वरूपमेंही स्थित हूँ परधर्म मनके फुरणे अफुरणेसे मुझको क्या प्रयोजन है। जैसे—सर्व लोकोंके प्रकाशक सूर्य्य वा दीपकको लोकोंके व्यवहार होने न होनेसे, क्या प्रयोजन है।

मैंने कहा—हे वेश्या ! तेरा गुरू कौन है। वेश्याने कहा—गो नाम इंद्रियोंका है वा गो नाम अंधकार रूप अज्ञानका है, रू नाम प्रकाशका है, तात्पर्य यह कि, अज्ञानको तथा अज्ञानके कार्य्य इंद्रियादिक सर्वको—जो; प्रकाशे तिसका नाम गुरू है; सो ऐसा पदार्थ चैतन्य स्वरूप आत्मा मैंही सर्वका गुरु हूँ; मुझ चैतन्य द्रष्टाका दृश्य गुरु नहीं बनसक्ता। जैसे—स्वप्नदृश्य प्रपंचका स्वप्नद्रष्टाही गुरु है। जैसे सर्प दंड मालादिक पदार्थोंका; रज्जुही गुरु है। हे पराशर ! मैं इस दृश्यका द्रष्टा गुरु हूँ, ऐसा भी मैंने मुमुक्षुके समझाने वास्ते कहा

है नहीं तो मैं अद्वितीय हूँ मुझ अवाङ्मनस-गोचरमें गुरु वि
कल्पना नहीं । जो गुरु शिष्य कल्पना माने भी तो, मैं चैतन्य
ही सर्व नाम रूप दृश्यका गुरु हूँ, मुझ चैतन्यका अन्य गुरु कोई
स्वप्रकाश होनेपर भी अन्य माने तो अनवस्थादिक दोषकी
होती है । हे पराशर! भजन गोविंदका निरूपण कर। मैंने कहा
यही है, न तू वेश्या, मैं पराशर, एक गोविंदही है । जैसे-न घट
न मठाकाश एक महाकाशहै। मैंने कहा हे वेश्या ! तू कौन है!
आई है ? कहाँ जावेगी ? वेश्याने कहा-जोः तूहै सोई मैं हूँ, जहाँ
आया है तथा जहां जावेगा, मै भी वहाँहीसे आईहूं, वहांही जा
जहां तू रहता है वहांही मैं रहती हूँ। जहांसे तू जन्मा है व
सेही मैंभी जन्मी हूँ जो तुम्हारा हालहै सोई मेरा हालहै, विलक्ष
इससे तेरा प्रश्न हाँसीका आस्पदहै । परन्तु भजन गोविंदका
मैंने कहा, हे वेश्या ! तूने आपही पूर्व कहाहै "मैं सर्व दृश्यका गु
हूँ" तब तुझको भजनसे क्या काम है । वेश्याने कहा, मैं कोई क
जानकर भजन पूछती नहीं हूँ परन्तु, संत जहां इकट्ठे होतहैं, तहाँ
विकही वचनविलास होताहै, यदी मेरा निश्चय पूछे तो मुझको
है; जो अपनेको गुरु और अपने पृथक् दृश्यको शिष्य जानती
मैं अद्वितीय नारायण हूँ, मुझमें द्वैतका मार्ग नहीं, । मैंने कहा-हे वे
तूने गुरु शिष्य कल्पना क्यों की जब, तू अद्वैत है। वेश्याने कहा
शिष्यकी कल्पनाभी कल्पनामात्रहै, कहा तो क्या घाटाहै, न
तो क्या बाधा है । हे पराशर ! मिथ्या अहंकारको छोड जो तु
स्वरूपकी प्राप्ति होवे। मैंने कहा तूने कहने मात्रको क्यों प्रमाण कि
वेश्याने कहा-जैसे-तूने कहने मात्रको प्रमाण किया था परंतु
चिंताहै, मृगतृष्णाका जल है नहीं, परंतु कहनेमें आताहै ।

अवधूतने कहा-तेरे कहनेसे भ्रम सिद्ध हुआ। वेश्याने कहा
भांति प्रियरूप भगवानसे जो भिन्न प्रतीतिहै, सो भ्रम है । वा

विचारती हूँ तो भ्रमभी कहां है, भगवानही है। अवधूतने कहा तेरे कहनेसे जानाजाताहै—जैसे भ्रमहै तैसेंही भगवानहै, इसी कारणसे तू वेश्या हुई है कि,भगवान् और भ्रमको सम कहती है।वेश्याने कहा, भगवान् और भ्रम दोनों शब्द मात्र हैं, मैं अवाङ्मनसगोचर इन शब्दोंसे तथा शब्दोंके अर्थसे अतीत हूँ। परन्तु, हे अवधूत! मेरे वचनों लक्षणोंका तू द्रष्टा कैसे हुआहै—जैसे स्वप्नके पुरुष स्वप्नद्रष्टाके वा जाग्रत् पुरुषके वचनों लक्षणोंका द्रष्टा नहीं होसक्ते वा सोया पुरुष जाग्रत् पुरुषके हालका महरम नहीं होसक्ता। तैसा, मुझ जाग्रत्का तू सोया कैसे द्रष्टा हुआहै,तुझको लज्जा नहींआती!अवधूतने कहा लज्जादिक सर्व पदार्थोंको धोयकर अवधूत हुआ हूँ, लज्जा किससे करूँ, मैं आद्वितीय हूँ। वेश्याने कहा—बडा आश्चर्य है जो आकाश अपनेमें नीलमा मानके, नीलमाके धोनेका उद्यम करताहै तो हाँसीका आस्पद होता है। हे अवधूत! सर्व पद अहंकारमें है, जब अहंकारको तूँने धोया नाम त्यागाहै तो सर्व त्यागी है, नहीं तो कुछ धोया नहीं।जब तू कहे मैंने अहंकारको त्यागाहै तो, सर्व कर्मोंका धोना कथन चिन्तन कौन करेगा क्योंकि, अहंकारही कथन चिन्तन होताहै अन्यथा नहीं। अवधूतने कहा क्या करूँ, वेश्याने कहा कर्तव्य कुछ न कर, सम्यक् अपने स्वरूपको जान, जो कर्तव्यसे प्राप्त होताहै सो मिथ्याहै। संत निष्कर्तव्य पदमें स्थितहैं, वास्तवते कर्तव्य अकर्तव्यके अभिमानसे भी रहितहैं, क्योंकि कर्तव्य कुछ नहीं बोधव्यहीहै। इससे नामरूप दृश्यसे दृष्टि उठाकर अदृष्टमें दृष्टि लगा, पीछे दृष्टमान अदृष्टमानका भेद नहीं रहेगा। जैसे-खांडके खिलौनेके नामरूप त्यागे विना, बालकको सम्यक् चीनीका बोध नहीं होता। सांगोपांग चीनी जानेपीछे खिलौनेके नामरूप त्यागनेका

कुछ प्रयोजन भी नहीं, सर्व चीनीरूपही है, खिलौने कहने मा॰ अवधूतने कहा—हे वेश्या ! तू परमहंस दीखती है। वेश्याने परमहंस अपरमहंस मेरे स्वरूपमें दोनों नहीं; जैसे—स्वप्नके प॰ अपरमहंस स्वप्नद्रष्टाके स्वरूपमें दोनों नहीं।

पराशरने कहा—हे मैत्रेय ! वेश्याके वचन सुनकर अव॰ सुधिगई। पुनः जडभरत बोला हे वेश्या ! तूने कहा है कि, आ॰ त्रिपुटी है नहीं तो किसमें है, जिसमें त्रिपुटीको मानकर आत्म॰ माने सो कहो, ऐसा चैतन्य आत्मासे भिन्न त्रिपुटीका आधार॰ इससे त्रिपुटी आत्मारूपही है परंतु,आपही अपनेको देखताहै, अपनेको सुनताहै,आपहीं अपनेको स्पर्श करताहै, इसी प्रका॰ इंद्रियोंमें जानलेना—तात्पर्य यह कि, त्रिपुटी रूपभी आप॰ तिसका द्रष्टा अधिष्ठान तथा आधारभी आपहीहै। जैसे—स्वप्नमें द्रष्टाही द्रष्टा दर्शन दृश्य रूप त्रिपुटीभी आपही होता है; तथा त्रिपु॰ द्रष्टा अधिष्ठान तथा आधारभी आपहीहै और कोई जाग्रतके॰ स्वप्नमें है नहीं, जिससे त्रिपुटी होवे। ताते—हे वेश्या ! जब सर्व आत्माहीहै-तब देखनाभी आत्माहीहै। वेश्याने कहा—हे जड॰ तेरी बुद्धि हँसने योग्यहै, जो एक आत्मामें सर्व कल्पना कर॰ तथा भिन्न अभिन्न जानता है। कभी तैंने अपने शरीरको अ॰ भिन्न अभिन्न जानाहै। जैसे—घट पटादिक भिन्न भिन्न प्रतीत॰ तथा बडे, छोटे, शुद्ध, अशुद्ध, परे, उरे, देश, काल, वस्तु, भेद॰ प्रतीति होतेभी पंचभूत रूपहैं इससे एकरूपही है,क्योंकि अकार्थ॰ है रुदन कर। तब वामदेव और जडभरत दोनों रुदन करने ल॰

पराशरने कहा-हे मैत्रेय ! तब मैंने कहा-हे मित्रो ! रुदन क्यों॰ हो, तुम्हारे स्वरूपमें रोना हँसना समानहीहै, हँसनको त्यागना, रो॰ ग्रहण करना अयोग्यहै। वेश्याने कहा हे संतो ! स्वप्नरोंका

हँसनादि व्यवहार स्वप्न द्रष्टाको समहैं। हे पराशर ! जो राग द्वेष पूर्वक हँसना रोनाहै, तो मूर्खताहै, यदि समताको लिये हँसना रोनाहै तो ठीक है। जैसे—नाटकमें नट स्वांगके अनुसार कभी रोताहै, कभी हँसताहै, परंतु नटको नाटकमें हँसना रोना विलासमात्र, प्रसन्नताका कारणहै तथा नट और नाटकके द्रष्टारूपके विद्वान् पुरुषोंकोभी नटका नाटकमें हँसना रोना विलासमात्रहै। स्वयम् नटभी हँसना रोना आदि व्यवहार कर्तेभी, नटत्व निश्चयसे चलायमान नहीं होता; बालकोंको नटका हँसना, रोना, हर्ष शोकका कारणहै। हे पराशर ! समदृष्टिको लिये, विद्वान् पुरुषोंका जो जा राग द्वेपसे रहित चेष्टाहै, सोई मुमुक्षुओंको उपदेश है। क्योंकि मुमुक्षु ऐसे विचारते हैं कि, इन विद्वान् पुरुषोंने ऐसा कोई समतारूप अमृतपान किया है? जिससे सर्व न्यून, अधिक, लौकिक, परलौकिक, कायिक, वाचिक, मानासिक, शुभाशुभ, सुख, दुःख, हँसना, रोनादि अवस्थामें, हमेशा शांत रूप समही रहते हैं विभ्रमगतिको कदाचित् भी प्राप्त नहीं होते। जिस समता रूप अमृतके प्रतापसे ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदिकोंके सहित उनके ऐश्वर्य्यकी इच्छा नहीं करते तो अन्य ऐश्वर्य्यका क्या कहना है, अनिच्छाभी नहीं करते, ग्रहण त्याग बुद्धिसे रहित हैं, स्वतंत्र हैं, जन्म मरण रूपी भयसे भी रहित हैं। सदा जगत्के भोग पदार्थोंसे रहित हैं, तोभी प्रसन्न वदन रहते हैं। शरदऋतुकी पूर्णमासीकी चंद्रमावत्, इससे सर्वसे विलक्षण कोई अद्भुत पदार्थ इन विद्वानोंको मिला है। इससे हम लोगोंकोभी इस अमृतके पान करने वास्ते इन विद्वानोंके सकाशसे यत्न करने योग्य हैं, नहीं तो हमारा जीवन व्यर्थ है। इस प्रकार सम्यक् संतोष विचार, निष्कामतादि, आचरण विद्वानोंके देखके, मुमुक्षुजनोंको भी परमपदपानेकी इच्छा होती है। इससे हँसना रोना अनात्म धर्म ब्रह्मरूप विद्वान् पुरुषोंको समही

है । जैसे—आकाश जीवोंके हँसने रोनेमें समही है; हर्ष शोक
न्यून अधिक नहीं होता । हे मैत्रय!जडभरतादिक लज्जायमान
तूष्णी होगये क्योंकि, वेश्या अवाङ्मनसगोचर पदको कहती
इस पदमें वाणीका प्रवेश नहीं इससे तूष्णी होनाही भलाथा
मैंने कहा हे वेश्या ! संसार कैसे इस जीवका छूटे ? वेश्याने
शास्त्र वेद पढी नहीं परंतु, तुम संतोंसे सुनाहै, जब परिच्छि
कार आपा छूटा तब नाम रूप संसार कहां है ? जैसे सुषुप्ति
अहंकार नहीं तो जगत्भी नहीं । पुनः मैंने कहा हे वेश्या !
चित्त कैसे हो ? वेश्याने कहा, हे पराशर ! तू कौनहै ? चित्त
करनेवाला । चित्तादि जड दृश्य हैं वा द्रष्टा हैं ? जो—तू
दृश्यका द्रष्टा है तो तुझको चित्तके वश करनेका क्या
है, क्योंकि चित्तादि दृश्यका द्रष्टा तुझको चित्तादि दृश्य
नहीं मारता है, तथा जादू मंत्र नहीं करते हैं, तेरा रस्ता नहीं
हैं, तुझको जहर नहीं देते हैं, तुझको आवरण नहीं करते
अपना दृश्य स्वरूप और बंध मोक्षादि धर्म तुझको नहीं
अथवा तुझ द्रष्टाके, चित्तादि दृश्य, नजदीकभी नहीं
तुझ द्रष्टाको चित्तादि दृश्य अपना हितकारी जानते हैं, अहि
जानते नहीं क्योंकि, द्रष्टा चैतन्य करकेही जड दृश्यकी
होती है, अन्यथा नहीं । यही द्रष्टाकी दृश्य उपरहित कारता
तुझ द्रष्टाको चित्तादि दृश्य कोई उपालंभ भी नहीं देते कि
हमको ठीक नहीं प्रकाश करते, जैसे—सूर्य्य दीपकादि प्रकाश
घट पटादि प्रकाश्य उपालंभ नहीं देते। तात्पर्य्य यह कि
प्रकार आकाशके समान अपना बिगाड नहीं होता और
प्रकारभी चित्तादि दृश्य पदार्थ तुझको पीडा नहीं
बिना प्रयोजन दूसरेका हर्जा करना नालायकोंका काम
नाहक अपराध बिना, दूसरेसे शत्रुपना करना, पाप होता

जैसे—बिना अपराध धीवर, मछलियों और पक्षियोंको जालमें फँसाता है। धीवरकी समता मत कर, तेरेमें चित्तादि दृश्य हैंही नहीं, वश किसको करता है। जैसे—शुद्ध स्फटिक मणि अपनेमें कल्पित लालीके दूर करनेका उपाय नहीं करती, करे तो भ्रम है, अथवा जो तू आपको चित्तादि दृश्य जानते हैं तो, चित्तादि दृश्य तूही ठहरा वश किसको करता है, जो वश करता है तो, अपने धर्मोंको वा अपनेको, वश कर वा न कर, द्रष्टाको क्या हानी लाभ है कुछ नहीं। तुझ चैतन्य द्रष्टाके, आगेही चित्तादि जड, दृश्य वशवर्ती हैं, वशवर्तीको पुनः वशवर्तीकरना लज्जाका कामहै; पीसेका पुनः पीसना हाँसीहै जैसे स्वप्नद्रष्टा चैतन्यके अधीनही, स्वप्न पदार्थोंकी प्रतीति है स्वतः नहीं। चित्तादि दृश्य अपने धर्मोंको वा अपने आपको रोकेगा तो तेरा मरण निःसंदेह होगा; जैसे—मल मूत्र त्यागरूपी देहका धर्म, देह त्यागेगा तो, अवश्यमेव मृत्यु होगी, आकाशकी कुछ हानि लाभ नहीं होगी। जैसे निज शरीरको शरीर वशकरे चेतन बिना सो न्याय तुझको होगा इससे जो तू अधिष्ठान कल्पित चित्तको वश किया चाहता है तो, अपने स्वरूपको सम्यक् जान अधिष्ठानके ज्ञानते कल्पितकी निवृत्ति बलत्कारसे होती है, कल्पितकी निवृत्ति वास्ते जुदा साधन नहीं चाहिये। जब तूने सर्व ओरसे पूर्णरूप अपना आत्मा जाना तब, आपही मन भटक भटकके शांत होजावेगा। जैसे—मध्य समुद्र विषे जहाजसे काग उड़े सो काग चारों ओर समुद्रको देखता है और इधर उधर अपने बलसे भटकताहै, जब अन्य आधार नहीं देखता तब थक कर जहाँसे उडाथा उसी जहाजपर पुनः बैठताहै। ऐसेही—हरि पूर्णदृष्टिबिना मनके वश करनेका और उपाय कोई नहीं। जैसे तरंगादिकोंका निजस्वरूप जलके जाननेसेही, तरंगादिकोंकी वशीकारिता होती है। जैसे—जड पदार्थ निजात्मामें कल्पित रज्जु रूपके

सम्यक् अपरोक्ष बोधसेही, मनरूप सर्प वश होता नाम निवृ
है । जैसे स्वप्नद्रष्टाका, सम्यक् जागरणही, स्वप्नसृष्टि सहित
मनका वशीकरण होताहै ।

पराशरने कहा—हे मैत्रेय ! वेश्याने सतही कहा है, जैसे
जिस अग्निके वियोगसे, अनिर्वचनीय अन्य कारणके विना
षता प्राप्त होतीहै सो, कोयलेकी कालुषता किसीभी उपाय
दूर नहीं होती ।जिस अग्निके वियोगसे कोयलेमें कालुषता
तिसी अग्निमें कोयलेका प्रवेश होनेसे, कोयलेकी कालु
होतीहै पुनः यह मालूम नहीं होता कि, कोयलेकी; कालुष
गई और कोयला कौनहै । तात्पर्य्य यह कि, अपना नाम
टायके एक अग्निरूप होताहै । तैसेही सच्चिदानंद रूप
वियोगसे, मनरूप कोयलेमें कर्तृत्व भोक्तृत्वरूप कालुषता
हुईहै—सो, कर्तृत्व भोक्तृत्वरूप कालुषता, यज्ञ, दान,
होम, व्रत, तीर्थ, जप, ध्यान, वेदाध्ययन, शम, दम
त्यादि किसीभी साधनसे दूर नहीं होती किन्तु, जिस सच्चिदा
अज्ञानसे, मन वा, मन उपाधिक चैतन्यमें, कालुषतारूप
हुआहै, तिसीके ज्ञानसे मनरूप कालुषता दूर होवेगी, अन्य
नहीं। तात्पर्य्य यह कि, आप सहित सर्व मनादिकोंको
जाननेसे, मनादिक अपना नाम रूप त्यागके, हरिरूप होवेगा
यह नहीं जाना जावेगा कि, मनादिक अपने धर्मोसहित
गये । हे मैत्रेय ! जब नामरूप मन सहित संसारको मिथ्या जाना
अपने स्वरूपको त्रिकालाबाध्य स्वरूप सत् जाना तब, मन
वेगा, उलटा मिथ्या दुःखरूपते हटके, सुखस्वरूप आत्मामेंही
त्कारसे लय होगा । हे मैत्रेय ! मृत्तिका बुद्धिही घटादि नाम रूप
भावका कारणहै, कोई पत्थर करके घटादिकोंको चूरण नहीं करता
मृत्तिका रूप होंवे, बने बनाये काम देते, नामरूप प्रतीति

घटादि मृत्तिकारूप हैं, यही दिव्यदृष्टि है क्योंकि, कारणदृष्टिही दिव्यदृष्टिहै, अन्य नहीं ।

हे मैत्रेय ! पुनः वेश्या बोली—हे संतो ! जिस समय संसारकी सर्व चाहनाको छोडकर, एक भगवत्की चाहना हुई, उसी समय वेश्यादि संज्ञा दूर हुई क्योंकि, गोविन्द व्यतिरेक जो कुछ दृष्टि आताहै, सो मलिनताहै । जो मूढ़ है सोई इस दृष्टिमानमें प्रीति करताहै, विचारवान् नहीं करता है । हे पराशर ! तू इस दृष्टिमानमें दृष्टि क्यों करताहै कि, मैं परमहंस हूँ, ऋषि हूँ, मैं ब्राह्मण, मैं पंडित, मैं कुलिन, मैं ज्ञानी इत्यादि हूँ—और यह वेश्या है, नीच है, दुराचारिणी है इत्यादि. परन्तु जान यह दृश्यमान शरीर अति मलीन है; कृमि है, भस्म होनी है; गोविन्द व्यतिरेक जो प्रतीतिहै, सोई मलीनताहै । मैंने कहा हे वेश्या ! तूनेही पूर्व कहा है कि मैं सर्वरूप अद्वितीय आत्मा हूँ तो मलीनता कृमि और भस्मभी तूहीहै । वेश्याने कहा अब कहने मात्र नहीं तो मैं चैतन्य सर्व पदों से अतीतहूं । मैंने कहा जो तेरेविषे सर्व पद नहीं तो तुझसे भिन्न कौन है, जिसमें सर्वपद होवें । वेश्याने कहा तुझको सर्व असर्व पद कैसे दृष्टि आया है । मैंने कहा, जैसे तुझको मलिनता कृमि भस्म दृष्टि आया । पुनः वेश्याने कहा—हे पराशर ! तू परमहंस है । मैंने कहा—ऐसे मत कहो, यह कल्पना मेरे विषे नहीं, यह कल्पना तेरे विषे है, जिससे आपको तूने वेश्या जानाहै और मुझको परमहंस जाना है । हे वेश्या ! जो २ तू मन वाणी करके कथन चिंतन करेगी, सो सो अहंकारका रूपहै वा मायाका रूपहै । दृश्यका तहांतकही रूपहै, जहांतक मन वाणीकी विषमता है; मैं आत्मा मन वाणीसे अगोचर हूं जैसे तूने सुनकर वेश्यापन दृढ किया, स्वप्नमेंभी तू और नहीं जानती, तैसे तू जब अपने स्वरूपको दृढ जानेगी, तो मुक्तिको इच्छा करतीहुई भी, मुक्तिको पावेगी । जैसे—घटाकाश सम्यक् अपने

स्वरूपको जानताहै तो घटके फूटके न फूटनेमें निःसंदेह महा
स्वरूप है. यह नहीं कि, घटाकाश घटमें पदार्थ होनेसे, नि
नहीं; सत् नहीं और विकारी है, किन्तु सदा निर्विकार है। इससे हे
इस सूक्ष्म स्थूल अहंकारको; निरहंकार रूपी हिमालयमें गला,
निरहंकार रूपी भस्मको लगा कि, पुनः पापसे निर्मल होयके
यमान होवें । वेश्याने कहा—हिमालयमें अनेक जीव मरते हैं
पापसे नहीं छूटते, इससे हिमालयमें जलनेका कुछ प्रयोजन
जलना मेरा तेरे वचनोंसे होगा क्योंकि, वेश्या नाम मनरूपी
निकासो । वास्तवते मैं चैतन्य आत्मा स्वाभाविक शोभाय
यत्नते नहीं । मैंने कहा—मैं ऐसा अतीत हकीम नहीं हूँ जो इस
नामको निवृत्त करूँ और सच्चिदानंद नाम राखूं । जैसे—कोई
अतीतके पास, अतीत होनेको आताहै तो, वह अतीत पूर्व
नामको निकासकर, दूसरा नाम घुसेडता है, एक नाम रूप भ्रम
कासा, दूसरे नाम रूप भ्रममें उलटा दृढ कर डाला, इसमें विशेष
हुयी, कुछ न हुयी, इससे सच्चित् आनंदादिक सर्व नाम रूप
भ्रमहै, सत्य नहीं । जिससे सच्चित् आनंदादिक सर्व ना
सिद्ध होतेहैं, सो अवाङ्मनसगोचर तेरा स्वरूप है । हे वे
तू अहंपना त्याग, पुनः तिस त्यागका भी त्याग कर,
स्वरूप अपना पावे ।

पराशरने कहा—हे मैत्रेय ! वह वेश्या, यत्किंचित् काल,
संगति करके, मूल अपनेको पालिया, परंतु तुझको अबतक कुछ
न हुवा, मेरा उपदेश तुझको अकार्यही हुआ । मैत्रेयने कहा—
गुरूहो, अहंकार मेरा निवृत्त करो। पराशरने कहा अहंकार तेरा
कैसे निवृत्त करूं । हे मैत्रेय ! बांदर चनोंकी मुट्ठी अपनी मुँह
तो फँसताहै, जो अपनी मुट्ठी खोले तो छूट जावे, मुट्ठीका खोल

खोलना बाँदरके अखत्यार है, दूसरेके नहीं । हे मैत्रेय ! मैं तेरा अहंकार निवर्त करूं कि; अपना । तेरा अहंकार मुझको दुःख नहीं देता. जिसको अहंकार दुःख देवेगा, सो आपही त्यागेगा । जैसे—कोई चारआने देकर, मजदूरके शिरपर; बोझा उठवाकर चले, जब मजदूरको बोझ सहन नहीं किया जाता तो लाचार होकर नीचे पटक देताहै; चाहे कोई हजार मोहर देवे क्योंकि अपने शरीरसे सहन किया जाता नहीं—लाचारीहै । तैसे जब अहंकार तुझको दुःख देवेगा तो तू आपही बलात्कारसे त्यागेगा । मैत्रेयने कहा—जो मुमुक्षुओंके अहंकारादिक बिकार निवृत्त नहीं करते तो आपको तुमने आचार्य कैसे माना है । पराशरने कहा—सत्व रज तमादि गुणोंके प्रकाशक आत्मामें आचार बिचार नहीं किंतु संघातके धर्म हैं । परंतु मेरी कृपाकी आशा राख, वचन आगे मतकर और नित्य अनित्य मत पूँछ, जो कहूँ सो सत्यकर मान । मैत्रेयने कहा जब लग संदेह मेरा निवृत्त नहीं होता तथा दिलमें नहीं जँचता, तब लग मैं चुप होनेका नहीं । वेदमें लिखा भी है कि, जब लग शिष्यका संशय न मिटे, तब तक शिष्य चुप न होवे और गुरुभी क्रोधरहित उपदेश करे । यह वचन मैत्रेयका सुनकर पराशरने मैत्रेयका केश हाथमें पकडकर भली प्रकार शासना की, मैत्रेयने कहा हे पराशरजी ! बडा आश्चर्य है कि, दैत्यादिक करूर (हिंसक) जीवभी अपनी देहको आप भक्षण नहीं करते तुम अपने आपको कैसे शासना देते हो । मैं तो मैत्रेय, नाम मात्रभी, नहीं आपको मत मारो । पराशरने कहा क्या मुझको तैंने तुच्छ समझा है ? अभी तुझको भस्म करताहूँ । मैत्रेयने कहा भस्मको भस्म क्या करोगे मैं तो हूँ ही नहीं, किसको भस्म करते हो, परन्तु मैं यह नहीं जानता था कि, तुम मानको चाहते हो । अब नम्रता सहित प्रश्न करूँगा, मेरी रक्षाकरो । पराशरने कहा इसीसे तुझको उपदेश नहीं करता कि, तुझको निश्चय नहीं जिसको

आत्मामें निश्चय है, देहनाश होय तो भी निश्चयका त्याग नहीं क वह दैत्यपुत्र तुझ ब्राह्मणसे शत अंश भला था कि, पिताने अनेक बार शासना की पर निश्चयसे चलायमान नहीं मैत्रेयने कहा हे गुरो! कथा उसकी मुझसे प्रगट करो कि, हुवा है।

अथ प्रह्लादाख्यान।

पराशरने कहा हे मैत्रेय! पूर्व दितिके उदरविषे दो पुत्र उत्पन्न थे। एकका नाम हिरण्याक्ष था, जिसको विष्णु भगवान्ने वा रूप धारण कर मारा । तिसके पीछे हिरण्यकशिपु त्रिलो राज्य करने लगा, सर्व इंद्रादिक देवता तिसकी आज्ञामें थे, भाग देवता लेतेथे सो वही लेने लगा, इंद्रादि देवता तिसके स्वर्गको त्यागकर पृथिवीपर रहतेथे। हिरण्यकश्यपुके गृहवि प्रह्लाद नाम पुत्र उत्पन्न हुआ। जब प्रह्लाद पढ़नेके योग्य हुआ पढ़ानेवास्ते गुरुके निकट पिताने भेजा। पुनः कुछ दिन पीछे हि काशिपुने प्रह्लादको गुरु सहित बुलाके पूछा कि, हे पुत्र! जो पढ़ाहै सो सुनाओ। प्रह्लादने कहा हे पिताजी! यह जो स्थूल दृश्यमान जगत् है सो स्वप्नके समान असत् भ्रम जाना है और अद्वितीय विष्णु (व्यापक आत्मा) को ही मैंने सत् जाना है विष्णुही है, यह वचन सुनकर हिरण्यकशिपु क्रोधवान् हुआ लाल होगये। शुक्रको कहा हे ब्राह्मण! इसको क्या पढाया है। जो हमारी जातका घातक है, यह तिसका भजन करता है और त्रिलोकीका राजा हूँ सो मुझको विसारता है। शुक्रने कहा-हे दैत्येंद्र मतकरो, बालक अवस्था है, इस निश्चयसे इसको फेरूंगा, तुझहीको याद करेगा। पुनः हिरण्यकशिपुने कहा हे पुत्र! जो पढावे सोई पढो, नहीं तो मेरे प्राण जाँयगे। प्रह्लादने कहा हे पिता

किसीकी शक्ति नहीं है कि, मुझको मारे, आकाशकी समान जगत्‌विषे जो व्यापक विष्णुआत्मा है, तिसको कौन मारे और कौन दुःख देवे हिरण्यकशिपुने कहा-रे नीच बालक! कहो वह कौनसा विष्णु है जिसका बारंबार नाम लेता है, मुझको छोड़के । प्रह्लादने कहा हे पिताजी! विष्णु व्यापक सारे जगत्‌विषे मनका साक्षी है और इंद्रियोंसे अगोचर है; तुझ विचारनेत्र रहितको कैसे दीखे। योगीश्वर विष्णु आत्माको परमपद कहते हैं। हे पिताजी! तू, मैं और यह जगत् हैही नहीं, मूल और सार भगवान् विष्णु आत्माही है।हिरण्यकशिपुने कहा हे मूर्ख! तेरे मनको पापोंने घेरा है जो उलटा मानता है, नहीं तो संत कहते हैं कि–ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों प्रणवसे उपजे हैं, इसीसे जड हैं, दृश्य हैं और तू चैतन्य आत्मा है। भगवान् मायाको कहते हैं, आपको त्यागके मायामें लीन क्यों होता है। इतना कहकर हिरण्यकश्यपुने दैत्योंसे कहा कि,इस पापीको मेरी दृष्टिसे दूर करो और गुरुके गृहमें लेजावो।

कुछ दिन पीछे फिर गुरुसहित प्रह्लादको बुलाया और पूँछा,क्या पढा है? प्रह्लादने कहा–पढना न पढना, सुनना, देखना, लेना, देना खाना, पीना, सोना, जागना, सूँघना, स्पर्शकरना; सर्व विष्णुही है। प्रह्लादका वचन सुनकर अति क्रोधवान् हुआ, राक्षसोंको आज्ञा दी कि, इस बालकका घात करो, इसको कालने घेरा है, हमारे कुलमें यह अग्नि है। राक्षसोंने अनेक प्रकारकी शासना और भय दिया परन्तु प्रह्लादका रोमभी न बिगडा।

पराशरने कहा–हे मैत्रेय! प्रह्लादकी समान तुझको जब शासना होवे, तब कहेगा, मैं ब्रह्म नहीं हूँ किंतु जीव हूँ, परन्तु दैत्य पुत्र अपने निश्चयसे न फिरा। मैत्रेयने कहा उसको क्या लाभ हुआ कि,इतनी

शासना सही, क्योंकि; नामरूप भ्रम मात्र है, वस्तु सत् है, स
उसको दंड हो, अपने स्वरूपको त्यागके दूसरेको अपने स
ऊपर स्थित करना, भूलका काम है; पर उसकी कथा कहो।
हे मैत्रेय पुनः हिरण्यकशिपुने प्रह्लादको बुलाकर कहा—हे पुत्र!
बुद्धिको त्याग; वैरीके पंथ मत जा, अभी तेरा कछुभी नहीं बि
तुझको निर्भय करूँगा। प्रह्लादने कहा—मैंतो मूलही नहीं, जो है
भय अभयादि, विष्णु आत्माही है। तब क्रोधवान् होकर आज्ञा
इसको सर्पादिकोंसे मरवाओ। जब सर्पादि लेआये तिसकालमें
सर्पादिकों सहित सर्व जगत्को विष्णु आत्मा रूप ध्यान करने
जैसे मेरे शरीरमें अविनाशी मन आदिकोंका प्रकाशक विष्णुहै
र्पादिकों में है तथा ब्रह्मासे लेकर चींटीके शरीरमें वही विष्णुआत्म
विष्णु पृथक् सर्पादिकसे कहां है, सर्व विष्णुआत्माही है। सर्पादि
प्रह्लादको खेद कुछ न हुआ। पुनःअग्निमें डाला, पहाड़से गिरा
ह व्याघ्रोंके आगे डाला, हिमालय के महान् भयंकर स्थानोंमें
इत्यादि अनेक मृत्युके कारणोंके सन्मुख किया, परन्तु प्रह्लादको
खेद न हुआ क्योंकि, आपसहित सर्व विष्णुही जानताथा, खेद
होताहै। पुनः हिरण्यकशिपुने जुदा होकर गुरुको कहा कि; इसको
दाम, दंड, भेद, राजनीतिसे शिक्षा करो। शुक्रने ऐसाही किया,
प्रह्लादका निश्चय न डुला बरन् और दृढ़ हुआ।

एक समय अध्ययन शालासे शुक्र, किसी कार्यको बाहर गया
पीछे अवकाश पाके; बालकोंको अध्ययनशालामें प्रह्लाद
लगा। हे राक्षस पुत्रो! सर्वरूप व्यापक विष्णु आत्माही है, तुम
हैहीं नहीं, तिसी विष्णुकाही भजन करो। जो पूछो भजन क्या है
आपसहित सर्व जगत्को विष्णु आत्मा जाननाही परमभजन है।
कोंने कहा हे प्रह्लाद! यह समय खेलनेका है, भजनका नहीं।
दने कहा हे दैत्यपुत्रो! मनुष्यजन्म दुर्लभ है, बारंबार नहीं प्राप्त

शब्द, स्पर्श, रूप, रस गंध, विषय और विषयोंके ग्रहण करनेवाले, श्रोत्रादिक इंद्रिय, सर्व योनियोंमें प्राप्तहैं। विषय इंद्रिय संबंध जन्य ब्रह्मासे लेकर चींटी पर्यंत समही वैषक सुखहैं, सो सर्व योनियोंमें प्राप्तहैं, किसी योनियोंमेंही अप्राप्त नहीं, इससे इनके वास्ते यत्न करना निष्फल है। हे दैत्यपुत्रो! शतवर्ष पुरुषकी आयु[1] होती है, तिसमें आधी आयु तो सोनेमें जाती है, अर्थात् ५० वर्ष तो रात्रिमें कट जाती हैं, शेष ५०वर्षमें बारह वर्ष खेलनेमें जाती हैं, बारह वा षोडश वर्ष वृद्ध अवस्थामें जाती हैं; शेष पचीस वर्षमेंही पारलौकिक सुखका साधन विद्योपार्जन देशोन्नतिका प्रयत्न तथा देशाटन भोग विलासभी इसीमेंही होसक्तेहैं, भजनभी इसी पचीस वर्षमेंही होसक्ताहै, आध्यात्मिक रोगोंकाभी इसीमेंही जोर होताहै। परन्तु क्षणभंगुर शरीरहै बिजलीके चमत्कारवत् क्षणमें नष्ट होजाताहै, कभी शरीर जन्मताहै, कभी मरताहै, कभी बालक, कभी यौवन, कभी वृद्ध अवस्था आतीहै। कभी जाग्रत, कभी स्वप्न, कभी सुषुप्ति; कभी मूर्च्छा, कभी समाधि, कभी हँसना कभी रोना, कभी हर्ष; कभी शोक, कभी सुख, कभी दुःख कभी क्षुधा, कभी तृषा; कभी हानि, कभी लाभादिक, दुःखमय अवस्था होतीहै। इसीप्रकारसे हजारों सुखकी अवस्था हैं तथा हजारों दुःखकी अवस्थाहैं पन्तु चैतन्य शरीर रूप इस संघातकीही अवस्थाहैं, आत्मा विष्णुकी नहीं। पुनः बाल अवस्था अत्यंत जडरूप है, इसमें कुछ शुभाशुभका ज्ञान नहीं, इस अवस्थाके अनेक दुःख शास्त्रोंमें वर्णन किये हैं तैसे, यौवन अवस्थामें अनेक काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकारादिक विकार दुःखदायक

---

१ आज कल तो ६० या सत्तर वर्षतक भी जीना दुर्लभहै, कोई तो जन्म लेतेही, कोई दूसरे तीसरे वर्षमें, कोई १०-१५-२०-२५-३०-४०-वर्षमेंही मृत्युको प्राप्त हो जाते हैं।

शास्त्रोंमें कथन किये हैं, तैसे वृद्ध अवस्थामें अंग क्षीणतादि [1] निरूपण किये हैं। हे दैत्यपुत्रो ! जो भजन, दान, तपादिक नहीं कि तिसको अवसर चूके, मृत्युके अंतकालमें, पश्चात्तापही होत माताके गर्भमें जठराग्नि आदि निमित्तोंसे महान् दुःखोंको पाता शिर नीचे पाँउ ऊपर गर्भमें होते हैं, मलमूत्रके कुंडमें पड़ारहा इत्यादि अनंत दुःखोंको पाताहै । पुनः बहुत दुःखी गर्भ दुःखके छूटने वास्ते, भ्रमसे अपने चैतन्यस्वरूपते परमेश्वरकी कल्पना करके प्रार्थना करताहै–कि, हे सचि स्वरूप परमात्मा ! पूर्व अनेक मल मूत्र रूप देहोंमें, देह अभिमा में करता रहाहूँ, तिसी देह अभिमानकाही फल पुनः यह मुझको गर्भवास है । जो मैं मलमूत्ररूप देहका अभि नहीं करता, तो दुःख रूप गर्भवासको नहीं प्राप्त होता सर्व दुःखोंका कारण देहाभिमानही है, अन्य नहीं । देह अभिम मेहतरकाभी बाप है। इससे हे बालको ! तुमने कदाचित् भी अभिमान नहीं करना किन्तु, आपसहित इस सर्व नाम रूप जग विष्णुरूप आत्मा जानो । जो जन्म मरण बंधनसे छूटो । अभिमान त्यागेबिना अन्य तपादि साधनोंसे बंधनरूप संसार से नहीं छूटोगे ! जो इस दुर्लभ मनुष्य शरीरमें, शिश्नोदरपराय होकर, अपने मूलस्वरूप आत्माको न जानोगे तो अनंत कू शूकरकी दुःखमय योनियोंको प्राप्त होगे, मनुष्य जन्म पा तुम्हारा निष्फल होजावेगा, जैसे–चिन्तामणि अकस्मात् किसी पु प्रतापसे किसी पुरुषको हाथ आई तिसको मूर्खता करके, अप प्रयोजनको न साधके, निष्फल खोदेनी, अत्यंत नालायकीका का

१ इहां विस्तार भयसे लिखा नहीं, योगवासिष्ठ, आत्मपुराण आदि मोक्षउपु योगी शास्त्रोंके देखनेसे भलीप्रकार प्रगट होगा ।

है। इससे मनुष्यदेहको पायकर विचार करना कर्तव्यहै। मैं कौन हूं? यह देहादिक प्रपंच क्या है? कहांसे आया हूँ? कहां जाऊँगा? इस प्रकार जब अपने आपको नहीं चीन्हा तो मनुष्यदेहके पावनेसे क्या लाभ हुवा। हे बालको! अत्यंत मलमूत्ररूप अपवित्र इस शरीरका अहंकार त्यागकर, एक आत्मा विष्णुकोही पवित्र जान। अंतर बाहर आत्माही है, न इस आत्माकी माता है, न पिता है, न भ्राताहै, न पुत्र है, न इस आत्माका वर्ण है,न आश्रम है, न बालकादिक अवस्था हैं ये सब शरीरके धर्म हैं,आत्माके नहीं।आत्मा नित्य निर्लेप प्रकाश है। उपाधिसे सर्वरूप विष्णु आत्माही है;जैसे—निद्रारूप अविद्या उपाधिते विना स्वप्नद्रष्टा निर्विकार शुद्ध है, उपाधिते सर्व स्वप्न प्रपंच रूप भी स्वप्नद्रष्टाही है।शरीरादिकोंके अभिमान प्रबंधसे प्रत्यक्ष नहीं भासता—जैसे शुद्ध स्फटिकमें कोई रीतिकाभी रंग नहीं परंतु, लालपुष्पादिकोंके संयोगसे लाल रंगवाली प्रतीति होती है वास्तवते शुद्ध है। तैसे—आत्मामें यह दृश्यमान नामरूप प्रपंच वास्तवते है नहीं, बुद्धि आदिक उपाधिके संबंधसे आत्मामें प्रतीत होता है। जो इस नामरूप भ्रम प्रपंचमें, सत्यत्व प्रतीति करता है सो जन्म मरणके बंधनमें पडता है। इससे हे बालको! तुमको योग्य हैं कि, अबहीं नारायणपरायण होवो और आशासे मनको निराश करो, अस्ति भाति प्रियरूप नारायण आत्मासे जो व्यतिरेक है, सो मृगतृष्णाके जलवत् जानो, आत्माको सर्व अवस्थासे न्यारा साक्षी रूप जानो। जब इस निश्चयको दृढ़तासे धारण करोगे तब आध्यात्म, आधिभूत, अधिदैव, तीन ताप रूप संसारबंधनसे छूटोगे। क्योंकि-यह सर्व उपाधि शरीरकी है जब शरीर अभिमानसे छूटा तब सर्व उपाधियोंसे मुक्त होता है। द्वैतका विचार मनसे त्यागो, जो कुछ देखो, सुनो, सूँघो, स्पर्श करो,रस लो, तथा लेना, देना, ग्रहण,त्यागादिक

व्यवहार करो, सो सर्व विष्णु आत्माही जानो, दूसरा कोई नहीं
जैसे—सर्व स्वप्नका व्यवहार स्वप्नद्रष्टा आत्मारूप है। जिसने
आदिकोंका साक्षी स्वरूप अपने आत्माको ब्रह्मरूपको सम्यक्
है (जैसे घटाकाश अपनेको महाकाशरूप जाने) सो इस
संसारमें आवागमनको नहीं प्राप्त होगा।

पराशरने कहा हे मैत्रेय ! तिसी समय शुक्रने आकर देखा
बालक अध्ययन शालामें यह भजन कररहे हैं कि यह सर्व ना
विष्णुआत्माही है, हमभी सर्वव्यापी विष्णु आत्माहैं, हम वि
आत्मासे अहं त्वं रूप जगत् भिन्न नहीं, विष्णुरूप हमारे आ
यह सर्व नामरूप प्रपंच प्रकाश हैं, (लालकी दमकावत) है
शुक्राचार्य यह अवस्था बालकोंकी देखकर, हिरण्यकशिपुको (
का अध्ययन शालामें जो वृत्तांत था सो सब) कह सुनाया
हिरण्यकशिपुको स्वयं न दिखलादिया (अपनी निर्दोषताके वा
पाठशालामें प्रह्लादकी अवस्थाको देख, अत्यन्त क्रोधको प्रा
हिरण्यकशिपुने रसोइयोंको हुकुम दिया कि, इस बालकको भो
जहर देकर नाशकरो हुकुम अनुसार रसोइयेंाने ऐसेही किया
प्रह्लादको भोजन पानेवास्ते बुलाकर भोजन दिया। प्रह्लाद यही
जन करता था कि, भोजनभी विष्णुआत्मा है, भोजन बनाने
भी सर्वव्यापी विष्णुहै, भोजन करनेवाला भी विष्णु आत्मा
विष भी विष्णुहै, अमृतभी विष्णु है; मैंभी विष्णु हूँ तथा हि
कशिपु भी विष्णु है। तात्पर्य यह कि, सर्व नामरूपात्मक
विष्णुआत्माही है अन्य द्वैत नहीं।

हे मैत्रेय ! उलटा विष प्रह्लादको अमृतरूप विष्णु होगया
विषने अपना असर नहीं किया. क्योंकि सर्व जगत मनोमात्र
जैसे दृढ मनमें भावना करता है,तैसेही भावनाके अनुसार प्रत्यक्ष
ताहै और कोई बाहर प्रपंच है नहीं, मनमें स्वप्नवतही प्रपंच है

मैत्रेय ! भृंगी कीडा अन्य विजाती कीडेकोभी निरंतर दृढभावनाके वशसे अपना रूप करलेता है;यह तो नाम रूप प्रपंच आगेही(स्वरूपसेही) अस्ति भाति प्रियरूप व्यापक विष्णुरूप आत्माही है, केवल मनने भ्रमकरके विपर्यय कल्पना की थी। जिस मनने निज स्वरूपसे विपरीत भावना की थी, वही मन जब सर्वनाम रूपको सांगोपांग निजस्वरूप विष्णु, आत्माही भावना करेगा तो, सर्व नामरूप प्रपंच विष्णु आत्माहीका स्वरूप क्यों न भासेगा ? अवश्य भासेगा। हे मैत्रेय ! उपासना रूप भक्तिभी इसीका नाम है कि, "आप सहित, सर्व नाम रूप प्रपंचको, उपास्यरूप जानना" तभीही शांति होती है, राग द्वेष मिटजाते हैं, दुःखोंकी निवृत्ति और परमआनंदकी प्राप्ति होती है। हे मैत्रेय ! प्रह्लादको विषसे दुःख न हुआ क्योंकि, विष तथा अपने सहित सर्वको प्रह्लाद विष्णुरूपही जानता था। विष्णु अपने आपको तो दुःख नहीं दे सक्ता; जैसे-अपने शरीरको आप कोई भी परिहार नहीं करता।इससे हे मैत्रेय!तू भी विचार कर दृढ निश्चयधर कि,सर्व नामरूप प्रपंच, अस्ति भाति प्रियरूप मैं आत्माही हूँ वा सर्वनाम रूप दृश्य प्रपंचसे, असंग,निर्विकार, निर्विकल्प,सच्चिदानंद, साक्षी आत्मा,स्वमहिमामें स्थितहूँ,असत जड दुःख रूप यह देहादिक प्रपंच मैं नहीं। धन्य है उस दैत्यपुत्रको जो ऐसी अवस्थामें भी अपने निश्चयसे चलायमान नहीं हुआ, मन वच शरीरसे अपने स्वरूपमेंही स्थित रहा। तुझको विष देवे तो तत्काल कहे; मैं ब्रह्म नहीं जीव हूँ। मैत्रेयने कहा हे गुरो ! भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों कालोंमें सर्व नामरूप जगत् मैंहीहूँ,तो जीवभी मैंही हूँ, प्रह्लाद कहां है, आपकी बुद्धि में भेद पडा है ? कि, आप प्रह्लादको मुझसे भिन्न समझते हैं। पराशरने कहा हे पाखंडी ! तेरा प्रह्लादके समान मन शुद्ध नहीं तुझ पापीका दर्शन करना योग्य नहीं

पाप है। मैत्रेयने कहा सत् है इससे परे पाखंड क्या है कि,मैं चै
मायाकरके सर्व नामरूप प्रपंचको उत्पन्न,पालना, संहार करता
भी,स्वरूपसे कुछभी उत्पन्नादि करता नहीं।सर्वका भोक्ताभी अभो
निजस्वरूपसे मन वाणीका अविषय भी मायाकर मन वाणीका
यभी मैंहीहूँ, शरीरदृष्टिसे, चलताभी, स्वरूपदृष्टीसे अचल हूँ,
भी अकर्ता हूँ। सर्व मन वाणी शरीरादिक दृश्यकी चेष्टा करा
अक्रिय असंग साक्षी हूँ। जैसे-स्वप्नद्रष्टा स्वप्नदृश्यकी चेष्टा करता
भी अक्रिय असंग है। एक पाखंड मेरा और है "हूँमैं आप और
से भिन्न तत्पद, त्वं पद और ब्रह्मपदको कल्पता हूँ तथा असत्
दुःखरूप दृश्यको, अपनी सत्तास्फूर्त्ति करके, उलटा सच्चि
रूप कर दिखलाता हूँ"। जैसे-लोहेको पारस सुवर्ण कर दिखला
जैसे-इन्द्रजाली सर्व मायिक पदार्थोंको सत्यकर दिखाताहै।मैं चै
आत्मा देश, काल, वस्तु, भेदसे रहितभी, देश काल वस्तु भेद
(स्व माया कर) भी मैंहीं हूँ, यही मुझ चैतन्यका महान पाखं
मुझ चैतन्यको अवाङ्मनसगोचर स्वयंप्रकाश होनेसे, मन इन्द्रि
करके दर्शनके अयोग्य हूँ तथा सर्व दर्शनभी मेराही है। जो
मुझ चैतन्य आत्माको, सम्यक् ब्रह्मरूप नहीं जानता, तिसको
ममात्र, चौरासी लक्ष योनियोंमें, जन्म मरण रूप पाप होताहै।
से हे पराशरजी ! मुझको जो आपने पाखंडी दर्शनके अयोग्य
पापी कहाहै सो पूर्वोक्त रीतिसे ठीकही कहा है ।

पराशरने कहा हे मैत्रेय!कथा सुन-हिरण्यकशिपुने शुक्रको बुला
कहा कि,इस बालकको किसीभी उपायसे नाश करो, ढील मतकरो
शुक्रने प्रह्लादसे कहा कि, हे पुत्र ! पिता तेरा त्रिलोकीका राजा
है, औरसे तुझको क्या काम है, पिताकी शरण ले और शत्रुकी

ता त्याग, नहीं तो तेरा नाश होयगा, परमगुरू पिताहै तिसकी आज्ञा भंग मत कर।

हे मैत्रेय ! तूभी मुझसे भयमान हो क्योंकि; शुक्र एक शक्ति रखताथा मैं सहस्रशक्ति रखताहूँ, शुक्रने मेरेसे संथा लीथी। मैत्रेयने कहा मुझ चैतन्य आत्माके भयसे, सूर्य, चंद्रमा, अग्नि, वायु, यम, समुद्र; नदियां, ब्रह्मा, विष्णु, शिवादिक सर्व दृश्य भयमान होती हैं, मुझको किसकी शक्तिहै जो भय देवे। मुझ चैतन्य बिना सर्व नाम रूप दृश्य सिद्धही नहीं देवेंगी, तो भय कैसे देवेगी, जैसे—चित्रकी मूर्ति चितेरेको कैसे भय देवेगी तथा अनेक प्रकारकी पुतलियां; तंत्रीको कैसे भय देवेंगी किन्तु नहीं होवेंगी, वा अस्ति भाति प्रियरूप मैं सर्व नाम रूप दृश्यका द्रष्टा आत्मा हूँ, अपने आत्माको दृश्य भय कैसे देवेगी। हे पराशर ! जो यह भी आपनेही शुक्रको उपदेश दिया होगा जो कि, वह प्रह्लादसे कहता था। पराशरने कहा—हे मैत्रेय ! मैं शुक्रको निर्वाणपदका उपदेश करता था परंतु कामनाके वशसे उसके हृदयमें, निर्वाण उपदेश प्रवेश नहीं हुया, उलटा यह कहता था कि, मुझको वह विद्या सिखाओ, जिससे किसी मुयेको जिलालूं; किसीको कालवश करूँ, और मेरी संसारमें प्रतिष्ठा होवे। इस प्रकारकी शुक्रने विद्या पढी है, सो मुझको दोप नहीं, उसकी कामनाका दोपहै। हे मैत्रेय ! मुझ गुरुसे भय राख। मैत्रेयने कहा मुझविषे मरना जीवना दोनों नहीं, भय क्यों राखूँ परंतु कथा प्रह्लादकी कहो।

हे मैत्रेय ! प्रह्लादने कहा—हे गुरु ! जाति हमारी सर्व सृष्टिसे नीचीहै और तुम ऊंच पद कहतेहो, इसवास्ते तुम्हारा उपदेश मेरे मनमें नहीं बैठता। जो जो दृश्यमानहै, उत्पत्तिमानहै, विकारवानहै तथा कारज रूपहै, सो सो नश्यमानहै, घटवत् और आत्मा विष्णु इन पदोंसे रहितहै इसीसे सतहै। हे महामुने ! जो गुरु उपदेश करके सत् आत्माकी प्राप्ति

करानेवालाहै सोई परमगुरुहै, सोई पिता, माता, भ्राता, सुहृद्‌
पिता पक्षपातरहित होकर, सत् वस्तुका उपदेश करता है
परमगुरुहै, जो ऐसा नहीं करता, सो पिता परमगुरु नहीं, किन्तु
रीति अनुसार पिता मात्रहै । तिसकाभी मन वाणी शरीर कर
किसीको; यथायोग्य पूजन करना धर्महै । परन्तु लौकिक पिता
कृपा करेगा तो शरीर इन्द्रियोंकी पालना करेगा, परम
मोक्ष नहीं दे सक्ता, इससे तुम्हारी बुद्धिमें भेद पड़ा है कि,
पिताको परमगुरुसमान कहतेहो । कहो पिता मृत्युते छुड़ा
कदापि नहीं और परमविद्वान् गुरुरूप पिता मृत्युते निःसंशय
सक्ताहै । हे शुक्र! पिताका निरंतर ध्यान करना, ऐसा कहीं
लिखा नहीं किन्तु, सच्चिदानंद स्वरूप हरिकाही ध्यान करना
लिखाहै तथा योग्य भी है। जो परमार्थको जानताहै सोई सत
करताहै, असत् नहीं । शुक्रने कहा गोविंदके भजनसे क्या चा
जो तेरी इच्छा हो सो तेरा पिताभी दे सक्ताहै । प्रह्लादने कहा
मेरे अंतःकरणकी सुधि नहीं, ध्यान भजनका यही प्रयोजन
मूल अपना पाऊँ; जब मूल पाया तब बंधनसे छूटा । समपद
नते पाताहै और "आप सहित सर्व नारायणहै" यही भजनहै
कहा कि, त्वं पदका तथा तत् पदका लक्ष जो सच्चिदानंद मन
आदि सर्व, इस दृश्य संघातका साक्षीद्रष्टा, निजात्मस्वरूपका,
तुझको पूर्व उपदेश कियाहै सो क्यों नहीं मानता । प्रह्लादने
पिता देहकोही आत्मारूप करके उपदेश करताहै । तात्पर्य्य यह
अन्नमय कोशको ही, श्रुतिके तात्पर्य्यको न जानके, आत्मा
श्रुतिने तो अरुंधतीके दृष्टांत कर अन्नमयसे आगे, प्राणमय मनो
विज्ञानमय आनंदमय कोशोंको आत्मरूप कथन कियाहै, इससे
मयादिक पंचकोश रूप आत्माहैयह श्रुतिका तात्पर्य्य नहीं,

श्रुतिका यह तात्पर्य्य होवे तो यह यत्नविना सर्वको प्राप्तहै,तब तो परम पुरुषार्थका यत्न निष्फल होगा इससे सत्वादि गुणोंका कार्यरूप जो जाग्रतादि अवस्था सहित स्थूलादि तीन शरीररूपी, पंचकोशहैं सो संपूर्ण कारण कार्यरूप प्रपंच मन वाणीके गोचरहैं, इसीते मिथ्याहै ! ताते हे अधिकारी जनो "तुम्हारे आत्मा अवाङ्मनसगोचर" सर्वाधिष्ठान, जगदांधविध्वंसक, प्रकाशक, अवेद्यत्व, सदा अपरोक्ष,साक्षी, सच्चिद्घन, विशुद्धानंदको अपना स्वरूप जानो मन वाणीके गोचरको अपना स्वरूप मत जानो; यह श्रुतिका रहस्यहै ।

पुनः शुक्रने कहा हे प्रह्लाद ! अभी मान,नहीं तो तत्कालही तुझको जलाऊँगा । प्रह्लादने कहा,न कोई किसीको जिवाताहै,न कोई मारता है रक्षा कर्ता सर्वका एक विष्णु आत्माही है । जैसे-स्वप्न द्रष्टाही सर्व स्वप्न पदार्थोंकी रक्षा नाश कर्ता है, अन्य जाग्रत पुरुषभी नहीं करते तथा स्वप्न पदार्थभी आपसमें रक्षक नाशक नहीं होते । शुक्रने क्रुद्ध होकर मुखसे अग्नि निकासी और प्रह्लाद भयमान होकर विष्णुकी शरण हो प्राथर्ना करने लगा-हे अनंत विष्णु इस ब्राह्मणसे मेरी रक्षाकरो । पुनः कहा मैंने उलटाही समझा है, जब सर्व नामरूप जगत एक विष्णु आत्माही है, तो शुक्र, अग्नि और प्रह्लाद कहांहै, जिससे भय करूँ । तब उलटा शुक्रकोही अग्नि जलाने लगी । शुक्र भयमान होकर मनमेंही प्रह्लादकी शरण हुआ-हे यजमान प्रह्लाद ! मैं तेरा पुरोहितहूँ, यह अपराध हमारा क्षमा कर, मैं तेरी शरणहूँ ।

हे मैत्रेय ! शुक्र पहिले क्रोधवान था जब प्राणोंकी, अंतनौबत पहुँची, तब स्तुति प्रह्लादकी करने लगा; परन्तु प्रह्लाद दोनों अवस्थामें समहीरहा,विषमगतिको न प्राप्त हुआ । हे मैत्रेय ! तू भी सम आत्म पदमें स्थितहो; जिससे सर्व अवस्थामें समाहोवे । मैत्रेयने कहा-मैं मूलको कैसे पहुँचूँ । पराशरने कहा-तू आप मूलरूपहै, मूलको कैसे

पहुँचे, पहुँचना क्रिया कर होताहै तू अक्रिय है । मूलसे तुझ्
प्रयोजनहै, जो नारायण व्यतिरेक जानकर कर्म कर्ता है सो बं
कारणहै । निष्कर्तव्य में कर्तव्य भ्रांति जबतक न त्यागेगा त
मूलका पाना कठिन है । मैत्रेयने कहा-भक्तिका स्वरूप स
पराशरने कहा मैं पंडित नहीं हूँ, जो तुझको कथा सुनाऊं । मैं
कहा-पंडित नहीं तो मूर्ख होगा ? पराशरने कहा दोनोंमेंसे
नहीं हूँ । मैत्रेयने कहा-दोनों नहीं तो कौनहै ? पराशरने कहा
हूँ कि जिससे पंडित अपंडितादिक शब्द और शब्दोंके अर्थ सि
हैं । मुझको सिद्ध करनेवाला कोई नहीं, मैं स्वतः सिद्ध हूँ । मैत्रे
मैं तुम्हारा आदि अंत कुछ नहीं जानता हूँ । पराशरने कहा-मुझ
चैतन्य आत्माकी; चारोंवेद तथा ब्रह्मा विष्णु शिवादिक भी
अंत नहीं जानते, तेरी क्या शक्तिहै जो जाने क्योंकि, सबसे
मैं चैतन्य हूँ, मुझ चैतन्यसेही वेदादिक उत्पन्न हुये हैं क्या
पुत्र पिताके हालका महरम नहीं होसक्ता ।

मैत्रेयने कहा-मुझको संन्यासी करो ? पराशरने कहा हे मै
अबतो तेरेको ज्ञानका प्रतिबंधक, देह अभिमान, राईके
किंचित् मात्रहै, जब तू संन्यासी होवेगा, तब तुझको सुमे
अधिक देह अभिमान बढ़ेगा; जिससे ज्ञानहोना तुझको
होजावेगा । संत जो निरपेक्ष हैं, वैरागपूर्वक आत्मदर्शी हैं, अ
संन्यासी हैं, मनका जिस दंडसे निग्रह होताहै, तिस दंड
हैं तथा सर्व दैवी गुणोंकर संपन्नहैं, तिनका तथा गृहस्थ आश्र
किसी पुण्य प्रतापते धर्मपूर्वक सम्यक् आत्मज्ञान हुआ है जि
ऐसे सज्जन पुरुषोंके गुह्य उत्तम गुणोंको तू न प्राप्त होके भी
संन्यास ग्रहण मात्रसे, उनका तिरस्कार करेगा-तिसके माहा
से तू परमदुःखको पावेगा । देहाभिमानरूपी बिलारीके नि

वास्ते संन्यास है, उलटा महान देहाभिमानरूपी सिंहको घुसालेना अत्यंत मूर्खता है। जैसे—कोई मूलकी वृद्धि वास्ते किसी प्रकारका व्यापारकरै और उसमें लाभ प्राप्त करनेके वास्ते उलटा मूलभी खोदेवै सो यह अविचारका फलहै। सम्यक् विचारवान, पक्षपातसे रहित, संन्यासी कोईही होताहै, केवल दंड अभिमानी होनेसे सुख नहीं। इससे हे मैत्रेय! इस देहाऽभिमानादिकोंके निवारण वास्ते, स्वस्वरूपका सम्यक् ज्ञानरूपी दंड धारणकर, उलटा अभिमान मतकर, आगे जो इच्छाहो सो कर। मैत्रेयने कहा मेरेको अतीतकरो। पराशरने कहा—हे मैत्रेय! अतीत किससे होताहै, जो स्त्री पुत्रादिक बाहिर कुटुंबसे अतीत होताहै सोभी उनसे तू शरीर दृष्टि करके अतीत नाम भिन्न है और जो शरीरके भीतर, मन बुद्धि इंद्रियादिक, कुटुंबहैं तिनतेभी तू चैतन्य साक्षी आत्मा, स्वतः ही अतीत नाम भिन्नहै। तात्पर्य यह कि, तू चैतन्य स्वतःही, नामरूप प्रपंचसे अतीत नाम भिन्न है, कोई कर्तव्यसे तुझे अतीत नहीं होना है। जैसे—आकाश सर्व पदार्थोंमें स्थितभी, सबसे निर्लेप है, यही आकाशका अतीतपना है। जो अतीतका अर्थ पूर्वोक्त अर्थसे भिन्न करेगा तो, आकाशके दृष्टांतसे नहीं बन सक्ता, क्योंकि पदार्थ आकाशसे जुदे नहीं रहसक्ते और आकाशभी पदार्थोंसे जुदा नहीं रहसक्ता। जैसे—तू चैतन्य देव, सर्व आकाशादिक नामरूप दृश्य जड़ पदार्थोंका सिद्धकर्ता नियंताभी; दृश्यके अंतर बाहर पूर्णभी; असंग निर्विकार निर्लेप है इसीसे तू चैतन्यही दृश्यसे परम अतीतहै। चैतन्यवत् आकाश अतीत नहीं जो; तू आपको चैतन्य नहीं माने, वरन् आपको दृश्य माने तो दृश्य दृश्यसेभी अतीत नहीं होसक्ता, द्रष्टाही दृश्यते अतीत होताहै। मैत्रेयने कहा—मुझको योग बताओ जो सिद्ध होऊँ, बहुतकाल जीऊँ, मृत्यु नहीं होवै। पराशरने कहा—योग वहीहै जिसमें जीवना मरना दोनों नहीं, नहीं तो अयोग है।

हे मैत्रेय ! तूने अतीत होनेकी इच्छा की हैं; इससे तू धन्यहै
मनुष्यजन्म दुर्लभहै, जो मनुष्यशरीरमें भजन नहीं करेगा तो
तावा होगा । मैं यही चाहता हूँ कि, सर्व देहादिकोंसे अतीत हो
आपको भिन्न जान । मैत्रेयने कहा—सर्व कर्मोंका त्याग कर
होताहूँ परन्तु कर्मसे कर्मका त्याग नहीं होता क्योंकि मुझ चै
भिन्न, कर्ता कर्म क्रियारूप, जगत् सर्व कर्मरूपही है । पराशर
यह जो तूने चिंतन किया कि, मैं सर्व कर्मोंका त्याग करूँ, तिस
काभी त्याग कर; यही कर्मसे कर्मका नाशहै । जैसे लोहेसे
कटताहै । जैसे-मैलको मैल दूर करताहै । तैसेही—कर्मसेही कर्म
जाताहै, चैतन्यरूप अकर्मसे, कर्मरूपप्रपंच कटता नहीं,
अकर्मरूप चैतन्यसे, कर्मरूप जगत्की, सिद्धि होती है । जो मन
का विषयहै सो कर्म है, जो मन वाणीका अविषयहै सो अ
ऐसा अकर्म चैतन्य आत्माही है, अन्य नहीं, ग्रहण त्यागादि
कर्मही हैं, जब सर्व चाहना मिटगई, तब शरीर रहा तो क्या
रहा तो क्या ? शरीर तो अकर्म नहीं हो सक्ता । इससे तू
शरीरसे आपको अकर्मरूप आत्मा जान, जो ठीक ठीक
होवे; नहीं तो इन अतीतोंसे किसीका भेपलेके अतीत हो जा
अतीत होगा तब अहंकार तुझको जलावेगा, तब सुख कैसे पा
मैत्रेयने कहा-मैं क्या करूँ ? तुम ऐसा कुछ कहते हो, जिसमें म
णीकी गम नहीं । पराशरने कहा—कर्तव्यको त्याग, अतीत हो
यने कहा—अतीतका धर्म कहो ? पराशरने कहा "सूक्ष्म स्थूल
कारसे रहित होनाही अतीतका धर्म है" इससे अधिक मैं पंडि
हूं जो कहूँ । जब पुरुष, स्त्री आदिक संबंधियोंको त्यागताहै त
अहंकारमें बँधाहुआ आपको त्यागी मानताहै और गोविन्दके
उपकार अपना मानताहै और ऐसा अभिमान करता है

जिसको मैं वर देता हूँ उसको सफल होताहै, मुझको परमतपस्वी सर्व-लोग जानते हैं, मैं यह देह त्यागके उत्तम लोकोंको पाऊँगा। हे मैत्रेय! ऐसे अतीत होनेकी तेरी इच्छा है तो भली बात है, परन्तु मैं जानताहूँ कि, तैंने सारी आयु इसी पंडिताई आदि दुनियाके काममें बिताई है। हे मैत्रेय! इन सर्व अतीतोंमें कोईही सम्यक् अतीतहै, बहुतेरे तो अनात्माहंकारमें बँधेहैं और बंध मोक्षसे रहित-निर्विकार आत्मासे दूर पडेहैं। इससे सर्व देह इंद्रियादि संघातकी चेष्टा होते हुये भी आपको निर्विकार निर्विकल्प आत्मा, अतीत जान. पुनः उस अहंकारके त्यागका अभिमान भी त्याग कर, जो सम्यक् अतीत होवै।

मैत्रेयने कहा; संसारसे कैसे छूटूँ? पराशरने कहा-"गोविंद गोविंद" कहो, संसार कहाँ है, संसारका तुने नाम सुन रक्खाहै, संसारका स्वरूप विचारा नहीं, विचारे बिनाही तुझको संसार भासता है, जैसे-विचारे बिना घट भासताहै, नहीं तो मृत्तिका है तैसेही-अस्ति भाति प्रियरूप आत्माही है, घट पटादि संसार कहाँ है। मैत्रेयने कहा कर्तव्य क्याहै? पराशरने कहा हे मैत्रेय! घटके कर्तव्यसे घट मृत्तिकारूप नहीं, किंतु स्वतःही मृत्तिकारूपहै, परन्तु न विचारनेसे घट भासताहै, विचारनेसे मृत्तिका भासती है। तैसे-स्वरूपकी प्राप्तिमें और भ्रमकी निवृत्तिमें, विचारही कर्तव्यहै, अन्य यज्ञादी साधन नही। मैत्रेयने कहा-जब सर्व गोविंद मैं कहूँ, तब तुम क्या प्रसन्न होगे? पराशरने कहा कहनेसे कुछ सिद्ध नहीं होता, जबतक स्वरूप निश्चय न करे। जैसे-भूख विनाखाये, रोटीके कहनेसे दूर नहीं होती। हे मैत्रेय! अपने सच्चिदानंद स्वरूप आत्मासे पृथक्-भगवान् परमेश्वर, नारायण, गोविंद, अल्ला, खुदा, शिव, विष्णु, ब्रह्म, ईश्वरादि-असत् जड़ दुःख रूप भ्रममात्रहैं। इससे-अपने सच्चिदानंद स्वरूपको अहंरूप करके जान और भगवान् रसनासे मत कह। संतभी वही हैं जो, "सर्वनामरूप दृश्यसे श्रेष्ठ निजस्वरूप आत्माको जानतेहैं" नहीं तो असंतहैं।

हे मैत्रेय ! अब प्रह्लाद चरित्र सुन—"शुक्राचार्य्य अपना छुडाके निकस गयाहै। यह प्रसंग सुनकर—हिरण्यकशिपुने बुलाकर कहा-तेरे पास क्या शक्तिहै ? जिसके बल किसी उपा तू मरता नहीं। यह मंत्र कहांसे सीखाहै ? प्रह्लादने पिताके चरण कहा कि, हे पिता ! मैं मंत्र यंत्रादि कुछ जानंता नहीं परन्तु "आप सर्व विष्णुको सम जानताहूँ यही मंत्रहै। हिरण्यकशिपुने कहा आत्माको त्यागकर, दूसरेनको शिरपर रखताहै, सो बुद्धिकी है, इसीसे—आप सहित सर्व आपको जान, जो तीन तापते प्रह्लादने कहा सर्व संसारका सार विष्णु आत्मा है, जिसने ग्रहण किया है, तिसको असार झूठ संसार क्या दुःख दे स यह वचन सुनकर राजाने अतिक्रोध किया। वहां एक प योजन पृथिवीसे ऊंचा था। हुकुम दिया कि, उस पर्वतसे गिरादो। आज्ञापाकर राक्षसोंने ऐसाही किया। प्रह्लाद जान सर्वव्यापक विष्णु आत्माही है, इस विचारसे उसको कुछ भ हुआ। पुनः उससे भी ऊंचे पर्वतसे गिराया, पर केशवने हा लेलिया। यह दृढ उपासनाका फल है। विष्णुने प्रह्लादको कह तेरी इच्छा होय सो मांग। प्रह्लादने कहा—मैं वह सेवक न अपने स्वामीसे कुछ मांगूँ, जो पिताका नाश मांगू तो मुझको ल क्योंकि स्थावर जंगम तूहीहै, हिरण्यकशिपु कहां है। वहाँ हि कशिपु होकर कहताहै विष्णुमत कहो, यहां कहताहै सर्व विष्णु इससे यही मांगता हूँ कि,तेरे बिन और कुछ न जानूँ। जो तु "मेरा तेरे ऊपर उपकारहै कि, तेरी मैंने अनेक उपद्रवोंसे रक्षा की

१ यहां योजन नाम चार हाथका है, धर्म पुस्तकोंमें भिन्न २ स्थान प गानुसार भिन्न २ माप लिखाहै, जैसे. कहीं तो चारकोशका योजन लि कहीं चार चार हाथका, कहीं चार गजका। कहीं चार अंगुलका। यहाँ पर ४ १०० योजनसे ४०० हाथकाहै।

सो नहीं क्योंकि, जब सर्व उपकारक उपकार्य्य तूही है, तो उपकार तेरा किसपरहै। विष्णुने देखा कि, प्रह्लाद अचाहहै आज्ञाकी "नेत्र मूँद"। प्रह्लादने नेत्र मूँदकर खोलने पर देखा तो, अपनेको पिताके पास खडापाया। हिरण्यकशिपु देखकर आश्चर्यमान हुआ और क्रोधित होकर सामर राक्षससे कहा कि, यह बालक किसी उपायसे मरता नहीं, भजन मायाका करताहै; तुझको चाहिये कि, इसको मंत्रोंसे वा किसी अन्य उपायसे नाश कर। तब सामर दैत्यने सहस्रों उपाय किये कि; बालकको मारूँ; पर न मारसका. क्योंकि प्रह्लादको दृढनिश्चय था कि, मंत्र और मंत्रपठण कर्ता और मंत्रसे मारने योग्य, सर्व विष्णु आत्माही है।

विष्णु विष्णुको तो नहीं मारता। ऐसा दृढनिश्चय देखकर बीष्णुने सुदर्शनचक्र अभिमानी देवताको आज्ञा की कि, प्रह्लादकी सर्वप्रकार रक्षाकर और सामरका शीशकाट। सुदर्शनचक्रने ऐसाही किया। राजा यह चरित्र देखकर विस्मय हुआ, चित्रकी मूर्तिके समान शून्यसा होगया, हुकुम किया, मेरे निकटसे इसको दूरकरो। सारांश यह कि, ऐसेही अनेक मारनेके उपाय किये पर प्रह्लादका रोम मात्रभी न उखडा। पुनः राजाने प्रह्लादकी केश पकडकर, बहुत शासना कि, पर प्रह्लाद अपनी प्रतीतिसे न चलायमान हुआ। राजाके हाथमें एक गदाथी, सो प्रह्लादको मारी, वह गदा सहस्र खंड होगई, गुरु (शुक्र) ने कहा—हे राजन्! इतनी शासना तूने की पर कुछ इसको विघ्न न हुआ जैसे का तैसेही रहा,इसने आप सहित कोई पूर्ण वस्तु जानीहै, सोई इसकी रक्षा करताहै इससे इसकी शासनाका त्याग कर। राजाने कहा-जबलग शत्रुके निश्चयका त्याग न करे,तबतक इसके नाशके उद्यमका त्याग न करूंगा क्योंकि त्रिलोकीका स्वामी मैं हूँ, मुझ आत्मा विना इसने किसको देखाहै, जो विष्णु कहताहै। जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति तथा स्थूल सूक्ष्म कारण, समष्टि व्यष्टि सहित सर्व जगत्

मुझ आत्माते हुआहै, मुझआत्मासे भिन्न कौन अनात्म घट
ष्णु है, जिसका यह नाम लेता है । अपरोक्ष अपने आत्माक
गकर, परोक्षको जानताहै इससे हे प्रह्लाद मायारूप परोक्ष
त्यागकर, अपने आत्माको जान और गुरुका उपदेश जो
मिलाहै सो कह। प्रह्लादने कहा-जितना गुरुने उपदेश कि
धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, सर्वरूप अरूपते परे उरे जनार्दन
यह परमार्थ मैंने जानाहै कि; सर्व वही है तो चार पदार्थों
प्रयोजनहै । हे पिताजी ! आपभी निश्चय यही करो कि, न
न तू है, न यह जगत् है, एक विष्णु अद्वितीय आत्माही है
भिन्न अविद्याहै, तिसको त्यागकर आपसहित सर्व विष्णु
विद्यामें लीनहो; पंचभूतक शरीरको मिथ्याजान ॥ राजाने
मूर्ख ! जब सर्व आत्माहै तो विद्या, अविद्या, शरीर अशरीर,
ग्रहण, परमार्थ, अपरमार्थ, विष्णु, अविष्णु, प्रह्लाद, हिरण्य
कहां है ? इस्से राज्य त्रिलोकीका ले, आप भिन्न निश्चयका
कर; आपको जान। प्रह्लादने कहा-राज्य लोभसे उस नि
त्यागूँ तो लज्जाका कामहै, क्योंकि राज्य सहित सर्व संसार
है और मैंने नित्यको जानाहै । हे पिता ! स्थावर जंगम सर्व
आत्माहै, सम निर्वाण चैतन्य अनंतहै, यह सर्व तिसीसे
तिसीमें लीन होताहै और मध्यमें भी वही रूप जलतरंग
जिसने ऐसा जाना है, सो भगवद्रूप है ।

पराशरने कहा हे मैत्रेय ! तूने मुझसे कभी भी न कहा कि
सहित सर्व भगवान् है।मैत्रेयने कहा प्रह्लाद रसनासे कहताथा
सुख नहीं पाता था क्योंकि, पिताको भिन्न जानना और कहना
भगवान् है"यह संतोंका मार्ग नहीं है । हे गुरो ! जो कहूँ मैंही सर्व
तो क्या कहनेसे आगे न था जो अब कहूँ । जैसे-जल जाने कि
तरंगादिक मैंही हूँ, वा तरंगादिक जाने मैं जल हूँ, सो कहना

क्योंकि, तरंगहैं नहीं जलहीहै। तैसे-यह नाम, रूप, अस्ति; भाति, प्रियरूप आत्माही है। उससे भिन्न अत्यंताभावहै, यह बात स्वतः सिद्धहै, कहनेसे नहीं। पराशरने-कहा हे मैत्रेय! तू परमहंस दृष्टि आता है। मैत्रेयने कहा-दृष्ट अदृष्टसे अगोचर मुझ चैतन्य अरूपका कोई द्रष्टानहीं, तुमको मैं कैसे परमहंस दृष्टि आया; पर कथा कहो।

पराशरने कहा प्रह्लादने कहा हे पिता! जो कुछ दृष्टिमान है, सो एक, अनंत विष्णु जान, इस निश्चयसे वहीरूप होगा। राजा यह वचन सुनकर, चौकीसे उठा, चाहा प्रह्लदको अबहीं नाश करूँ! जैसे रुद्रको महाप्रलयविषे,संसारके नाशकी इच्छा होती है।राक्षसोंसे कहा-प्रह्लादके हाथ, पांव, बांधके समुद्रमें डालो, यह अभागा मायामें लीन है, मैंने इसके नाशमें बहुत ढील की थी कि, इस चाहको त्यागे परंतु इसको मृत्युने घेराहै। राक्षसोंने वैसेही किया।

परांशरने-कहा हे मैत्रेय! तुमको यह अवस्था प्राप्तहोवे तो क्या कहैं और क्या करें मैत्रेयने कहा-गोविन्दके भजनमें दुःखहोय तो मैं उसका नामभी रसनापर न लाउँ। पराशरने कहा हे मूर्ख! चाहे, मैं मित्रको पाउँ और आप भी बीच रक्खे और दुःखसे भयमाने तो मित्र मिलना कठिन है। जो आपको नाशकर्त्ता है, वही निश्चय मित्रको पाताहै। विष्णु प्रह्लादकी परीक्षा करतेथे कि, चल है वा अचल है।

।एक कथा।

हे मैत्रेय! इसीपर एक इतिहास सुन एक ऋषिकी स्त्रीसे मेरी प्रीतिथी। मैत्रेयने कहा-पूर्व तुमने आपही कहाहै कि, पराईस्त्रीसे प्रितिकरताहै सो नरकको जाताहै; अब कहते हो ऋषिकी स्त्रीसे मेरी प्रीतिथी; तुम्हारे कथनके पूर्व उत्तरका विरोध हुआ। पराशरने कहा सचहै, हे मैत्रेय! ब्रह्माकार वृत्तिरूप स्वस्त्रीसे भिन्न दृष्टि परस्त्रीके

समान है वा स्व स्वरूपदृष्टिसे भिन्न दृष्टि परस्त्री स्वरूप है। इस ब्रह्माकार वृत्तिसे नवीन ज्ञानी अत्यंत प्रीति रखताहै, वृत्तिके निरोध करनेवाले काम क्रोधादिक अनेक पदार्थ हैं; तथा त्रिपुटीरूप सर्व जगत्को अंतःकरणकी ज्ञानमात्र वृत्ति नवीन ज्ञानी जानताहै, क्योंकि जबलग पदार्थोंका वृत्तिरूप तबलगही पदार्थ है, अन्यकाल में नहीं, इसीसे ब्रह्माकार वृत्ति नवीन ज्ञानी सुखमानके प्रीति करताहै । मुझ अवाङ्मनसगोचर विष्ठान, जगत् विध्वंसक, दृश्यप्रकाशक, अवेद्यत्व, सदा, साक्षी, सच्चिद्घन, विशुद्धानंदको ब्रह्माकार वृत्ति, अब्रह्माकार तुल्य है इससे पर अपर मेरी दृष्टिमें नहीं क्योंकि, शरीर मुझको नहीं, आपसे आपहूँ, जो जीवहै उनको कालसे, ईश्वर राजसे तथा शास्त्रसे भय होताहै।मन चंद्रमा, बुद्धि ब्रह्मा, चित्त अहंकार रुद्र, तात्पर्य्य यह कि, चक्षु मनादिक अध्यात्म इन्द्रि मन चक्षु आदिक इन्द्रियोंके सूर्य्य चन्द्रमादिक देवता, मन आदिक इंद्रियोंके अधिभूत रूप संकल्पादिक विषय,इन त्रिपुटी मैंने उत्पन्न कियाहै; मुझ चैतन्यको किसीने उत्पन्न नहीं कि इससे मुझको किसीका कंप नहीं, क्योंकि मुझ चैतन्यसे विशेष नहीं ।

हे मैत्रेय ! उस स्त्रीके दर्शनवास्ते सदा जाता था, एक दिन देखनेकी अर्द्धरात्रिमें मुझको इच्छा हुई । स्वस्थानसे चला रात्रि रीथी और वर्षा वरसतीथी, पर प्रेमका मित्र मेरेसाथ अगवानी मार्गके मध्य सर्प मेरे पगको लिपटा,मैंने जाना कि, मुझे मित्र है,उस सर्पको मैंने कंठसे लगाया और जाना कि, प्रीतमहै । मैंने कहा ऐसी निशिकारी विषे तेरे निमित्त चलाहूँ मुझको अपने गृह चल।पर हे मैत्रेय ! गृह प्रीतमका गंगाके परले तीरपरथा,गंगा चातु समें समुद्रकी भाँति तरंग मारती थी, प्रीतमकी प्रीतिविषे गंगा गोप

भ्रांति प्रतीतिहुई । तिस सर्पकी नौका करके पारगया । जब तीरपर पहुँचा तो देखा, ऋषीश्वर मुनीश्वर बैठे तपस्या करते हैं ।तिनोंने पूछा तू कौनहै ? मैंने कहा अमुकऋषिकी स्त्री हूँ । तिनोंने कहा अर्द्धरात्रिमें तू कहां गई थी और कैसे यहां आई । मैंने कहा ऋषिकी स्त्रीके पास गई थी और उसीके पाससे उठकर आई हूँ । उन्होंने आपसमें कहा यह स्त्री नहीं, कोई जादूगरहै । पुनः उन्होंने कहा—अब तेरी इच्छा कहाँ जानेकीहै । मैंने कहा ऋषिकी स्त्रीके पास जाती हूँ सब विक्षेपमें आये मुझको, लातों मुष्टिसे भली प्रकार मारा, पर मुझको वह शासना पुष्पसमानथी क्योंकि, तिस समय मैं पराशर न था । जब उन्होंने भलीप्रकार-शोध किया तो जाना कि, वसिष्ठका पौत्र पराशर है—कहने लगे ऐसे पिताका पुत्र होके ऐसा कैसे हुआ । मैंने कहा न कोई मेरा पिता और न मैं किसीका पुत्र हूँ, मैं स्वयंरूप हूँ।जोहूँ तो मैं चैतन्य सर्व दृश्यका पिता; नाम कारण अधिष्ठान स्वप्नद्रष्टावत् हूँ, वस्तुसे कारण कार्यसे रहित हूँ, कार्य कारण भाव भी मैंही हूँ, चैतन्य दृश्यते अतीत हूँ ।उन्होंने जाना पराशर नहीं कोई चरित्र है । पुनः तिन्होंने और शासना की. शरीरमें जखम हुये पर मैंने कुछ न जाना । तिस समय प्रीतम भी आन पहुँचा और मैंने जब उसको देखा,पूर्व शासनकी अग्निते शांत हुआ तथा वियोगकी अग्निसे भी शांत हुआ । स्त्रीने कहा तेरी क्या अवस्थाहै ? मैंने कहा मूलतेही मैं कुछ नहीं, जो है सो तूही है ।शरीरका त्याग करूंगा पर तेरी प्रीतिका त्याग न करूंगा । उसने कहा जब शरीर न होगा तो मुझको क्या करेगा ? मैंने कहा—तेरे मनविषे निवास करूँगा ।कहा—अवभी तू मेरे मनविषे साक्षीरूपकर बसरहा है, फिर क्या बसेगा ।

हे मैत्रेय! उसकी मेरी मूर्ति दो थी पर मन एकही था, पर तैंने ऐसी कभी प्रीतिरूप निश्चय न किया। मैत्रेयने कहा—प्रीति, अप्रीति करना

मुझ चैतन्यका धर्म नहीं, मैं समहूँ, यह धर्म मनका है जहां
तहां प्रीतिभी होगी, मैं चैतन्य एकरसहूँ पर कथा प्रह्लादकी

पराशरने कहा-जब प्रह्लादको बांधकर समुद्रमें डाला तो समुद्र
यमान हुआ, प्रह्लादको हरिभक्त जानके किंचित् भी दुःख न होने
प्रह्लाद कमलपत्रवत् रहा। राक्षसोंने यह अवस्था देखकर
जाकर सारा हाल कहा।राजाने कहा उसपर शिलाका प्रहारकरो
डूबजाय तिन मूर्खोंने वैसेही किया। तिस समय प्रह्लाद गोविंदकी
करता था कि, हे व्यापक! चैतन्य आत्मा! ब्रह्मा,विष्णु,रुद्र
जगत्की उत्पत्ति पालना संहार,तूही करता है, सर्वरूपभी तूही है
अतीतभी तूही है,जिनने तुझको ज्ञान नेत्रसे नहीं देखा, सो
अवतारोंकी करते हैं इसीसे परमार्थको नहीं पहुँचते। सा
कि, विष्णु होकर विष्णुकी पूजा करके,आपसहित सर्व विष्णु
जाने।क्योंकि, जो सर्व विष्णु है तो, मैंभी विष्णुही हूँ; गुप्त
मैंही हूँ, आत्मा, परमात्मा मुझहीको कहते हैं। मैंही चैतन्य
आत्मा; पूर्ण सर्वमें समहूँ।

हे मैत्रेय! इस प्रकार प्रह्लाद विष्णुकी,स्तुतिसे विष्णुसे मिल
मैत्रेयने कहा-जिसने विष्णुकी स्तुति की सो, विष्णुसे मिला
नहीं की सो नहीं मिला, तो मिलना न मिलना खुशामदरूप
आधीन है, स्वतः नहीं; ताते मैं इस मिलनेकी इच्छा नहीं
क्योंकि, जब स्तुति नहीं करूंगा तो विष्णु चैतन्यते बिछोहा
पुनःस्तुति करूँगा पुनः मिलूँगा, इस पंचायत से मुझको क्या
है। जो जुदा मिलापवाले पदार्थ हैं,सो सर्व अनित्य हैं।जैसे घट
सदैव महाकाशरूप है, तैसे मैं प्रत्यक् चैतन्य आत्मा सदैव
हूँ, कभीभी जुदा मिला नहीं। पराशरने कहा-हे मूर्ख! मिलना
है।कि, गोविंदको अपना आत्मा जान। मैत्रेयने कहा-जा

मिला; नहीं तो भिन्न हुआ; जब कहते हो कि, सर्व आत्मा निर्विकल्प है तो जानना और न जानना क्या? पराशरने कहा मैं नहीं जानता कि, कौनहूँ, पर ज्ञानशक्ति ईश्वरकी है, अज्ञानशक्ति जीवकी है। दोनों कहनमात्र हैं, कहाँ ज्ञान और कहां अज्ञान है, जो है सो, निजरूप है। जब तत्त्व प्रतीत हुआ तब ज्ञान अज्ञान दोनों नाश हुये। जैसे–प्रज्वलित अग्नि गीले सूखे काष्ठ दोनोंको जलावती है, इससे प्रह्लाद, जीव ईश्वर जगत्से उल्लंघकर, मूल अपनेको पहुँचाथा, जहां देखताथा विष्णुरूप अपने आत्माकोही देखता था। हे मैत्रेय! कह, तू स्तुति गोविंदकी कैसे करता है। मैत्रेयने कहा, स्तुति तब होतीहै, जब निंदा हो, मैं चैतन्य द्वैत नहीं देखता, स्तुति निंदा क्या करूँ; जब प्रह्लादकी न्याई मुझकोभी दुःख होगा तब स्तुति करूँगा। पराशरने कहा तेरी क्या शक्ति है कि; दुःखविषे एक सरीखा रहे, तू तो आपदाकालमें क्लेशकाही भजन करे। अब मैं तेरा नाशकर्ताहूँ, संसारमें ऐसा कोई दृष्टि नहीं आता, जो तुझको मुझसे छुडावे। हिरण्यकशिपु भगवान्की निन्दाकरता था और प्रह्लाद स्तुति करताथा, तब भगवान्ने हिरण्यकशिपुको मारा, प्रह्लादको छुडाया, मैं निन्दा स्तुति किसीकी नहीं करता कि; तुझको छुडावेगा और मुझको मारेगा, ताते तुमको अबहीं भस्म करताहूँ। मैत्रेयने! कहा मैं मैत्रेय कहा हूँ, आपही है आपको आप भस्म कर और खा। पराशरने कहा–मैं राक्षस नहीं जो तुझको खाऊँ परन्तु अस्ति भाति प्रियरूप निजात्माते पृथक् नामरूप असत् जड दुःख दृश्यको मैंने खायाहै। जो तूभी सच्चिदानंद आत्माते भिन्न भ्रममात्र दृश्य बनेगा तो तुझको मैं विवेकरूप राक्षस खाऊंगा पर गोविन्दके: चिन्तन कर।

हे मैत्रेय! जब प्रह्लादने ऐसी स्तुति की, तब विष्णु गरुडपर आरूढ आये। प्रह्लाद दोनों हाथ जोडकर नमस्कार कर स्तुति करने लगा,

हे पूर्णआत्मा तुम्हारा दर्शन मुझको अमृतसमान है, जित
त्रोंसे देखता हूँ तितनाही अघाता नहीं । विष्णुने कहा,
इच्छा हो सो वर मांग । प्रह्लादने कहा, वर यही दे आप सहि
तुझहीको देखूँ जैसे—विषयी विषयोंसे प्रीति करता है, तैसे
मेरी प्रीति बनी रहै । हे प्रभो ! मेरे पिताने ! मनमें जो
कियाहै तिसकी निवृत्ति कर कि, तुझहीको सर्वरूप जाने।
कहा, प्रतिबंध अज्ञानका जिसके हृदयते उठता है तिसको
विषे शीघ्रही लीन करताहूँ; अब तुझको निर्वाणपद दिया ।
कहा—जो मेरेपर कृपा की है तो पिता मेरा मत मारियो,
तेरै साथ प्रेमकरे, अपने सहित. सर्व तुझहीको जाने,
नहीं, ऐसा कीजियो । जो पूछे तू कौनहै तो मैं ब्रह्मात्मा
विष्णुने कहा—अंतर बाहरते एकमन होकर कह । प्रह्लादने
म्हारे हमारे और सर्व जगत् विषे अंतर बाहर विभागरहित एक
पूर्णहै । विष्णुने कहा, तुझको जो यह दृढ निश्चय हुआहै तो पि
तुझको इतना दुःख दिया है, तिसका उपाय क्यों नहीं कर सक्ता
कहा सत्व, रज, तम रूप मायाको आश्रयकरके जगत्की
पालना संहार धर्म है, मैं चैतन्यमात्र निर्गुण अवाच्य पदहूं ।
कहा—जब मेरे पास आताहै तो कहताहै मैं ब्रह्मात्मारूप
पिताके निकट जाताहै और तुझको दुःख देताहै, तब कहता
विष्णुहै, यह क्या बात है ? प्रह्लादने कहा सहन दुःखकी
है । इसलिये योग्यहै कि, कष्टके समय तुझको चिन्तन
विष्णुने कहा तू मेरा भक्त भलाहै जो शासनाके समय मुझको
रखता है । हे प्रह्लाद ! पिता तेराभी तुझको आत्म उपदेश
है तू क्यों नहीं मानता । प्रह्लादने कहा, शास्त्रोंकी मर्यादा
वास्ते, उपासनाकी बडाई तथा दृढ भक्तिके निश्चयकी

दिखलाने वास्ते, भक्तजनोंका तुझमें निश्चय और प्रेमकी रीति तथा भक्त-जनोंपर तेरी सहायता, निःसन्देहता इत्यादिकी रीति दिखलाने वास्ते, युक्तियोंक्त बातहै। विष्णुने कहा—कुछ माँग? प्रह्लादने कहा देना धर्म ईश्वरकाहै, लेना धर्म जीवकाहै, मैं चैतन्य इन दोनों पदोंसे मुक्तहूँ। इससे तुझसे क्या मांगूँ और तू क्या देवे। विष्णुने देखा कि, अचा-है निःसंशय स्वरूपको प्राप्त हुयाहै। कहा—हे प्रह्लाद! अग्नि, जल, भूमि आदिक देवतोंको मैंने आज्ञाकी है कि, "तुम प्रह्लादकी रक्षा करो"। प्रह्लादने कहा—मुझ चैतन्यकी रक्षा कौन करे, उलटा मैं चै-तन्यही सर्व कल्पित पदार्थोंकी; सत्ता स्फूर्ति देकर रक्षा (स्फुरण) करताहूँ। विष्णुने कहा—अंतर्ध्यानहोताहूँ, अपने वांछितस्थानको जाताहूँ। प्रह्लादने कहा—इसी कारण भजन अवतारोंका नहीं करताहूँ कि, कभी दृष्ट कभी अदृष्ट होतेहैं अबसे आगे आत्मासे भिन्न जो सदा अपरोक्षहै, निश्चय न करूंगा; पर आये हो तो कुछतो आत्म-निरूपण करो? विष्णुने कहा तुझको आत्मधर्मसे क्या प्रयोजनहै। प्रह्लादने कहा आत्मा मैंहूँ मुझको प्रयोजन नहीं तो किसकोहै? विष्णु अपने स्थानको गये और प्रह्लाद जलसे निकसकर पिताके पास आया। तब राजा आश्चर्यमान हुआ कि, यह जलसेभी जीवता निकसा और क्रोधकर दोनों हाथ बांधकर मुखपर ऐसी चपेट लगाई कि, प्रह्लाद बेशुद्ध होगया, कहा हे अभाग! तू आप आत्मस्वरूपहै, विष्णुको अपने ऊपर रखताहै। विष्णुआदि जगत् मात्र तुझसे प्रगट हुयेहैं—जैसे—स्वप्नके ब्रह्मा, विष्णु महेश आदि जगत् स्वप्नद्रष्टासे प्रगट होतेहैं। अपने अमायक स्वरूपको त्याग कर मायाविषे क्यों लीनहोताहै। तुझको विपर्यय जानने विषे लज्जा नहीं आती। प्रह्लादने कहा—हे पिता! अचिंत आत्मा विष्णुको कहतेहैं, न औरको। राजाने कहा—जलविषे तू विष्णुको कहताथा कि, मैंही सच्चिदानंद रूप आत्माहूँ, अब विष्णु कहता है,

आपसे भिन्न द्वैतको स्थापन करना क्या योग्य है ? हे
जो सर्व विष्णु होता तो सर्व चतुर्भुज मूर्ति जन्मसे एकसमान
जो कहै कि, सर्व पंचतत्त्वरूप जगत् है तौ भी ठीकहै क्योंकि
तो सर्व पदार्थ मायाके-कार्य पंचभूतरूपहैं, यह दृष्टि मायाकी
तुझ अस्ति, भाति, प्रियरूप, आत्मासे पृथक् विष्णु सहित
रूप जगत् हैही नहीं तथा नाम रूप जगत् भी तूही आत्माहै
रहित भी तूही आत्माहै।हेपुत्र ! मन वाणीके बाचसे तू चैतन्य
अगोचर है, ऐसा होकरभी अपनेको मायारूप मानता है सो
कारणहै।प्रह्लादने कहा—हे पिता! जब मैं विष्णुसे संवाद कर
कहांथा।हिरण्यकशिपुने कहा—तू, विष्णु और संवाद तीनों मैं
आत्माही था क्योंकि मैं पूर्ण हूँ। प्रह्लाद! आत्मा बिना ध्यान
न सुन न कह, जो तूही आत्माहै तो विष्णुको क्यों आ
प्रह्लादने कहा ऐसे न करे तो भगवान् और संतको कानै
प्रयोजन मेरे कहनेका यही है कि; इस पदका नाश न हो। हे
मैं जगत् सर्व परमात्माहैं । हिरण्यकशिपुने कहा—हे पुत्र
परमात्मा, तूने सुनकर, मनमें कल्पित सिद्ध कियाहै, जब तू मैं
मिट जावेंगे; जो तू प्रथम नहीं होवे तो आत्मा परमात्माको कैं
इसलिये, जो कुछ भावाभावहै सो तूही है, तेरे अस्तित्वसेही
दिक पदार्थ सिद्ध होतेहैं । प्रह्लादने कहा, हे पिता ! जो सर्व
है तो, विष्णुभी अपना आत्माहै तो तू क्योंनहीं कहता, मैं
राजाने कहा, मुझ सच्चिदानंद रूप आत्मद्रष्टासे भिन्न, सर्व
चतुर्भुज मूर्ति अमूर्ति आदि, दृश्य वर्ग हैं, मैं द्रष्टा होकर दृश्य
होऊँ कभीभी द्रष्टा दृश्य रूप नहीं होता ।

पुनः हिरण्यकशिपुने क्रोधकर कहा तेरा नाशकरता है
तेरा नारायण कहां है ? प्रह्लादने कहा अबतक तूने नहीं

तुम्हारी इतनी शासना करने पर भी, जिसने मेरी रक्षाकी है सो नारायण है, सो प्रगट है, जहां प्रतीति करे वहांही प्रगट है। हिरण्य-कशिपुने प्रह्लादके दोनों हाथ बांधके, थंभसे लटकाया और खड्गन-ग्नकरके कहा—अब तेरी रक्षा करनेवाला नारायण कहां है ? बता। प्रह्लादने कहा-तुझमें, मुझमें, खड्गमें, थंभमें सबमें वही है। हिरण्य-कशिपुने कहा—यदि प्रगट है तो क्यों नहीं निकलता ? यदि नहीं निकलता तो भ्रमरूप है। प्रह्लादने कहा जो सर्व वही है तो तू मैं, थंभ सर्वमेंभी वही है, जैसेही यह वचन प्रह्लादने कहा तैसेही थंभसे गंभीर शब्द हुआ। हिरण्यकशिपुनेभी शब्द सुनकर शब्द किया और प्रह्लादसे कहा "आज तेरा परमेश्वर प्रगट हुआ है, देखूँ क्या होता है ?" शरीर विनाशी है, मुझ आकाशके सदृश चैतन्य आत्माका नाश कोई कर नहीं सक्ता क्योंकि, नाश, अनाश, ब्रह्मा, विष्णु, शि-वादि सर्व जगत् अपना स्वरूप होनेसे अपने आत्मस्वरूपको कोईभी नाश नहीं करसक्ता, यह आत्मविचार कर महातेजस्वी निर्भय होगया। प्रह्लादने कहा, अभी कुछ बिगडा नहीं, कहो सर्व विष्णु है। राजाने कहा—कामना मेरी पूर्ण हुई कि, मेरा शत्रु सन्मुख आया है, अब पीठ देना काम शूरोंका नहीं। प्रातःकालमें पूर्व दिशासे जैसे सूर्य उदय होता है तैसे नरसिंह भगवान् थंभसे प्रगट हुये और पर-स्पर दोनोंने बहुतकालतक महान् युद्ध किया, दोनोंमें कोई नहीं हारताथा परन्तु हिरण्यकशिपुके शरीरका भोग देनेवाले प्रारब्ध कर्म होचुकेथे, इससे अंतमें विष्णुकी प्रबलता हुई। सूर्यके अंतरबाहर, संध्यासमय, पौरके बीच, अपने पटोंपर उसका शरीर रखकर; अप-ने नखोंसे उसका उदर विदीर्ण किया। देवतोंने पुष्पोंकी वर्षा और स्तुति की और प्रह्लादको प्रेरा कि भगवान् का क्रोध शांत कराओ। प्रह्लादने कहा; हे बाजीगर ! यह कौतुक तूने क्या किया है ? नरसिंह भगवानने प्रह्लादको दोनों भुजामें लेकर, रुधिरसे

भरे हुये सुखसे ही प्रह्लादका माथा चूमा और आज्ञाकी कि,राज प्रह्लादने कहा—इस राज्यमें मेरी चाहना नहीं, मैं कैसे राज्य विष्णुने कहा, तथास्तु, ऐसाकहके विष्णु अंतर्धान होगये।

पराशरने कहा हे मैत्रेय ! मैंने तुझको इतना आत्मनिरूपण यहै तुझको क्या लाभ हुआ है, तूने एक कानसे सुना, दूसरे निकाल डाला, कहना मेरा अकार्थ हुआ । मैत्रेयने कहा श्रवणसे जाना कि, परमात्मा बिना और कुछ नहीं । पराशरने भयमान हो, माया विष्णुकी बली है । मैत्रेयने कहा, जब सर्व गो तो माया तथा विष्णु तथा तू, मैं, बल,छल,जगत,सब गोविंद हो रने कहा, मायाकी तथा कुसंगकी आश्चर्य रूपता सुन ।

जब प्रह्लाद पिताके स्थानमें राज्य पर बैठा, तब शुक्राचार्य हे प्रह्लाद ! सच कहो पिताके नाशवास्ते विष्णुको तूने कहा वा विष्णुने आपही मारा है । प्रह्लादने कहा,मैंने नहीं कहा, कुछ किया है सो आपही किया है, पिताके नाशकी मुझको नहीं थी । शुक्राचार्यने कहा, तेरा जीना मृत्युसे भी बुरा तक पिताका बदला वैरीसे न ले लेवै, जो कछु खावे पीवे तुझ है। प्रह्लादने कहा,किसकी शक्तिहै कि,गोविंदसे समता करै। शुक्रा ने कहा, गोविंद कहां है ! तेरे निश्चयविषे प्रकाश कियाहै, गोविंद चतुर्भुज विष्णु आत्मासे क्या न्याराहै ? यदि न्यारा हो अनात्मा होगा।धर्मशास्त्रमें लिखाहै,पिताका बदला पुत्र लिये बि कुछ करताहै, सो अयोग्यहै।प्रह्लादने कहा, प्रथम तुम कहते थे; का भजन करो अब कहतेहो गोविंदको मारो,जब हिरण्यकशिपुको के मारनेकी शक्ति नहीं हुई,तो मैं कैसे मारूँगा । शुक्राचार्यने कहा अहंकार करता था, तू आत्मशक्ति रखता है । हे मैत्रेय ! प्र पिताने कितनी शासना की परन्तु निश्चयसे न चलायमान हुआ

किंचित्मात्र संग शुक्रका हुआ तो प्रह्लाद कहने लगा। हे गुरो! आज्ञा करो तो शक्ति राखताहूँ। पुनः राक्षसोंको आज्ञाकी कि, विष्णुके मारनेवास्ते शस्त्र अस्त्र लेकर मैदानमें डेरा करो। पांच योजन नगरसे बाहर उतरा। विष्णु अंतर्यामीने विचारा कि, प्रह्लाद सद्बुद्धिको त्याग कर कुबुद्धि हुआहै परन्तु क्या करे कुसंग ऐसाही है किन्तु, भक्तकी कुमति दूर करनी चाहिये, नहीं तो विरदलजायमान होगा। ऐसा विचारकर विष्णु वृद्ध ब्राह्मण कृशरूप होकर, लकडी हाथमें लेकर, कांपते कांपते आये। लोगोंसे पूछा यह धूम धाम किसकी है। लोगोंने कहा प्रह्लादको विष्णुके साथ युद्ध करनेकी इच्छाहै। आगे मत जाव क्योंकि, ब्राह्मण आगे मिले तो अशुभहै। ब्राह्मणने कहा प्रह्लाद ब्राह्मणोंपर दयालुहै। लोगोंने कहा पहले था अब नहीं। ब्राह्मणने कहा मुझको क्या भयहै? बूढा हूँ, शरीर आज या कल नाश होनाही है। तब उन्होंने कुछ न कहा, और प्रह्लादके निकट ब्राह्मण गया। प्रह्लादने कहा तू कौनहै? किस कामके लिये आयाहै? ब्राह्मणने कहा तेरी शरण आयाहूँ, ईश्वरके अन्यायसे अति दुःखीहूँ कि सर्व कुल मेरा उसने नाश कियाहै। मैंने सुना है कि, तूने भी ईश्वरके नाशकी इच्छा की है, तू धन्यहै। यह बुद्धि तूनें गुरुसे पाई है। परन्तु कह उसका ठिकाना कौनसा विचारा है कि, मैंभी तुम्हारे संग जाकर पिता माताका बदला लूं। प्रह्लादने कहा ठिकाना उसका मैं नहीं जानता। तब ब्राह्मण सुनकर हँसा और कहा-जैसा मैं मूर्ख था वैसाही तुझकोभी देखा परन्तु मैं तेरे बलकी प्रथम परीक्षा करता हूँ, यह लकडी मैं पृथिवीपर डालताहूँ इसको उठाकर मेरे हाथमें दे, तो मैं जानूंगा कि यहभी काम तुझसे होगा. प्रह्लादने कहा अच्छी बातहै। ब्राह्मणने लकडी पृथिवीपर डाल दी। प्रह्लादने अपना सारा बल लगाया। परन्तु उठा न सका। तब जाना कि, यह विष्णुहै। ब्राह्मणके चरणोंपर

शिररक्खा विनती की कि मैं तुम्हारी शरणहूँ,मेरा अपराध क्षम
विष्णुने कहा उलटा तू मुझपर क्षमा कर, मेरे मारनेकी तूने इ
है। प्रह्लादने कहा—यह अपराध मेरा नहीं किन्तु,यह उपदेश
है। विष्णुने कहा इसीसे गुरू देखकर करना चाहिये—"गुरु
जानि, पानी पीजै छानि"। गुरु वही है जो ज्ञान विज्ञानसे
प्रह्लादने कहा—ऐसा गुरु कहाँ पावें-विष्णुने कहा एक सत, आप
तेरे निकट आवेगा परन्तु,चाहना उसके चरणोंके धूरकी मनमें

पराशरने कहा हे मैत्रेय! ऐसे बुद्धिवान प्रह्लादको मायाने
था; तू क्यों न भ्रमेगा। मैत्रेयने कहा, हे गुरो! भ्रमणा न भ्रम
माया हैं, मैं अमायारूप भ्रमण अभ्रमणरूप मायाका साक्षी
का कार्य भ्रमण अभ्रमण मनका धर्म है; मुझ चैतन्यका नहीं
रस हूँ। भ्रम अभ्रमकी निवृत्ति प्राप्तिवास्ते मुझ चैतन्यको
निष्कर्तव्य हूँ। पराशरने कहा—हे मैत्रेय! निष्कर्तव्य और
कथन चिंतन भी मनका मनन है, वास्तवमें तू अवाच्य
मैत्रेयने कहा प्रह्लादने भजन विषे क्या भेद किया था कि
माया लगी पराशरने कहा हे मैत्रेय! प्रह्लाद अपनेको वडा
था, यही मायाहै, जहां मैं तू न रहा वहां माया कहां है?

मैत्रेयने कहा-प्रह्लादको कौन संत मिले? पराशरने कहा
वान् आये और नगरके समीप एक स्वच्छ स्थानमें सो रहे
ने तिनको देखकर कहा तू कौनहै? दत्तने कहा मैं रा
तिनमेंसे एक राक्षस प्रह्लादके निकट आया और कहा एक
हंस आया है, तिसके वर्णाश्रमको हम नहीं जानते, तुमको
करना योग्यहै! प्रह्लाद सुनकर दत्तके निकट आया और
किया मनमें संका उपजी कि, वर्णाश्रम इसका नहीं
पूजा कैसे करूँ तब पूंछा—हे संत! रूप तुम्हारा क्या है

कौनहो ? कहांसे आये हो ? कहां जाओगे ? संतने उत्तर न दिया बहुरि प्रश्नकिया । तो भी उत्तर न दिया । पुनः तीसरी बेर बोला कि मैंने सुनाथा कि, प्रह्लाद परमहंस है, पर देखा तो अभी मायामेंही पडाहै क्योंकि, वर्णाश्रमका विचार करें तो स्थूल शरीरकेभी नहीं निकस सक्के, शरीर अतीत आत्माके कहांसे आवेंगे । जो वर्णाश्रमकी कल्पना माने भी तो स्थूल शरीरकेही वर्णाश्रम हैं, शरीर ही मायाहै, तातै शरीर अभिमानी तू मायामें ही पडा है । प्रह्लादने कहा—मैं मायासे अतीत हूँ, संतने कहा "मैं मायाते अतीतहूँ" यह भी जानना मायारूप है।पुनः संतने कहा यह भी माया है, जो पूछता है तू कौनहै ? कहांसे आयाहै? कहां जावेगा जब सर्वगोविंद है तो गोविंद कहाँसे आवे और कहांसे जावे आकाशकी न्याईं व्यापकहै; आना जाना परिच्छिन्नमें होताहै । हे प्रह्लाद ! देह अभिमान राक्षस स्वभावको त्याग और "देहादि संघात ते भिन्न साक्षी आत्मा मैं हूँ" इस दैवी बुद्धिको धारण कर, जो देव भावको प्राप्तहोवें । प्रह्लादने कहा अब मैं क्या करूँ ? संतने कहा वही कर जिससे करना कुछ न पडे प्रह्लादने कहा वह क्या वस्तु है ? संतने कहा—सो तूही देह से भिन्न चैतन्य अक्रिय आत्माहै । तुझमें कर्तव्यनहीं । जैसे घटसे भिन्न आकाश अक्रिय है । हे प्रह्लाद ! जब सर्व गोविंद है तू, मैं, नहीं तब आना जाना कहां है परन्तु पर अपरका वृथा अहंकार तूने कियाहै, सोई संगल[1] अपने पगको पायाहै, यह अहंकारही बीज आवागमनका है, जिसने इस संगल (जंजीर)को ज्ञानखड्गसे काटा, सो संसारसे पार हुआ है, हे प्रह्लाद ! नाम जो तूने पूछा है सो नामरूप तो भ्रम अहंकार है. सर्व मन बुद्धि आदिकोंका ज्ञाता प्रकाशक, एकही मैं चैतन्य साक्षी आत्मा हूँ, मेरा ज्ञाता और कोई नहीं जो मेरे आने जानेको जाने, इससे मैं स्वयंप्रकाश हूँ । तूने जो आपको शरीर माना है सो शरीर जब गिरेगा तब इसकी अव-

१ जंजीर ।

स्था तीनें प्रकार होवेगी, जले तो भस्म, खायतो विष्ठा, पडा
कृमि। ऐसी मलीन वस्तुको आप मानके अहंकार मानता
मैं राजा हूँ। जैसे भंगी पाखानों का, आपको राजामाने
मायाहै। कहाँ यह अत्यंत मल मूत्र नरक रूप दृश्य रूप देह
तू शुद्ध चैतन्य द्रष्टा साक्षी आत्मा, तुझको लज्जा नहीं आ
मल मूत्रको अपना स्वरूप मानता है। हे मूर्ख ! भंगी भी
अपना रूप नहीं मानते, तूतो पंडित है। देहाभिमानही स
का मूल है, जब अहंकार न रहा तब सर्व दुःख भी नष्ट होजा
हे प्रह्लाद ! बाहरसे कहै मैं शरीर नहीं, भीतरसे शरीर भी मा
तो भला नहीं, न वह ज्ञानी है न वह योगी है, केवल दुःखका
है इससे निश्चय जान, "शरीर कालका ग्रास है, मैं इस
भी कालरूप हूँ" इसके सुख दुःखसे क्यों चिंतातुर होता
क्यों मोह करता है ? हे प्रह्लाद ! तू पंचभूतोंसे तथा शब्द, स्पर्श
रस, गंध, पंचविषय रूप तन्मात्रा, दश इंद्रिय, चतुष्टय अंत
पंचप्राण तथा सात्विकी, राजसी, तामसी, तीनगुण इन
कारण माया सारांश यह कि, कार्य कारण रूप प्रपंचसे तू
शारीरक, वाचिक, मानसिक कर्मोंते तू चैतन्य मुक्त है औ
स्वरूप सच्चिदानंद रूप है, बुद्धि आदिक असत् जड तेरा
नहीं। प्रह्लादने कहा–तुम्हारे वास्ते शय्या ले आऊँ, तो शयन
अवधूतने कहा जो स्वाभाविक प्रारब्ध करके प्राप्त होवे
नहीं और कांटों पर शयन होय तो शोक नहीं। हे प्र
छत्तीस प्रकारके भोजन मिले तो खाता हूँ नहीं तो सूखे
निर्वाह कर्त्ता हूँ, और संतुष्ट हूँ हर्ष शोक नहीं। प्रह्लादने कहा
करो। अवधूतने कहा–राजा, प्रजा, देश, मेरी दृष्टिमें है

१ यह तन जारे भसम होय जाई, गाड़े कृमि कीट खाई शूकर श्वान
भोजन; तंनकी इहै बड़ाई।

किंतु अपने सहित यह सर्व वासुदेव जानताहूँ, इसीते स्वराजहूँ, यह सर्वकल्पित नामरूप मेरी प्रजा है। जैसे—स्वप्नमें सर्व नामरूप स्वप्नद्रष्टाकी प्रजाहै; स्वप्नद्रष्टा स्वराज है।

हे प्रह्लाद ! यह कार्य्य कारण रूप जगत्, मुझ चैतन्यकी प्रजाहै सत, रज, तम रूपमाया युक्त मुझ सच्चिदानंदसे त्रिगुणात्मक शब्दगुण सहित आकाश उत्पत्ति हुआ। आकाश संयुक्त मुझ चैतन्यसे वायु, वायु विशिष्ट मुझ चैतन्यसे अग्नि, अग्नि विशिष्ट मुझ चैतन्यसे जल,जल विशिष्ट मुझ चैतन्यसे पृथिवी,पृथिवी विशिष्ट मुझ चैतन्यसे औषधि, औषधि विशिष्ट मुझ चैतन्यसे अन्न, अन्न विशिष्ट मुझ चैतन्यसे वीर्य, वीर्य विशिष्ट मुझ चैतन्यसे शरीर हुआ सो शरीर समष्टि व्यष्टि भेदसे, दोप्रकारका है। पुनः आकाशादिक पंचभूतोंके एक एक आकाशादिकोंकी सात्विकी अंशसे श्रोतादिक पंचज्ञानेंद्रिय उत्पन्नहुई, पुनः पंचभूतोंके सात्विक साक्षी अंशसे चतुष्टय अंतःकरण हुआ, पंचभूतोंके राजसी अंशसे वाक्यादिक पंचकर्मेंद्रिय उत्पन्न हुई। पंचभूतोंके साक्षी राजसी अंशसे प्राण अपानादि पंचप्राण उत्पन्न हुये। पंचभूतोंके तामसी अंशसे काम क्रोधादिक पचीस प्रकृति उत्पन्न हुई। हे प्रह्लाद ! यह सब मेरी प्रजाहै,मैं चैतन्य राजा,एकही अपनी सत्तास्फूर्ति देकर; पूर्वोक्त सर्वनाम रूप प्रजाकी पालना करताहूँ; मुझको कोईभी पूर्वोक्त प्रजा पालना नहीं करसक्ती, इसीसे स्वराजहूँ। जो तूभी स्वराज मेरी मुवाफिक हुआ चाहताहै तो देह अभिमानका त्यागकर आपको सच्चिदानंद जान। आपको त्यागके भजन किसका करताहै तुझको लज्जा नहीं आती,खुद बादशाहहोकर भ्रमसे आपको भंगी मानताहै तुझ चैतन्यविषे द्वैतका मार्गही नहीं। चाहे मैं भी बनारहूँ और रस भजन का पाऊँ, सो कठिनहै। सच्चित् आनंद स्वरूप तू गोविन्दहै, गोविन्दके मिलनेकी चाहना करता है,यही तेरेमें बंधनहै। अपने

आत्मस्वरूप में मिलना बिछुडना नहीं तो कैसे मिलेगा, किन्तु मिलेगा ? जैसे—"लडका बगलमें ढंढोरा शहरमें" सो यह काम है । हे प्रह्लाद ! तू वर्ण आश्रमकी तलाशमें फिरता है, वर्णाश्रमही मिलेगा; निजस्वरूपको कैसे जानेगा क्योंकि, गो वर्णाश्रम है नहीं । हे प्रह्लाद ! तेरी न्याईं जो वर्णाश्रम रखता सको तू संत जानकर मिल, मैं वर्णाश्रम नहीं रखता हूँ । हे प्र तूने जो मेरे चरणोंपर शीश रक्खा है सो शीशभी मांस चर्म मेरे चरणभी मांस चर्म हैं, तेरे नमस्कारसे मुझको क्या लाभ तृषादिक, हर्ष शोकादिक, शीतोष्णादिक कोई भी क्लेश दूर नहीं न कोई सुख करता है, ताते मुझको तेरी नमस्कारकी इच्छा परन्तु, तू निजस्वरूपको जान जो कर्तव्यते छूटे । हे प्रह्ला श्रोत्रादिक पंचज्ञानेंद्रियोंकर शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध जाने जो मनकरके चिन्तनमें आते हैं, वाणीकर जो कथनमें आते प्रत्यक्षादि षट् प्रमाणोंकर सिद्ध होता है, सो तुम्हारा स्वरू किन्तु, जिसकर यह सर्व सिद्ध होते हैं सो तुम्हारा स्वरूप है । पढनेसें भी स्वरूपकी प्राप्ति होनी दुर्लभ है, बुद्धिकी चतुरा दुर्लभ है, बहुत श्रवणसे भी दुर्लभहै, कृच्छचांद्रायणादि व्रतों भी, तीर्थाटनसे भी, जपादिक उपासनासे भी, अग्निहोत्रादि कर्म स्वरूपकी प्राप्ति दुर्लभहै; परन्तु आत्मस्वरूपके जाननेकी पूर्वक, श्रद्धासहित, सत्संगतसेंही स्वरूपकी प्राप्ति होती है तुझको स्वरूप दर्शन होगा, तब अंतर बाहरपना त्यागके होवेगा । हे प्रह्लाद ! यह तूने अकार्थ माना है कि, मैंने बहुत गोविन्दका भजन किया है पर शांति न आई; तेरे मनविषे का गोविंन्दको कैसे पावे । जिह्वासे नारायण२कहना, मनमें कामना रके सुखोंकी रखनी, यही कपट है । हे सर्वनारायण और आप

...रखना, इस कपटको त्याग जो आपसे आप होवे। संसारमार्गमें भी जो किसीसे प्रीति करता है तो जब लग भेद नहीं किया, तबलगही प्रीति रहती है, जब आपसमें भेद पडा, प्रीति नहीं कपट है। सहेतु अंतर बाहर सर्वका अंतर्यामी प्रकाशक, एकही सच्चिदानंद स्वरूप, आत्मासेही प्रीतिकर। आपा भ्रमके आरोपणसे भगवान् कैसे प्रसन्न होगा अर्थात् नहीं होगा। यदि पूछे आपा क्या है। "तो मैं प्रह्लाद जीवदास हूँ, नारायण हमारा स्वामी ईश्वर है" यही आपा है। परन्तु विचार कर देख दास स्वामी कहाँ है एक रस चिद्घन देवही है, निमकके डले वत्। प्रह्लादने कहा है रूप सत्ताको कौन सिद्धकर्ता है? संतने कहा "नहीं को है ने सिद्ध किया है, है को कोई नहीं सिद्ध करता; है ही सर्वको सिद्ध करता है" इसीसे है स्वयंप्रकाश है। प्रह्लादने कहा यह पद कैसे जाननेमें आवे? संतने कहा—है शब्द और है नहीं—ये शब्द और इन शब्दोंके अर्थ जिस अवाङ्मनसगोचर पद कर सिद्ध होते हैं सो तू है, तुझ अवाङ्मनसगोचर करकेही सर्व नामरूप प्रपंचकी सिद्धि होती है, तू स्वयंप्रकाश है, तुझको जानने वाला कोई नहीं। जैसे—सूर्य्य करही अंधकार प्रकाश दोनों सिद्ध होतेहैं।

हे प्रह्लाद! योग दोस्तीका नाम है। एक चींटीका मार्ग है दूसरा विहंगम मार्ग है, हठयोग चींटीमार्ग है; विचारयोग विहंगम मार्ग है, सो विचारयोग पूर्व तुझको कहा है, हठ योग हठियोंसे सीखले। जैसे नटसे नट शरीरकी कसरत सीखे, इसपर एक कथा सुनः—

१. अध्यात्मक योगीश्वरोंकी कथा।

एक समय मैं हिमालय पर्वतपर स्वाभाविक विचरता था और यह चिन्तन करता था कि, सर्व शिव है, शिवसे भिन्न कोई वस्तु है नहीं। जब पर्वतकी शिखर (शरीर) पर पहुँचा, तब देखा अनेक योगीश्वर

बैठे योगाभ्यास करते हैं, जो तू पूछे योगीश्वर कौन थे सो
पंच महाभूत, पचीस प्रकृति, तीनगुण, पंचज्ञानेन्द्रिय, पंचक
पंचप्राण, चतुष्टय अंतःकरण । सारांश यह कि, मन बुद्धि
अहंकार और समष्टि स्थूल सूक्ष्म कारण शरीर तथा जाग्रत
सुषुप्ति, शब्द, स्पर्श, रूप, रस गंधादि विषय तथा च
इन्द्रियोंके सूर्य्यादि देवता तथा पूर्वोक्त इन सर्वका उपादान
माया अविद्या रूप अज्ञान इत्यादि मनुष्य आकृतिको धारे
भ्यास करते थे । तिन योगेश्वरोंके मध्यमें पंचज्ञानेंद्रिय
बुद्धि चित्त अहंकार, किसी रीतिसे यह नवयोगीश्वर ज्ञान
थे । यद्यपि मुख्य ज्ञानरूप आत्माही है, तथापि ज्ञानरूप आ
प्रधान उपाधि होनेसे उन्हें ज्ञानी कहते हैं वा ज्ञानके साधन
ज्ञानी कहते हैं; वा सत्वगुणके कार्य्य होनेसे ज्ञानी कहते हैं
प्रकार नहीं । दूसरे सर्व अज्ञानी थे; तात्पर्य्य यह कि, कर्मे
ज्ञानके असाधन सर्वको प्रसिद्धही हैं इससे अज्ञानीकहल
मैंने पूछा हे योगेश्वरो! किस पदमें योग करतेहो? उन्होंने कहा
विषे। मैंने कहा—अकारका क्या स्वरूप है? उन्होंने कहा—ईश्वर
स्वरहै—जैसै—सर्व क, ख, ग, घ ङ, आदिक वर्णोंविषे व्या
और सर्व वर्णोंके उच्चारणका निर्वाहकहै । अकारही सतरूपहै
कि, सर्व वर्णोंका अकारमें अभाव है, तथा परस्पर में भी
है, परन्तु अकारका सर्वमें अनुस्यूतताहै । हे दत्त ! तैसेही शब्द
रूप, रस, गंध गुणोंसे रहित है सर्व गुणरूप भी वही है ।
समष्टि, व्यष्टि, स्थूल, प्रपंच तथा समष्टि व्यष्टि सूक्ष्म प्रपंच
समष्टि व्यष्टि कारण प्रपंच जिसकर सिद्ध होताहै पूर्वोक्त
प्रपंचविषे व्यापक हैं, पूर्वोक्त सर्व दृश्यका स्वरूप भूत
हुआ अपनी सत्तास्फूर्ति करके सर्वका निर्वाहक है ।

१ मनुष्य शरीररूप हिमाचल पर्वत ।

दृश्यरूप भी वही है;तथा सर्व दृश्यते अम्बरके समान असंग भी वही है। सर्व दृश्यका द्रष्टा साक्षीभी वही है; तुरीय वा तुरीयातीत संज्ञाका भी वाच्या वही है। अकार उपलक्षित् सत्, चित्, आनंद नामोंकरके भी वही कथन किया जाता है, तिसपदविषे हम योग करते हैं। मैं सुनकर हँसा और कहा—हे मित्रो! पूर्वोक्त सो पद तुम्हारा स्वरूप है, योग किस्से करते हो ?। सर्व दृश्य तुम्हारा ध्यान करता है, तुमको योगनाम संबंध किसी दृश्य पदार्थसे, क्रिया करके,करना नहीं पडता, तुम अधिष्ठानते विना कल्पित प्रतीतिका अभाव होनेसे, स्वतःही तुम अधिष्ठान का, कल्पित दृश्यके साथ योग है; कर्त्तव्यसे नहीं। जैसे—स्वतःही चीनीका खिलौनोंके साथ योगनाम संबंध है तथा जैसे—आकाशका स्वतःही सर्व पदार्थोंके साथ योग है, करना नहीं पडता ।जो अवाङ्मनसगोचर पद अपरोक्ष, हाजिर हुजूर, बल्कि सर्वका सिद्ध करता है, सोई तुम्हारा हमारा तथा सर्व जगत्का स्वरूप है, अन्य मनादिक दृश्य नहीं।

हे प्रह्लाद ! पूर्वोक्त अनेक योगियोंके मध्यविषे, पंच ज्ञानेंद्रिय चतुष्टय अंतःकरण, यह नव योगी ज्ञानीथे,अन्य अज्ञानी प्रसिद्धहीहैं। तिन ज्ञानी योगेश्वरोंके मध्य, मैंने पूछा कि, हे श्रोत्रेंद्रिययोगेश्वर ! महान्शब्द,मध्यमशब्द और निकृष्टशब्द वा ध्वनिरूप शब्द वा वर्णात्मक रूप शब्दोंकाही तुम ध्यान करसक्ते हो । शब्द रहित जो आत्मा हरिहै,तिसका तुम हजार यत्नसे भी ध्यान नहीं करसक्ते, यदि परमेश्वर आत्मां तुम्हारे ध्यानमें आवेगा, तब हरि आत्मा, शब्दरूप होनेसे, अनित्य होजावेगा, इस्से हे श्रोत्रइंद्रिययोगेश्वरो ! तुम्हारा नारायण आत्माका ध्यान करना निष्फलहै वा दंभहै किंतु, शब्दका ध्यान करना सफलहै। तैसेही हे प्रह्लाद!मैंने त्वचा इन्द्रिय योगेश्वरसे पूछा कि,तुम किसका ध्यान करतेहो?शीतोष्ण कोमल औरं कठिनादि

स्पर्शवान पदार्थोंकाही ध्यान तुम करसक्तेहो—स्पर्श रहित पदका योग नाम संबंध तुम कदाचित्‌भी नहीं करसक्ते, इससे कहनामात्रही है कि हम स्पर्श वर्जित पदविषे योगकरते हैं स्पर्शकाही तुम योग करते हो अन्य नहीं । हे प्रह्लाद! पुनः मैंने इंद्रिय योगेश्वरसे पूछा कि, हे देव! तुम सद्वक्ताहो, यथार्थ किसका ध्यान करतेहो ? उसने कहा हरि आदि स्थूल मूर्ति पृथिवी जल अग्नि तीन भूतोंका तथा तिनके कार्य आदिके रूपका ध्यान; इन्हींको मैं जानभी सक्ताहूं, इनसे अधिक अरूप पदविषे मुझसे योग नहीं होसक्ता।मैंने कहा जब तुम रूप रहित वस्तुविषे योग नहीं करसक्ते तो नाम रूप रहित पदविषे हम योग करतेहैं । यह तुम्हारा कहना निष्फलहै, यह है कि; तुम बहिरही षट् प्रकारके रूपका योग करसक्ते प्रह्लाद!पुनः मैंने रसना योगेश्वरसे पूछा कि,हे रसज्ञ विद्वान रहित ! तुम षट् प्रकारके रसविषेही योग करसक्तेहो, षट् आत्मपदविषे, तुम योग नाम संबंध नहीं करसक्ते ? इस्से सिद्धकरता आत्मपदविषे तुम्हारे ध्यान का यत्न अफलहै । प्रह्लाद मने घ्राणयोगेश्वरसे पूछा कि, हे घ्राणयोगेश्वर!सुगन्धि वान पदार्थसे पृथक् वस्तुका तुझको योग नाम संबंध कदा नहीं होसक्ता, इसलिये तुम्हारा भी कहना वृथाहै—कि, हम गंधरहित अखंड रूपविषे योग करते हैं । तात्पर्य्य यह कि श्रोत्रादिक पांचों योगेश्वर तो बहिर शब्दादिक पांचगुणों विषे नाम ध्यान करसक्तेहो, शब्दादिक पांचगुणोंते वर्जित जो प्रत्यक् आत्मा विष्णु है, तिसविषे योगनाम संबंध तुम नहीं सारांश यह कि, शब्दादिक गुणोंविषे, श्रोत्रादिक तुम योगेश्वरोंका; स्वतःही देश काल वस्तुके अनुसार, योग

मान संबंध होता रहताहै। इस हेतु शब्दादिक गुणोंविषेभी योग नाम ध्यान करना तुम्हारा निष्फलहै, तब शब्दादिक गुणों रहित अवाङ्मनसगोचर आत्मपदविषे योग करना कहने मात्र मिथ्या तुम्हारा भ्रम है और योग कथन अफल है, दोनों प्रकारसे तुम्हारा यत्न निष्फल है, किसवास्ते अपनी (भ्रमसे) आरामदारी भी खोते हो। हे प्रह्लाद! पुनः मैंने मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, चारों योगेश्वरोंसे पूछा कि, हे मन बुद्धि, चित्त अहंकार योगेश्वरो! जाति गुण क्रियादि संबंधवान् पदार्थोंकाही तुम चारों योग नाम संकल्प, विकल्प निश्चय, चिंतन, अहंपना, करसक्ते हो; जाति गुण क्रियादि संबंध रहित आत्मवस्तुमें कैसे योग तुम करसक्तेहो? किंतु नहीं करसक्तेहो। लाखों यत्नसेभी, तुम योगनाम संबंध आत्मासे अणुमात्रभी नहीं करसक्ते, इस हेतु हम सच्चिदानंद स्वरूप आत्मां विषे योग करते हैं, सो यह तुम्हारा कहना व्यर्थ है। तात्पर्य्य यह कि; तुम सर्वज्ञानी अज्ञानी योगीश्वर एक आत्मा करकेही प्रकाशमान हुये हो, तुम्हारे करके जो आत्मा प्रकाशमान नहीं, सोई तुम्हारा स्वरूप है, योग किससे करते हो? उन्होंने कहा तुम्हारे कहेसे हमने जाना है कि, अकार, उकार, मकार, वाचक और स्थूल सूक्ष्म कारण शरीर वाच्य, इस सर्व वाच्य वाचक संसारके, हमहीं निराकार; स्वप्रकाश, अक्रिय, एक अविनाशी, सर्वके सिद्धकरनेवाले हैं, हमारे में आना जाना योग करना नहीं बनसक्ता।

हे प्रह्लाद! वे योगेश्वर किंचित्‌मात्र उपदेशसेही स्वस्वरूपको जानगये इससे; हे प्रह्लाद! सुखपूर्वक अपने स्वरूपका विचारही विहंगम मार्ग है। प्रह्लादने कहा एकको ऊंचा और एकको नीचा कहना तुमको योग्यता नहीं। अवधूतने कहा—जब सर्व तूही है, ऊंच नीच कहां है? ऊंच नीच भी तूही है परन्तु मैं तुझको ऐसा कहताहूँ

जिसमें ऊंच, नीच, विहंगम, चींटी, मार्ग दोनों नहीं। प्रह्ला
तुम्हारे उपदेशसे मैं कृतकृत्य हुआ हूँ। मुझ चैतन्य स
आना न जाना है, न लेना है न देनाहै, न कहना न सु
जीवना है न मरना है; न ग्रहण है न त्याग है, न विहंगम
मार्ग है, न बंध है न मोक्ष है, न कोई शत्रु है न मित्र है
है न दुःख है, न प्रह्लाद है न अवधूत है, न देवता है न
न स्थूल सूक्ष्म कारण है; न राग है न द्वेषहै, न पर न अ
जीव है न ईश्वर है केवल, मन वाणीसे रहित, एक अद्विती
त्मा है। उपरोक्त चिंतनसेभी गूँगा मूक सा हुआ हूँ
रूपभी मैंही हूँ, मेरी मुझको नमस्कार है। आपही
करता हूँ, आपही सुनता हूँ, क्या कहूँ, ? द्वैत है ही नहीं।
सत्संग सफल हुआ है, उपमा तुम्हारी कौनसी रसना
तुम विषे मन वाणीका मार्ग नहीं, परंतु उपमा तुम्हारी यही
सर्व असर्व रूप तुमहीं हो, सर्व नाम रूप तुम्हारे विषेही
परन्तु कुछ हुआ नहीं। हे संतो ! मैंने तुमको अपना
दिया और आप स्वयं प्रकाश हुआ हूँ। अवधूतने कहा
कंह, जब सर्व तूही है, तो देना लेना कहां है।

पराशरने कहा—हे मैत्रेय! इस प्रकार कहकर दत्तात्रेयने
हम जाते हैं प्रह्लादने कहा तुम्हारे बिना मेरा जीवन न होगा,
नकरना कबूल करता हूँ, परसंग संतोंका त्यागना कबूल नहीं
क्योंकि, अनेक कोटि जन्मोंकी भटकना, सत्संगसे दूर होती
सके संगसे लोहा सुवर्ण होता है, पारस नहीं होता. परन्तु संत
कर संतही होताहै, इस हेतु संत मेरे प्राण हैं, प्राणभी कहां
आपही हैं। तुम इहांही रहो, जावो नहीं। संत दत्तात्रेयने
पूर्णहो, मुझ चैतन्यमें आना जाना नहीं। पुनः दत्तात्रेय, प्रह्ला
दृढबोध वास्ते, उपदेश करनेलगे हे प्रह्लाद ! परमार्थ रूप शिव

ौरं शिवको बाहर देखा चाहताहै,कैसे पावे। प्रह्लादने कहा,मैं आपको
हीं जानता कि,मैं कौन हूँ क्योंकि,आप अहंकार नहीं और सर्व आपही
आ हूँ। अवधूतने कहा—रसनासे कहताहै और मनमें द्वैत रखता है.
ह्लादने कहा द्वैत अद्वैत मुझ चैतन्यमें नहीं,तुम्हारे मनमें है,गुप्त प्रगट
वें जब मैंही हूँ तो रसना वाणी मन कहां है।अवधूतने कहा मेरा प्रयो-
न यही है कि आपविना न देखे,न सुने, न गुने, न सूचन स्पर्श करे.
योंकि तुझ बिना और कोई नहीं।दृष्टिमानको झूठ जानकर त्याग कर
र्थात् मिथ्या जान और आपकोही सत जान,तेरा कल्याण होगा।
ापा शरीरका त्याग कर, आपको सच्चिदानंद रूप जान। यही
िवकी पूजा है कि, आप सहित सर्व नाम रूपको शिव जान;
। इसप्रकार जान कि, समष्टि व्यष्टि नाम रूप प्रपंच मंदिर विषे,
त्यक् आत्मा स्वतः मैंही ज्योतिर्लिंग स्थित हूँ, सर्व नाम रूप प्रपंच
ुझ सच्चिदानंद शिवके पुजारी हैं । जैसे—सुवर्णके तथा मधुरता
वता शीतलता रूप जलके, भूषण तरंग पुजारी हैं इत्यादि
ष्टांत अनेकहैं। इससे मैंहीं चैतन्य सर्व दृश्यका पूज्यहूँ, मैंहीं
ूक्ष्मसे सूक्ष्महूँ और स्थूलसेभी स्थूलहूँ, यह नाम रूप प्रपंच मुझ
चिदानंद सूर्यकी किरणाहैं। मुझ चैतन्यकेही, नारायण, गोविन्द
च्युत, हरि, परमेश्वरादि नाम वेदने कल्पे हैं परंतु,मैं नाम रूपसे वर्जि-
हूँ। मैंहीं चैतन्य सर्व नाम रूप प्रपंचके कर्मोंके फलका प्रदाताहूँ,
ास्तवसे सर्व मैंही अस्ति भाति प्रिय रूप सर्वात्माहूँ और सर्वसे
तीत भी मैंही हूँ, इस निश्चय रूप पुष्प कर आत्मदेवकी पूजा कर।
ो कछु प्रारब्ध कर, शास्त्र अनुसार, यत्न रहित, प्राप्त होवे तिसको
र्तृत्व भोक्तृत्व अभिमान रहित निःसंशय भोग लगा. और सम्यक्
अपने स्वरूपको जान, यही आत्मदेवके आगे पुष्पहैं। अंडज,जरा-
ुज, स्वेदज, उद्भिज्ज, इन चार प्रकारकी खानिमें जितनेक चौरासी

लक्ष देहहैं, सोई मन्दिर हैं, तिनमें मैं एकही सच्चिदानं
शिवरूप आत्मा विराजमान हूँ। जैसे—सर्व उपाधिमें एकही
विराजमान् है। हे प्रह्लाद! ऐसा जान कि, पंचज्ञानेंद्रिय,
इन्द्रिय, पंचप्राण, चतुष्टय अंतःकरण, मुझ सच्चिदानंद शि
हैं, पूर्वोक्त पुजारी शब्दादिक निज निज विषयरूपी पुष्पों
कर मुझ चैतन्य देवकी निरंतर पूजा करते रहते हैं, मुझ
सत्ता स्फूर्तिरूप प्रसन्नता करही, इन पुजारियोंका
अर्थात् शब्दादिकोंके ग्रहण करनेकी सामर्थ्य होतीहै, अ
यह निश्चयही आत्मदेवकी पूजाहै। मुझ सच्चिदानंद स्व
चारों वेद भाटोंकी न्याई स्तुति करते हैं, मुझ चैतन्य देव
विष्णु, शिवादिक सर्व ध्यान करते हैं, और मैंहीं, ब्रह्मा वि
दिकहूं। मरना, जीना सोना, खाना पीना, लेना, देना,
मान, अपमान, सुख, दुःखादिक सारांश यह कि, कायिक
मानासिककर्म, सर्व मुझ चैतन्य देवकी पूजा है। सर्व
दृश्यका मैं चैतन्य ही मालिकहूँ और दृश्यरूप भी मैंहीहूँ
कारण रूप ब्रह्मांड जलधरीमें मैं चैतन्यही शिवलिंग स्थित
चन्द्रमा मुझ चैतन्यदेवके मन्दिरमें दीपक जल रहेहैं। ता
आकाश रूपथालमें, मुझ चैतन्यदेवके आगे, छोटे
दीपकहैं। अठारह भार बनस्पति, मुझ चैतन्यके कंठमें,
मालाहै। पृथिवी मुझ चैतन्य देवका सिंहासनहै, दशों दि
चैतन्यदेवकी पूजाहै। सुमेरु आदिक पर्वत मुझ चैतन्यके
काल मुझ चैतन्यके खेलनेका गेंदहै, सातोंसमुद्र मुझ
आगे जलके पात्रहैं। यावत् मात्र शब्दहैं सो मुझ चैतन्य
नौबत बाजरही है, वायु मुझ चैतन्य देवका पंखा खैंचरही है
मेरी शक्तिहै, पार्वती, लक्ष्मी सरस्वती, आदि देवियां इसी शक्ति
रहीं। विषय इन्द्रिय संबंधजन्य सुख दुःखका अनुभव मुझचैतन्य

भागे भोगहै । जीव ईश मुझ चैतन्यदेवके मुख्य पुजारी हैं।जगत्‌की उत्पत्ति पालन संहार मुझ चैतन्य देवकी क्रीडाहैं। सत्व, रज, ण मुझ चैतन्य देवके पहरेदारहैं।जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति मुझ चैतन्य देवके खेलनेके स्थानहै ।तात्पर्य्य यह कि, पूजक, पूज्य, पूज त्रिपुटी रूप सामग्रीसे सर्व जगत् मुझ चैतन्य देवकी पूजा करता है वास्तवसे त्रिपुटीरूप भी मैंहीहूँ, अत्रिपुटीरूप भी मैंहीहूँ । हे प्रह्लाद–जैसे स्वप्नमें,पूज्य,पूजक पूज, सर्व त्रिपुटीरूप प्रपंच, एक स्वप्नद्रष्टाकी ही पूजा करतेहैं, क्योंकि स्वप्नमें अन्यदेवका अभाव हैं वास्तवमें स्वप्नद्रष्टाही, सर्व स्वप्न प्रपंच रूप होनेसे, पूज्य पूजक पूज भाव भी तिससे भिन्न नहीं । तैसेही इस माया मात्र दृश्य जाग्रत् प्रपंचमें भी एक सच्चिदानंद स्वरूप द्रष्टा देव मैंही हूँ, जहां पूजा होती है, तहाँ चैतन्य देवकी ही पूजा होतीहै, अन्यकी नहीं।वास्तवसे जब सर्व सच्चिदानंद तूही है तब पूज्य पूजक भाव कहां है जैसे पंचभूतका कार्यरूप, कोई तृणादि एक वस्तु जाने कि सर्व भूत भौतिक दृश्य प्रपंच मैंही हूं। इसप्रकार यथार्थ चिन्तनमें, शास्त्र गुरुसंस्कार सहित,बुद्धिमान कोईभी विवाद नहीं करता,अन्य करते हैं,क्योंकि सर्व पंचभूत रूपही है तैसे–जिसने सम्यक् अपनेको अस्ति भाति प्रिय रूप जानाहै तो वह यह चिन्तन करे कि,"सर्व अस्ति भाति प्रियरूप सर्वात्मा मैंही हूँ" सो ठीकहीहै क्योंकि, अस्ति भाति प्रियसे पृथक् कोईभी दृश्यमान वस्तु है नहीं । इससे तूं आपको सर्वात्मा रूप जान ।ध्यान किसका करता है।ध्याता,ध्यान धेयरूप भी तूहीहै तथा तिसते रहित भी तूहीहै तो पुनः ध्यान किसका करताहै। हे प्रह्लाद! विश्वके देखनेकी इच्छा मत कर, अपने स्वरूपको जान, जब तू अपने स्वरूपको जानेगा तब सर्व दर्शन तेराही होगा। जैसे–घटको सर्व घटोंके दर्शनवास्ते बाहर नहीं जाना होता किन्तु,घट अपनेको मृत्तिका स्वरूप जाने तब

सर्व घटोंका यत्न विनाही तिसको दर्शन होताहै वा स्वप्नद्रष्टा स्वप्न पदार्थोंको देखने नहीं जाता किन्तु, अपना स्वरूप जानेसेही सर्व स्वप्न पदार्थ जाने जातेहै क्योंकि,स्वप्नद्रष्टामेंही तहै रज्जु सर्पवत् । हे प्रह्लाद ! न तू है, न मैं हूँ, सर्व मैंही हूँ अहंकारको त्याग जो आप होवें । प्रह्लादने कहा-आपेका त्याग तो आप क्योंकर होऊँ ? दत्तने कहा-आपा परिछिन्न अहंकार तब शेष रहा सो अवाङ्मनसगोचरहै । ताते सर्व साधनों का फल यही है कि, आप सहित जानें, सर्व सच्चिदानंद स्वरूप है । जिसको तू खोजता है सो तूही है।मैं ऐसा अतीत नहीं तुम्हारे राज्य संपदाकी इच्छा राखूं,मेरा प्रयोजन यही है कि, बिना कुछ न देखे, न सुने क्योंकि, तुझे सच्चिदानंद स्वरूप बिना कुछ है ही नहीं । दृष्टमानको असार, झूठ जान; प्रत्यक्ष जो मानहै (ब्रह्मासे लेकर चींटी पर्य्यंत) सर्वविषे एकरस शिव पूर्ण

अथ शिवकुबेरसम्बादाख्यान ।

हे प्रह्लाद ! इसी प्रसंगपर एक कथा सुन । एकसमय शिव में स्वामिकार्तिक गणेश और अनेक गणोंसहित बैठे थे, जटासे जो गंगा चलती थी, सो शिव शिव करती चली जा तहाँ सर्व पक्षीभी शिव शिवही बोलते थे।तिसी समयमें कुबेरने महादेवसे विधिपूर्वक दंडवत करके प्रश्न किया । हे महादेव दृश्यमान मूर्ति, अमूर्ति, सर्व असत्, जड; दुःखरूप प्रपंचही द्रियों करके देखने, सुनने, सूँघने, रस लेनेमें आताहै । तथा द्रियों करके भी शब्द उच्चारण, ग्रहण, त्याग, गमनागमन, मूत्र त्यागरूप, प्रपंचही ग्रहण होताहै, प्रत्यक्षादि प्रमाणों नाम रूप दृश्य प्रपंचकीही सिद्धि होतीहै, मन बुद्धि चित्त

करके भी माया, और मायाके कार्यभूत भौतिक पदार्थोंकाही मनन, चिंतन, निश्चय, अहंपना होता है। इन सर्वसे रहित वस्तुको मैं कैसे जानूँ? क्योंकर प्राप्त हो सोऊ कहिये? शिवने कहा—हे कुबेर! यह प्रमाता, प्रमाण, प्रमेयरूप, त्रिपुटी, तुझ निर्विकार, निर्विकल्प, सत, चित, आनंदस्वरूप करकेही सिद्ध होते हैं; कोई त्रिपुटी करके तू चैतन्य सिद्ध नहीं होता। त्रिपुटीसे भी त्रिपुटी सिद्ध नहीं होती क्योंकि, तुही चैतन्य स्वयंप्रकाश रूपहै। यद्यपि चक्षु सूर्य आदिक प्रमाण प्रकाशक और घट पटादिक प्रकाशक, आपसमें प्रतीत होतेहैं, तथापि सर्व नाम रूप त्रिपुटीको, कल्पित दृश्य होनेसे, त्रिपुटीमें प्रकाश प्रकाशक भाव नहीं बनसक्ता। जैसे—स्वप्नेकी कल्पित त्रिपुटी, स्वयंप्रकाश; स्वप्नद्रष्टा करकेही सिद्ध है; मिथ्या स्वप्न पदार्थों कर स्वप्नद्रष्टा सिद्ध नहीं होता तथा आपसमेंभी स्वप्न पदार्थ प्रकाश प्रकाशक भाव नहीं बनसक्तेतैसे—तुझ चैतन्य बिना, जाग्रतके पदार्थ आपसमें कल्पित कल्पितको सिद्ध नहीं करसक्ते। जैसे रज्जुमें कल्पित सर्प दंडको, दंड सर्पको और सर्व दंडमालाको, माला सर्प दंडादिकोंको सिद्ध नहीं कर सक्तेहे कुबेर! पूर्वोक्त सर्व नामरूप दृश्य पदार्थोंको; तू चैतन्य जानताहै, तुझ चैतन्यको कौन जाने, तू स्वयं प्रकाश,सर्व नामरूप दृश्यका, आस्ति भाति प्रियरूप प्रकाशक आत्माहै; तुझ सर्वात्माको अपनी प्राप्तिकी इच्छा लज्जाका काम हैजैसे—फेन तरंग बुद्बुदादिक सर्व नाम रूपकी मधुरता, द्रवता, शीतलता रूप जलही आत्मा है, तिन तरंगादिक मध्ये किसी तरंगको, अपने स्वरूप जलकी प्राप्तिकी चिंता करनी मूर्खता है। कुबेरने कहा बंध मुक्त क्याहै? शिवने कहा दोनों अहंकार तेराहै; नहीं तो बंध मुक्त दोनों रूप नहीं रखते किं, तुमको बता दूँ। कुबेरने कहा योग उपदेश करो? शिवने कहा योग यहीहै किं, जान आप सहित सर्वशिवहै। हे कुबेर! बुद्धिमानको एक

शैनही बहुतहै, निर्बुद्धिको परमार्थ पाना कठिनहै । कुबेर॰ धारणा कहो ? शिवने कहा–धारणा नाम निश्चयका है, निश्च॰ बुद्धिकाहै, बुद्धिका मुझ चैतन्य आत्मामें अत्यंताभाव है, क॰ परन्तु "आपको तू अवाङ्मनसगोचर सम्यक्‌ज्ञान" यही ॰ कुबेरने कहा हे शिव! हर्ष शोकसे कैसे छूटूँ ? शिवने कहा ॰ के द्रष्टा, तुझ साक्षीको हर्ष शोक कहां है ? हर्ष शोक मनके॰ आपको मनरूप मतमान ।कुबेरने कहा मनका रोकना कहो॰ कहा तुझ चैतन्यरूप आकाशका वायुरूप मन क्या बिगाड़॰ किंतु कछुनहीं करता । मन पंचभूतोंकी सांझी सात्त्विकी अंश॰ है,तू पंचभूतोंसे रहित है।मन कर कुछ बिगाड होताहै सो, पंच॰ बिगाड हो वा न हो, तुझको मनके रोकनेका क्या मतलबहै॰ शुभ अशुभ क्रिया देखके, अपनेमें आरोप कर संतापितहो॰ अज्ञान है । वा जब सर्व सच्चिदानंद स्वरूप शिवहै तब मन औ॰ कहाँ है? शिवहीहै । कुबेरने कहा-जब मैं नहीं तब तुम कहाँ हो ? ॰ कही त्वं होताहै, जब अहं नहीं, तब त्वं कहाँ है ? स्वर्ग नरक, बंध॰ हर्ष, शोकादि कहाँहै ? कहीं नहीं, जो है तो सच्चिदानंदरूप स॰ महादेवने कहा, हे कुबेर ! तू कौन है ? कुबेरने कहा मैं स॰ रूप शिव हूँ क्योंकि, अग्निकी संगतिसे लकडीका रूप नहीं॰ किंतु, अग्निही होतीहै । तैसे तू अग्नि और मैं लकडी, जब मैं॰ तुझको दिया, तू हुआ । शिवने कहा जबतक लकडी है ॰ अग्निहै–तैसेही जब तू है तब मैं हूँ, जब तू नहीं तब मैं ॰ हे कुबेर ! जहाँ अहंकार (मैं) नहीं तहाँ तू कौन है ? ॰ कुबेर तूष्णीं हुआ क्योंकि, आगे वचनकी ठौर न थी ।

पराशरने कहा हे मैत्रेय ! जब इसप्रकार दत्तने प्रह्लादको ॰ रकी कथाके मिससे उपदेश किया । तब प्रह्लादने कहा हे दत्त

ाना था कि,तेरी संगतसे कछु पायाहै,सो अब यह भ्रम मेरा मिटगया। क्योंकि, आदि अंत मध्य सर्व गुप्त प्रगट मैंही हूँ मेरी मुझको वंदनाहै। त्तने कहा-अब मैं जाता हूँ। प्रह्लादने कहा जहां जावे वहां सर्व मैंही ादत्तने कहा अब मैं नहीं जाता क्योंकि,तुझको परमहंस देखताहूँ प्रह्ला-ने कहा जो काग नहीं,तौ हंस कहां है? हे मैत्रेय! प्रह्लाद यह वचन कह र स्वरूपमें लीन हुआ और दत्त जैसे आया था तैसेही चला गया।

॥ इति श्रीपक्षपातरहित अनुभवप्रकाशस्य तृतीयः सर्गः॥ ३ ॥

अथ चतुर्थ सर्ग।

पराशरने कहा हे मैत्रेय! तूभी ऐसे मत जान कि, संग संतोंका ुझको हमेशह बना रहेगा, जो काल संतोंके संगमें व्यतीत होता है, ोई दुर्लभ जान। मैत्रेयने कहा तुम्हारे उपदेशसे मोमके समान गल ाया हूँ,जानता था कि,मैं ब्राह्मण हूँ,अब कितनाही ढूँढताहूँ पर ब्राह्म-ात्व नहीं पाता और यह भी नहीं जानता कि, मैं कौनहूँ ?इससे इस ारीरको जलायकर नाश करता हूँ, सर्व कर्तव्योंसे छूटूँगा और स्व-रूपको प्राप्त होऊँगा। पराशरने कहा हे मैत्रेय! शरीरके होतेही, तू चैतन्य, शरीरके कर्तव्यों अकर्तव्योंसे रहित स्वतः ही है। जैसे-आकाश घटके होतेही घटकी क्रियासे स्वतःही रहित है-ताते शरी-रके होतेही आत्मानात्माके विचाररूपी अग्निकर शरीर सहित शरी-रके कर्त्तव्योंको जला। जो कर्तव्योंसे छूटे अन्यथा नहीं।

अथ ज्ञानकी साधनव्याख्या।

पराशरने कहा हे मैत्रेय! सर्व जीवोंके अंतःकरणमें मल, विक्षेप ...रण तीन दोष रहते हैं। मल नाम पापका है,विक्षेप नाम चित्तकी

चंचलताका है, आवरण नाम अपने स्वरूपको न जानने
तीन दोषोंके दूर करने वास्ते तीनही उपाय; हिंदू, मुसल्मा
पारसी आदिकोंके सर्व शास्त्रोंविषे लिखे हैं । मल दोषके
वास्ते सर्व शास्त्रोंमें, सत् संभाषण आदि, वाक्यादि इन्द्रियों
रूप कर्मकांड लिखाहै । मनकी चंचलताके दूर करने वा
प्रकारकी, सगुण वा निर्गुण सच्चिदानंद रूप परमेश्वरकी प्रा
सर्वशास्त्रोंमें उपासना लिखी है वा चित्तका किसी सूक्ष्म वा
त्रिपुटीमें वा हृदय विषे,ज्योति इत्यादि वस्तुमें,बाहर वा अं
रूपी ध्यान लिखाहै । अज्ञान आवरणकी निवृत्ति वास्ते
विषे ज्ञानकांडही लिखाहै । जिस अंतःकरणमें पूर्व जन्म
वा इस जन्मके प्रयत्नसे पूर्वोक्त दोष नहीं, तिसपर शास्त्र
नहीं जिसमें मल विक्षेप दो दोष नहीं, केवल अपने स्व
जानना रूपी आवरणही दोषहै, तिसको केवल ज्ञानकांड
कारहै । यज्ञ, दान, तीर्थ, व्रत, जप, तप, होम, तडाग
ने तथा संध्या तर्पणादिक, यावत् मात्र शारीरिक शुभ
सो सर्व कर्मकांड कोटिमें हैं । ध्यान योगादि यावत्मा
क्रिया हैं सो उपासना कांड, कोटिमें हैं । केवल आत्म
रूप कथन करनेवाले शास्त्र ज्ञानकांडहैं ।

हे मैत्रेय ! अनेक प्रकारके शास्त्रोंमें वाक्य लिखे हैं, कि
ज्ञानकांड पहिले लिखाहै,कर्म उपासना पीछे लिखीहै;कि
उपासना पहले लिखीहै, कर्म ज्ञान पीछे लिखे हैं;किसी ज
पहले लिखेहैं, उपासना ज्ञान पीछे लिखेहैं; तात्पर्य यह
जगहमें पहले कर्म पुनः उपासना पुनः ज्ञान क्रमसे लि
जगहमें अक्रमभी लिखेहैं । पुनः कर्मकांड शास्त्रमें, अशु
निवृत्ति करवाने वास्ते, भयानकवाक्यभी लिखे हैं और शु
प्रवृत्ति निमित्त, रोचक वाक्य भी लिखे हैं, तथा यथार्थ

।—उपासना कांड शास्त्रमेंभी, अपनी रुचि अनुसार, अशास्त्री ात्म उपासनाके निषेध अर्थ भयानक वाक्यभी लिखे हैं; शास्त्रोक्त ासनाकी प्रवृत्ति अर्थ, श्लाघनीय रोचक, वाक्यभी लिखे हैं र यथार्थभी लिखे हैं। ज्ञानकांड शास्त्रमें भी, ज्ञानके माहात्म्यसे स्त्र निषिद्ध प्रवृत्तिके निषेधक, भयानकवाक्य भी लिखे हैं, और ानविषे प्रवृत्ति निमित्त, जीवताही मुक्त होता है इत्यादि, रोचक ाक्यभी लिखे हैं तथा निर्विकार निर्विकल्प स्वतःही यह आत्मा । स्वरूपहै इत्यादि, यथार्थ वाक्य भी लिखे हैं। सारांश यह कि, । शास्त्रोंका तात्पर्य्य, परंपरा वा साक्षात करके, असत् जड स्वरूप प्रपंच भ्रमकी निवृत्ति द्वारा, स्वभावसेही, निर्विकार नि-कल्प कल्पित बंध मोक्षरहित, मैं सच्चिदानंद स्वरूप हूँ, इस श्चयके बोधन करनेमें है।

हे मैत्रेय! ऐसा न होय, पूर्वोक्त शास्त्रोंके वाक्योंकी व्यवस्था न ानके, शास्त्र श्रवण करके, गुरुदत्त निज निश्चय का त्याग करे। ी धीर बुद्धिमान, बली हैं जो शरीरपात होय तो होय परन्तु, निश्च-का त्याग न करें क्योंकि, अनित्य शरीरको तो गिरनाही है। हे त्रेय! आप सहित सर्वको सच्चिदानंद जानना, यही मुक्ति है और ापको सच्चिदानंद न जानना, अपनेते मन आदि नामरूप जगत न्न जानकर तिनमें अहंकार करना, यही बंधहै, निर्भय होना तिस-कठिन है। हे मैत्रेय! यह जगत् स्वप्नके समान मिथ्या है और सत् स्वरूपहै। जिसने आपको शरीर मानाहै तिसको नरकते कसना कठिनहै क्योंकि, रुधिर, मांस, अस्थि, मज्जा, मल, मूत्र प इस शरीरके अभिमानकोही नरक कहते हैं। सर्व मलीन वस्तु-। यह शरीर मंदिर नरक है, जिस कायासे हेत है वही नरकहै। हे त्रेय! तू अपनी चाहनासे, मलीन देह अभिमान रूपी, महान धकूपमें पडा है, किसकी शक्तिहै जो तेरी रक्षा करे। इसलिये इस

असार शरीरकी प्रीतिका त्याग कर,शरीर अभिमानही आवाग
बीज है। अपने स्वरूपको सांगोपांग जान जो बंध मोक्षके
छूटे, नहीं तो दुःख होगा। हे मैत्रेय! इस मलीन शरीरसे
करना तुझको योग्यहै। मैत्रेयने कहा वैराग्य राग दोनों कहो
शरने कहा—वैराग्य यहीहै जो अपने सच्चित् आनंद स्वरूपसे
जगत्का अत्यंताभाव जानना और राग यहीहै कि, आप
सर्व नामरूपको, सत चित् आनंद स्वरूप जानना। वा अस
दुःखमय नामरूप, जगत्की भावना त्यागके, निज आत्मामें
करना यही रागहै। मैत्रेयने कहा हे पराशरजी! पूर्वोक्त वैरा
रागादिकोंका जानना न जानना मनका धर्म है, मुझ नि
निर्विकार चैतन्यका नहीं क्योंकि, जब गाढनिद्रा नाम सुषुप्ति
स्था होतीहै वा समाधि मूर्च्छा होती है, तब मन अपने
उपादान कारण में लीन होता है, तिसकालमें न राग
कल्पनाहै; न ज्ञानी, न अज्ञानी, न बंध, न मोक्ष, न हर्ष
ग्रहण त्याग, न सुख दुःख, न पुण्य पाप; न जीव ईश्वर
चैतन्य, न सत् असत्, न सूक्ष्म स्थूल, न माता पितादिक,
कल्पना नहीं होती, न अपने शरीरकी, न वर्णाश्रमकी, न दैवी
गुणोंकी, न धर्म अधर्मकी, न ऊंच नीचकी, न निर्विकल्प स
की; न स्त्री पुरुषकी; न शत्रु मित्रकी, न जातपांतकी, न लेने
न जप तपकी; न संसार असंसारकी, न साक्षी असाक्षीकी,
दृश्यकी, न फुरने अफुरनेकी, न माया रहित अरहितकी, न
नात्माकी, न शुचि अशुचिकी, न हिन्दु मुसलमानकी, न
मकी। तात्पर्य्य यह कि, सर्व नामरूप त्रिपुटी संसारकी
नहीं होती, मैं चैतन्य तो तिसकालमें भी हूँ, जो मेरा पूर्वोक्त
होता तो सुषुप्तिकाल में भी मेरे साथ होता, इससे अन्वय

करके जहां मन तहाँही पूर्वोक्त संसार धर्म है; जहां चित्त नहीं तहां पूर्वोक्त संसार धर्मभी नहीं। हे गुरो! यह नहीं कि, जो मैं चैतन्य सुषुप्ति अवस्थामें तो निर्विकल्प निर्विकार बंध मोक्षादि अनात्म धर्मरहित हूँ और अब जाग्रत् स्वप्न अवस्थामें सविकल्प सविकार बंध मोक्षादि सहित हुआ हूँ; ऐसा नहीं किन्तु, जो मैं चैतन्य सुषुप्ति अवस्थामें निर्विकल्प, निर्विकार, बंध मोक्षादि रहित था अब वर्तमान जाग्रत् अवस्थामें वा स्वप्नमें भी सोई निर्विकार निर्विकल्प बंध मोक्षादि रहित चैतन्य मात्रहूँ; इससे मायारूप मनके धर्म हैं; माया रूप, चित्तरहित मेरे धर्म नहीं। जैसे राजाके निवासके चार स्थान होते हैं—एक बाहर कचहरीका स्थान होता है, एक मध्यमें अपने माता, पिता, भ्रातादिक नजदीकी, संबंधियों सहित खान पानादिक सहित बैठनेका स्थान होताहै और तीसरा एकही, अपनी स्त्रीके साथ हास्य विलास करनेका अंतःपुर एकांत स्थान होता है। तथा पूर्वोक्त स्थानोंसे रहित सात्विकी एक भजनका स्थान होता है, तिसमें अन्य कोई पुरुष भी नहीं होता, एक राजाही होता है।

तैसेही—कचहरी स्थानापन्न जाग्रत् है क्योंकि, तहां इन्द्रिय मनादि स्वस्वकार्यमें सम्यक् हाजिर हैं, शब्दादि प्रजासहित तिन सबके मध्यमें, सर्व ऊपर, आज्ञा कर्ता आत्मा राजावत् है। मध्यस्थान स्वप्न है और अंतःपुर स्थानापन्न सुषुप्ति है क्योंकि, तहां अविद्यारूप स्त्रीही, अपने कार्य्य रहित, निजपति आत्माके पास होतीहै। तैसेही भजन स्थानापन्न तुरीय अवस्था है क्योंकी, तुरीयमें माया तथ मायाके कार्य्य, प्रपंचसे रहित, अपने स्वरूपका, विद्वानको निश्चय होता है। तीसरे एकांत स्थानमें वा भजनके स्थानमें जो राजा है और जो तिस राजाका निश्चय है कि, मैं क्षत्रिय राजा हूँ, यह स्त्रीभी नहीं, किन्तु मैं राजा हूँ। जब वही राजा कदाचित् मध्यस्थानमें वा

बाहर कचहरीके स्थानमें आताहै, तबभी वही राजा होताहै सका निश्चय होताहै, अन्यथा नहीं होता; यह नहीं कि, भजन स्थानमें और होगया है, मध्यमें और होगया है, और था, कचहरीमें और होगया है, किन्तु एक रस रा स्थानका भेद है, पुरुष राजाका भेद नहीं । तैसेही—यह तुरीय अवस्थामें तथा सुषुप्ति अवस्थामें, आत्मा निर्विकार नि सर्व संसार धर्मोंसे रहित है और स्वप्न जाग्रत्में, आत्मारूप राजा है तथा सविकल्पहै । राजाके समान आत्मा सर्व अवस्थामें से सेही निर्विकार, निर्विकल्प, एकरस, एकही है, विकारी, नहीं होता, मनादिकोंके समान—क्योंकि, मनादिक स्व विकारी है, इसलिये यत्नबिना, मुमुक्षुओंको, अपने स्वरू अवस्थामें, निर्विकल्प निर्विकार जानना । मैं चैतन्य नि निर्विकार संसारधर्मोंसे रहित, सभीअवस्थामें एक रस हूँ, वै मनकी कल्पना है, मेरी नहीं । हे मैत्रेय ! सर्व नाम रूप संसा सच्चिदानंद स्वरूपकर पूर्ण है, तू चैतन्य देव सदा संसारसे सर्वकी चेष्टा तुझ चैतन्य करही है, परन्तु तू सदा निर्लेप है हित सर्व सच्चिदानंद स्वरूप मैं हूँ, इस दृढबुद्धिके निश्चयका भक्ति है तथा ज्ञान है, तिससे पृथक् निश्चयका नाम अभक्ति अ

अथ राजा भरतका आख्यान ।

हे मैत्रेय ! इसीपर एक कथा सुन—पूर्व जन्म में एक भरत राजा, चित्तकी एकाग्रता रूप तप करता था और आत्म धानमें मग्न था परन्तु अपने स्वरूपका अपरोक्ष बोध तिसको हुआ था, इसीते तीनजन्म पाये।एकदिन तिसी वनविषे सिंह और सिंहके भयते मृग भागे।भागीहुई एक गर्भिणी हरिणीके

भयके कारण)बच्चा भरतके आश्रमके निकट—गिरपडा।कैसा बच्चा जो,माता पितासे रहितहै और कोई तिसका रक्षक भी नहीं, अतीव दरहै।अति कृपालु जो राजा भरत है, तिसने बच्चेकी यह अवस्था खकर, करुणा करके, अपनी गोदमें उठालिया। तिस बच्चेके साथ सा स्नेह किया कि, अपना जो ध्यान था वहभी भूलगया,तिस हरिके बच्चेकाही लालन पालन करने लगा। इसी हालतमें कुछ दिन ते,बच्चा बडा हुआ। एक दिन भरत फल फूलके वास्ते वनको या,पीछे बच्चा दूसरे मृगोंके साथ पशु स्वभावसे चला गया।भरतने आकर देखा तो बच्चा नहीं मिला,तिसके निमित्त विलाप करने लगा सके बिना बहुत व्याकुल हुआ।तात्पर्य्य यह कि, तिसकी कोमलको याद करते हुये, तिसका गुण गाता हुआ, तिसकी पालन पोषकी चिंताकरता हुआ, राजाके अंतःकरणकी वृत्ति मृगके आकारही गई। हे मैत्रेय ! प्रीतिका यही लक्षण है कि, तद्रूप होना। राजा रतने इसी वासना विषे, शरीरका त्याग किया; पुनः हिरनका न्म पाया। परंतु बीज आत्मज्ञानका उसके मनसे नहीं गया था लिये, ज्ञानपूर्वकही दूसरा जन्म पाया। पुनः ज्ञानपूर्वक तीसरा न्म ब्राह्मणके गृहमें लिया। माता पितानेभी जन्म नक्षत्र अनुार भरतही नाम रक्खा। हे मैत्रेय ! पूर्व अभ्यासके बलसे तथा ानके प्रतिबंधकके अभावसे, अपने सच्चिदानंद स्वरूपको संशय पर्ययसे रहित, गुरु उपदेश बिनाही, जानने लगा कि, मैं निर्विल्प, निर्विकार, स्वतःही, बंध मोक्षादि संसार धर्म तथा संसारसे हित सच्चिदानंद स्वरूप हूँ।

अथ ज्ञान प्रतिबंधकका वर्णन।

मैत्रेयने कहा हे गुरो ! ज्ञानका प्रतिबंधक क्या कहिये ? पराशरने हा हे मैत्रेय ! ज्ञानके प्रतिबंधक तीन प्रकारके भूत, भविष्य, वर्तमान

होतेहैं । वर्तमान कालमें—जो सुख दुःख रूप भोग भोगे
अनुभव कियाहै तथा तिन भोगोंके साधनोंका जो अनुभव
श्रवण मनन निदिध्यासन कालमें, तिन्हीं स्त्री आदिक प
स्मरण होना, अर्थकी तर्फ चित्त न लगना, इसका नाम भू
बंधहै। तिस भूत प्रतिबंधसे ज्ञान नहीं होता क्योंकि,मन ए
मन, भूत अनुभव करे पदार्थोंका स्मरण करेगा, तब गुरु
महावाक्योंका अर्थ निर्विकार,निर्विकल्प, निज स्वरूप आ
अनुभव होगा किंतु, नहीं होगा । मैत्रेयने कहा भूत प्रतिबं
करनेका उपाय कहो ? पराशरने कहा—हे मैत्रेय ! विचार द्वा
प्रतिबंधक पदार्थोंके साथ, अपना अभेद चिंतन करना कि
पदार्थ मैंही हूँ वा पूर्व अनुभूत पदार्थोंमें सम्यक् दोष दृष्टि
अब भावी प्रतिबंध सुन।

कर्मके तीन प्रकार ।

हे मैत्रेय ! देह अभिमान संयुक्त करे कर्मोंके फलकी महा
त्रता है। सो कर्म तीन तरहके हैं–(१) अनेक पूर्व मनुष्य
अहंकार सहित किये जो शुभाशुभ कर्म सो, संस्काररूप
शरीरमें स्थित रहते हैं तथा जिन कर्मोंको अनेक ऊंच नीच
सुख दुःख रूप फल आगे देनाहै तिन कर्मोंका नाम संचित
सो कैसे कर्म हैं, उनमेंसे अनेक कर्मोंका फल सुख दुःख भो
है और एक कर्मका फल एक शरीर पाकरभी सुख दुःख अने
पायकरभी भोगसक्ता है। कर्मोंकी विचित्र शक्ति है।(२)ति
कर्मोंके मध्यमें, जो इस वर्तमान शरीरके, एक वा अनेक
कर्महैं, तिन कर्मोंका नाम प्रारब्ध कर्म है । (३) वर्तमान
ज्ञानी वा अज्ञानीसे जो कर्म होते हैं, सो क्रियमाण कर्म
ज्ञानके देनेवाले कर्मभी, प्रारब्ध कोटिमें ही हैं । जिसके

रीरके उत्तर, अनेक शरीर पानेके वा एक शरीर पानेके प्रारब्ध
र्म है। वर्त्तमान शरीरमें, ज्ञानके साधन, हजार श्रवण मनन
दिध्यासन करो वा सत्संग करो, तिसको ज्ञान नहीं होता क्योंकि,
सको वर्त्तमान शरीरमें, अपने स्वरूपका सम्यक् अपरोक्ष ज्ञान
आ है, उसको आगे जन्म नहीं पाना, यह ज्ञानका नियम ठहरा
र प्रारब्ध कर्मको तो वर्त्तमान शरीरसे उत्तर अनेक वा एक अव-
मेव ऊंच नीच जन्मदेना है। तिन कर्मोंको वर्त्तमान शरीरमें
न नहीं होने देना, तिनका भी यह नियम ठहरा। तिन प्रारब्ध
र्मोंमें भी, ज्ञान पूर्वक प्रारब्ध क्षय हुये अंत जन्ममें, गुरु
शास्त्र सामग्री संपादन करके वा बिना सामग्री इस जीवको ज्ञान
ना, अवांतर जन्मोंमें न होना, यहभी तिन प्रारब्ध कर्मोंकाही
यम है। इससे वर्त्तमान भरत शरीर, गुरु शास्त्र श्रवण मनन
दिध्यासन ज्ञानने साधन हुयेभी, प्रारब्धरूपी प्रतिबंधके वशसे
सरे जन्ममें प्रारब्धरूपी प्रतिबंधके क्षयसे, गुरु शास्त्र सामग्री
नाही भरतको ज्ञान हुआ था इससे हे मैत्रेय ! प्रबल भावी प्रतिबंधके
करनेको कोई उपाय नहीं, भोगनेमेंही नष्ट होताहै।

वर्तमान शरीरमें ज्ञानके प्रतिबंधक दोष चार प्रकारके होतेहैं-कुत-
१ दुराग्रह २ विषयासक्ति ३ मंदबुद्धिता ४। ब्रह्मनिष्ठ ब्रह्मश्रो-
य गुरुमें श्रद्धा सम्यक् कर तिनके वाक् पुनः पुनः सर्व श्रवण कर-
से, पुनः मनन पुनः निदिध्यासन करनेसे वर्तमान जन्ममेंही अपने
रूपका सम्यक् अपरोक्ष ज्ञान होताहै।

हे मैत्रेय ! सर्व प्रतिबंधकोंसे रहित, विद्वान भरतने मनमें, विचारा
, वाणीद्वाराही राग द्वेष होताहै, मौन होनेसे किसीसे राग द्वेष नहीं
ता तथा संबंधी भी निकम्मा जानकर गृहस्थी जोडते नहीं।

मुझको ग्रहस्थाश्रम ग्रहण करनेकी इच्छा भी नहीं, बंधन
होकर देशाटन करनेकी इच्छाहै और प्रारब्धके अधीन भवि
इस शरीरकी ऐसेही होनी है, यह ईश्वरकी नीति है, इससे
मौन करनाही ठीकहै, गृहस्थीका बंधन नियंतही टूटेगा।
जन्म मरणके तथा राग द्वेषके भयसे, मौन ग्रहण नहीं करता
सम्यक् आत्मा अपरोक्षज्ञान हजार तरहके राग द्वेष करनेसे भी
को नहीं पाता, एक रागकी क्या गिनतीहै । परन्तु विद्वान्
होनेसे किससे राग द्वेष करे । पूर्व मैं अज्ञानी था इसीसे तीन
पाये, अब मैंने जानने योग्य पदको जानाहै, राग द्वेषादिक
मनके धर्म हैं, मुझ चैतन्यके नहीं ।

राजा भरत अंतिमजन्ममें जडभरत हुआ ।

हे मैत्रेय ! इसप्रकार वह ब्राह्मण विचार करके, जान बूझके
मूक होगया । उसदिनसे लेकर लोक तथा ग्रहके संबंधी
जडभरत कहने लगे उपनयन भी गृहस्थका न ग्रहण कराया
विशेष प्रीतिको भी (निकम्मा जानकर) त्याग दिया । जड
को यह बात अनुकूल होगयी । स्वतंत्र वन विषे, नगरों
पर्वतों विषे, कुंजों नदियोंके तटों विषे विचरने लगा । जो
प्रारब्धके अनुसार प्राप्त होवे तिसको भोगे, परन्तु राग द्वेष
प्राप्त होता क्योंकि, आप सहित सर्वको अपना सच्चिदानंद
जानता था ।

हे मैत्रेय ! कोई राजा तीव्र कामनावाले और अज्ञानी पंडितों
बोधन किया हुआ, देवीकी भेंट वास्ते कोई, निकम्मा
वनमें तलाश करता था, तिसको जड़भरत मिलगया ।
अनुमान करके जाना कि, यह निकंमा है, और देवीके सम्मुख
जाकर खड्गसे भरतका शिर काटने लगा । जड़भरत हँसता

किंचित्मात्र भी भयको न प्राप्त हुआ। अनन्तर मंदिरमें आकाशवाणी हुई—हे मूर्ख राजा ! यह ब्रह्मनिष्ठ विद्वान् चाहे तो तुझ मुझ सहित सर्व जगत्को भस्म कर सक्ता है क्योंकि; ब्रह्मवेत्ता ब्रह्मरूपहै, परन्तु यह समदर्शी स्वरूप है, इसीसे एक रसहै, तू ज्ञाननेत्रोंसे रहित अंध इस-को क्या जाने इससे तू मूर्ख है। अपना अपराध क्षमा कराओ, नहीं तो मैं तुझको दंड दूँगी। यह सुनकर हर्ष शोक रहित एकरस स्ववत् तिसकी अवस्था, राजा देखकर, आश्चर्यमान हुआ और जाना कि, यह कोई महानपुरुष है। अपना महान् अपराध जानकर शरणागत हुआ और पूछने लगा—हे भगवन् ! तुम कौन हो ? मेरा कसूर माफ करो तुम-ने कोई अलौकिक वस्तुको पाया है, जिस शरीर नाश अवस्थामें तु-म निर्भय और प्रसन्नहो। हे कृपालु ! समदर्शी महापुरुष, कालके भयसे रहित वस्तुका मुझदीन नवीनको भी उपदेश करो। इसप्रकार राजाकी सरल वाणी सुन करुणाके समुद्र जडभरतजी कहने लगे । हे राजन् ! अंतर जो बुद्धि आदिकोंका परिमाण करनेवाला है, जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्तिको, भूत, भविष्य, वर्तमान कालको, सत, रज, तमको, ज्ञान, अज्ञानको, जो सिद्ध प्रकाश करनेवाला साक्षी आत्मा है, सोई कालके भयसे रहित सच्चिदानंद स्वरूप वस्तु है । हे राजन् ! यह सर्व बुद्धिआदि दृश्य पदार्थ जाग्रत् स्वप्नमें होतेहैं, सुषुप्तिमें पुनः मिट जातेहैं, तिस बुद्धि आदिकोंके भावाभावको अनुभव करनेवाला द्रष्टावस्तु एक रसहै, इसीसे इस द्रष्टाको सत् कहते हैं । तैसेही—यह सर्व बुद्धिसे आदि लेकर माया पर्यंत, सर्व कार्य कारण रूप, संघात दृश्य जड रूप है, स्व पर का भी इस दृश्यको ज्ञान नहीं । जिस सत् वस्तु करके इस जड संघातकी चेष्टा होती है तथा सर्व बुद्धि आदिकोंके व्यवहारका ज्ञान होताहै, इसी नाम सत् वस्तुका चैतन्य रक्खा है ।

मन वाणीका गोचर, दुःख रूप दृश्यसे, पूर्वोक्त जो वस्तु भिन्न है तिसी सत् चित् वस्तुका नाम आनंद धरा है।

सर्व नाम रूप दृश्यमें आकाशके समान व्यापक बुद्धि आदिकोंके, सत् चित् आनंद द्रष्टाका नाम, विष्णु वेदने

अमंगल अकल्याण स्वरूप दृश्यसे सत् चित् आनंद वि द्रष्टाको, अतीत होनेसे शिवनाम वेदने कल्पा है ।

सर्व नाम रूप दृश्यजातका सच्चिदानंद द्रष्टाही स्वामी इसवास्ते किसीका नाम वेदने गणेश रखदिया है ।

हे राजन् ! विष्णुसहस्रनाम, शिवसहस्रनाम इत्यादि नामों सत् चित् आनंद द्रष्टावस्तु विषेही घटसक्ता है, तिससे पृथक् जड, दुःख, परिच्छिन्न, अमंगल रूप, दृश्य वस्तु विषे नहीं और सच्चिदानंद व्यापक वस्तुसेही मन वाणीके गोचर, सहित, जगत्‌की उत्पत्ति, पालना तथा संहार होताहै, सत् चित् व्यापक वस्तुही मोक्ष स्वरूप है । इससे भिन्न मोक्ष अंगीकार असत् जड दुःख रूप मोक्ष होवेगी । हर्ष शोकादिकोंके चित् आनंद वस्तुको, दृश्यरूप पृथिवीके कार्य, शस्त्र भी छेद करसक्ते, जल नहीं गाल सक्ते, अग्नि नहीं दाह कर सक्ती, शोषण नहीं करसक्ता । सारांश यह कि, सर्व दृश्यके दृश्य स्पर्शसे रहित, अहं बंध मोक्षादि रहित, स्वरूपसे ही, कल्प निर्विकार है, सोई तेरा स्वरूपहै । हे राजन् ! जो वस्तु दिकोंके फुरणेका, सविकल्प निर्विकल्पका तथा मना विकार निर्विकारका ज्ञाता है । तात्पर्य्य यह कि, ज्ञाता ज्ञेयादिक सर्व त्रिपुटियोंका जो प्रकाशक, सत् चित् व्यापक वस्तु है सोई तुम्हारा स्वरूपहै वही रूप है । ब्रह्मा, विष्णु, शिवादिकोंका भी वही स्वरूप चींटीका, चंडालका, स्त्रीका, भी वही स्वरूपहै, अतएव सर्व

ही स्वरूपहै। हे राजन्! मायारूप पंचभूतोंका विकार रूप यह संघात स्वरूप नहीं, किंतु पूर्वोक्त सत् चित् आनंद स्वरूप आत्माहै। यह असत् संसारको, असार स्वप्नवत्, जानकर इस देहमें अहंबुद्धि त्याग, पुनः तिस त्यागकाभी त्यागकर, पीछे जो शेषरहेगा सो अवाङ्मनसगोचर पदहै, सो तूही है। हे राजन्! मैंने आपको सच्चिदानंदरूप जानाहै इसीसे, असत् जड दुःखरूप संसारसे मुझको भय नहीं। कोई मैंने अमल नहीं खाया और न कोई मुझको जादू मंत्र आताहै, न कोई मैं कला विद्या सीखाहूँ, न कोई मुझमें सिद्धाई है और न कोई मैं रसायन जानता हूँ कि, काल ईश्वर शास्त्रके भयसे रहित हूँ किंतु, मैं केवल सच्चिदानंद स्वभावसेही, कालादिक दृश्यमें, असंग निर्विकार निर्विकल्प, आपको जानताहूँ इसीसे निर्भय हूँ। हे राजन्! ये अनात्मक दृश्यमान देह तो, ब्रह्मा विष्णु शिवादिकोंकेभी, अनित्य कालके ग्रासहैं, इन देहोंकी क्या कहनी है! तू आत्माही सत् चित् आनंद स्वरूप कालका काल चिरंजीवीहै, तूही काल सहित सर्व दृश्यकी उत्पत्ति सिद्ध करनेवालाहै, तूही चैतन्य स्वयंप्रकाश स्वतःसिद्धहै, किससे भयकरताहै। देहविषे अहंकार रूप दीनताको त्याग और "मैं सच्चिदानंद स्वरूप अवाङ्मन गोचरही सर्वात्मा हूँ" इस उदार निश्चयको धारण कर। हे राजन्! जब तू इस पूर्वोक्त उदार निश्चयको नहीं धारण करेगा तो इससे पृथक् किसी असत जड दुःख रूप वस्तुमेंही, निश्चय धारण करना पडेगा क्योंकि, मनको कोई न कोई निश्चय करनाही है, बिना किसीके निश्चय किये ठहरे भी नहीं, और बिना एक निश्चय किये आराम भी नहीं होता है। हे राजन्! असत् जड़ दुःख रूप वस्तुमें, अहं निश्चय करनेवाला असत् जड दुःख रूपही होता है। और मैं सच्चिदानंद व्यापक स्वरूप हूँ, इस निश्चयवाला सत् चित् आनंद स्वरूपही होता है क्योंकि, जैसा मनका दृढ निश्चय

होता है, वैसेंही तिसकी गति होती है। इससे, कायिक वाचिक इस संघातमें; सर्व व्यवहार शुभाशुभ होते न होते आपको सं- रोंका अकर्ता, अभोक्ता, द्रष्टा, साक्षी, असंग, निर्विकार, सच्चिदानंद स्वरूप जान । यह भी निश्चय बुद्धिका है इसको दृश्यरूप जानके अवाङ्मनसगोचर हो रह। साक्ष-साक्षी भाव है, फुरे कछु नहीं असत् जड दुःख रूप अपनी दृश्य विषे, भूलकर भी मतकर, दुःख होगा, आगे जो तेरी इच्छा है

पराशरने कहा हे मैत्रेय ! इस प्रकार जडभरत कहकर अपनी इच्छा अनुसार चले गये और राजा अपने स्वरूप जीवन्मुक्त होकर अपने राज्य व्यवहारको, कर्ता भोक्ता रहित, करने लगा पराशरने कहा हे मैत्रेय ! तू भी इसी धारण कर और देह अभिमानको त्याग । मैत्रेयने कहा-मुझ त्याग दोनोंहीं नहीं । मुझ अस्ति भाति प्रियसे आगेही पृथक् नहीं है अब धारण किसका करूं और ग्रहण त्याग करूं। निश्चय करना बुद्धिका धर्म है, सो नामरूपका निश्चय कर सक्ती है; नाम रूपसे रहितका नहीं। जो जो निश्चय नाम रूपकाही करूंगा, अंतमें नाम रूपकी ही प्राप्ति मिले अबहीं यत्न विना नाम रूपकी प्राप्ति है, फल क्या हुआ मैं चैतन्य बुद्धिसे परे हूँ कौन निश्चय धारण करे। असली मैंही चैतन्य, बुद्धि आदिकदृश्यसे, अवाङ्मनसगोचर बुद्धि आदिक ध्याता, ध्यान, ध्येय, सर्व दृश्यको धारण पीसे हुयेका पुनः क्या पीसना है ? पर कथा उस संतकी

। जडभरत और राजा रहूगणका वृत्तान्त ।

हे मैत्रेय ! कोई एक राजा था सो, सुखपालकी सवारी व्यसनीथा, रहूगण तिसका नाम था। एक महान शीतल

ऋतुके पुष्पोंसे, शीतल सुगंध वायुसे तथा अनेक पक्षियोंके शब्दों-संयुक्त पर्वत था; तिस पर्वतपर राजा गर्मीके दिनोंमें, अपने हसे पालकीपर सवार होकर, हमेशः हवा खाने तथा संतोंसे मिलने वास्ते आया करता था। एक दिन ग्रीष्मऋतुमें पालकीमें सवार होकर, तिस पर्वतमें, हवा लेनेवास्ते चला, मध्यमें सुखपालके उठाने वाले कहारोंको बीमारी होगई। राजाने सब हाल जानके अहलकारोंको हुक्मदिया कि,जल्दी कहारोंको लाओ सो,प्रमादि अहलकारे को कहारोंकी तलाश करतेहुये दो मनुष्य मोटे ताजे तिसी जंगलमें विचरते हुये मिले। कैसे हैं ये न हिंदू न मुसल्मान जाने जाते हैं,न नग्न हैं न सम्यक् वस्त्र भगवे पहरे हुये हैं, न केवल मुंडित हैं न केवल जटा-धारीहैं,न पंडित न मूर्ख जाने जातेहैं,न पूज्य न अपूज्य जाने जाते हैं, न अमीर न फकीर जाने जाते हैं,न शुद्ध न मलीन,न संत न असंत,न त्यागी न गृही जाने जाते हैं,अव्यक्तही तिनका निश्चय है, अव्यक्तही तिनका चिह्नहै।न इच्छावान् न अनिच्छित प्रतीत होते हैं,न संशक्तिमान् न असंशक्तिमान् प्रतीत होतेहैं, न सर्वज्ञ न अल्पज्ञ प्रतीत होतेहैं, न मौनी न अमौनी प्रतीत होते हैं, न रागवान न विरागवान मालूम होतेहैं, न श्रेष्ठ आचारवान न अश्रेष्ठाचारवान जाने जाते हैं, न भयवान् न अभयवान् प्रतीत होते हैं, न क्रोधी, न शांतिमान् न गुरु न शिष्यकर प्रतीत होतेहैं। न विवेकी न अविवेकी,न धूर्त न अधूर्त जाने जातेहैं, न धर्मी न अधर्मी,न उदार न कृपण जाने जातेहैं, न कर्मकांडी न अकर्मकांडी, न उपासक न अनुपासक जाने जाते हैं, न कवि न अकवि,न कामी न अकामी,न जीव न ईश्वर जानेजाते हैं। न भक्त न अभक्त, न लोभी न अलोभी, न संमोही न अमोही जाने जातेहैं। न ज्ञानी न अज्ञानी प्रतीत होते हैं,न सम्यक् कर्ता न अकर्ता, न भोक्ता न अभोक्ता प्रतीत होतेहैं। न मानी न अमानी प्रतीत होते हैं।तात्पर्य

यह कि, बाहिर किसीभी असाधारण लक्षण करके जाने
किन्तु, तिनका स्वसंवेद लक्षण है । जंगली पुरुषोंकी समान
जडभरत दोनों थे। तिनदोनोंको पकडकर राजाकी सु
जोड दिया और कहा जल्दी चलो । सो वे कभी जल्दी च
खडे हो जावें, कभी हँसे, कभी मौन होवें, कभी पाल
गिरपडे, कभी टेढे चलें, कभी सूधेही चलेजावें। राजा औ
कार बहुत तिरस्कारके वाक्य कहने लगे, बल्कि मूर्ख जो
खिदमतगार थे सो हाथोंसे तथा लकडियोंसे मारने भी लगे
जैसे थे तैसेही प्रसन्नमुख रहे, किंचित् भी हर्ष शोक नहीं कि
राजा, यह अवस्था देखकर, तत्काल सुखपालसे उतरा औ
करतेही प्रमादको त्याग कर, शुद्ध अंतःकरण हो विन्ती करे
स्वामिन्। आप संतोंको निष्प्रयोजन मैं असंतने दुःख दिया
करो और मुझको सत् उपदेश करो ।

प्रथम जडभरत बोला-हे राजन्! हमारे कांधेपर सुखपा
तूने पाप माना है सो, सुखपालका बोझ कांधोंपर है, कांधों
कमरपर है, कमरका बोझ गोडुपर है, गोडुओंका बोझ चर
और चरणोंका बोझ पृथिवीपर है, इससे पृथिवीसे क्षमा क
पृथिवीका बोझा जलपर है क्योंकि, कार्य अपने उपादान
रहता है। जैसे-घटादिक पृथिवीमेंही रहते हैं-तैसे-जल
अग्निपर है, अग्निका भार वायुमें है,वायुका भार आकाशमें,
श समष्टि सूक्ष्म अहंकार महत्तत्त्वरूप है, महत्तत्त्व माया
और कल्पित मायाका तथा मायाके कार्य बुद्धि आदिकोंका
नाम रूप दृश्यका, अधिष्ठान, आधार, तूही सच्चिदानंद
है, इससे तू चैतन्यही, अपने ऊपर आप, क्षमा कर वा न
क्षमा क्या करें? अथवा हे राजन् ! सुखपाल भी पृथिवी

भूत रूपहै और शरीरभी पृथिवी आदिक पंचभूत रूप है, पंचभूतही वभूतोंसे क्षमा करावे वा न करावे, पंचभूतही पंचभूतों पर क्षमा रे वा न करे। तथा पंचभूतरूप देहही पंचभूतरूप पालकी पर वार है और पंचभूत रूपही पालकीके उठानेवाले हमारे शरीरभी वभूत रूप हैं, तुझ असंग, निर्विकार, निर्विकल्प, संघातरूप, पुटीके द्रष्टा चैतन्यको, लोगोंके झगडेसे क्या पंचायत है। हे जन्! वृथा अहंकार तूने कियाहै कि, मैं सुखपाल पर चढाहूँ; चार सुखपाल कहां है, काष्ठहीहै, काष्ठ पृथिवीरूपहै, पृथिवी जल-रूप है, जल अग्निरूपहै, अग्नि वायुरूपहै, वायु आकाशरूप है, आकाश अहंकाररूप है, अहंकार महत्तत्त्वरूप है, महत्तत्त्व मायारूप सो माया तुझ चैतन्यमें रज्जुसर्पवत् कल्पितहै तुझ चैतन्यसें थक् नहीं, तूही है। कहो! सुखपाल कहां है? सुखपालका स्वरूप चारेबिना अभिमान मतकर। तुझको लज्जा नहीं आती कि, अपने पर आप सवारी करता है॥

।जगदुत्पत्ति।

हे राजन्! तुझ चैतन्य प्रकाशसेही यह देहरूप सुखपाल वा ह्मांडरूप सुखपाल उत्पन्न हुआ है। जैसे-स्वप्नद्रष्टासेही निद्रा दोष र स्वप्न सृष्टि उत्पन्न होतीहै। प्रथम तुझ निर्विकार सत् चित् आनंदसे, मायारूपी दोष कर, शब्द गुणवाला आकाश उत्पन्न हुआ। पुनः तुझ चैतन्य आकाशसे स्पर्श गुणवाला वायु हुआ। पुनः तुझ चैतन्यरूप वायुसे रूपगुणवाला अग्नि प्रगट हुआ पुनः तेजरूप चैतन्यसे रस गुणवाला जल उत्पन्न हुआ। पुनः तुझ चैतन्यसे गंध गुणवाली पृथिवी हुई, पृथिवीसे औषधी, औषधीसे अन्न, अन्नसें वीर्य,वीर्यसे शरीररूपी सुखपाल हुआ है। वा स्वप्नके समान क्रम विना ही "एककालावच्छेदेन" यह कारण कारजरूप संघात वा ब्रह्मांडरूप

सुखपाल, तुझ चैतन्यसे उत्पन्न हुआ है। क्रमसेभी तुझ
इसकी उत्पत्तिहै और अक्रमसेभी तुझसेही उत्पत्ति है।
जैसे—लोकविषे लौकिक पिता अपने पुत्रको उत्पन्न करता
आपको पुत्रसे जुदा जानताहै, तथा अपने पुत्रादिक ऊपर
लज्जावान होता है। तैसे—तू चैतन्य इस देह वा
सुखपालका सुखपालरूप पुत्रादिकका, अलौकिक पिता
देहादिसंघात रूप पुत्रको, अपना रूप जानता है और
ऊपर चढ़ता प्रसन्नता मानता है, तुझको लज्जा नहीं
इस प्रकरणमें देहादि संघात जो अपनेसे अत्यंत भिन्न है
अपना स्वरूप मानना यही चढ़नाहै। इससे इस संघात
लको आपसे भिन्न मानकर अहंकार त्याग। यद्यपि वास्त
त्याग तुझको आगेही सिद्ध है; जैसे—घटाकाशका घटसे संबं
नहीं, तथापि भ्रमसिद्ध संबंधके त्यागका त्यागहै। यह अ
दुःख रूप शरीर मेराहै वा शरीर मैं हूँ, यही इस शरीररूप
सवारी है। राजाने कहा—मैं शरीरके अहंकारसे कैसे छूटूँ
तूष्णीं हुये।

पराशरने कहा—हे मैत्रेय! जडभरतके तूष्णीं होनेपर वामदे
हे राजशार्दूल! जैसे तू इसकाष्ठकी सुखपालमें बैठा और सु
सुख दुःख भोगताहुआ भी, आपको सुखपालसे जुदाजानताहै
रूप तू आपको कदाचित् भी नहीं जानता, इसी प्रकार
लके उठानेवाले कहारोंसे, चोपदारोंसे तथा अन्य सं
आपको जुदा जानता है। जो कोई पूछे, यह सुखपाल
है; तब तू कहता है "हमारी है" यह नहीं कहता
सुखपालरूप हूँ। तैसेही—यह शरीर सुखपाल है, मन,
चित्त, अहंकार; सत, रज, तम, गुण, ये आठ, प्राण
रूप सुखपालके उठानेवाले कहार हैं। दश इंद्रिय

नेवाले चोपदार हैं और पंचभूतरूप काष्ठों कर रची हुई, यह संघात ब्रह्मांड रूप, सुखपाल है। शब्दादि पंचविषय रूप रस्तोंमें,मनादि कहार सुखपालको लिये चलते हैं। मायारूप पृथिवी इंद्रियरूप चोबदार, मनादि कहारोंका संघात वा ब्रह्मांडरूप सुखपालका ा अन्य सामग्रीका तू आधार है। हे राजन्! पूर्वोक्त कहार चोप- सहित असत्, जड, दुःखरूप यह (देहरूप) सुखपाल तुझ चित् आनंद स्वरूपसे अत्यंत भिन्न है, एक नहीं। तू चैतन्य प इस शरीररूपी सुखपालमें वा ब्रह्मांडरूप सुखपालमें स्थित ा हुआभी तथा इस संघातके सुख दुःखको अनुभव करता ाभी, असंग निर्विकार है हे राजन्! जब तू इस संघातको सुख- लकी न्याईं आपसे जुदा, अपनी दृश्य, जानके देह अभिमान गेगा और अपनेको प्रत्यक् चैतन्य स्वरूप जानेगा, तब हमारे ान जीवन्मुक्तहोकर विचरेगा। काष्ठकी सुखपाल और पंचभू- का विकार यह देहरूप सुखपाल, जडादि गुणोंकरके तुल्यही है। स्तवसे दोनों तुझ चैतन्यसे भिन्न हैं और तू प्रत्यक् चैतन्य दोनोंसे है, परन्तु काष्ठकी सुखपालसे निश्चयकर आपको जुदा मान- है और देहरूप सुखपालको अपना स्वरूप जानताहै, यह बडा श्चर्य है। हे राजन्! या तो दोनों सुखपालों ते आपको जुदा जान! दोनों सुखपालोंको अपना स्वरूप जान! एकको अपना स्वरूप नना, एकको न जानना, यह विचार रहितका काम है, विचारेसे नों समानही हैं; यह ऐसेहै जैसे कोई कहे एकही मुर्गी आधी मुई आधी जीवती है, यह न्याय मूर्खताका तुझको प्राप्तहोगा। अथवा राजन्! यह कार्य कारण रूप, सर्व ब्रह्मांडही, तुझ एकही सच्चि- नंद पुरुषकी सुखपाल है, देह अभिमानी, अज्ञानी जीव सुखपा- के उठानेवाले तेरे कहार हैं। काल तेरा चोपदार है, चांद सूर्य दोनों

मसाल चसाकर आगे चलनेवाले हैं । तारागण तुझ चैतन्य नेके पुष्पहैं; आकाश तेरा चंदोवा है । वायु तुझको पंखा है, सात समुद्र सहित मेघमाला तुझ चैतन्य पुरुषको पानी वाले हैं । माया तेरी शक्ति है; तीन गुण रूप ब्रह्मा, विष्णु, चैतन्य पुरुषके कारिंदा हैं । दिन और रात सुखपालके उठाने काष्ठ है, जिसको कहार पकडते हैं । अग्नि तेरी चिरागदान वाला है । यावत् वनस्पति तेरे सैर करनेका बगीचा है, सुमेरु पर्वत, तुझ चैतन्य पुरुषके ब्रह्मांडरूप सुखपालके सिराने शब्दादि विषय सुखपालकी कील लगरहे हैं । पृथिवी तेरे बैठनेकी जगह है । तात्पर्य यह कि, हे राजन् ! जैसे-तू काष्ठमय सुखपालमें स्थित हुआ, सुखपालके सर्व हाल द्रष्टा, सर्व प्रकार करके भिन्न है, काष्ठमय सुखपालके नाश नहीं होता । तैसे-तू चैतन्य पुरुष, एकही इस ब्रह्मांडरूप असत् जड दुःखमय सुखपालमें स्थित हुआ सत्ता स्फूर्ति करके, इस कार्य कारण ब्रह्मांडरूपी सुखपालका पोषण तू चैतन्य करता हुआ, इसके सर्व हालका ज्ञाता, रूप करके जुदा है। राजाने कहा जो-मैं शरीरसे भिन्न हूँ तो वामदेवने कहा-"मैं कौन हूँ" इस बुद्धिके चिंतनको, वाणीके अंतर जिसने जाना, वही तू निर्विकल्प निर्विकार है । ब्रह्मासे लेकर चींटी पर्यंत, सर्वका स्वरूप वही है" ।

ऋषभदेव व राजा निदाघका सम्वाद ।

वामदेवने राजा रहूगणसे कहा हे राजन् ! इसी कथा है सो तू सुन-एक समय ऋषभदेव निदाघ आश्रम पर स्वाभाविक ही विचरता हुआ आया । आया हुआ देखकर निदाघ उठ खडा हुआ, शास्त्र

जन किया और विनती की, हे महाराज ! भोजन कीजिये ! ऋषभदेवने कहा—बहुत अच्छा। तब राजाने अनेक प्रकारके भोजन कराय, जब जीम चुके तब निदाघने कहा हे स्वामिन्! अघाये हो? ऋषभदेवने कहा—हे राजन्! प्राणोंको क्षुधा थी, तिनोंने भोजन पाये हैं उससे प्राणोंसे पूछ! जो अघाये हैं तो प्राण अघाये हैं, मुझ चैतन्यको द्रष्टा होनेसे, मुझमें) क्षुधा अघावना दोनों नहीं। निदाघने कहा—तुम कहां, रहते हो? कहां जावोगे? आये कहांसे हो? ऋषभदेवने कहा—मैं चैतन्य आकाशकी न्याईं सर्वमें पूर्ण हूँ; मुझमें आवनाजाना नहीं। देशकाल वस्तु भेद से मुक्त हूँ। निदाघने कहा नगरमें चलिये और आराम करिये। ऋषभदेवने कहा—इस नामरूप ब्रह्मांड, नगर-विषे, आगेही मैं स्थित होरहा हूँ, मुझ चैतन्य बिना कोईभी जगह खाली नहीं। जैसे—घटाकाशको कहिये तुम नगर चलो जो लज्जाका काम है। हे राजन्! मैं चैतन्य आनंद स्वरूप हूँ और अक्रिय हूँ, मुझमें बेआरामदारी दुःख है नहीं कि, नगरमें जाकर आराम पाऊँ। यह सर्व जगत् नेत्रोंके खोलनेसे उत्पन्न होता है, यदि फुरणामात्र जगत् नहीं होता तो सुषुप्तिमें भी प्रतीति होना चाहिये, परंतु नेत्र मूँदनेसे मिट जाता है इससे मिथ्या है। और मिथ्याको सिद्ध करनेवाला तू चैतन्य सत्ता है। निदाघने कहा—मेरा हर्ष शोक कैसे दूर होवे? ऋषभदेवने कहा—हर्ष शोक मनके हैं, हर्ष शोकके द्रष्टा तुझ चैतन्यके नहीं। निदाघने कहा—जन्म मरण क्योंकर मिटे? ऋषभदेवने कहा—जन्म मरणादिक षट् विकार इस संघातके हैं, तुझ निर्विकार साक्षी चैतन्यके नहीं, मिटे कैसे। जैसे घटाकाश कहे जन्म मरणादिक मेरे कैसे छूटें, यह विना विचारेकी बात है, विचारेसे षट् विकार घटके हैं, निर्विकार घटाकाशके नहीं। निदाघने कहा—बंधकी निवृत्ति मोक्षकी प्राप्ति कैसे होवे? ऋषभदेवने कहा हे राजन्! प्रथम तू बंध मोक्षका स्वरूप कह? पीछे

मैं उपाय कहूँगा । निदाघने कहा—और तो कोई बंध मोक्षका
प विचार करेसे मालूम होता नहीं, केवल दुःख सुखही बंध
स्वरूप प्रतीति होता है क्योंकि; दुःखसे पृथक् बंधका अ
तो सुख आजाताहै, सुखसे पृथक् मोक्षका अर्थ करें तो
प्राप्ति होतीहै, इससे बंध मोक्ष सुख दुःख स्वरूपहैं, तिस
नहीं । ऋषभदेवने कहा सो सुख दुःखरूप बंध मोक्ष तो
किंतु अपरोक्षहीहै क्योंकि, जो देशांतरमें परोक्ष होवे स्वर्ग
हमको तुमको और सर्व जगत्को, प्रत्यक्ष दुःख सुख रूप बंध
का अनुभव नहीं होना चाहिये; हम लोगोंको बंधमोक्षरूप सु
खका अनुभव प्रत्यक्ष होताहै इस हेतु अपरोक्षहैं परोक्ष नहीं ।
वर्तमान शरीरमें ही सुख दुःख रूप बंध मोक्षका प्रत्यक्ष अनु
है सारांश यह कि, सुख दुःखरूप, बंध मोक्षके अनुभव
हम प्रत्यक् आत्मा बंध मोक्षसे भिन्नहैं; तो मरके वा कब कैसे
मोक्ष होगी ? किन्तु सुख दुःखरूप बंध मोक्ष कब हमारी हो
बात हमको कहनी वा अपने मनमें निश्चय करनी सो भूलका
क्योंकि, नित्य मुक्त शुद्ध प्रत्यक् आत्माको न पूर्व बंध मो
है, न अब है, न आगे होगी । हे निदाघ ! सुख दुःखरूप बंध
अनुभव करनेवाला, नाम सिद्ध करनेवाला तिन सुख दुःखसे
है, यह बात सामान्य पुरुष भी जानते हैं । इससे हे निदाघ ! इस
में, दुःख सुखरूप, बंध मोक्षको अनुभव नाम सिद्ध कर
कौनहै ? तथा बंध मोक्ष किसको है ? यह विचार करना चा
वाकादिक पंचकर्मेन्द्रिय तथा प्राण ये तो, केवल शब्दादिक वि
करनेवाले हैं, ज्ञानशक्ति इनमें नहीं केवल क्रियाशक्ति है
जड आकाशादि पंचभूतोंके, एक २ राजसी अंशसे उत्पन्न
इसीसे पंचकर्मेंद्रिय तथा प्राण, सुख दुःखरूप बंध मोक्षके ज्ञा

नहीं, तथा बंध मोक्ष इनका धर्म भी नहीं,घटवत् । तैसेही पंच ज्ञानें-द्रिय, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार चतुष्टय,अंतःकरण; जड पंचभूतोंके कारज होनेसे जडही है क्योंकि, जैसा कारण होताहै तैसाही कारज भी होताहै यह नियमहै । ज्ञानेंद्रिय तथा अन्तःकरण,कर्मेंद्रियों के तथा प्राणोंके बडे भाई हैं, किसी रीतिसे, ज्ञानेंद्रियोंमें तथा चतुष्टय अंतः-करणमें,ज्ञानशक्ति माने भी,तौभी वृत्तिरूप ज्ञानके उत्पत्तिके साधन हैं ज्ञान स्वरूप नहीं, इसीलिये श्रोत्रादिक ज्ञानेंद्रियोंसे केवल शब्द,स्पर्श, रूप, रस, गंधकाही ज्ञान होता है, तिनोंसे भिन्न सुख, दुःखरूप बंध मोक्षको तो स्वप्नेमेंभी नहीं जान सक्ते क्योंकि जो बंध; मोक्ष, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंधरूप होवे तो श्रोत्रादिक ज्ञानेंद्रियों से जाने जावें;सो तो बंध मोक्ष शब्दादिरूप हैं नहीं । इससे ज्ञानेंद्रियोंका धर्म, बंधमोक्ष नहीं तथा बंध मोक्ष ज्ञानेंद्रिय रूपभी नहीं । यद्यपि सर्व इंद्रियादि नामरूप दृश्यको बंध मोक्ष रूपही आगे कहना है तथापि इस प्रकरणमें बंध मोक्षको दृश्य इंद्रियादियोंते भिन्न कहनेका तात्पर्य है । तैसे—मन, बुद्धि,चित्त,अहंकाररूप चतुष्टय अंतःकरणका धर्मभी दुःख सुखरूप बंध मोक्ष नहीं, संकल्प, विकल्प, निश्चय,चिंतन,अहं-पणाही इनका धर्म है,अन्य नहीं ।जो बंध मोक्ष अंतःकरणकाही धर्म होवे तो संकल्प,विकल्प,निश्चय,चिंतन,अहंपणारूपही,दुःख सुखरूप बंध मोक्ष होवेंगे । इससे भिन्न बंध मोक्षका स्वरूप कथन करना केवल शास्त्र संस्कार रहित अविचारका काम है । इसलिये अंतःकरणका धर्म संकलपादि मात्रही बंध मोक्षका स्वरूपहै,कोई पृथक् पदार्थ नहीं यह सिद्ध हुआ क्योंकि,आभास सहित अंतःकरण वा अविद्याविशिष्ट चितन और अधिष्ठान कूटस्थ सहितका नाम जीव है । अंतःकरणसे चैतन्यको भिन्न करे वा नहीं करे, परन्तु सर्व प्रकारसेही चैतन्य, असंग,निर्विकार,सच्चिदानंद,जीवका लक्ष स्वरूपहै । तिसमें बंध मोक्ष

का उपयोग नहीं, उलटा बंध मोक्षको सिद्ध करनेवाला
स्वरूप है। विचार अंतःकरणमें अभासकेभी सुख दुःख रूप
धर्म नहीं वास्तवसे तिसको भी कूटस्थ होनेसे। प्रतिबिंब
होताहै! केवल आभासकेभी सुख दुःख रूप बंध मो
नहीं तथा केवल अविद्याकेभी सुख दुःख रूप बंध मोक्ष
क्योंकि, यदि अविद्याके धर्म होते, तो सुषुप्तिमें अविद्या तो
दुःख सुख रूप बंध मोक्ष नहीं, इस अन्वय व्यतिरेकसे अवि
बंध मोक्ष धर्म नहीं इससे आभास सहित अंतःकरणसे भिन्न,
वाचस्वरूप नहीं तिस जीवके वाचस्वरूपमेंही बंध मोक्षकी
हो वा न हो, जीवके लक्ष स्वरूप चैतन्य तेरे स्वरूपमें न
निदाघ! तात्पर्य यह है कि, अंतःकरणके संकल्प मात्र, दुः
रूप बंध मोक्ष सहज धर्म हैं, धर्मोंके उपदान कारण अंतःकर
के नाशविना, संकल्प रूप बंध मोक्ष धर्मोंका नाश नहीं होत
बंध मोक्ष संकल्प रूप धर्म अंतःकरण रूप हैं और अंत
उपादान कारण आकाशादि पंचभूत हैं इससे अंतःकरण
रूपहै। पंचभूतोंके नाश बिना अंतःकरणका अभाव नहीं
पंचभूतोंका कारण मायारूप अज्ञान है, मायाके नाश बिना
तोंका नाश नहीं होता,। इस्से, पंचभूत माया रूपहै और
रूप अज्ञानका सत्, चित्, आनंद स्वरूप आत्मज्ञान बिना
नहीं होता, सो सच्चित् आनंद स्वरूप मायासे आदि ले
पर्य्यन्त, सर्वको जाननेवाला, तूही आत्माहै। सो अपने स्व
न जाननाही मायारूप अज्ञान है, इससे अपने सत् चित् आनं
स्वरूपका ज्ञानही, अपेक्षित सुख दुःख संकल्परूप बंध मोक्षकी
त्तिका उपाय है। वा पूर्वोक्त बंधकी निवृत्ति रूप आत्मा आधि
मोक्ष रूप सुखकी प्राप्तिका उपाय है। हे निदाघ! जो पूर्वोक्त
क्षित बंध मोक्षकी निवृत्तिका वा बंधकी निवृत्ति मोक्ष सुख

आत्माकी प्राप्तिरूप निजस्वरूपका सम्यक् अपरोक्ष ज्ञान उपाय त्यागके, अन्य उपायमें प्रवृत्ति करता है सो दीपकको त्याग कर, अँधेरेके दूर करनेका अन्य उपाय, निष्प्रयोजन है तथा केवल फूसका कूटना है।

हे निदाघ! जो तू बंध मोक्षको पूर्वोक्तरीतिसे मायारूप नहीं माने तो कहो बंध मोक्षका क्या स्वरूपहै? द्रष्टा रूप है वा दृश्यरूपहै? दोनोंमें बंध मोक्षको एक रूपतो कहना पडेहीगा क्योंकि, द्रष्टा दृश्यसे कोई पृथक् तीसरा पदार्थ तो है नहीं दोही हैं। जब बंध मोक्षको सत् चित् आनंद स्वरूप द्रष्टा मानोगे, तो सत् चित् आनंद स्वरूपही बंध मोक्ष हुये, पृथक् न हुये सो सच्चिदानंद स्वरूप तूही है, तुझको बंधकी निवृत्ति, मोक्षकी प्राप्ति वास्ते, कर्तव्य करना निष्फलहै क्योंकी, तुझ चैतन्यते पृथक् बंध मोक्षका अभावहै। तैसेही हे राजन्! जब बंध मोक्षको दृश्य रूप मानोगे तौ भी अंतःकरण सहित, बंध मोक्षके द्रष्टा तुझ सत् चित् आनंद स्वरूपको, बंधकी निवृत्ति मोक्षकी प्राप्ति वास्ते, यत्नकरना योग्य नहीं। तात्पर्य यह कि; दोनों प्रकारसे तुझको बंध मोक्ष वास्ते कर्तव्य नहीं क्योंकि, अपना स्वरूप स्वतःसिद्धही बंध मोक्षसे रहित निष्कर्तव्य है, तिसमें कर्तव्य बुद्धिही भ्रांति है, सो भ्रांति रूपही बंध मोक्षका रूपहै, निष्कर्तव्यमें कर्तव्य भ्रांतिके दूर करनेमेंही, गुरु शास्त्र वैरागादि साधनोंकी सफलता है। कोई स्वरूपकी प्राप्तिमें सफलता नहीं क्योंकि, अपना स्वरूप आगेही प्राप्त है, गुरु शास्त्रको नवीन प्राप्ति नहीं करानी इससे, तू आपको अस्ति, भाति, प्रिय, रूप सर्वात्मा जान जो सर्व रूप होवें।

हे मैत्रेय! इतना कहकर-वामदेवने कहा हे रहूगण! इस प्रकार सर्वके सारभूत; आत्माका निदाघको उपदेश कर ऋषभदेव चले गये। तब निदाघने अस्ति भाति प्रिय सर्वरूप आपको, जाननेवत्

जाना । तैसेही हे राजन्! तू भी आप सहित सर्वको अस्ति प्रियरूप जान वा मायासे लेकर देह पर्यंत सर्व नामरूप आपको साक्षी द्रष्टा जान। जिसको यह निश्चयहै, प्रगट अनेक नाम रूप, संसार तिसको भासता भी है परन्तु एक आत्माही है। जैसे—अनेक घटपटादिक अज्ञानीको प्रतीत होते भी, विचा एक पृथिवी ही जानता है । जैसे स्वप्नपदार्थ, अनेकरूप प्रती भी, स्वप्नद्रष्टाके ज्ञाताको, सर्व स्वप्नद्रष्टा रूपहै । तैसे—नामरू भिन्न भासतेहैं पर मूल सर्वका आत्मा एकही है, इसहेतु अज्ञानि दृष्टित्याग, विद्वानोंकी दिव्य दृष्टिको ग्रहणकर । ब्रह्मासे लेकर पर्यंत सर्वप्रकाश अपनाही जान कि, सर्व अस्ति भाति प्रियरू हूँ, मुझसे भिन्न कुछ नहीं ।

पराशरने कहा हे मैत्रेय! इस प्रकार वामदेवके अमृतरूप सुनकर, रहूगणराजा कृतकृत्य होकर, वामदेवकी समान स्वतं वांच्छित स्थानोंमें विचरने लगा और वामदेव जडभरत भी चले हे मैत्रेय!पुनः जडभरत विचरता हुआ अपने जन्मस्थानको आये जडभरतको देखकर माता पिताने मोहकर कंठ और भाइयोंने भी प्रीति कर ऐसा समझा कि,जडहै तो भी हमार ई है । जडभरतको मीठा भोजन दिया। पीछे पिता हाथ पक एकांत स्थानमें लेजाकर प्रीतिपूर्वक पूछने लगा—हे पुत्र ! वचन नहीं कहता, तुझको किसीका भय है, वा जानके नहीं करता। कह, तू मुझको योगी भासता है क्योंकि, जिसको सुख दुःख शोक, मान अपमान, एक समान है, वही योगी है। कह इस समुद्रसे पार कैसे होऊँ ? हे मैत्रेय ! जडभरतने विचारा अब करना योग्य है तब पिताका वचन सुनकर हँसा पुनः रुदन लगा। यह देख पिताने कहा हे पुत्र! तेरा हँसना रोना क्योंकरहै

भरतनें कहा हे पिता ! मेरे हँसने रोनेसे तुझको क्या प्रयोजन है ? पर हँसना सुखसे होताहै, रोना दुःखसे होताहै, सुख दुःख दोनों पुण्य पापरूप कर्मसे होते हैं । पुण्यपाप रूप कर्म इस देहसे होते हैं (देहै उपलक्षित सर्व जगत् जानलेना) और देहरूप जगत् अपने सत् चित आनंद स्वरूपके अज्ञानसे होता है, सो अज्ञान अपने सच्चिदानंद स्वरूपके ज्ञानसे दूर होता है इससे हे पिता! स्वतःही उरार पारसे रहित अपने स्वरूपको जान ! जो हँसना रोना रूप संसार समुद्रसे पार-होवे, अन्यथा न होवेगा । जैसे—घटाकाश स्वतः ही घटरूप समुद्रके उरार पारसे रहित है—घट दृष्टिसे नहीं ।

। ज्ञानका साधन ।

हे पिता ! सो आत्मज्ञानके वास्ते दो उपाय हैं—एक हठयोग हैं, दूसरा आत्मविचार योग है । आत्मविचार बिना आसन प्राणा-याम, धारणा, ध्यान, समाधि आदि मन वाणी कायाके हठसे जो योग करना है सो हठ योग है पर शरीर और शरीरके कर्तव्य सर्व मिथ्या हैं, अनात्मा मिथ्यासे जो उत्पन्न होता है सो साँच नहीं होता; मिथ्याही होता है । समाधिसे आदिलेके मल त्याग पर्यंत, सर्व कायिक वाचिक मानसिक क्रियाओंको, अनात्म धर्म जानना और मन वाणीके गोचर सर्व दृश्य वर्गको असत् जड दुःख रूप जानना और सर्व कर्तव्यों से रहित आपको स्वतःही सत् चित् आनंदरूप जानना, कोई कर्तव्यकर आपको निष्कर्तव्य नहीं जानना, यही आत्मयोग है । जैसे—स्वतःही

---

१ शरीर ही जगत् रूप है क्योंकि, सुख दुःखमय सर्व व्यवहार शरीर सम्बन्धीही हैं; स्त्री, पुत्र, माता, पिता, कुल, कुटुम्ब, परिवार, देश, नगर, ग्राम, लोक, परलोक आदि सर्व देहके सम्बन्धी हैं—यदि देह न हो तो किस प्रकार किस लिये इन सबोंसे प्रीति किया जावे अर्थात् उनसे क्यों सम्बन्ध रखा जावे । शरीर द्वाराही मनुष्य मोक्षभी प्राप्त करताहै, सुखदुःख भोगता है इत्यादि । विचार करनेसे भलीप्रकार प्रमाणित होजावेगा कि, शरीरसे भिन्न जगत् कोई भी पदार्थ नहीं ।

जगत्के सर्व कर्तव्योंसे रहित सूर्यका स्वरूप दाहकता, उष्णता, प्रकाशता, असंगता जानना, पिताने कहा, हे पुत्र ! मैं पापी कैसे आत्मा होऊँ ? जडभरतने कहा ! तू चैतन्य तीनोंकालविषे पापरूप अहंसे स्वतःही रहित है, पापी क्यों होता है ? तुझ चैतन्यकी आदि, मध्य, कोई नहीं जानता क्योंकि, सर्व दृश्यके ज्ञाता तुझ सत् चित् आनंदका और ज्ञाता है नहीं, जो तेरा और ज्ञाता माने, सो वह तुझ सत् चित् आनंदसे भिन्न, असत् जड दुःख रूप होवेगा। जो असत्, जड दुःखरूप है सो ज्ञाता होही नहीं सक्ता है। इससे हे पिता ! तुझ चैतन्यविषे पाप किसने देखा? पुण्य पापके जाननेवाले तुझ चैतन्यमें पाप नहीं। दुःखके कारणका नाम पापहै, सो सर्व दुःख अहंकारसे है, इससे पापरूप अहंकारको त्याग, जो निष्पाप होवे। ब्राह्मणने कहा जीवहूँ। जडभरतने कहा तूने सत्य कहा कि, सर्व दृश्यका जाननेवाले तुझ चैतन्यमें मृत्यु नहीं। भला जो तू जीवही है, तो वर्णाश्रम क्या है ? ब्राह्मणने कहा—जीव विषे वर्णाश्रम नहीं। जड भरतने कहा हे पिता ! जो जीवमें वर्णाश्रम नहीं, तो पाप पुण्य जीव विषे कहाँ है ? जब तू आपको वर्णाश्रमी मानता है, तबही पापी है। जब वर्णाश्रम मिथ्या है तब धर्म अधर्म कहां है ? जब धर्म अधर्म नहीं, तो धर्माधर्मका कार्य शरीर कहां है, जब शरीर नहीं, तब जीव भी नहीं, जब जीव नहीं तब ईश कहाँ है ? इससे जीव ईशादि सर्व जगत् स्वप्नवत् हैं, एक तूही चैतन्य स्वप्नद्रष्टावत् सत्य है। ब्राह्मणने कहा, जब सर्व मिथ्या है, तो शरीरमें जो शुभाशुभ कर्म होता है, तिसका फल सुख दुःख कौन भोगताहै ? शरीर तो इहाँही भस्मीभूत होजाता है। जड भरतने कहा, हे पिता! जैसे स्वप्नमें शरीरादिक कर्म करते हैं और फल पायकर स्वप्नमेंही शरीरादिक भोग भोगते हैं, जन्मते हैं, मरते हैं, अनेक क्रीडा करते हैं; परन्तु स्वप्नद्रष्टा चैतन्य असंग निर्विकार

पिता! जो तूँ चैतन्य स्वप्नका द्रष्टा था, सोई तूँ चैतन्य इस स्वप्नवत् जाग्रतका द्रष्टा है, सोई तूँ सुषुप्ति मूर्च्छाका द्रष्टा है, द्रष्टाका भेद नहीं इससे तूँ आत्मा शुभाशुभसे न्यारा है, तुझे क्या भय है, सदा प्रसन्न हँसता रह। पिताने कहा—सदा यज्ञादि कर्म करता था, तुम कहते हो कर कुछ नहीं। जडभरतने कहा! यज्ञ नाम विष्णु व्यापक वस्तुकाहै, सो व्यापक चैतन्य तूँही है, यह जाननाही यज्ञहै। इससे अपने आपको कैसे यज्ञ करता है, तू स्वयंप्रकाश स्वरूप है, तूही सत् चित् आनंद, जीव रूप होकर, ब्रह्मासे लेकर चींटी पर्यंत, सर्व शरीरोंमें कर्ता है और सर्व शरीरोंमें तूही सर्वका भोगता है। असत जड़ दुःख रूप दृश्य करता भोक्ता बन सक्के नहीं। हे पिता! जब तूँ शरीर नहीं तब कर्मोंसे क्या मतलब है। पिताने कहा। कर्मोंका लोप करकर, मैं प्रेत हो जाउँगा। जडभरतने कहा हे पिता! शरीरसे भिन्न होनेका नाम प्रेत है, सो इस संघातसे जो आपको भिन्न जानता है वही प्रेत है। पिताने कहा, आप भ्रष्ट है मुझको भी भ्रष्ट करता है? जडभरतने कहा, जो नामरूप दृश्यसे आपको न्यारा जानता है वही भ्रष्ट है, इससे मेरे समान तूभी भ्रष्ट हो। हे पिता! मुझको पिता पुत्रकी भावना नहीं, किंतु तू मैं, और सर्व जगत्को मैं सत् चित् आनंद अपना स्वरूप जानताहूँ। पिताने कहा, जिस उपायसे भय कालका दूर हो सो कह? काल महाबली है तिससे मेरी रक्षाकर! जडभरतने कहा, शरीर होते कालका भय दूरहोजावे यही कालसे रक्षा है, जब काल आया उस समय कालसे रक्षाकी चाहना करनी, वा मरे पीछे रक्षाकी चाहना करनी निष्फल है। हे पिता! तू अपने अकाल स्वरूपको जान और काल सहित सर्व जगत्को भ्रमरूप जान। हे पिता! अपने स्वरूपके अज्ञानसे इस वर्तमान शरीरसे पूर्व, भ्रमरूप तूने ब्रह्मासे लेकर चींटी पर्यंत अनेक

शरीर पाये हैं, पुनः त्याग किये हैं, पुनः धारण करेगा। शरीरोंकोही कालनाशकरता आया है, तुझ एक रस चै कालने अबतक नाश नहीं किया, तो अब कैसे नाश करेगा पूर्व था सोई तू अब है, वैसाही आगे रहेगा, बदला नहीं; जैसे रने अनेक बार नवीन वस्त्र ग्रहण किये हैं और अनेक बार जीर्ण स्त्रों को त्यागभी कियाहै, परन्तु शरीर वही है बदला नहीं; जैसे ल, पत्र, बदलते रहते हैं वृक्ष नहीं बदलता। हे पिता ! जो चैतन्य समान नाशवाला होता तो, तुझ चैतन्यको भी काल नाश कालका किसीसे, तुझसे वा आत्मासे, भाई चारा नहीं। तैसे जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, होगई पर तिनका अनुभव करनेवा रस वही चैतन्यहै, बदला नहीं। हे पिता ! देश, काल, वाले देहादिक असत् जड दुःख रूप दृश्य पदार्थोंकोही करता है, तू सच्चिदानंद काल सहित दृश्यका द्रष्टा देश, काल भेदसे रहित है तुझको कालका क्या भय है ? उलटा तुझ कालादिक भय रखतेहैं। मैं, तू; यह जगत् तथा काल केवल अहंकार तेरा है। जबलग मायाका कार्य देहादिक वस्तुको आपामाननेवाला अहंकारहै तबहींतक कालहै क्योंकि समान अहंकार अति दुःखदायक है, परिच्छिन्न अहंकार कालके वशीकार होते हैं, स्वतः नहीं। वा अपने प्रियरूप आत्मासे जो पूर्वोक्त अपने स्वरूपके अज्ञान करके प्रतीति है, सोई काल है। वा शब्दादि विषयोंमें जो अति स्नेह काल है क्योंकि, अज्ञानही जन्म मरण आदि दुःखोंका कारण आपा माननेवाला अहंकार न रहा तो काल कहाँ है ? जैसे मैं अहंकार नहीं तो कालका भय भी नहीं, जहां अहंकार है काल है। इससे हे पिता ! देहादिकोंविषे अहंकारको त्याग, जो

भयसे रहित होवे, अन्य किसी–प्रकारसेभी कालकी निवृत्ति नहीं होगी। पिता–हे जडभरत! कालसेही सर्व जगत्‌की उत्पत्ति, पालन, संहार होता है; कालकी कैसे अनित्यताहै। जडभरत–हे पिता! "काल करकेही सर्व जगत्‌की उत्पत्ति, पालन, संहार होता है" यह अर्थसंयुक्त शब्द जिसकर सिद्ध हुआ सो, तू कालका सिद्ध करनेवाला, कालसे न्यारा है बरन् काल तेराही आत्मा हृषीकेश है। जैसे स्वप्नमें काल करकेही, स्वप्न जगत्‌की उत्पत्ति पालना संहार प्रतीति होती है परंतु, काल सहित सर्व स्वप्नपदार्थ कल्पित हैं; कल्पित पदार्थोंकी कल्पित पदार्थ तो, उत्पत्ति पालन संहार नहीं करसक्ता, स्वप्नद्रष्टाही सत् है। हे पिता! अपने आत्माको, कोई भी भय वा नाश नहीं करसक्ता और होता भी नहीं। जैसे अग्निकी दाहशक्ति अपनेसे भिन्न काष्ठादि सर्वका दाह कर सक्ती है, पर अपने आत्मा अग्निको दाह नहीं कर-सक्ती, वा अग्निके अंतरबाहर मध्य स्थित आकाशको भी दाह नहीं करसक्ती। तैसे कालके अंतरबाहर मध्य पूर्ण कालका तू आत्मा है। कालके सिद्धकर्ता, तुझ प्रकाश स्वरूप, आत्माको काल कैसे नाश करता है, किंतु, भयमान हुआ नाम भी नाशका नहीं ले सक्ता। हे पिता! जैसे तूने कालका निश्चय किया है तैसे सर्व इंद्रियोंके, प्रकाशक, अपने आत्मा हृषीकेशमें निश्चय कर, जो भ्रम-कालका तेरा नाश हो, इसीलिये जान मैं हृषीकेश हूँ। हे पिता! जैसे जिस पुरुषने, आकाशादि पंचभूतोंके कार्य, इस शरीरको वा किसी तृणादिक एक पदार्थको विचारकर, संशय रहित सम्यक्, पंचभूतरूप जाना है; सो पुरुष इस एक शरीरमें स्थित हुआभी; ब्रह्मांड और ब्रह्मांड अंतरवर्ती सर्व भूरादि पदार्थोंको, अपरोक्ष हस्ता-मलकवत् देखता है क्योंकि, ब्रह्मांड और ब्रह्मांड अंतरवर्ती भूरादि सर्व पदार्थ पंचभूतोंके कार्य होनेसे पंचभूतरूपही हैं। इससे उस

पुरुषको कोई भी भूत भौतिक अज्ञात पदार्थ नहीं रहता। तिसको प्रत्यक्ष ज्ञान होता है। कारणके ज्ञानसे कार्य अज्ञात जाता है। तैसेही–जिसने गुरु शास्त्र द्वारा, अस्ति भाति प्रिय अपरोक्ष, अपना आत्मा जाना है, सो सर्व नामरूप जगत्को अपना आत्माही जानता है। कारण कि, निजस्वरूप चैतन्य जगत्का विवर्त उपादान कारण हैं, इससे अपने सच्चिदानं पको सम्यक् जान, जो सर्व तूही होवे, जाननाही है शरीर कुछ नहीं। हे पिता! तूने वृथाही आपको ब्राह्मण मान अहंकारको त्याग, पीछे हृषीकेश आत्माही है।

पिताने कहा हे जडभरत! अब तेरी कृपासे मैंने कि, न मैं हूँ, न तू है, न जन्म है, न मरण, न वर्ण, न न लोक, न परलोक, न ग्रहण, न त्याग, न बंध, न मोक्ष न ईश्वर, एक हृषीकेश आत्माही है।

तिसी समयमें वामदेव आये और कहा बड़ा आश्चर्य कि हृषीकेश आत्मा है, और हृषीकेश आत्माके देखनेकी इच्छा है। हृषीक नाम इंद्रियोंका है, तिन इंद्रियोंको जो प्रेरै तथा तिसका नाम हृषीकेश है। सो सच्चिदानंद वस्तु आत्माके केशादि अनेक नाम हैं। ब्राह्मणने कहा–हे वामदेव! जो समहीं हृषीकेश हूँ, तो एकसे मित्रता, एकसे शत्रुता, कभी दीनता, क्यों होता है? वामदेवने कहा–जो तू चैतन्य होता तो, मित्रता करता, शत्रुता न करता, दीनता करता, क्रोध परन्तु तू चैतन्य तो शत्रुता मित्रतामें पूर्ण है तथा क्रोध दीनता है और तुझ चैतन्यकरही क्रोध मैत्र्यादि सिद्ध होते हैं। ब्राह्मण जो ऐसे हैं तो संत क्रोधादिकोंका त्याग क्यों करते हैं? वामदेव संत त्यागका त्याग करते हैं, नहीं तो त्याग ग्रहण करना

योग्य नहीं क्योंकि, अनर्थक क्रोधादिक संत त्यागते हैं शरीरका रक्षक क्रोधादिक त्यागते नहीं जो त्यागें तो शरीरका अभाव होगा। इससे परिच्छिन्न ब्राह्मणादि वर्णाश्रमका अहंकार त्यागिके, आपको सबमें पूर्ण हृषीकेश जान। ब्राह्मणने कहा—मुझमें जानना न जानना, ग्रहण त्याग, दोनों नहीं, मैं मन वाणीसे अतीत हूँ। वामदेव तूष्णीं हुआ क्योंकि, आगे वाणीकी ठौर नहीं।

जड़भरतने कहा हे पिता! यही उपाय कालके नाशकाहै यही योग है, यही भक्तिहै, मैं तेरा ऐसा पुत्र: नहीं हूँ जो मुये पीछे तेरा पिंडकरूँ तुझ जीवतेही मुक्त किया। ब्राह्मणने कहा झूठा मत कह, मैं तीनों कालोंमें मुक्त हूँ मुक्तको मुक्ति क्या है? तू पुत्र किसका है, मैं, पिता किसका हूँ न तू पुत्र न मैं पिता, पुत्र पिताका अहंकार जाग्रत् तकही है सोये सब नाश हुआ। हे जडभरत! कुटुंबसहित सर्व रस्तेकी सराय है, वा नदी नाव, और गंधर्वपुरके समान हैं। जब सर्व वासुदेव है तब मैं कहाँ जाऊँ? क्या करूं? क्या सुनूं? किसका ग्रहण? किसका त्याग करूं? कहां जड और चैतन्य, कहां फुरना अफुरना, कहां विकार सविकारादि, यह सब मनके मनन करने मात्र हैं, मैं निर्विकल्प हृषीकेश हूँ।

वामदेवने कहा—हे जडभरत! तूने पिताका नाश ऐसा किया है कि, वह पुनः नाश नहीं होवेगा। जडभरतने कहा इसके पुण्योंने फल दिये हैं, मैंने कुछ नहीं किया। पुनः वामदेवने कहा हे ब्राह्मण! तू कौन है? ब्राह्मणने कहा हे हृषीकेश! हृषीकेशसे क्या पूछता है? वामदेवने कहा मैं हृषीकेश नहीं और हृषीकेशहूँ। ब्राह्मणने कहा अनंत नाम रूप मुझ हृषीकेश आत्माके हैं, हृषीकेश भी मैं ही हूँ। तिसी समय दत्त आये और कहा एक ब्रह्म आत्माको ही देखना योग्य है न द्वैत। ब्राह्मणने कहा जो सर्वात्मा मैं ही हूँ, तो देखे

कौन ? दत्तने कहा मेरा कहना तूने कैसे सुना। ब्राह्म
जिसने कहा तिसीने सुना क्योंकि, वक्ता श्रोता एकही है,
कहता है, कानोंसे सुनता है, नासिकासे सुगंध लेता है, त्व
करताहै, परन्तु सबका अनुभव कर्ता एक है। जैसे—बारादरी
एक पुरुषही, बारादरीके द्वारोंको तथा द्वारोंके अग्र
अनुभव करता है। हे दत्त ! तू परमहंस है मुझपर कृपा क
कहा कृपा यही है कि, निश्चय कर "मैंही जीव शीव शरीरसे
जडभरतने कहा यह कृपा तूनें आपपर की है, कृपा वह
पर कीजै। दत्तने कहा—पर अपर तेरी दृष्टिमें है मुझ आ
प्रियरूप आत्माकी दृष्टिमें नहीं। तथापि कार्यकारणरू
जड दुःख, रूप, पर दृश्य प्रपंच; मुझ सच्चिदानंदकी कृपा
नंद हो रहाहै, यही मेरी पर ऊपर कृपाहै। पुनः दत्तने कहा
तेरे देखनेको आया था, पर देखा तो सर्व तूही है यही तेरा
ब्राह्मणने कहा न जडभरत; न दत्त, न अहं, न त्वं, न य
एक मैं ही चैतन्य हूँ। दत्तने कहा मैं नहीं तहां तू कौन है?
ही त्वं होता है, इससे जहां अहं नहीं तहां त्वं कदाचित्
गोविंदकी भक्तिसे पर अपरसे छूटता है। हे ब्राह्मण! क
कौनसा है ? ब्राह्मणने कहा कथन चिंतन करनेवाले, अहंका
पूछो, मुझ चैतन्यमें अहंकारादिक हैं नहीं, कैसे कहूँ? अहंका
करकेही भिन्न २ इंद्रियोंका मेलन है, अन्यथा नहीं, परन्तु
यही है "आपसहित इन सर्वनामरूपको हृषीकेश आत्मा
"आपको मनसहित दृश्यसे अवाङ्मनसगोचर जान" यही

पराशरने कहा हे मैत्रेय ! तू कह कि, भक्ति क्याहै? मैत्रे
जब मैं भक्ति भगवान्को कल्पनेवाला नहीं तो भक्ति
भगवान् कहां है ? तेरी कल्पना है, पर इतिहास कहो। पराश

तिहास यही है कि, निश्चयकर जो सर्व हृषीकेश आत्मा है। मैत्रेयने
कहा—जब मैंही नहीं तो निश्चय कौन करे ? पराशरने कहा हे मैत्रेय !
जहां तू मैं नहीं तहां ही हृषीकेश गोविंदहै—इसीपर एक कथा सुन ।

। दाम्भिक वैराग और तपका वृत्तान्त ।

एक समय हम सर्व संत मिलके मार्गमें चले जातेथे कि, एक तपस्वी पंचाग्नि तापतामिला। हमभी देखकर तिसकेपास स्वाभाविकही चलेगये । तपस्वीने पूँछा हे संतो तुम कौनहो ? कहांसे आयेहो ? कहां जाओगे ? जडभरतने कहा जैसे तू है तैसेही बनारह और सदा अग्निमें जल, तुझे हमको वृथा पूछनेसे क्या प्रयोजन है ? पर बिनाभक्ति गोविन्दके जो कर्म होते हैं, सो वृथा असार हैं । इसहेतु भजन गोविंदका कर जो निर्मल होवे, द्वैतकी मलीनतासे छूटे । भजन बिना जो श्वास आता है सो अकार्थ है और पवन है ऐसे जान । जिह्वा मांसका टुकडा भजनबिना मुखमें राखनी योग्य नहीं, वृथा बकवादके वास्ते जिह्वा नहीं; भजन वाणीसे करता है,मन पाप पुण्यमें फिरता है, कैसे भलाहो । भजन नाम अपनी कल्याणमें प्रारब्ध थापता है और धन कमानेमें पुरुषार्थ मानता है;यह नहीं जानता कि, शरीर कालके मुखमें पडा है और चाहना जीनेकी करता है, अपनी कल्याण शरीरके गिरे पहलेही होसक्ती है, काल समीप पहुँचे कछु नहीं होता । हे तपस्वी ! चैतन्यरूपी समुद्रमें, बुद्बुदे तरंगरूपी, हमारा न कहीं आना है न जाना है; अगर आना जाना मानेभी तो चैतन्यरूपी जलमें आनाजाना कहां है ? जलही है । जलके समान सार गोविन्द आत्मा है, आना जाना बुद्बुदे तरंगकी समान है, तैंने व्यर्थ माना है कि, मैं तपस्वी हूँ, इस अहंकारका त्यागकर । तपस्वीने कहा जब तुमसे मिलाप हुआ उसी समय अहंकार मिटगया क्योंकि

अग्निके संगसे लकडीका अपना रूप नहीं रहता, अग्निरूपही हैं। जडभरतने कहा तपस्वी वही है, जिसने सर्व पदोंको जलाय निष्कर्मताऋपी भस्म मली है। कह ! तूने किस वस्तुको भस्म है ? तपस्वीने कहा बुद्धि नहीं रही जो कहूँ, पर मैं नहीं जानता क्या त्यागने ग्रहण करने योग्य है। जडभरतने कहा दुःख देनेवाले पदार्थोंको पुरुष त्यागताहै, सुखदेनेवाले पदार्थोंको करता है; सो विषय इंद्रियोंके संबंध, वियोगमें दुःखसुख मान मनरूप अहंकारही, सर्व अज्ञानी जीवोंको, दुःख देता है। देनेवाला पूर्वोक्त अहंकार तूने अबतक त्यागा नहीं। उलटा अधिक अहंकार मानाहै कि, दुनिया लंडी क्या भजनजाने तपजाने, हम गुरुका दिया भजन करनेवाले महातपस्वी, तापनेवाले हैं। हमारे चाचा गुरु चौरासीधूनी तापतेहैं, बडे सिद्धहैं तथा वैद्यक विद्यामें कुशल रहे। हमारे भतीजा चेला ऊपर शयन करतेहैं तथा चारवक्त चारों धाम करिआये हैं, पाठही करते रहते हैं। हम तूंबेका, आसनका, मालाका मूत्रके त्यागका, मंत्र जानते हैं। हमारे गुरुतो राजोंकरके होरहे हैं और हम सेरभर गांजा एक प्रहरमें उडादेते हैं सिमल धतूरा खाजाते हैं, हमको कछु दखल नहीं करसक्ता। निगुराहै, पूजा पाठ कछु नहीं जानता। जो कोई साधू गरीब से पूछना कि, तुम्हारा कौन धाम, कौन द्वाग, कौन संप्रदाय है। पूजाका क्या मंत्र है ? धाम पुरियोंको परसा है वा नहीं ? छाप दिखला ! तूंबेका मंत्र आता है ? झोलीका मंत्र आता काका गुरूका क्या नाम है ? यदि वह सांगोपांग सबहाल कह तो, तब चाहे हीन जाति भी हो परन्तु वह साधु पंक्तिका अधि जो बिल्कुल नहीं कहे वा कोईक बात कहे, कोई न कहे तो; वह

हीं निगुरा है यह पंक्तिका अधिकारी नहीं, इसका दंडा, झोली
बा खोसले, तूँबे झोलीका मंत्र भी नहीं जानता। अथवा दूसरे
पका कोई विद्वान् भी हो, कदाचित् अन्नके वक्त आजावे, प्रथम
प्रीति नहीं करे, अन्नमें भी संशयहै, कदाचित् देवे तो यह साधु
थाई है, पंक्ति बाहिर इसको अन्नदेना और जो कोई गृहस्थ
ोडकर, अपनी कल्याण वास्ते शरणागत होवे, तिसको बंधका
तु;सर्व अनात्म धर्मकाही उपदेशकरें वा गैयोंकी तथा भंडारकी सेवामें
लगादेवे। बहुत उत्तम अधिकारी हो तो पूजामें लगादेवे, परंपरा गुरू
ाष्यादि संप्रदायका सीखना, परमधर्म मानके सिखावें मुखसे
क्तिही सार है ऐसा कहे और भक्तिका सम्यक् स्वरूप निश्चय करे
हीं। जो प्रातःकाल स्नानकरे और अखंड विभूति लगावे, चाहे
नही राखे, पर महान तपस्वी होताहै। निरहंकार होकर सत्संगके
तापते स्वरूपको भी कोईही जानते हैं। इस्से हे तपस्वी! इस मिथ्या
ह अभिमानको त्याग और आप सहित सर्व गोविन्द जान। पुनः
स जाननेको भी त्याग, पीछे जो शेष रहे सो अवाच्यपद है, सोई तेरा
वरूपहै। यही परमभक्ति है चाहे ज्ञानियोंसे पूछ देख! चाहे वेदमें
ढदेख! अथवा निज अनुभवसे विचारदेख! आगे जो तेरी इच्छा हो
ा कर। यह कहकर जडभरत तूष्णीं हुआ।

पराशरने कहा हे मैत्रेय! तब मैंने कहा—हे तपस्वी! ये पंच अग्नि
ुझ अज्ञानीको दुःखका हेतु हैं और ज्ञानीको सुखका हेतुभी हैं
क्योंकि, इनका स्वरूप तथा अपना स्वरूप जाननेसे सुख है, न
जाननेसे दुःख है। हे तपस्वी! जैसे तू पंचअग्निकर तथा चौरासी
धुनियोंकर, बाहर तपायमान है तथा "मैं पंचअग्नि वा चौरासी
अग्निको तापताहूँ" इस अभिमानसे भी तू तपायमान है। तैसे तू अंतर
हे अभिमानी अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश, इस पाँच

अग्नियोंकर निरंतर जलता रहता है, तुझको शांति कैसे होवे तपस्वी ! देहादिक अनात्मामें आत्मबुद्धि, देहादिक अनित्यमें नितबुद्धि, देहादिक अशुचिमें शुचिबुद्धि, देहादिक दुःखोंमें सुख इसीका नाम अविद्या है । सूक्ष्म अहंकारका वा मरने अस्मिता है, राग द्वेष प्रसिद्धही है । परंपरा संप्रदायको बातको, सम्यक् विचारे विना ग्रहण कर रखना, हठछोड चाहे झूठ भी हो, इसका नाम अभिनिवेश है । तैसेही-म शरीर करके, तथा वाणी करके, चौरासी प्रकारकी अहिंसा परपीडा नाम दुःखरूप पाप देहभिमानी पुरुषको निरं रहता है । तिनका आत्मज्ञान विना बाधा होना बहुत कठि योगशास्त्रमें लिखाहै । इस्से तुझ देह अभिमानीको चौरासी अग्नि अंतर तथा बाहर जलाती है, तुझको शांति कैसे होवे तपस्वी ! ज्ञानीको यह तपायमान नहीं करती हैं क्योंकि, संघातमें (ज्ञानीको)अहंबुद्धिका अभाव है । वा शरीररूपी पर श्रोत्रादिक पंचज्ञानेन्द्रियही पंच अग्नि हैं, शब्द, स्पर्श, गंधरूपी काष्ठ गोबरीसे, जल रही है, देह अभिमानी अहं जीव त तपस्वी पूर्वोक्त पांच अग्निको तापता है । जैसे अग्निके, जलानेको साधन गोवरी काष्ठ आदिक, मिलने न सुख दुःख मानताहै, तैसे-विषय इन्द्रियके संयोग वियोगमें सु तू मानताहै; इससे त देह अभिमानी अंतर बाहर निरंतर रहताहै । सारांश यह कि, मैं सुनताहूँ मैं स्पर्श करता हूँ, मैं हूँ, मैं रस लेता और सूँघता हूँ, वा नहीं, यही तेरा तापना है इन पंचाग्नियोंकर तपायमान नहीं होता क्योंकि, वह निर है उलटा तिनको सत्ता स्फूर्ति देता हुआ आकाशवत् शांतिरूप है । वा पंच कर्मेन्द्रिय पंच अग्निहै, वाक् उच्चारण,

...गे, गमनागमन, मलमूत्रका त्याग करना, यह लाकडी गोबरी हैं, शरीररूपी पृथिवीपर तू (देह अभिमानी जीव) तपस्वी, तिन पांच अग्नियोंको तापता है, मैं बोलताहूँ, मैं ग्रहण त्याग करताहूँ, मैं गमनागमन करताहूँ मैं मल मूत्र त्यागताहूँ, वा नहीं यही तेरा तापनानाम जलना है। ज्ञानी नहीं जलता, ज्ञानी उलटा तमासा देखता है। वा पंचप्राण पंचाग्नि हैं, पंचप्राणोंकी वृत्तियाँ इस गोबरी काष्ठादिसे शरीररूपी पृथिवीमें जलती हैं, तू देह अभिमानी तपस्वी (जीव) तिनको तापता है, मैं क्षुधा तृषावाला हूँ वा नहीं यही अहंकार तेरा तापना जलना है, ज्ञानीको नहीं। वा काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार यह पंचाग्नि हैं, काम क्रोधादिकोंके कार्य काष्ठ गोबरी हैं, शरीररूपी पृथिवीपर बलती हैं, त देह अभिमानी (मनरूपी जीव) तपस्वी तिनको तापताहै। तात्पर्य यह कि, मैं कामी हूँ, क्रोधी हूँ, मैं लोभी हूँ, मोही हूँ, मैं अहंकारी हूँ, वा नहीं यही तेरा तापना नाम जलनाहै। अध्यास करके दुःख तू पाता है, देहाभिमानरहित आत्मवेत्ताको दुःख नहीं। तैसेही—जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, मरण, समाधि यह पंचाग्नि शुद्ध सत्त्व, मलिन सत्त्व, शुद्ध रज मलिन रज और तम यह गोबरी काष्ठ हैं, शरीररूपी पृथिवीपर जलते हैं, तू इनका अभिमानी तपस्वी तापता है। किस प्रकारसे कि, मैं जागता सोता हूँ, जन्मता मरता हूँ, समाधि करताहूँ वा नहीं, यही तेरा तापना नाम जलना है। ज्ञानी इनमें नहीं जलता क्योंकि, ज्ञानी इन सर्व समाधि आदि अवस्थाके होने न होनेको केवल मनका धर्म जानता है और अपने स्वरूपको समाधि आदि होने न होनेमें निर्विकार जानताहै। मायारूपी पृथिवीपर यह पंचभूतरूपी पंचअग्नि है, स्थावर जंगम रूप, सर्व शरीर इन, पंचाग्नियोंकी गोबरी लकडी हैं, तूही मायाविशिष्ट ईश्वर, समष्टि अभिमानी हुआ शबलब्रह्म, इन पंचाग्नियोंका तपाने-

वाला तपस्वी है, मैं उत्पत्ति पालन संहार इस जगत्की कर्ता तापना है। परन्तु हे तपस्वी ! अंतर बाहर पूर्वोक्त सर्व अंतर बाहर मध्यमें आकाश, स्थित हुआ हुआ भी, तिन सर्व योंको अवकाश देताहुआ भी तिन पूर्वोक्त अग्नियोंके होने, असंग, निर्विकार, अभिमान रहित, निर्विकल्प स्थित है। है- तैसेही जब तू आपको सत् चित् आनंद आत्मा स्वरूप जाने पूर्वोक्त सर्वाग्नियोंको सिद्ध करनेवाला, असंग, निर्विकार, नि आकाशके समान व्यापक जानेगा, तब तू इन अग्नियोंके तापनेमें हर्ष शोक न मानेगा, तथा पूर्वोक्त इन अग्नियों मिटनेमें समही रहेगा, इससे देहाभिमानके त्यागका त्या निर्भय होवे। ऐसे कहकर हे मैत्रेय ! मैं तूष्णीं भया वामदेव करने वास्ते बोलने लगा।

अथ नारद तथा सनत्कुमारादिका-संवाद

वामदेवने कहा—हे तपस्वी ! एक समय चारों, सनकादिक पुत्र तथा जय विजय विष्णुके द्वारपाल बैठेथे और आपसमें विचार कररहेथे। तिसी समय अवसर पायकर नारदभी सनंदनने कहा हे नारद ! कहाँ से आये हो ? कहाँ जावोगे ! कहाँ रहे ? नारदने कहा बुद्धि आदिकोंके साक्षी व्यापक विष्णुसे आयाहूँ, विष्णु विषेही जाऊँगा, विष्णुविषेही आपभी विष्णु हूँ, जैसे जलसेही बुद्बुदा प्रगटा है, जलसेही जलमेंही जावेगा, जलमेंही स्थित है, जलमेंही लीन होवेगा और रूपीही है। तात्पर्य यह कि, पूर्वोक्त सर्व बात वाणीका विलास नहीं तो जलही जल है। तैसेही—चैतन्यरूपी समुद्रमें आना तरंगोंके समान जान। सनत्कुमारने कहा रूप तेरा क्या है

म तेरा क्या है? नारदने कहा जो विष्णुको भ्रम होवे कि, मैं कौन
ो उसका भ्रम कौन निवृत्त करे? क्योंकि, माया सहित भूत भौ-
क सर्व जगत् पुरुषसे प्रगट हुआ है इससे जड है। पुरुषको कौन
, तू यह है कि, वह है। असली पूँछे तो सर्व नाम रूप मेरेही हैं।
—स्वप्नमें यद्यपि सर्वनामरूपकी भिन्न भिन्न प्रतीति होती है,
ापि सर्व स्वप्नद्रष्टारूपही हैं। जिसकर नेत्र रूपको देखते हैं;
सकर त्वचा स्पर्श करतीहै, नासिका जिसकर गंधको लेती है, रसना
स चैतन्य कर रसको लेतीहै, कान सुनते हैं, मन जिसकर मनन
ताहै, तात्पर्य यह कि, जिस चैतन्यसे, यह सर्व संघात, चेष्टा
ता है सो मैंहीं हूँ। जय विजयने कहा हे नारद! ऐसे मत कहो,
प्रभुके आगे जाय कहो कि, नारद कहताहै मैं विष्णु हूँ। नारदने
ा तू किसको कहताहै? तू आप विष्णु चैतन्यहै, वक्ता श्रोता सर्व
ष्णु आत्माही है, तू मैं कहां हैं? जय विजयने कहा हे नारद!
 विष्णु पास जाताहै तो, दंडवत् करता है अब कहता है मैं विष्णु
? नारदने कहा दंडवत्, अदंडवत्, करनेवाला, जिसको दंडवत्
या है, सो सर्व विष्णु आत्माही है। ऐसे कहकर नारद चले गये।
मदेवने कहा हे तपस्वी! तू भी इस अनात्म तपको त्यागकर और
सर्व शुभाशुभ संघातकी चेष्टा, सर्व शुभाशुभ चेष्टाके करनेवाला
ह संघात और जिस प्रयोजन वास्ते चेष्टा करता है, यह सर्व त्रिपु-
यां, अस्ति भाति प्रियरूप मैं आत्माही हूँ, वा इनसे रहित अवाच
 हूँ, इस दृढनिश्चयरूप आत्मतपको कर"।

पराशरने कहा हे मैत्रेय! जैसे—संत लोग इच्छापूर्वक आयेथे तै-
चलेगये और तपस्वी अपने स्वरूपमें स्थित हुआ है। हे मैत्रेय!
भी इस अपवित्र शरीरका तथा शरीरके व्यवहारोंका अभिमान
ाग और पवित्र हो। मैत्रेयने कहा—जिसने अहंकार किया है,

सोई त्यागेगा, मैं चैतन्यने अहंकार किया नहीं त्यागूं कैसे घटाकाशने घटका अभिमान किया नहीं त्यागै कैसे! कालसे कैसे मुक्त होवें ?

एक ब्राह्मण पति पत्नीका-सम्वाद ।

पराशरने कहा हे मैत्रेय! एक कथा सुन–एक ब्राह्मण स्त्रीने प्रश्न किया कि, हे प्रभो! मुक्त कैसे होऊँ क्योंकि, श वश है क्या जाने कि, अबहीं नाश होय और अपने स्वरू रह जाऊं । ब्राह्मणने कहा–जब काल आवेगा, तब आ रसे मुक्त करेगा चिन्तासे क्या प्रयोजन है मुक्ति वास्ते से क्या मतलबहै? क्योंकि, मुक्ति नाम शरीरसे छूटनेका विचारेसे आपसे आप होगा।क्योंकि,तू चैतन्य आत्मा शरी विकही मुक्त नाम जुदाहै, होना नहीं, घटाकाशकी न्याई परलोकके रस्तेमें वैतरणी नदी सुनी है, सो कैसे तरूंगी गोदान करनी चाहिये ब्राह्मणने कहा, चिंता मतकर, परलोकमें लेजावेंगे, जिसरीतिसे वे वैतरणी नदीसे पार रीतिसे तेरेको भी लेजावेंगे। जो उस नदीमें छोड़ जावेंगे प्रश्न उत्तरते छूटेगी पर हे स्त्री! अनात्म देहादिकों विषे, गौ, पंचभूत रूप ब्राह्मणोंको; जब तू ठीक ठीक दानकर वैतरणी नदी सहित, संसाररूपी समुद्रसे सहजही तर जावेगी यह कि, यह देहादिक संघात मैं नहीं, न यह संघात मेरा है, पंचभूतोंका है, मैं इस संघातका साक्षी चैतन्य आत्मा हूँ, है; अन्यथा अनेक गौके दान देनेसेभी नहीं तरेगी। वा इस कके सुखोंके भोगनेकी कामनारूप तृष्णाही वैतरणी नदी है सका त्याग किया है तिसको वैतरणीसे क्या काम है? स्त्रीने कके मार्गमें शूल और तप्तबालू होता है और ऐसा सुना है कि

श्वादिक दान करता है, तिसको दुःख नहीं होता । ब्राह्मणने कहा ो दुःख यमकिंकरोंको होगा सो हमकोभी होगा । स्त्रीने कहा किंक- के शरीर सूक्ष्म हैं, उनको दुःख नहीं होता । ब्राह्मणने कहा—यह थूल शरीर तो इहां अग्निमें भस्मीभूत हुआ, हमाराभी सूक्ष्म शरीर । पर हे स्त्री ! जब तू "सर्व नाम रूप जगत् विषे, सम, शांत, रिपूर्ण,आत्मामें ही हूँ" इस निश्चयरूप पगरखीको पहिनेगी, तो सर्व :खरूप कांटे मिटजावेंगे, अन्यथा नहीं । स्त्रीने कहा जो जलदान इहां रता है,उसीको परलोकके मार्गमें जल मिलता है,अन्यको नहीं।ब्राह्म- ाने कहा यमकिंकरोंको जब प्यास लगेगी, जहांसे वह जलपान करेंगे, हांसे हमभी पान करेंगे।स्त्रीने कहा,वह यमकिंकर हमको जल नहीं पा- करने देवेंगे । ब्राह्मणने कहा किसी शास्त्रमें नहीं कहा कि, जल यम- किंकरका है, उत्पत्ति, पालना, संहार जगत्की सच्चिदानंद ईश्वरसे है, मकिंकरकी क्या शक्ति है ? जो जलपान न करने देवे । हे प्रिये ! जो लपान करने नहीं देवेंगे तो भी प्रसन्नरह क्योंकि, पंचभूतोंका शरीर , जब जल न मिला, तो शरीरनाश होवेगा, तौभी यमके प्रश्न उत्तरते टेंगे । पर हे प्यारी ! जब तू यह निश्चय करेगी कि, मैं यह देहादिक घात नहीं किंतु,मैं देहादिकोंका; तथा देहादिकोंके सर्व व्यवहारका ाननेवालाहूं; इस ज्ञानरूप अमृतको पान करेगी, तो उलटा यमकिं- करभी तेरा पूजन करेंगे।स्त्रीने कहा जब हमको धर्मराजके पास लेजावेंगे ौर पुण्य पापका हिसाब पूछेंगे, तो क्या कहूँगी ? ब्राह्मणने कहा ैसे—जाग्रत्में जो अभ्यास करता है वही विशेषकर स्वप्न आता है। से तूने भी जीवते हुये, इस संघातकी चेष्टारूप, पुण्य पाप, अपना र्म माना है तथा निश्चय मृत्युलोक माना है, यह कर्म मैं करती हूँ इस ा फल भोगूँगी इत्यादि जैसा—तू निरंतर दृढ संकल्प करेगी, तैसे झको परलोकमें भासेगा । आपही कर्मकरता है, आपही उसका फल

चाहता है; तो उसकी प्राप्ति क्यों न होय? मैं पापी हूँ, मैं
हूँ, मैं वर्णी हूँ, मैं आश्रमीहूँ, यमकिंकर लेखा माँगेंगे इत्यादि
संकल्पका अभ्यास जीवत अवस्थामें करेगी तैसेही तुमको
जब मूल अपनेको विचारे तो न पुण्य है, न पाप है, न धर्म
है, न जीव ईश्वर है, न परलोक है, यह सर्व भ्रम तेरा है;
मनमें विचारा है, सोई प्रगटेगा। इसकारण हे स्त्री! तू
चित् आनंदरूप जान, भूलकरभी संघातके धर्मोंको अपना
मान। क्योंकि, मैं पापी पुण्यवान् जीव हूँ और मैं सच्चिदा
स्वरूपहूँ, यह मनका मानना तुल्य ही है, इससे आप
माननाही श्रेष्ठ है, अन्य नहीं। हे प्रिये! अहंकारको त्या
के भयसे निर्भय होवे। जब कल्पना करनेवाले अहंकार
तू कहां? मैं कहां? काल कहां? संसार कहां? इह लोक
कहां? शेष जो निर्विकल्प है सोई तू है। हे स्त्री! अब
है? स्त्रीने कहा यह सर्व नाम रूप प्रपंच मनोमात्र है क्यों
में मन नहीं होता, तो पुण्य पाप रूप जगत् भी नहीं होता
जाग्रत् स्वप्नमें फुरता है, तो अनेक प्रकारका अहं त्वं
भासता है, पर मैं दोनों अवस्थामें निर्विकल्प निर्विकार हूँ
मेरा धर्म नहीं, किंतु मैं असंसारी हूँ। ब्राह्मणने कहा-जब
तब मैं भोग कैसे भोगूँगा? स्त्रीने कहा-सुख दुःखका प्रत्यक्ष
नेका नाम भोग है, सो तेरे भोगका साधन जैसे-आगे यह
अबभी है, मैं चैतन्य तो तेरे भोगका साधन न पूर्वथी न अब
न्य तो तेरा आत्मस्वरूपहूँ। मैं तो भोगता, भोग्य भोग इस
पूर्वभी नाम अज्ञात अवस्थामें भी प्रकाशक साक्षी आत्मा
ज्ञात अवस्थामें भी, वही मैं चैतन्य त्रिपुटीको जाननेवाली
वही है और यह जगत् भी वही है। ब्राह्मणने कहा मैं अतीत

ने कहा—मुझ चैतन्यका आगे, तुझ दृश्य जडके साथ कब
लापथा, जो अब अतीत होता है ? हे ब्राह्मण ! जो तू दृश्यरूप
जा होकर चैतन्य राजारूप आकाशसे अतीत हुआ चाहे, तो सो
होगा क्योंकि, यह दृश्यरूप प्रजा तेरे एक देशमें होनेसे वा सर्वदेश
ल वस्तुमें मुझ चैतन्यको पूर्ण होनेसे । जैसे पृथिवी, जल, तेज,
यु, चारभूत तथा तिनके कार्य, भौतिक पदार्थ आकाशसे अतीत
हीं हो सके, पर तू चैतन्य इस दृश्यसे आपसे आप अतीत है आ-
शकी न्याईं । बहुरि अतीत क्या होता है ?,ऐसा अतीत हो जिसमें
हण त्याग दोनों न होवे । ब्राह्मणने कहा मेरा रूप क्या है ?
ह्मणीने कहा रूप तेरा यही है, जो तूही है । इतना कहकर ब्राह्मणी
नरूपमें लीनभई ।

राजा मान्धाताकी कथा ।

पराशरने कहा हे मैत्रेय ! ऐसेही एक कथा और हुई है सो तू सुन !
क मान्धाता नाम राजाथा, उसने अर्द्धरात्रिमें अपनी सेजपर जाग-
र रानीसे कहा कछु भोजन लेआओ । रानीने कहा रात्रि दिन
ने सोवनेमेंही गया, परमार्थ कुछ न हुआ । राजा सुनकर आश्चर्य-
ान हुआ और कहा कौन कर्म है ? जिससे परमार्थ पाऊँ ? रानीने
हा संग संतोंका कर, जो चाहनासे मुक्तहोवे और प्रेमकर ।राजाने
हा परम संत विष्णु हैं, सोई परमार्थका उपदेश करैगा । ऐसे विचा-
कर राजा विष्णुके प्रेममें ऐसे मग्न हुआ कि, जैसे नदी समुद्रमें
ग्न होजातीहै । तात्पर्य यह कि, आपा अहंकारका त्याग किया और
ष्णुरूप हुआ । ऐसी जिगरकी हायमारी मानो पुण्य पाप धोडाला
और बेसुध होगया।किंचित्काल पीछे होशमें आया और कहा हे रानी!
ससमय विष्णु आवे तो क्या भेंट राखिये?रानीने कहा तन,मन,धन।

राजाने कहा—मल, मूत्र, रुधिर मांस रूप शरीर है, रसका टुकडा है और मन संकल्प विकल्परूप है, इससे भेंट नहीं। रानीने कहा—लाल मोती हीरे जवाहिर भेंट कर। कहा तेरी मेरी दृष्टिमें माणिक मोती हैं, नहीं तो पत्थरोंके। रानीने कहा हँसी मतकर, बहुत काल तप करनेसे भी नहीं मिलता, तत्कालही विष्णु कैसे मिलेगा।

पराशरने कहा हे मैत्रेय! विष्णु यद्यपि अपना आत्मा है, भ्रमकर अपने विष्णु आत्माके पानेकी इच्छा करता है। नरोंका स्वप्नद्रष्टा विष्णु आत्मा है, परन्तु भ्रमसे स्वप्नद्रष्टा की इच्छा करताहै।

राजाने कहा संत कहते हैं—जिस समय इसने चाहा उसी समय विष्णु मिला। राजाने यह वचन कहा, फिर उसके मनमें उमडा कि, गुण यादकर रुदन करते २ विष्णु पुनः नेत्र खोलनेपर जिधर तिधर विष्णुही देखने लगा।

हे मैत्रेय! विष्णु राजाकी शय्यापर सोया हुआ न था, निश्चय प्रेमसे, उसीके संकल्पने विष्णुरूप होकर दर्शन दिया।

राजाने कहा हे विष्णु! मैंने अविद्या कर माना था कि, परन्तु मैं पूर्वभी नहीं था, अब भी मैं नहीं हूँ, तूही आदि मैं कहां था, तूही है। विष्णुने कहा हे राजन्! जो अहंकार मेरी तूने चिन्तन करीथी सो लेआ। राजाने कहा अहंकार चरणकमलोंकी मेरे मनमें प्रीति है, इस वास्ते अहंकार ले भी जा क्योंकि, तू तबतकही था जबतक अहंकार था, जब नाश हुआ तब तू मैं कहाँ है? अवाच पदहै। राजा यह अपने स्वरूपमें लीन हुआ और विष्णुभी अंतर्धान हुये।

पराशरने कहा हे मैत्रेय! अहंकारको त्याग जो, पवित्र है

ने कहा अहंकार और अन अहंकार, पवित्र अपवित्र, दोनों मुझ तन्यमें नहीं; परन्तु कालका भय जिससे छूटे सो कहो। पराशरने हा हे मैत्रेय! एक इसीपर कथा सुन।

। अथ यमकिंकर और यमका-सम्वाद।

एक समय यमकिंकरने धर्मरायसे प्रश्न किया कि,हे धर्मराय! म्हारा भय प्राणीको कैसे दूर होवे? धर्मरायने कहा भय मेरा अवि-ातक है, जब अपने स्वरूपको सम्यक् जाना, तब भय मेरा नहीं हता। देह अभिमानीकोही मेरा भयहै, जिसने सम्यक् देह अभि-ान त्यागा है, "नित चित सुख रूप आत्मा आपको जाना है"ति-को मेरा भय नहीं। किंकरने कहा हे यमराज! तुम्हारी आज्ञासे ाणीको शरीरसे निकासकर मैं ले आता हूँ परन्तु रूप उसका छ दिखाई नहीं देता, लेखा पाप पुण्यका तुम किससे पूछते हो? ौर सुखदुःख किसको देते हो? यमराजने कहा इन बातोंके पूछने- तुझे क्या प्रयोजन है? यमकिंकरने कहा-बड़ा आश्चर्य है कि, िसपर हम लोग आज्ञा चलाते हैं, तिसका स्वरूप जानतेही नहीं। म्हारी आज्ञा कर प्राणीको स्वर्ग नरकमें डालता हूँ और उसके निका तथा हाय हायका शब्द सुनता हूँ, पर उसके स्वरूपमें भेद छ नहीं पडता, सुख दुःखमें एकसा है, इससे जाना जाता है कि, हसे निर्लेप है। जो देहके अहंकारसे रहित है,तिसको कालकी फाँ-ंसे क्या दुःखहै? इससे जाना जाता है कि, यह तुम्हारी धूम धाम मिमात्र है। धर्मरायने कहा-ईश्वरके कर्तव्योंको कौन जाने? यमकिं-रने कहा जो उसके कर्तव्योंको नहीं जानते, तो पाप पुण्य क्योंकर चारते हो? धर्मरायने कहा यह बात प्रगट करनेसे, सर्व धर्म तथा री आज्ञाका नाश हो जायगा। यमकिंकरने कहा धिक् है! मुझके

और मेरे दण्ड तथा फाँसीके देनेको कि, जानूँ नहीं यह
और आपको किंकर मानूँ । धर्मरायने कहा इन बातोंसे क
सेगा, भजन गोविन्दका कर, जो संसारके दुःखसे बचे।
अहंकारका जो तेरे मनरूपी दर्पणको लगी है, सो नाश
तेरा तब आपसे आप प्रगट होगा । यमकिंकरने कहा आ
नहीं तो भजनसे क्या प्रयोजन है ? हे यमराज ! जो मैं
उत्तर दो तो भला, नहीं तो प्राणोंका त्याग करूंगा।
कहा—हे किंकर ! प्रथम सर्व चाहनासे मनको अचाह क
मूलको पावे । किंकरने कहा मैं कौन हूँ ? जो मनको
निवृत्त करूँ और मनका क्या स्वरूप है ? जो चाहना
धर्मरायने कहा तू नित्य सुख ज्ञानस्वरूप है और म
विकल्प पंचभूतोंका विकाररूप है । किंकरने कहा जब
यथार्थ अचाहरूप हूँ तो मनकी चाहना अचाहनासे मुझ
क्या हर्ष शोक है ? जो मुझ ज्ञानस्वरूपमें चाहना हो तो
बनता है ? इससे दूसरेके घरकी बातं मत कहो, मेरे आ
कहो ? मन—चाहे अचाह हो वा न हो ? आप मुये जगप्र
आपही नहीं तो जगत् कहां है, सुषुप्ति मूर्छावत् । हे यम
जीव, ज्ञानी अज्ञानी, आपसमानही शुभाशुभ सर्व चे
परन्तु जिसके देह अभिमान है, अपने स्वरूपको नहीं जा
आपको पुण्यवान् पापी मानता है, वही तेरी यमपुरीमें
दूसरा आत्मज्ञानी आता नहीं । इससे देह अभिमानही
मूल है ।

एक राजाकी कथा ।

(जिसको गीदड़से वैराग्यका उपदेश मिला.)

धर्मरायने कहा हे किंकर ! एक राजा था, सो शिकारको
कोई शिकार न मिली, तब गीदडको बाण मारने लगा । तब

कहा, मेरेको मत मार-त्रिलोकी न रहैगी। राजाने कहा, तुझ जैसे अनेक मारे पर त्रिलोकी नष्ट न हुई ? गीदडने कहा हे राजन्! जब मैं नहीं तो त्रिलोकी कहां है? राजाने सांच जाना कि "आप मुये जग प्रलय है" गीदडको न मारा। उसीसमय वैराग्य (राजाको) उत्पन्न हुआ घरमें आकर रानीको एकांतदेशमें बुलाया और वैराग्यका वृत्तांत सब कह सुनाया। राजाने कहा हे रानी! मैं अतीत होता हूँ। रानीने कहा बहुत भला है, पर हे राजन्! अतीत किससे होते हो। राज्यसे अतीत होते हो, तो जब आप नहीं उत्पन्न हुयेथे तो भी राज्यथा; जब आप यहांसे चले जाओगे, वा मरजाओगे तो भी राज्य बना रहेगा और कोई न कोई राज्यका अभिमानीभी बनाही रहेगा। इससें आपका राज्य नहीं, जो आपका राज्य होता, तो आपके संग आता और आपके संग जाता, सो तो ऐसे देखनेमें नहीं आता। हा हे राजन्! यह राज्य पुण्योंका है; आपका नहीं। राजाने कहा पुण्य मैंने किये हैं इससे राज्य मेरा है। रानीने कहा हे राजन्! पुण्योंके कर्ताको जीव, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, अविद्या इत्यादि नामोंकर कथन करते हैं, यही कर्मोंके कर्ता हैं और यही कर्मोंके फल भोक्ता हैं। आप तो-जब जीव, पुण्य, पापरूप, कर्म करताहो वा नहीं तथा जब तिनका फलभोक्ता है वा नहीं भोक्ताहो; तिन दोनों अवस्थाको साक्षी चैतन्य नित्य मुक्त आत्मा हो। इससे आप पुण्योंके कर्ता नहीं और तिन कर्मोंके फल सुख दुःखके भोक्ताभी नहीं, इसीसे आपमें कर्तव्यभी नहीं। राजाने कहा मनादि जड हैं, घटवत्, कर्मोंके कर्ता भोक्ता कैसे बनसक्ते हैं। रानीने कहा हे राजन्! मनादि घटके समान अति जडभी नहीं और निर्विकार आत्माकी न्याई चैतन्यभी नहीं, किंतु मध्यभावी हैं क्योंकि, आप नित्य सुखरूप आत्माके आभासके ग्रहण करनेकी मनादिकोंको योग्यता है और घटादिकोंको योग्यता नहीं। इसहेतु

हे राजन्! जो आपको दुःख देता है तिसीसे अतीत हो, राज्यमें दुःख देनेकी शक्ति हो, तो राज्यमें स्थित सर्व दुःख होना चाहिये, इससे पदार्थोंमें सुख दुःख नहीं, बनाया सुख दुःख है। हे राजन्! जो आप कहो–इस गृह होता हूँ, सोभी नहीं बनसक्ता क्योंकि, यह हवेली या मंदि संग आया नहीं और न आपके संग जावेगा भी जो, आप तो आपके संग रहती। हे राजन्! इन हवेलियोंमें अनेक आ पितामह रहरहकर चले गये और अनेक रहकर चलेजावेंगे कुछ दिन रहकर चले जाओगे। रस्तेके मुसाफिरखानेके समा यह हवेलियां मुसाफिरोंकी हैं आपकी नहीं। जो मुसाफि फिरखानेमें मूर्खता करके अपना दावा करता है तो दुःख और अपनी इज्जत खोता है। जो अपना ममत्व नहीं बांधता पाता है और गुजरानभी अच्छीतरहसे करता है। हे राजन्! विकाररूप इस गृहके, अनेक चींटी, मकोडी, मूसा, जीव तथा आपके संबंधी अभिमानी हैं केवल आपका गृह पूर्वोक्त सर्वोंका है, जो गृह दुःखदायक हो तो पूर्वोक्त सर्व दुःख होना चाहिये। इससे गृह दुःखदायक नहीं जो आपको वा आपका होवे तिसका त्याग करो। दूसरा गृह तो ज पदार्थको सुख दुःख देनेकी सामर्थ्यभी नहीं, परंतु आप मानलेनेसे होता है, नहीं मानै तो नहीं होता। हे राजन्! इस गृहसे अतीत होओ नाम देह अभिमान त्यागो, अभिमा पूरा पडेगा, अन्य प्रकार नहीं। राजाने कहा इन संबंधियों होता हूँ। रानीने कहा हे राजन्! आप चैतन्य इस संबंधियों अतीत नाम भिन्न हो, एकरूप नहीं और आपभी स्त्री पुत्रादिक संबंधियोंसे अतीत अर्थात् भिन्नही मान

कहीं ऐसा न होय कि,इन संबंधियोंको त्यागो और दूसरे किसी भेष-के संबंधियोंको ग्रहण करो। यहां तो राजा और गृहस्थी कहाते हो, अतीत होनेपर मैं अमुक भेषका अतीत हूँ; अमुक मेरे गुरु, अमुक गुरुभाई, अमुक चेला, अमुक सेवक, आदि मिथ्या अभिमानमें बँधोगे। यहाँ वहाँ सब प्रकारसे अभिमान समही यहां तो मुकुट मोतियोंकी माला पहरते हो फिर वहां तिलक और तुलसीकी माला वा रुद्राक्षकी माला धारण करोगे इसहेतु जैसे नाम रूप तुम्हारा यहां है ऐसाही अतीत हुये होगा। जैसे महल इहां है तैसेही किसी गुरुका मठ वहांभी होगा इससे कहो हे राजन्! किसते अतीत होतेहो?

रानीने कहा हे राजन्! असली विचार करो तो भ्रम सिद्ध शब्द, स्पर्श, रूप,रस,गंध, पंच विषय और काम क्रोधादिक, पंचकर्मेंद्रिय, पंच ज्ञानेंद्रिय, पंचप्राण, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार तथा इनके कारण भूत, पंच महाभूत, यह आपके संबंधी हैं। वा कार्य कारण नाम रूप प्रपंच यह संबंधीहैं यही पिछले जन्मांतरोंमें भी संगथे, जबलग आपको निजस्वरूपका ज्ञान नहीं होगा तबलग आगे भी रहेंगे। यही संबंधीही आपके भ्रमकर दुःखके देनेवाले हैं, इनसे अतीत होते:नहीं और यह पुत्रादिक संबंधी जो आपके सुखके साधन हैं तिनसे अतीत होते हो। इससे आपकी बुद्धि हँसनेयोग्य है। हे राजन्! तिनको (पुत्रादिक संबंधियों)को त्यागते हो।सो आपही यह काल पायकर त्याग जावेंगे अथवा आपही संबंधियोंको स्वाभाविक त्यागोगे परन्तु,मनादि संबंधी आपको ज्ञानसे प्रथम कदाचित् भी नहीं त्यागेंगे। जो आप मनादि संबंधियोंसे अतीत नाम आपको सम्यक् भिन्न मानोगे तब कालकी फाँसीमें न आवोगे। हे राजन्! अनेक वार आपने स्त्री पुत्रादिक संबंधी त्यागे हैं और ग्रहण किये हैं तथा ज्ञान बिना आगे त्यागोगे तथा ग्रहण करोगे परन्तु दुःख दूर न हुये न होंगे इस

हेतु अहंकारहीको त्यागो जो सर्वत्यागी होवो एकवस्तुको और एकको ग्रहण करेनेसे सर्वत्यागी न होंगे परन्तु सर्व त्याग करनेसे पीछे जो अवाचपद शेष रहेगा, सोई आपका है। यह नहीं किं, अहंकार किसी दूसरे यत्नसे त्यागा जाता विचारकी महिमासे ही त्यागा जाता है, अन्य साधनसे नहीं कहा हे रानी ! अब मैं सर्वकामनासे निराश हुआ हूँ, जो कहे करता हूँ। रानीने कहा प्रथम आप अहंकारको भस्म करो जो आपकी इच्छा होय सो करना। राजाने कहा मैं क्या करूं किसकी शरण जाऊँ? जो मुझे उपदेश करे। रानीने कहा मैं आपको करती हूँ, पर मुझको आपने निजस्त्री माना है तिस त्याग करो। राजाने कहा मेरे मनमें ऐसी अग्नि उपजी है पुरुषका भाव भस्म होगया है, जो सत्को नहीं चाहता, सो मूत्ररूप स्त्रीआदि शरीरकी इच्छा करता है और मुझको तो अप्सराकीभी इच्छा नहीं, तो तेरी क्या वांछाहै। रानी अहंकारको त्याग करो देखो आप कौन हो आपका कौन है किसके हैं? यह जो दृश्यमान जगत् है, सो नेत्रके खोलने होता है। जब नेत्र मूँदे न आप न कोई आपका और न किसीके, न यह नाम तथा रूप इच्छा अनिच्छादि मन रहता है। नेत्रके खोलने मूँदनेसे मनका फुरना अफुरना जान जब आपही नहीं तब क्या ग्रहण करते हो? और किसका त्या ते हो? राजा यह वचन सुनकर सर्वकामनासे निष्काम हुआ अपने अंतःपुरमें गया, तब जैसे आगे हमेशा वस्त्र भूषण पहर नाकी सेवामें स्त्रियाँ आतीथीं वैसेही आईं। राजाने देखकर स्त्रीजनो ! जब मैं नहीं तब तुमसे क्या प्रयोजन है? ऐसे राजा विशुद्ध होगया। सबने जाना कि, राजा बावरासा होगया रानीने कहा चिंता मत करो। राजाको कुशल है। जब कुछ काल

राजा जाग्रत् हुआ और नेत्रभर ऐसा रोया कि, हों मैं अहंकारको यडाला फिर कहने लगा कि हस्ती, अश्व, अनुचर, पुत्र, स्त्री, मेरे हीं, यह शरीरभी मेरा नहीं, जब तो शरीरके संबंधी मेरे कहांसे वेंगे। इससे यह सब मिथ्या भ्रममात्रहै परन्तु मैं आपको नहीं ानता कि, मैं कौनहूँ ? किसकारण पक्षीके समान इस शरीरमें बँधा आ हूँ ? यह मनुष्यशरीर चिंतामणि हाथ आया परन्तु व्यर्थ विप-रूप कीचडमें डालदिया और अपनी प्रथा (निजहाल) न समझी ह अत्यंत मूर्खता है।

हे रानी! मेरी वही अवस्था हुई है कि, एक अतीत नदीके किनारे ठाथा और नदीमें बुद्बुदे उठेथे, तब अतीतने बुद्बुदेको देखकर हा हे बुद्बुदे! तू मुझसे ऐसा स्नेहकर कि, तेरा मेरा श्वास एक ोजावे। अतीतके कहते २ ही बुदबुदा लीन होगया और अतीत ्दन करने लगा कि, हाय हाय मेरा बुद्बुदा नष्ट होगया है; इसके बेना मैं कैसे जीऊँगा। यह अतीतकी अवस्था देखकर एक विद्वानने कहा हे मूर्ख! बुद्बुदेको तू क्यों रोता है? आपको रो कि, तूभी उसीके समान एक श्वास मात्रका मिहमान है। रानीने कहा जब ऐसे नाना है, तब क्यों शरीरादिकोंके साथ स्नेह करते हो? राजाने कहा वाहना पिशाचके समान मनको लगी है, इससे कौन है जो मेरी क्षा करे? रानीने कहा चाहना आप करते हो, रक्षा औरसे चाहते हो तब कौन है जो आपकी रक्षा करे; एक श्वास चाहनासे अचाह होनेसे आपसे आप मुक्ति है, पीछे सर्व दर्शन आपकाही होगा क्योंकि, अहंकाररूप चाहना ही भगवान्के मिलनेमें प्रतिबंध है, जब चाहनाकरनेवाला अहंकार मिटा तब आपही आप है। हे राजन्! असली विचार करें तो चाहना मनको लगी है, इस व्यवहारके सिद्ध करता आप। चैतन्यको तो चाहना नहीं लगी क्योंकि, चाहना और मनके जाननेवाले, आप तो चैतन्य साक्षी आत्मा हैं और चाहना

मनको लगी है आपको नहीं । मन चाहनाकी निवृत्ति करे चाहे मनको छोडे वा न छोडे आपको दूसरेके व्यवहारमें क्या है ? कि इस मनका फिक्र करते हो तो दूसरोंका फिक्र क्यों करते ? क्योंकि, जैसे सत्य चैतन्यसे इस संघात सहित इना जुदी हैं । तैसे सर्व लोक जुदे हैं । जो दया करना है पर करो नहीं तो तूष्णीं होरहो । हे राजन् ! मनको समान चाहना लगी है इस चाहनासे भी अचाह हूजिये । यह कि, आपको स्वतःही सर्व स्वस्वधर्म सहित मन वाणीसे रहित अफुर जानो, माया और मायाके कार्य नामरूपको फुरनारूप जानो वा चाहना अहंकार रूप जानो । कहा हे राजन् ! अतीत हूजिये ! राजाने कहा अतीत होनेवालाही नहीं रहा भस्म होगया है, अब अतीत कौन होवे ? पूछो तो मैं स्वरूपसेही बंध मोक्षसे अतीत हूं, अब अतीत होनेमें मुझ चैतन्यको यत्न नहीं क्योंकि, बंध मोक्ष रूप प्रपंच भ्रमही है भ्रमकी निवृत्तिवास्ते अपने स्वरूप अधिष्ठानका जाननेसेही जाननाही कर्त्तव्यहै, अन्य नहीं । हे रानी ! मैंने अपने स्वरूपको अवाङ्मनसगोचर कर जाना है इस्से स्वतःही अतीतहूं । कहा हे राजन् ! जब आप चैतन्य मन वाणीका अविषय हो तो वाणीको विषय कौन है ? हे रानी!अस्ति भाति प्रिय रूप मैं मन वाणीका विषयहूँ और मन वाणी रूपभी मैंही हूँ और यभी हूँ । तात्पर्य्य यह कि, माया और मायाका कार्य सर्व प्रपंचभी मैंहीहूँ तथा तिसते रहित भी मैंही हूँ, इसके आगे यह कहकर राजा तूष्णीं हो विष्णुका ध्यान करने लगा पूर्वहीसे राजा विष्णुका उपासक था ।

धर्मरायने कहा हे यमकिंकर ! जिनके मनसे द्वैत मलीनता होती है तिनकी यह अवस्था है । यमकिंकरने कहा मुझ

तरूप कथा उस राजाकी कहो, ढील मत करो। गोविन्द विना मिथ्या है क्योंकि, जब मैं प्राणीको लेने जाताहूँ तब धन, पुत्र, , गृह, माता, पिता, संबंधी शरीर सर्व वहांही रह जाते हैं, अपना व्य साथ लिये एकलाही आताहै और एकलाही जाता है, इससे मिथ्या है।

धर्मरायने कहा हे यमकिंकर! व्यापक विष्णु आत्मा राजाके अंतः- ण विषेही था परन्तु राजाके दृढ संकल्पनेही विष्णुरूप होकर बाहर ीन दिया। विष्णुने कहा हे रूप! मेरे वचन क्यों नहीं करता? ाने कहा हे विष्णु! वाणीसे पूछो—वचन क्यों नहीं करता; जो णी वचन करे वा न करे मुझ चैतन्यकी हानि लाभ नहीं। जैसे वायुका द्रद्वारा शब्द हो वा न हो परन्तु आकाश दोनों अवस्थामें सम है। विष्णु! जब सर्व तूही था तब मुझको क्यों न उपदेश किया कि, सर्व ही हूँ। विष्णुने कहा तबतक तेरे कषाय परिपक्व नहीं हुये थे। से—मलीन दर्पणसे अपना मुख स्पष्ट नहीं दीखता, तैसे तेरा मन पी दर्पण मलीन था। "आप सहित सर्व विष्णु है" इस भावनारूपी क्तिरूप छाई (रोली) करके अब शुद्ध हुआहै, इसीसे तूने पको अस्ति भाति प्रिय सर्व आत्मारूप जाना और अब तू विष्णु आ है।हे राजन्! विष्णु नाम व्यापक वस्तुका है, जो व्यापकवस्तुहै ई सत्यहै, परिछिन्न वस्तु सत् नहीं होती, घटके समान जो सत् स्तुहै सोई चैतन्य ज्ञानस्वरूप वस्तु होती है, असत् वस्तु ज्ञानस्वरूप हीं होती। जो ज्ञानस्वरूप वस्तु है, सोई सुखस्वरूप वस्तु होती है, ड वस्तु आनंदस्वरूप नहीं होती। इसीसे व्यापक सच्चिदानंद स्तुका नाम विष्णु है, सोई मेरा स्वरूप है, सोई तेरा स्वरूप है, ोई चींटीका, श्वानका, स्त्रीका तथा सर्व जगत्का स्वरूप है और जिसने

अपने इस स्वरूपको सम्यक् जाना है सोई विष्णु है। हे राजन् इस चक्र,गदा,मोर मुकुटादिक लक्ष्मी सहित चतुर्भुज दृश्यमान तो मायामात्र है और परिच्छिन्न वैकुंठनिवासी है, यह व्याप दानंद स्वरूप नहीं होसक्ता। जैसे अन्यदृश्यमान मूर्ति है-तैसे-यह चतुर्भुज मूर्तिभी है,विशेषता नहीं। हे राजन् पक्षपातसे रहित मैंने तुझको कही है, इस सम्यक् विचा छुटाई किसीकी नहीं होती, जहां पक्षपात है,तहां सम्यक् पण नहीं, इससे तू अब विष्णु हुआ है।

राजाने कहा हे विष्णु! जगत्की उत्पत्ति ब्रह्मासे होतीहै पालना विष्णु करता है और संहार शिव करता है,शास्त्रोंमें ऐ तुम सत्यवक्ता हो जैसे यह बात है तैसे कहो? विष्णुने कहा जिस सच्चिदानंद व्यापक अधिष्ठान वस्तुसे,ब्रह्मा, विष्णु, शि दृश्यमान, मूर्तिभी उत्पन्न होकर प्रतीत होती है, पुनः जि होती है, तिसी वस्तुसे जगत्की उत्पत्ति पालना संहार हो से नहीं क्योंकि, व्यापक सच्चिदानंद आत्मवस्तुसे भिन्न सर्व न्न, असत् जड दुःखरूप, अनात्म वस्तु हैं। असत् जड, अनात्म वस्तुसे असत्, जड दुःखरूप अनात्म वस्तुकी पालना संहार नहींहोसक्ता। जैसे-इंद्रजालीही सर्व पदार्थोंकी भ्रम मात्र, प्रतीति करासक्ता है, इंद्रजालीद्वारा मायामात्र किसी दूसरे पदार्थको नहीं रचसक्ते,इंद्रजालीही रचसक्ता है जगत्की स्वप्नद्रष्टाही उत्पत्ति पालना संहार कर सक्ता है, स्व किसी पदार्थकाभी, उत्पत्ति पालना संहार नहीं करसक्ते क्योंकि द्रष्टा भिन्न,सर्व स्वप्न पदार्थको तुल्यही भ्रम मात्रहै। इससे हे राज तूने सम्यक् अपने सच्चिदानंद व्यापक स्वरूपको जाना निःसंग होकर चिंतनकर कि, मुझ चैतन्यसेंही सर्व जगत्की

इस नामरूप प्रपंचका मैंही चैतन्य मालिक अधिष्ठान हूँ, मुझ न्यसेही इस जगत्की उत्पत्ति पालना संहारहै, अन्यसे नहीं। यही त शास्त्रका डिमडिमाहै तथा अपना अनुभवहै। जिसको अपने रूपका अनुभव हुआ है, वह शास्त्रका आश्रय नहीं लेता क्योंकि, भवसेही सर्व शास्त्र होते हैं। अनुभव नाम सत् चित आनंद माका है, शास्त्र तो केवल प्रमाण मात्रही होते हैं। इससे हे राजन्! र शास्त्र तो कर्मकांड और उपासनाके प्रतिपादकहैं और वेदांत स्त्र ज्ञानकांडका प्रातिपादक है। जो कर्म, उपासनाके प्रतिपादक स्त्र सत् हैं, तो वेदांत शास्त्रभी सत्यहै, जो वह असत् हैं तो यह भी सत् है क्योंकि, सर्व शास्त्रोंको सत् अंगीकार करना चाहिये या सत् अंगीकार करना चाहिये। एकको सत् और एकको असत् मानना हिसाब बाहिर बातहै। वास्तवमें विचारे तो कर्मकांड उपासना-ड अन्तःकरणकी मलीनता और चंचलताके दूर करनेके लिये ज्ञान उपयोगी हैं अब हे राजन्! तू कौनहै? राजाने कहा हे विष्णु तूने कहा "तू कौनहै" ?इसमें त्रिपुटी सिद्ध होती है। एक वचन करता रा वचन, तीसरा जिस प्रयोजनके लिये वचन किया, यह त्रिपुटी स प्रकाश कर सिद्धहुई है सोई मैं हूँ। पुनः राजाने कहा हे विष्णु! हारा स्वरूप क्या है? विष्णुने कहा जो तेरा स्वरूप है सोई मेराहै ख, चक्र, गदादिकों सहित यह दृश्यमान मूर्ति तथा सर्व जगत् या मात्र है, मैं चैतन्य अमायक स्वरूप हूँ, परन्तु हे राजन्! मुझ तिथिका तुम आतिथ्यकर? राजाने कहा हे प्रभो! स्वराज अपना झको दिया, मैं नहीं हूँ जो कुछ है सो तूही है। विष्णुने कहा अहं-र तूने मुझको दिया क्या दिया? परन्तु अहंकारसेही सर्व जगत्की पत्ति, पालना, संहार है तथा अहंकार करही जीव ईश ब्रह्म है, था सर्व संसारहै, जब तू नहीं तब संसार कहां है? अहंकारके देनेसे

सर्वस्व दान है। राजाने कहा क्या अहंकार तुझसे भिन्न जाना है कि; तुझसे भिन्न कुछ नहीं। विष्णुने कहा जो तो अहंकारका देना कहां है? राजा यह वचन सुनकर अ पमें लीन हुआ। जैसे घटाकाश महाकाशमें लीन होवे।

रानीने कहा हे विष्णु! राजाको तूने मारा है? विष्णु रानी! राजा मरा नहीं अमर हुआ है। रानीने कहा हे कौन है? विष्णुने कहा मैं सत् चित् आनंद व्यापक अद्वि रानीने कहा इनपदोंका अर्थ कहो? क्योंकि, मैं वेद, शा नहीं हूँ और सत्संगभी, मुझको स्त्री होनेसे, किंचित् विष्णुने कहा सत् उसको कहते हैं, जो असत्से जुदा होवे उसको कहते हैं, जो जडसे भिन्न होवे तथा आनंद उसको जो दुःखसे न्यारा होवे, व्यापक उसको कहते हैं जो होवे और अद्वितीय उसे कहते हैं जो द्वैतसे रहित होवे कहा मैं जानतीथी कि, तू निर्वैर विर्विकार है परन्तु तेरे क कि, सर्व विकार तेरेमें ही हैं क्योंकि, अवाङ्मनसगोचर रूपी वाणियोंके, हिसाबका खाता नक्की हो चुका है, अब बोंसे कुछ मतलब नहीं। हे विष्णु! जब सर्व अस्ति भा रूप तूही है, तो किससे तू न्यारा है? और किससे है? तुझविषे द्वैत अद्वैत भिन्न अभिन्नका मार्ग नहीं, अपने अस्ति भाति प्रियरूप आत्मासे जुदा असत, जड प्रपंचको दिखला जिससे तू न्याराहै। जैसे सुवर्णसे णोंको दिखला इत्यादि जलतरंगादि दृष्टांत अनेक हैं। विष्णु! सर्व मैंही हूँ, तू है ही नहीं। विष्णु हँसा और कहा कहते हैं। रानीने कहा जीव, ईश, ब्रह्म, सच्चिदानंद इत्यादि मुझ अवाचपदसेही सिद्ध होतेहैं, मैं चैतन्य किसी करभी होसक्ता, इससे मेरा नमस्कार मुझको है। मुझमें जानने न

र्ग नहीं और जानना न जानना भी मेरेमेंही है तथा सर्व दृश्य मेरा मत्कार है लालकी दमकावत् । विष्णुने कहा हे रानी ! तू कौन ? रानीने कहा मैं आपको नहीं जानती कि, कौन हूँ क्योंकि; जो ानने में आताहै सो दृश्य मिथ्याहै, बुद्धिका धर्म है और मैं चैतन्य र्वका जाननेवाला हूँ, मुझको कौन जाने कि, तू कौन है ? इसीसे वयं प्रकाश हूँ । विष्णुने कहा तुझसे सर्व जगत् प्रगट हुआ है तू यों नहीं आपको जानती ? क्या तू जड है ? रानीने कहा जड घटादि मोगुणके कार्य हैं और बुद्धि भूतोंके सत्व गुणका कार्य है, इसीसे टादिकोंकी अपेक्षासे बुद्धि चैतन्यहै । मैं अवाङ्मनसगोचर जड़ तन्यसे रहित चैतन्यस्वरूपहूँ; जिस मुझकर जड, चैतन्य, सत्, सत्, ज्ञान, अज्ञान, ग्रहण, त्याग, धर्म, अधर्म, मन वाणीका थन, चिन्तन, सिद्ध होताहै, जिस मुझकर नामरूप जगत् सिद्ध ोताहै, सो मैं स्वयंप्रकाशस्वरूप आत्मा हूँ, यही सम्यक् जानना है।

। मोक्षकी प्राप्तिके हेतु कुछ कर्तव्य नहीं ।

बंध मोक्षकी निवृत्ति प्राप्तिवास्ते,शारीरिक वा मानसिक वा वाणी-सेभी कर्तव्य करना कुछ नहीं क्योंकि, बंध मोक्ष अपने स्वरूपके अज्ञानसे भ्रममात्र सिद्ध है । तात्पर्य्य यह कि, अपने स्वरूपको सम्यक् न जानना बंध है और अपने स्वरूपको सम्यक् जाननाही मोक्ष है । इसके अतिरिक्त बंध मोक्ष कोई वस्तु नहीं, जिसके ग्रहण त्यागसे पुरुषको बंध मोक्ष होवे और न कोई बंध मोक्षका स्थान है, जहां जाकर बंधकी निवृत्ति और मोक्षकी प्राप्ति होती है । विष्णुनें कहा हे रानी ! बंध मोक्षका प्रतिपादक शास्त्र निष्फल होजावेगा । रानीने कहा बंध मोक्षकी निवृत्ति प्राप्तिवास्ते शास्त्र यत्न नहीं कहता, वरन् जैसे अंधकारके दूरकरने वास्ते तथा अंधकारमें धरी मणिकी

प्राप्तिवास्ते, दीपकका चसानाही कर्तव्य है, अन्य नहीं, पर
चसानेवास्ते अनेक साधन हैं, कोई अंधकारके दूर करने
अंधकारमें धरी मणिकी प्राप्तिवास्ते अनेक साधन नहीं।
अपने मुखके देखनेवास्ते केवल शुद्ध दर्पणका सन्मुख
कर्तव्य है, परन्तु जिस दर्पणमें मलिनता होवे तिस दर्पण
ताके दूर करनेवास्ते अनेक साधन हैं; कोई मुख देखनेके
नहीं। तैसे—बंध मोक्षकी निवृत्ति प्राप्ति वास्ते केवल अपने
सम्यक्‌ जाननाही कर्तव्य है; अन्य नहीं परन्तु जान
बुद्धिसे होता है, जिस बुद्धिरूपी दर्पणमें मल, विक्षेपादि
मलिनता है, तिनके दूर करनेवास्ते अनेक जप, तप,
दान, पूजा, तीर्थ, यात्रा, व्रत, शम, दम, वैराग्य, विवेका
हैं, कोई बंध मोक्षकी निवृत्ति प्राप्ति वास्ते साधन नहीं।
गुरुशास्त्र पुरुषार्थ सफल है वा अस्तित्व स्फुरणत्व प्रियत्व
रूपसे जो भिन्न प्रतीति होती है, सोई भ्रम है, तिस भ्रम
वास्तेही गुरु शास्त्रकी सफलता है, कोई मोक्षरूप ब्रह्मात्मा
वास्ते गुरुशास्त्र नहीं। हे विष्णु! अपने स्वरूपमें मन
गम नहीं क्या कहूँ—मैं ऐसा हूं? कि, वैसा हूँ? जो मैं
मुझसे कुछ कहा नहीं जाता।

रानीने कहा—बडा आश्चर्य है कि, सत्संगतिसे पहलेभी
बंध मोक्षसे रहित, शुद्ध चैतन्य, निर्विकार, निर्विकल्प,
वंस्तु,भेदसे रहित थी, परन्तु अपने स्वरूपके न जाननेसे
यह मल मूत्ररूप संघातही जानती थी। जैसे—कोई तृणोंमें
छिपाया चाहे, सो मूर्ख है, तैसे मैं पंचभूतोंका विकाररूप
पंचज्ञानेंद्रिय, पंचकर्मेन्द्रिय, पंच प्राण, मन, बुद्धि, चित्त,
संयुक्त संघाततृण है सो इन तृणोंविषे (इन तृणोंकी उत्पत्ति

था इनके भावाभावको जाननेवाले तथा शब्द स्पर्शादिक विषयोंको सिद्ध करनेवाले, साक्षी चैतन्य आत्मारूप हस्तीको गुह्यभावसे रहित मैं छिपाती थी। तात्पर्य यह कि, मैं प्रकट सूर्यकी न्याई द्रष्टा रूप हुई हुई भी, आपको दृश्यरूप जानती थी। इसी अपराधसे भ्रमसे रूप जन्म मरणको प्राप्त होतीरही, परन्तु अब मैंने अपने स्वरूपको सम्यक् जानाहै, भ्रमरूप चोरको निकासा है, जो दुःख देता था, अब भ्रम निवृत्त हुये हैं। विष्णुने कहा हे रानी! यह भी तुझको भ्रम कि, पूर्व मैं अज्ञानी थी अब मैं मोक्षको प्राप्त हुई हूँ आत्मामें तीनो कालोंमें बंध मोक्ष है नहीं, जिस मनने आपको बंध माना था, उसी मनने अब मोक्षमाना है, इससे जानाजाता है कि, बंध मोक्ष मनन मात्र है, तू आत्मा दोनों मनकी अवस्थाका साक्षी है। हे रानी! तू अबसे उच्च पदको प्राप्त हुई है। रानीने कहा मेरे विषे ऊंच नीच दोनों नहीं, एक रस आत्मा हूँ। विष्णुने कहा हे रूप! मेरे ऐसे वचन गौरवताके मत कह। जिसने अपना स्वरूप पाया है उसकी ली चुपही है। जैसे—संसारमें जो धन राखता है तिससे कोई पूछे कि, तुम्हारे पास कुछ धन है तो कहता है "कुछ नहीं"। रानीने कहा हे विष्णु! जो खाता है उसीको डकार आती है, जिसको चिन्तामणि प्राप्त हुयी है, सो हजार छिपावे, तो छिपती नहीं। हे विष्णु! निर्बल पुरुषही किसीके भयसे धनको छिपाता है, जो निर्भय सबसे बली है उसका धन छिपाया छिपतानहीं। जैसे—सूर्यका प्रकाश रूप धन ब्रह्माण्डसे छिपाया छिपता नहीं और सूर्यको भी अपने स्वयं प्रकाश रूप धनको छिपानेकी ताकत नहीं। तैसे—मुझ चैतन्यका स्वयं प्रकाशता: कर सर्व दृश्यको प्रकाशता तथा स्वरूपसेही बंध मोक्षसे रहितता, नित्य मुक्तता, परिपूर्णता, एकरहस्यता, सतरूपता, आनंदरूपता, तथा अवाङ्मनसगोचरतादि धन, इस असत् जड

दुःखरूप दृश्यसे छिपाया छिपता नहीं, उलटा मुझ चैतन्य
स्फूर्ति रूप धन करके,असत् जड दुःखरूप दृश्य भी सत्
रूप धनी प्रतीति होरही है तथा भयमान हो रही है। जैसे गुड़
कटुपदार्थ भी मधुर होते हैं। जैसे रज्जुकी सत् रूपता, सर्प
दंडमालादिकोंसे, छिपाये छिपती नहीं उलटा रज्जु करके
सिद्धि होती है। इससे हे विष्णु ! कहो मैं सत् कहती हूँ
जो असत् कहती हूँ, तो तू मुझको दंड दे विष्णु तूष्णीं हु
आगे वचनकी गम नहीं।

रानीने कहा हे विष्णु ! तूष्णीं मत हो, विना वचन
सुने संशय दूर नहीं होते। विष्णुने कहा हे राजन् ! अब तू
चाहता है ? कौन ठौर तूने पकडी है ? राजाने कहा चाहना,
पकडना, छोडना, बंध, मोक्षकी निवृत्ति, प्राप्तिवास्ते कर्त
और ज्ञानके पीछे आपको निष्कर्तव्य मानना इत्यादि,
करणके स्वभाव हैं, मुझ चैतन्यके पूर्वोक्त स्वभाव नहीं।
को कुछ इच्छा नहीं। जैसे–आप फरमाइये तैसेही मैं
विष्णुने कहा हे राजन् ! तू अब विष्णु हुआहै, यथा
शोकसे रहित तथा ग्रहण त्यागसे रहित होकर धर्मपूर्वक
होकर विचर। यह सर्व दृश्य पदार्थ तुझ चैतन्यकी लीला
तुझको कोई दुःखके हेतु नहीं, उलटा सुखके हेतु हैं।

। अहंकारका कर्तव्य ।

तुझ चैतन्य महाराजकी प्रसन्नतावास्ते, अहंकाररूप माली
चैतन्यकी सत्ता पाकर,यह संसाररूप बगीचा रचाहै। अंडज
स्वेदज उद्भिज्ज इन चार खानियोंमें होनेवाले जीव, इस
बगीचेमें, पुष्प खिलरहे हैं। सात समुद्र इसमें बावड़ी

सूर्य चंद्रमा लालटेन लगरहे हैं; ज्योतिषचक्र छोटी बत्तियोंकी रोशनी होरही है; मेघमाला रूप फुहारे चलरहे हैं. देखो हे राजन् ! कोई मनुष्यरूपी पुष्प शुद्ध शुक्लरूप है; कोई लालरूप है, कोई कृष्ण वर्णवाला पुष्प है, कोई शुक्ल लाल मिश्रित है, कोई कृष्ण लाल मिश्रित है । किंचित् रज तम सहित शुद्ध सत्वगुण प्रधान स्वभाववाले विष्णु आदि शुद्ध शुक्लरूप पुष्प हैं । रजोगुण स्वभाववाले जीवरूप लाल पुष्पवत् जानना । तमोगुण स्वभाववाले जीव नीले पुष्पवत् जानना । सत्वगुण स्वभाववाले जीव केवल धवल पुष्प जानने । किंचित् सत्व रज सहित केवल तमोगुण प्रधान नारकी, वृक्ष, राक्षस, दैत्य, सर्पादिक, जीवरूप पुष्प हैं । किंचित् तम सत्वगुण सहित रजोगुण प्रधान मनुष्यादि अनेक भेद हैं । ये चारप्रकारके जीव तीनों गुणोंके स्वभाववाले हैं, पृथक् नहीं । देखो कोई जीवरूप पुष्प देखते देखते अदृश्य हो जाता है, कोई नवीन प्रगट हो आता है, कोई कुम्हला जाता है । कभी हैजा बीमारी रूप वायुकर वा अनेक जीवोंकी प्रारब्ध कर्म क्षयरूप वायुकर इकट्ठे ही जीवरूप पुष्प गिर पडते हैं । अनेक प्रकारके कौतुक अहंकाररूप मालीने संसार रूप बगीचेमें कर रक्खे हैं ।

। मनका कर्तव्य ।

देख ! मनरूप नट तुझ चैतन्य महाराजाकी प्रसन्नता वास्ते अनेक स्वांग धारण कर रहा है, कभी आपको बंध मानता है, कभी आपको मोक्ष मानता है, यहभी मनका स्वांग है । कभी निर्विकल्प होता है, तब हर्ष मानता है, कभी विषयके संबंधसे चंचल होता है, कभी आपको धिक्कार मानता है, हे राजन् ! यहभी मनरूप नटका स्वांगही जान । कभी आपको वैराग्यवान् मानके उत्कर्ष होता है, दूसरेको अवैराग्यवान् मानके तर्क करता है । कभी आपको पंडित

मानता है, कभी मूर्ख मानता है, कभी ज्ञानी होकर निजक्ट
त्य मानता है, अज्ञानी होकर अकृतकृत्य मानता है, देख
विचित्र मनकेही स्वांग हैं। कभी आपको पुण्यवान् मानता
आपको पापवान् मानता है, कभी आपको जीव मानता
आपको शीव मानता है; कभी वेदांतीके संबंधसे आपको ई
ता है; कभी जीव ईश्वरका भेद माननारूप स्वांग करता
जीव ईश्वरका अभेद माननारूप स्वांग करता है। कभी सं
होता है, कभी निस्संशय होता है, यहभी मनरूप नटका
जान। कभी समाधि करना, कभी योग करना, कभी शांतिम
कभी अशांतिमान् होना, कभी मौनी होना, कभी अमौ
कभी आपको वर्णी मानना, कभी आपको आश्रमी मानना
इनसे रहित आपको मानना, यह सब मनरूप नटका तुम्ह
नृत्य है। कभी आपको द्रष्टा साक्षी, सत्, चित्, आनंद ह
ना, कभी आपको असत्, जड, दुःख रूप दृश्य मानना
मनरूप नटका स्वांग है। कभी कर्मकांडसे अन्तःकरणकी
ननी, उपासनासे मनकी निश्चलता माननी, ज्ञानसे आवर
वृत्ति माननी; कभी तीर्थादिकोंके स्नानसे पुण्य मानना
मानना, वेदाध्ययन करना, परस्पर शास्त्रोंका विवाद क
मंडन करना और कभी ज्ञानसे मुक्ति माननी, कभी कर्म
ते माननी, कभी बंध मोक्ष न मानना इत्यादि, मन वाणी
वाणीका कथन चिंतनरूप सब मनरूप नटका नाटक है। कभी
संकल्प होना, कभी सात्विकी कभी तामसी संकल्प होना
यहभी मनरूप नटके स्वांग हैं।

बुद्धिका कर्तव्य।

किसी पदार्थका निश्चय करना, किसीका न करना
रूपी वेश्याका तुम्हारे आगे नृत्य है। हजारों वार जाग्रत

ुप्ति, मूर्च्छा, मरण समाधि यह भी बुद्धिरूपी वेश्याका तुम्हारे ागे नृत्य है।

कभी बालक होना, कभी युवा होना, कभी वृद्ध होना, कभी पत्ति होना, कभी नाश होना, यह शरीररूप नटका तुम्हारी प्रसन्न-के वास्ते नाटक है।

कभी क्षुधा होनी, कभी तृषा होनी, यह प्राणरूपी नटका तुम्हारे ागे नाटक है।

कभी चिंतन निर्गुण वा सगुण परमेश्वरका ध्यान करना और रनेसे प्रसन्न होना, कभी न करनेसे अप्रसन्न होना, यह चित्तरूपी टका तुम्हारे आगे नाटक है। कभी देहाभिमान करना, कभी त्मामें अहं प्रत्यय करना; यह अहंकाररूपी नटका तुम्हारे आगे टक है।

हे राजन्! और नाटक देखो श्रोत्रादिक इंद्रिय तुझ चैतन्यके ाम हैं, तुझ चैतन्य साक्षीकी प्रसन्नता वास्ते, शब्दादिक विषयोंको ण करके तुम्हारे आगे भेंट रखता है। जैसे पालित बाज पक्षिको र करके स्वपालकके आगे आन रखते हैं, और बाजका पालक तमासा देखकर प्रसन्न होता है। तैसे—श्रोत्रादिक इंद्रियरूपी ज, शब्दादिक विषयरूप पक्षिको ग्रहण करके, तुझ चैतन्यके ागे आन रखते हैं। इस नाटकको देखकर तू खुश हो।

तैसेही वाकादिक कर्मेंद्रियरूप नटभी, शब्द उच्चारणादिक नाटक र रहे हैं, तुम्हारे आनंदके वास्ते। तात्पर्य यह कि, कायिक चिक मानसिक जितनी इस संघातकी चेष्टा हैं, सो सब तुझ चैतन्य क्षीके आगे नाटक है। हे राजन्! तू साक्षि चैतन्य, मनादिक नटोंके थ एकरूप होकर, नाटक मत करना क्योंकि, इस विपर्यय द्धिसे तुम्हारी इस तुच्छ व्यवहार करनेसे विद्वानोंमें हाँसी होगी।

जैसे कोई भला मनुष्य नटोंके साथ मिलकर नाटक करे तिसकी सब लोग निंदा करते हैं । तू मनादिक नटोंके द्रष्टा, साक्षी, भलामनुष्य, चैतन्य निर्विकार निर्विकार सिद्ध है यत्नकर नहीं । हे राजन् ! असली विचार करे तो को द्रष्टापनाभी, दृश्यसे भिन्न करने वास्ते, उपदेश किया प्रथम निषेध मुखही उपदेश मुमुक्षुको कर्तव्य है, जब अपने दृश्यसे भिन्न करके जाना, पीछे सर्वरूप विधिका उपदेश करना जैसे–प्रथम स्वप्न पदार्थोंसे स्वप्नद्रष्टाको, भिन्न बोधन कर सर्वसं स्वप्नद्रष्टाके ही, उपदेश करना चाहिये । इससे हे राजन् भाति प्रियरूप तूही सर्वात्मा है । द्रष्टा, दर्शन, दृश्य, त्रि तू ही है; त्रिपुटीका प्रकाश करनेवाला भी तूही है । लग शरीर है तबलग कोई न कोई चेष्टा करनाही है और स्वप्नके तुल्य मिथ्याही हैं, इससे यथाप्राप्तिमेंही क्यों न कहकर विष्णु चलेगये । रानी राजा विज्ञातवेद होकर, कार्यको करनेलगे परन्तु जल कमलवत् सर्व व्यवहार अलिप्त रहे ।

कालसे कैसे ? और कौन छूट सक्ता है ।

धर्मरायने कहा हे यमकिंकर ! जो देह अभिमानसे रहित अपने स्वरूपको जानता है । सारांश यह कि, यह पंचभूता रूप संघात मैं नहीं; किन्तु मैं चैतन्यसाक्षी आत्मा हूँ, इस पुरुषके ऊपर तुम्हारा हमारा जोर नहीं चलता । जो धर्म धर्मपूर्वक धन उपार्जन करके अपने बालबच्चोंकी पालना भी यथायोग्य अपनी सामर्थ्यके अनुसार अतिथि सेवन भी कर पाप आचरण नहीं करता, तिसके ऊपर भी तुम्हारा हमारा चलता । तथा जो पुरुष हरिको–अपने आत्मासे भेद

भेदकरके सगुण वा निर्गुण परमात्माका स्मरण ध्यान करता है र सत्य संभाषणादि गुणोंसे युक्त सज्जन रीतिसे रहता है,तिस ऊपर तुम्हारा हमारा बल नहीं चलता तथा जो प्रणवादिक हरिके नाम द्धापूर्वक हरवक्त उच्चारण करता है, परउपकारी है तथा पाप चरण करता नहीं, तिसके ऊपरभी तुम्हारा हमारा बल लता नहीं ।

काल किसको पकडता है ?

हे यमकिंकर ! जो पापाचारी है, अन्यायकारी है, विश्वासघाती दुराचारी है, जो माता पिताका मन वाणी शरीर करके किसी कारसे भी तिरस्कार करता है, जो कृतघ्न है, जो चोरीकर परधन ता है, जो गुरु विद्वानोंका तिरस्कार करता है, देह अभिमानी तथा जो परमेश्वरका नाम भी स्मरण नहीं करता, तिसके ऊपर हारा हमारा बल चलता है, तिसको तुम दुःख दे सक्ते हो । से—लोकविषे राजा और राजाके सिपाही,अन्यायकारी (जुल्मी) ही दुःख दे सक्ते हैं ।

जो भला मनुष्य, सराफ, अपने रस्तेमें ही आता जाता है, सको राजा वा राजसिपाही कोई भी दुःख नहीं दे सक्ते, उलटा हां धर्मका कामपडे तहां तिनकी गवाही मन्जूर की जाती है । से हे यमकिंकर ! तू और मैं किसीको भी, दुःख सुख नहीं दे क्ते, अपने शुभाशुभ कर्तव्य करकेही, जीव सुख दुःख पाते हैं, से अभिमान मत कर कि, मैं दुःख देता हूं । हे यमकिंकर ! ने जो कहा था कि, मैं प्राणीको लेने जाता हूँ, ले भी आताहूँ, परंतु सका रूप नहीं जानता किं, क्या वस्तु है ? हे यमकिंकर ! जिस णीके स्वरूपको तू देखा चाहता है, सो तेरा अपना आत्मा है, पने आत्माको तू कैसे देखे ? जैसें—चक्षु अन्यको तो देखते हं रन्तु चक्षु चक्षुओंको तो नहीं देख सक्ते, देखना दूसरेमें होता है ।

दृश्य करके तो द्रष्टाका जानना नहीं होता, द्रष्टा करके जानना होता है । मन करके वा चक्षु आदिक इन्द्रिय किंकर ! तू प्राणीके स्वरूपके देखनेकी इच्छा करता है इन्द्रियादिक दृश्यका स्वयंद्रष्टा, अपने स्वयं प्रकाशको किन्तु नहीं देखेंगे । जैसे—चक्षु सर्वको देखते हैं, चक्षु देखता नहीं, चक्षुओं करके प्रकाशित पदार्थ कहें कि, हम देखें वा जानें सो तिनका कहना निष्फल है । तैसे आत्माको मन करके वा चक्षुओंकरके, देखा चाहता है बुद्धि हँसने योग्य है । हे यमकिंकर ! तू देह अभिमानको आपको चिद्घन नित्य सुखरूप जान, जो कालके होवे । जिसको अपने सहित,यह सर्व नामरूप प्रपंच, है,तिसको यमसे क्या प्रयोजन है ? जिसने देह अभिमान और पापाचारी है, सोई मेरे पास आता है इससे हे किं गोविंदका कर जो मलीनतासे निर्मल होवे भजन यही आप सहित सर्व हरि है" और आगे क्या पूछता है ? कि जैसे मछलीको जलके समुद्रसे निकासकर, सुगंधीके समुद्र मछलीको नामन्जूर है बरन् सुगंधी उसको विषकी न्याईं है और कुछ मतलब नहीं, यही प्रयोजन है कि, अपने जानूँ पर मैंने जाना है कि, अज्ञानी पुरुषके ठगने वास्ते हमारी, धूमधाम है, विचारेसे सर्व भ्रम मात्र है । धर्मरायने मत कह मेरी शासनासे भयकर, प्रभुसे किंकरको समता चाहिये । यमकिंकरने कहा, न तू प्रभु, न मैं किंकर एक त्माही है, पर कथा उस राजाकी कहो । धर्मरायने कहा कहनेसे, कहता है, धर्मराय, यमकिंकर, सर्व भ्रम मात्र है भिन्न सम्यक् कहूँगा,तव निश्चय करेगा कि, त्रिलोकीही नहीं

बात बेमर्याद करनी दुःखका मूल है। हे किंकर! चौरासी लक्ष योनि नरक हैं, सो देहाभिमानी नारकी तिन नरकोंको भोक्ता है और एक ही आत्मारूप स्वर्ग है।चाहे स्वर्गमें वा नरकमें वास ले। यमकिंकरने कहा स्वर्ग नरकरूप अहंकार है नहीं, सर्व गोविंद है। पर कथा राजाकी कहो? धर्मरायने कहा जब तू उसके जैसा आप नहीं होता, तो उसकी कथा पूछनेसे क्या प्रयोजन है? इससे नारायणको अपने आत्मासे अभेद जान जो तेरा हृदय शुद्धहोवे, शुद्ध हृदय विना मेरा वचन तुझको प्रवेश न करेगा। हे किंकर! जब तू आप न विचारेगा, तब ब्रह्मा विष्णु शिवभी तुझको उपदेश करें तो भी कुछ गुण न होगा, इस कारण देहाभिमानको त्याग और सत्य प्रतीति कर कि, "बिना आत्मा और कुछ नहीं है"। हे किंकर! गोविंद तो जगत्की उत्पात्ति, पालना, संहार, विकार स्वभाववाला है और तेरा स्वरूप आत्मा निर्विकार शुद्ध है। किंकरने कहा तुम शुद्ध अशुद्ध कहते हो मैं दोनोंसे न्यारा हूँ, पर कथा कहो।

धर्मरायने कहा सुन—काल पाकर पुनः राजाके अंतःकरणमें विष्णुके दरशनकी अतिप्रीति हुई,सो भक्तवत्सल ईश्वर विष्णु तत्काल राजाके अंतःपुरविषे प्रगट हुआ। राजा देखकर प्रेममें मग्न होकर स्तुति करने लगा। हे विष्णु! मैं कुछ नहीं, जो कुछ है सो तूही है, मध्यमें भी तूही है, अंतमें भी तूही है।विष्णुने कहा जब सर्व मैंही हूँ तू नहीं, तब तूने कैसे जाना कि,सर्व विष्णु तूही है। आपा अहंकार विना यह जानना नहीं होता।राजाने कहा जो कहता हूं सो अविद्यासे कहता हूँ, तेरे मिलापसे आपा अहंकार नहीं रहा। जैसे—अग्निके संगसे काष्ठका आकार नहीं रहता। क्या कहूँ? जो कुछ है सो तूही है। आपही आपको कहता है, आपही आपको जानना, सुनना, सूँघना, स्पर्शकरना, लेना, देना, दाता, मँगता, सर्व त्रिपुटीरूप आपही है;

जैसे–स्वप्नद्रष्टा सर्वरूप है। विष्णुने कहा कुछ माँग! राजा... तो हूँही नहीं माँगू क्या? यही कृपा कर कि, तुझबिना न... विष्णुने कहा अभेद दृष्टि तब प्राप्त होती है, जब किसी... चाहना न रहे। चाहनाही अपने स्वरूपके दर्शनविषे प... चाहना नाश हुई तब आपसे आप है। चाहनाके दूर... शास्त्र कर्तव्य कहता है, कोई अपने स्वरूप(कामना)दर्शन... नहीं कहता। जैसे बादलके दूर करनेकाही कर्तव्य है, सूर्य... कोई कर्तव्य नहीं।

चाहना कैसे छूटे?

राजाने कहा चाहनाके दूरकरनेका उपाय कहो? वि... जब मायाके गुणोंके साथ मिलके आप कुछ बनता है, त... भी होती है, जब आप अहंकार गया तो चाहनाभी संग... इससे आपको बीचसे उठादे, बाकी शेष जो है सो अवा... परमात्माका भक्त कहाता है और आपा बीच रखता है... धिक् है। हे राजन्! जैसे सर्व पदार्थोंके अंतर बाहर... पूर्ण है; तैसे–तू आपको पूर्ण जान "यह सर्व नाम रूप... हूँ, मुझ चैतन्य बिना न कोई हुआ है न होगा, मुझ चै... सर्व उपासना, प्रार्थना तथा पूजा करते हैं, मैंही चैतन्य स... अपने कर्मके अनुसार फल देता हूँ, मुझ चैतन्यकी सर्वदा ... मैंही वेदसे वेद्य सर्वको प्राप्तहोने योग्य हूँ" इस दृढभावना... करे कि, वही रूप होवे। हे राजन्! प्रगट है जबलग ल... का संग नहीं पाती, तबलग लकडीका रूप है, जब अ... अग्निको सौंपा, तब अपनारूप त्यागके अग्निरूप होती है... तक तू आपा अहंकाररूप लकडीको, ब्रह्मअग्निमें नहीं जल... तकही तुझको आवागमन है; जब तूने जाना कि, एक आत्म... हूँ, तब द्वैत है ही नहीं, तब निःसंशय तद्रूप होवेगा। हे राजन्! ...

र और जीनेकी आशासे, एक घडी भजन करता है, तो सबसे कहता है—मैंने तो एता भजन किया, और रात दिन जब इंद्रियोंकी पालनामें जाताहै तब किसीसे बातभी नहीं करता सो तो किसीसे नहीं कहता। इससे सब चाहनासे अचाह हो और आपको परिपूर्ण जान कि, सर्व मैंहीं हूं, फिर दुःख सुख कहां है? राजाने कहा—जब सर्व अस्ति भाति प्रिय रूप मैंही हूँ, तो चाहना अचाहना ग्रहण त्यागभी मैंही हूँ, किससे अचाह होऊँ? विष्णने कहा, जो तू चिंतन करता है, जिसका चिंतन होता है; तथा चिंतन, यह त्रिपुटी तू तो हैही नहीं क्यों भ्रम करता है? राजाने कहा जब मैं नहीं सर्व अंतर बाहर तूही है, तो चाहना अचाहना भी तूही है, "तू चाहनासे अचाह हो" यह तुम्हारा कहना हिसाबकी बात है। चाहना हो वा न हो, मुझको क्या फिक्र है? कुछ नहीं। जिसको फिक्र है सोई त्यागेगा, मुझको फिक्र नहीं है तो त्यागूँ क्या? विष्णुने कहा हे राजन् आशासे निराश हो! और मेरी शरण आ। मुझ बिना न जान, न देख! जो दृश्यमात्र जगत् है सो स्वप्नसमान है। राजाने कहा जब मैं नहीं तूही है, तो मुझको इन बातोंसे क्या मतलब है?

भक्ति तीन प्रकारकी है।

विष्णुने कहा भक्तिकर! राजाने कहा जहां अहंकार है, वहांही भक्ति है, जहां अहंकार नहीं, वहां भक्ति कौन करे? विष्णुने कहा भक्ति तीन प्रकारकी है १ उत्तम २ मध्यम ३ निकृष्ट। १ पाषाणादिक मूर्तियोंकी पूजा—निकृष्ट भक्ति है। २अपने आत्मासे जुदा परमात्माको मानके, ध्यान स्मरण करना मध्यम भक्ति है। ३ अपने आत्मासे अभेद परमेश्वरको जानना (घटाकाशको महाकाश रूपवत्) उत्तम भक्ति है क्योंकि, सत् चित् सुखरूप आत्मासे भिन्न घटादिक अनात्मा है। परमात्माको आत्मासे भिन्न माने, तो असत्, जड, दुःखरूप अनात्मा होवेगा। असत् जड दुःखरूप, अनात्मा होता है और जड

मिथ्या दृश्य होता है। इस हेतु अपने आत्मासे परमेश्वरको
भक्ति नहीं अभक्ति है। इससे "मुझ व्यापक चैतन्य विष्णु
आत्मासे अभेद जान" यही परमभक्ति है। राजाने कहा
भेद अभेद दोनों नहीं, जिसमें भेद अभेदका मार्ग है
प्रकारकी) भक्ति करो वा न करो ? जब सर्व मैंहीं हूँ तो उ
मध्यम क्या ? और निकृष्ट क्या ? उत्तम मध्यम निकृष्टभी
विष्णुने कहा जो भक्ति करता है, सो पर अपरसे छूटता है।
जिसमें पर अपर हो और जिसको पर अपर दुःख देता हो,
रसे छूटनेका साधन करे, मेरे स्वरूपमें देश काल वस्तुका
एकरस पूर्ण हूँ। पर अपर कहां है ? पर अपरभी मैं चै
जैसे—स्वप्नमें पर अपर है नहीं, स्वप्नद्रष्टाही सर्वरूप है,
जो भक्ति न करे, आपा अहंकार रक्खे तो भक्ति नहीं
विष्णने कहा हे राजन् ! भक्तिकर जो मूल अपना पावे
कहा हे विष्णु ! तूने आपही कहा है, "सर्व मैंही हूँ" जब
है, तो मैं जो भक्ति करूं सो मैं कौन हूँ ? विष्णुने कहा
भक्तिभी मैंही करता हूँ ! राजाने कहा जब सब तूही है, तब
करनेसे और न करनेसे तुझको क्या हानि लाभ है ? वि
भक्ति बिना सुख नहीं। राजाने कहा भक्ति करनेसे सुख
करनेसे दुःख होगा, तो ऐसी भक्ति करनेकी मुझको इच्छा
सब तूही है तो सुख दुःख किसपर है ? आप अपनी भक्ति
कर ? मुझसे पूछे तो भक्ति करने न करने तथा बंध मोक्ष
संसार, माननेवाला अहंकार था, सो मिथ्या अहंकार मेरा
है। अब भक्ति ज्ञान ध्यान भजन कौन करै ? मेरे स्वरूपमें
आगेही नहीं था, भ्रम करके अहंकारने कल्पा था, सो अहं
संसार भी गया, अब भक्ति कौन करे ? भक्ति सेवक स्वामी

होती नहीं और मैंने आप सहित सर्व जगत्को हरिरूप जाना है। विष्णुने कहा यही परमभक्ति है, कि अपने आत्मासे मुझको अभेद जानना नहीं तो कपट है।

इतनी बात कहके विष्णु अंतर्धान होगये। धर्मरायने कहा हे किंकर! जब तेरी भी यह अवस्था होवे तब स्वरूपको पावे। किंकरने कहा अपनी स्थिति बिना स्वरूप पावना कठिन देखता हूँ, क्योंकि, रसनासे बारंबार नारायण! नारायण! करता हूँ, पर मन पाप पुण्यमें बंधहै इससे भजन नहीं कपटहै। जब कर्म करते आपको निष्कर्म जानूँ, सर्व आशासे निराश होऊँ, तब पूर्णकाम होऊँ। हे धर्मराय! मैं कौनहूँ? मूल मेरा क्या है? धर्मरायने कहा—तुझको कितनी बार कहा है कि, यह बात मुझसे मत पूछ! क्योंकि, मुझको, जीवोंके भले, बुरे कर्मोंके पक्षपात रहित धर्मपूर्वक न्याय करनेकी परमात्माकी आज्ञा है, कोई जीव ईशके स्वरूपका उपदेश करनेकी आज्ञा नहीं। किंकरने कहा बडा आश्चर्य है कि, अपने स्वरूपको जाने बिना सुखके वास्ते कर्म करना, प्रकाश बिना अंधेरेको दूर करना है। हे मैत्रेय! उसी समयमें वसिष्ठ "सर्वमिदमहं च वासुदेवः२" कहते हुये आये। वसिष्ठने कहा हे धर्मराय! तुमने जो कहा है, जिसका मन अविद्यामें लीन है, तिसको स्वरूप पावना कठिन है। जिसका मन शुद्ध है तिसको सुगम है। कहो मलीनता शुद्धता दोनों किससे प्रकाश राखते हैं और किसमें है? धर्मरायने कहा प्रकाश दोनोंका आत्मासे है और अंतःकरणमें दोनों हैं। जैसे दर्पणके मकानमें शुद्धता, अशुद्धता, अमृत, विष, दोनोंका प्रकाश नेत्रोंसे होता है और शुद्धता अशुद्धता अमृत विष दोनों दर्पणके मकानमें हैं। जैसे—शुद्ध दर्पणसे मुख देखाजाता है अशुद्धसे नहीं देखा जाता। तैसेही शुद्ध अंतःकरणरूपी दर्पणसे आत्मरूपी मुख

१ आप सहित सर्व वासुदेव है।

देखा जाता है, अशुद्धसे नहीं। जो कहो अंतःकरणके शुद्ध
उपाय कौनहै ? तो जप, तप, दान, भजनादि अनेक उपा
न्तु आप सहित सर्व जगत्को, सत् चित् आनंदरूप, नि
काल तक, सत्कारपूर्वक, श्रद्धासे, ध्यान करनेसे अंतःकर
शुद्ध होता है। यही निश्चय बुद्धिमें सम्यक् जँचजाना ज्ञा
तो निर्गुण अहंग्रह उपासना है। वसिष्ठने कहा, आत्मा
पुरुष है कि, नपुंसक है ? धर्मरायने कहा—आत्मा न स्त्री
नपुंसक और स्त्री पुरुष नपुंसक भी आत्माही है। जैसे स्व
पुरुष, नपुंसक, द्रष्टा नहीं और सर्व वेही हैं, इसीसे आत्मा
आपहै। वसिष्ठने कहा, जब आपहै तब और भी होगा।
नहीं तो आप कहाँ है ? धर्मरायने कहा, नित्य सुख ज्ञा
आत्मासेही सर्व दृश्यपदार्थ उत्पन्न होते हैं, रज्जु सर्पवत्।
सेही जाने जाते हैं। आत्मा किसी दृश्यपदार्थसे जाना नहीं
स्वयं प्रकाश होनेसे। इस प्रकार आत्मा पर, अपर,
दृश्यसे परे नाम भिन्न है। वसिष्ठने कहा, जो आत्मा दृ
तो उरे भी होगा ? नहीं तो कहो, दृश्यसे उरे कौन है ?
अदृश्यसे उरला देश आत्मा विना खाली होगा ? हे धर्म
आत्मामें उरे परे नहीं। जैसे पंचभूतोंमें उरे परे नहीं,
पंचभूतही हैं।

धर्मराय तूष्णीं हुआ उसी समय गौतम और याज्ञव
आये। गौतमने कहा हे वसिष्ठ ! कहो रूप मेरा क्याहै ?
श्वेत वा लालादि ? वसिष्ठने कहा मैं नहीं जानता कि, को
नोंका श्रोता है, मुझविषे द्वैतका मार्ग नहीं, क्या कहूँ ? कि
पर कहताहूँ, श्वेत सत्वगुण, कृष्ण तमोगुण और लाल रजो
माया तथा मायाका कार्य जो कुछ मन वाणीका गोच
स्वरूप नहीं; यह मिथ्या मायाका स्वरूपहै। तेरा स्वरूप तो

स गोचर, सर्वाधिष्ठान, जगदांध प्रकाशक,अवेद्यत्व,सदा अपरोक्ष, क्षी, सच्चिद्घन, विशुद्धानंद है। गौतमने कहा जब तुझविषे द्वैत नहीं तुझको श्रोता वक्ता कैसे भान हुआ कि, आपही आपहै? वसिष्ठने हा जो दोनों नहीं तो तूने कैसे सुनाहै? गौतम तूष्णीं हुआ। याज्ञवल्क्यने कहा—मैं एक सत्व ज्ञान अनंत स्वरूप सर्व आत्मा मुझ आत्मासे पृथक् जो दृष्ट आताहै सो भ्रममात्र है। जैसे—वर्णसे पृथक् जिसको भूषणोंकी प्रतीति होती है सो भ्रमी है। सिष्ठने कहा हे याज्ञवल्क्य! जलको अपनेसे पृथक्, फेन बुद्बुदा रंग, कदाचित् भी भान नहीं होते, तुझ चैतन्य अधिष्ठान आत्माको आत्मासे पृथक् दृश्य भ्रम मात्रहै" यह कैसे भासा? याज्ञवल्क्यने हा—जल जडहै और मैं आत्मा सूर्यवत् स्वयंप्रकाश स्वरूप हूँ, झ सत्रूप आत्मासेही भ्रम अभ्रमकी सिद्धी होती है। नहीं तो हो? आत्मा विना भ्रम अभ्रमको किसने न जाना। भ्रमको भ्रम सिद्ध नहीं कर सक्ता? यमकिंकरने कहा हे याज्ञवल्क्य! सत् ने अब तक नहीं देखा, भिन्न भिन्न कर कहो? याज्ञवल्क्यने कहा त तू है, सत्को देखे कैसे? जो सत् देखने जाननेमें आवेगा तो सत दृश्य पर प्रकाश होगा। अध्यारोपकर तिसका स्वरूप कह साक्षात् नहीं जिसे इस दृश्य संसारकी उत्पत्ति, पालना, संहार ताहै तथा जाग्रत, स्वप्न सुषुप्ति हजारों वार हो होकर मिट जाते जिसमें हजारों—वार हो होकर मिट जाते हैं जिसमें हजारों ार क्रमसे सत्व, रज, तम, गुण होकर मिट जाते हैं जिसमें हजारों वार भूत, भविष्यत्, वर्तमान काल हो होकर मिट जाते हैं, जो आप तीनों कालोंमें एक रस रहता है, जो कदाचित् विकार (अन्यथा भाव) को नहीं प्राप्त होता; तिस आत्माको त् कहते हैं। अंतर जो, अपने स्वयं प्रकाश करके, सूर्यवत सर्व मनादिक दृश्यको परिमाण करता है कांटेवत् (तराजूके समान)। तात्पर्य

यह कि जिसकर अंतर सर्व मनादिकोंका वृत्तान्त जाना जा
आत्माको ज्ञानस्वरूप कहते हैं। उसकी इयत्ता परिमाण करा
इसवास्ते आत्माको अनंत कहते हैं। इस आत्मासे भिन्न सर्वदृ
असत् जड दुःखरूप जाने जाते हैं, इससे आत्माको सत्, चि
रूप कहते हैं। यमकिंकरने कहा जलसे बुद्बुदा उत्पन्न हुआ
जलरूपही है। तैसे सत आत्मासे जगत् उत्पन्न हुआ है, इ
रूपही है, असत् क्यों कहते हो ? याज्ञवल्क्यने कहा, यह
जिससे जो चीज उत्पन्न होवे सो वैसेही होवे। उपादान
समान तो निःसंदेह कार्य होता है—जैसे—मृत्तिकाके समान
लेही घटादिक होते हैं—परंतु विवर्त कारणके समान कार्य
नहीं होती। जैसे स्वप्नद्रष्टासे निद्रा दोषकर स्वप्न प्रपंच उत्पन्न
परंतु स्वप्नद्रष्टा सत् रूपहै, स्वप्न प्रपंच असत्रूप है, तथा जैसे
अपनी माया करके अनेक पदार्थ उत्पन्न करता है, परंतु
सत् है तिसके किये हुये पदार्थ असत् हैं। तथा रज्जुके
सर्पादिक उत्पन्न होते हैं, परंतु रज्जु सतरूप है सर्पादिक अ
हैं। तैसेही आत्माके अज्ञानसे जगत् उत्पन्न होता है परन्तु
सत्रूप है, तिससे उत्पन्न हुआ जगत् असत्रूप है। हे कि
अबतक अविद्यामें बंधा है, ज्ञान तुझको प्राप्त नहीं हुआ, इसी
मूलसे अप्राप्तहै। यमकिंकरने कहा—पूर्व तुमने स्वयंही कहा है
सर्वात्मा हूँ तो ज्ञानी अज्ञानीभी तुमही हो, द्वैत हैही नहीं,
हुई द्वैतको क्यों आरोपण करते हो ? याज्ञवल्क्यने कहा, मैं
यमकिंकरने कहा जो मैं हूँ ? याज्ञवल्क्यने कहा तू कौनहै ? यम
कहा मुझमें जानने न जाननेका मार्ग नहीं, आपही आपहूँ। याज्ञ
ने कहा—जब तुझमें जाननेका मार्ग नहीं तो मेरे विषे ज्ञान अ
आरोपता है ? किंकर तूष्णीं हुआ।

तिसी समय व्यास आये और कहा जो कोई मुक्त हुआ चाहे, भक्ति विन्दकी करे। याज्ञवल्क्यने कहा भक्तिका स्वरूप क्या है? व्यासने हा आप सहित सर्व जगत्को हरिरूप जाननाही परमभक्ति है। ज्ञवल्क्यने कहा आप सहित सर्व हरिरूप जानना रूप भक्ति, जीव प मनको करनी है। मन दृश्य मिथ्या संकल्प विकल्प रूप कल्पित तिस मनकी मुक्ति नहीं होसकती और जीवनका लक्षस्वरूप र साक्षी आत्मा चैतन्य "आप सहित सर्व हरि है" इसजानने न जान- से पहलेही स्वतःसिद्धही बंध मोक्षसे रहित स्थित है, तिसकी क्तिभी नहीं बनसक्ती यहाँ(जीवभी मनके अंतर्भूतही जानना)। से—जलके अंतर्भूतही सूर्यका वा आकाशका प्रतिबिंब है, जलके हणसे प्रतिबिंबकाभी ग्रहण होता है। तैसे मनरूप जलके ग्रहण साक्षी आत्माका मनविषे प्रतिबिंबरूप, जीवकाभी ग्रहण होता । अपने स्वरूपका जाननाही मुक्ति है न जानना बंध है और मुक्ति धकी कल्पना करना भ्रममात्र है। कोई मुक्ति वस्तु नहीं, जिसके हणसे मुक्ति होवे।

। योगका प्रयोजन ।

याज्ञवल्क्यने कहा इससे हे व्यास! योग कर जो तेरा मन शांत वे। व्यासने कहा मुझ चैतन्य आत्मामें योग वियोग दोनों नहीं, तःही शांति स्वरूप है, योगके करनेसे नहीं। योग नाम है चित्तकी काग्रताका—जब मैं चैतन्य चित्तसे परे नाम जुदा होके चित्तका ाक्षी द्रष्टा हूँ, तो मुझको चित्तकी एकाग्रता अन एकाग्रतासे क्य तलब है? यह चित्त तो एक रस रहताही नहीं, कभी स्वतःही काग्र होजाता है (सुषुप्ति आदि स्थानोंमें) कभी चंचल होजाता है। झ चैतन्यको इस चित्तकी चंचलता और एकाग्रता, दुःख सुख नहीं ती, विना प्रयोजन नाहक किसीसे छेडाछेडी करना भलमन्सीका

काम नहीं, उलटा अपना (लुच्चोंसे छेडाछेडी कर) बडप्प
है। इससे मैं चैतन्य योग वियोग दोनोंसे मुक्त हूं। याज्ञ
कहा आत्मा एक है कि, दो? व्यासने कहा आत्मा एक
है। याज्ञवल्क्यने कहा जो आत्मा एक होता तो, कोई यो
भोगमें, कोई धर्ममें, कोई कर्ममें, कोई मोक्षके साधनोंमें, को
व्यापारोंमें, रति कर रहा है? कोई सुखी है, कोई दुःखी है, को
है, कोई अल्पज्ञ है, एकसा नहीं। इससे जाना जाता है कि
अनेक हैं, एक नहीं। वसिष्ठने कहा जैसे अनेक मृत्तिकाके
स्थानमें धरे हैं, किसी घटमें घृत है, किसीमें तेल है, किसी
है, किसीमें विष है, किसीमें मल मूत्र है, किसीमें शुद्ध गंगा
तिस जलमें सूर्यका वा आकाशका आभासभी पडता है
शराब है, किसीमें उत्तम उत्तम औषधि हैं, अनेक घडोंमें
भर रहा है, तिनमें सूर्यका वा आकाशका समही प्रतिबिंब प
अनेक घट मलीन जलके भरे हैं, तिनमें आभासभी स्पष्ट
घट बडे हैं, अनेक छोटे हैं, कोई मध्यभावी हैं, परन्तु आ
घटोंमें एकही, निर्विकार, असंग सत्यरूप पूर्ण है; नाना आ
और मृत्तिकारूप घटभी एकही सरीखे हैं, तिनमें जलभी
सरीखा है, सूर्यका वा आकाशका प्रतिबिंबभी सर्व घटोंमें
रीखा है, परन्तु एक घटके हिलानेसे सब हिलते नहीं,
फूटनेसे सर्व घट फूटते नहीं क्योंकि, भिन्न भिन्न हैं परन्तु
आभास सर्वमें एकसा है; जो आकाशका धर्म फूटना हलना
एकके फूटने हलनेसे सब फूटते हलते, परन्तु आकाश
धर्म फूटना हलना नहीं। तैसेही पंचभूतरूप मृत्तिकाके,
जरायुज, उद्भिज्ज, स्वेदज, देहरूप घट हैं, तिनमें अंत
जलभी एकही सरीखा है, तिस अंतःकरणरूप जलमें

भासभी एक सरीखा है। कोई अंतःकरण सात्विकी है, कोई राजसी
, कोई तामसी है, कोई मिश्रित है, कोई क्रोधी है, कोई लोभी है,
कोई अंतःकरण भोगी है, कोई वैरागी है, कोई अंतःकरण शांति-
वान् है कोई धन कमानेमें (रती) प्रीतिवान् है, कोई फकीरीमें रह-
ताहै; कोईका अंतःकरण सुखी है और कोईका अंतःकरण दुःखी है।
कोईका अंतःकरण सर्वज्ञ है, कोईका अल्पज्ञ है इत्यादि अनेक स्व-
भावोंवाले अंतःकरणही हैं, परन्तु सर्व देहोंमें आत्मा भगवान् एकही;
निर्विकार निष्क्रिय, सर्वका साक्षीरूप करके स्थित है। जो सुख दुःखा-
दि आत्माके धर्म होवें तो एकके सुखसे वा दुःखसे सर्व सुखी और
दुःखी होने चाहिये, इसलिये आत्माके धर्म नहीं, किंतु अंतःकरणके
धर्म हैं। सो अंतःकरण विशिष्ट चैतन्यके, देह अनेक हैं इससे एकके
दुःख सुखसे सर्व सुखी दुःखी नहीं होते। जैसे वृक्षरूप औषधियोंके
स्वभाव जुदे जुदे हैं, परन्तु तिनको प्राप्त जल एक है। हे याज्ञवल्क्य!
असली विचार करे तो जब अस्ति भाति प्रियरूप सर्वात्माही है तो
भोक्ता, भोग, भोग्य, कर्ता, कर्म, क्रिया, द्रष्टा, दर्शन, दृश्य, ध्याता,
ध्यान, ध्येय, प्रमाता, प्रमाण, प्रमेय, पूजक, पूजा, पूज्य इत्यादि त्रि-
पुटी रूपभी आप हैं और त्रिपुटीका प्रकाशभी आपही हैं। जैसे स्व-
प्नद्रष्टा सर्व स्वप्नके पदार्थरूपभी आपही हैं और तिनका प्रकाशक
भी आपही हैं। याज्ञवल्क्यने कहा जब प्राणायाम कर, प्राणको द-
शवें द्वार चढाता है, तब भगवान् मिलता है और आनंद प्राप्त होता
है। यमराजने कहा प्राणायामसे दशवें द्वारमें परमेश्वर मिलता है,
यह व्यवहार जिसकर सिद्ध हुआ, सोई भगवान् है, सो पूर्ण है। क्या
भगवान् दशवेंद्वारमेंही बैठा है और जगह नहीं, सो नहीं। जिसका
मिलाप होगा उसका बिछोहा भी होगा। जो भगवान्की योगसे प्राप्ति
होती है तो ऐसे योगकी हमको इच्छा नहीं और न मिलाप बिछोह

वाले भगवान्की इच्छा है क्योंकि; व्यापक, चैतन्य, शुद्ध मुक्त, बुद्धि आदिकोंके साक्षी आत्मासे पृथक्, असत् जड परिच्छिन्न आनात्मा वंध्याका पुत्र समान भगवान् है। जैसे द्रवता शिथिलतारूप जलसे भिन्न समुद्र अत्यंत असत् है। वान्को मिलकर क्या कार्य सिद्ध होगा ? कुछ नहीं। जिसके प्राप्ति होवेगी तिसकी अयोगते अप्राप्ति भी होगी. अपने स्वरूप आत्माको सम्यक् जानना रूप योग करो, जो बैठने, चलने, भोगने, अभोगने, ध्यान, अध्यान, योग त्याग, शांति अशांति, ज्ञान अज्ञान। तात्पर्य यह कि, चिक, मानासिक, सर्व व्यवहार में एकसाहै, न्यूनाधिक प्राप्तहोता। बालकोंकी लीलाके पीछे क्यों फिरते हैं, पृथक्, भगवान् स्वप्न तुल्य शशशृंगवत् है इससे आपको क्यों भटकता है ? इस अनात्मयोगको त्याग। याज्ञवल्क्य नामरूप जगत्का उपादान कारण अज्ञान है, जब ज्ञानका नाश हुआ तो ज्ञानीको अपने शरीरसहित जगत् कार्यकी क्यों होती है ? न होनी चाहिये ? क्योंकि, उपादान कारण कार्य नहीं रहता, यह नियम है। जैसे मृत्तिका सुवर्णके भूषण नहीं रहते।

दोप्रकारका भ्रम।

धर्मरायने कहा अन्य शास्त्रोंमें यह प्रकरण विस्तृत है, (यह केवल सिद्धांत ग्रंथ है) परन्तु संक्षेपसे सुन। भ्रम होता है एक निरुपाधिक भ्रम होता है दूसरा सोपाधिक है। जैसे रज्जुमें सर्पादिक भ्रम तथा स्वप्न भ्रम निरुपाधिक क्योंकि, रज्जु ज्ञानसे तथा निद्रारूप कारण (निद्रारूप नाशसे, सर्पादिक कार्य तथा स्वप्नकार्यकी, तिसीकालमें अत्यंत होती है, बाकी शेष कार्यकी प्रतीति होती नहीं, इत्यादि स्थानों

धिक भ्रम है। तथा जैसे शुद्ध स्फटिकमणि किसी जगहमें पडीहै, तिसके पास लाल पुष्प भी धरा है, तिस स्फटिकमणिमें लाल पुष्पकी शुद्ध लालीकी दमक पडती है, परन्तु स्फटिकमणिके अज्ञात पुरुषको शुद्ध स्फटिकमणि लाल प्रतीत होती है। कदाचित् उपदेशसे वा अपनी बुद्धिके विचारसे, किसी पुरुषको शुद्ध स्फटिकमणिका ज्ञान हो भी गया हो तथापि जबलग लालपुष्प स्फटिकमणिके समीप पडा है, तबलग स्फटिकमणि लालही प्रतीत होता है। पुष्पके अभावसे लालीका अभाव होगा अन्यथा नहीं। इत्यादि सोपाधिक भ्रमके अनेक दृष्टांत हैं। तैसेही-यह संसार सोपाधिक भ्रम है, यद्यपि आत्मवेत्ता विद्वानने, कार्यकारणरूप संसारका, अत्यंताभाव, अपने स्वरूप विषे सम्यक् जान भी लिया है, तथापि जबलग प्रारब्धरूपी पुष्प पडा है, तबलग सम्यक् विद्वान्को भी, अपने शरीरसहित संसाररूप लालीकी, अपने शुद्धस्वरूप आत्मामें प्रतीति होती है। जैसे-जलके समीप वृक्षोंके सम्यक् ज्ञाता पुरुषको भी; जलविषे उलटे वृक्ष दीखते हैं जैसे वस्त्र जलाभी जबलग वायुका संबंध नहीं हुआ, तबलग वैसेही दीखता है परन्तु कार्य नहीं देता; केवल देखने मात्रही है। तथा कैसाभी कपडा वा कोई और पदार्थ हो पर अग्निके संबंधसे बदलकर कालाहोजाता है। तैसेही इस पुरुषका ज्ञानरूपी अग्निके संबंधसे पूर्व, मैं देहहूं, कर्त्ता, भोक्ता, सुखी, दुःखी, पापी, पुण्यवान्, वर्णी, आश्रमी हूँ, मैं जन्ममरणवान्हूँ इत्यादि देहाध्याससे मिलकर, जो निश्चय है, सोई सफेद कपडेकी मुवाफिक है। जब ज्ञानरूपी अग्निका पुरुषरूपी सफेद कपडेको संबंध हुआ, तब "मैं शुद्ध, चैतन्य, नित्य, मुक्त, सुखस्वरूप, व्यापक आत्मा हूँ। न जन्मता हूँ न मरता हूँ, न मैं खाता, पीता, लेता, देता, सोता, जागता हूँ, न मैं देह हूँ, न वर्णी आश्रमी हूँ इत्यादि" सर्व देहके धर्म हैं, मेरे नहीं। यही पूर्वसे विलक्षण

निश्चय पुरुषरूप सफेद कपडेका रंग बदलकर काला होना ज्ञानरूपी अग्निकर,कारण उपादान अज्ञान सहित यह देह कार्य दग्ध होभी गया परंतु जबलग प्रारब्धका नाशरूप वा सहित संसाररूप कपडेको संबंध नहीं हुआ, तबलग कार्यरूप सहित, संसाररूप कपडा ज्ञानीको वैसेही प्रतीति होता है,परंतो जन्मरूप कार्यको नहीं देता। जैसे, भूना चना पूर्ववत् प्रतीत होताहै, भक्षणसे क्षुधाका नाशरूप कार्य भी करता है, परंतु अंकुरको नहीं देसक्ता। तैसेही दार्ष्टांत जानलेना। तथा जैसे मनविशिष्ट देहसे भुवाटी (चक्कर) लेता है, तिस भुवाटीसे पृथिवी आदि पदार्थ फिरते मालूम होते हैं, तिन पदार्थोंके उपादान कारण अंतःकरणविशिष्ट देहका घूमना था। पुनः घूमनेसेभी, किंचित् काल पीछेभी, सर्व घूमते प्रतीत होते हैं ज्ञानसे संसारके उपादान कारण (अज्ञान) के नाश प्रारब्धके नाशपर्यंत, किंचित् काल, इस देहसहित (ज्ञानीको भी) प्रतीति होती है।

याज्ञवल्क्यने कहा हे वशिष्ठ! नाम तेरा योगवसिष्ठ है चाहिये योगका पक्ष करना। वसिष्ठने कहा क्रियारूप योग के अधीन है, चाहे करे चाहे न करे, इससे मिथ्याहै। योग अयोग दोनों अंतर सिद्ध होते हैं, सोई सत्रूप है मेरा तथा सर्व जगत्का स्वरूपभी वही है। जो कर्ता योग अयोग कहाँ है। याज्ञवल्क्यने कहा व्यासकी प्रसन्नता योगको त्यागकर ज्ञानको निश्चय करता है। व्यासने पक्ष अपक्ष नहीं, परन्तु जो अकृत्रिम, स्वतःसिद्ध, सर्वके अनुभव सिद्धहोवे, तिसीको निश्चय मानता हूँ। आपसे आप है कि, कर्तासे प्रकट होता है? याज्ञवल्क्य

करनेहीसे योग होता है। व्यासने कहा योगके करनेवाले सत् आत्माको जान कि, योग अयोगते मुक्त होवे।

पराशरने कहा हे मैत्रेय! मैं भी तिस सभामें गया और कहने लगा सब नहीं हैं; एक मैंही हूँ वसिष्ठने कहा ऐसे मत कह, जो तू है तो सब भी हैं। मैंने कहा मैं आपसे आपहूँ मुझविषे पर अपर नहीं। वसिष्ठने कहा सभासे निकस जा, क्या पर अपर तुझसे भिन्न है? जैसे—पंचभूत कहे पर अपर भौतिक पदार्थ हमारेमें नहीं, तिनका कहना सभामें हाँसी योग्यहै। मैंने कहा मैं किसीकी सभामें नहीं बैठाहूँ, आपसे आप स्वयंप्रकाश स्वरूप हूँ; यदि बैठा भी हूँतो अपनी सभामें बैठाहूँ क्योंकि, पंच ज्ञानेंद्रिय पंच कर्मेन्द्रिय, पंचप्राण, मन बुद्धि, चित्त, अहंकार, इत्यादि कार्य कारण, नाम रूप, प्रपंच मुझ अधिष्ठान समुद्रविषे, फेन बुद्बुदे तरंगादिकोंके समान कल्पित हैं, मुझ चैतन्यकी सत्तासे पृथक् श्रोत्रादिक इन्द्रियोंकी पृथक् सत्ता नहीं, मुझसेही चैतन्य हो रहे हैं। जैसे दाहकता, उष्णता, प्रकाशकता रूप अग्नि करही लोहा उष्ण, प्रकाश, दाहक होता है स्वतः नहीं। इससे पूर्वोक्त इन्द्रिय मनादि मुझ चैतन्यके गुलाम हैं, तिनमें मैं चक्रवर्ती राजाके समान विराजमान हूँ। इससे यह अन्य किसीकी सभा नहीं किन्तु मैं अपनी सभामें बैठा हूँ। जैसे फेन; बुद्बुदे, झाग तरंगादिकोंकी सभामें जल बैठे। जैसे अनेक घटोंकी सभामें मृत्तिका बैठे। जैसे अनेक भूषणोंकी सभामें सुवर्ण बैठे। जैसे स्वप्नके ऋषीश्वरों, मुनीश्वरों; सिद्ध, योगीश्वरों, ब्रह्मवेत्तों, धर्मात्माओं तथा अन्य स्वप्न नरोंकी सभामें स्वप्नद्रष्टा बैठे। तैसे मैं इस मायिक प्रपंचरूप संघात, सभामें बैठा भी अमायिक स्वरूप हूँ। हे याज्ञवल्क्य! जो योग सत् होता तो, आपसे आप क्यों न होता? योग करनेसे होता है। काया मन वाणी

से जो जो कर्म होते हैं और जो तिन कर्मोंका फल है, सो सर्व योग्य
मायामात्र है। तेरा योगभी कायिक, वाचिक, मानसिक ता,
है इससे अनित्य है। मुझ योगसे जाननेवाले सत् आत्माको
अनित्य योगकी इच्छा नहीं।

। विष्णु ।

पराशरने कहा हे मैत्रेय ! तिसी समय विष्णु भी आया
कि, विष्णु नाम व्यापक, नित्य, सुख, चैतन्यके साथ
आत्माको अभेद सम्यक् जानेगा, सो कालके भयसे छूटे
कि, जो देश, काल, वस्तु, भेदवान् पदार्थ होता है, सोई परिच्छि
नित्य पदार्थ होता है, तिसीको काल भक्षण करता है इससे
तन्यके साथ अभेद हो, जो अज्ञानरूपी कालसे छूटे। जैसे घटाका
आपको महाकाशसे, अभेद सम्यक् जानता है, तब भ्रमरूप,
परिच्छिन्न प्रतीतरूपी, मृत्युसे मुक्त होता है। मैंने कहा हे विष्णु
चित्त सुख नित्य व्यापकके साथ जो अभेद होगा, सो कालसे मुक्त
जिसकर यह मन वाणीका कथन किंचित् सिद्ध नहीं होता है
अवाङ्मनसगोचर, स्वयंप्रकाश स्वरूप हूँ। मुझविषे भेद अभे
नहीं। जिसमें अभेद होगा तिसमें भेद भी होगा और जो भे
दवान् पदार्थ हैं, सो मिथ्या दृश्य मायामात्र हैं। विष्णु नाम मा
मायासे रहितही विष्णुका परमपद है, कहो मायिक अमायिकका
कैसे होगा? दूसरा यह बडा आश्चर्य है कि, तुझ, नित्यसुख, चि
पकस्वरूप, विष्णुको "यह मुझसे भिन्न है, जब मुझसे अभिन्न हो
कालकी फांससे मुक्त होवेगा, यह भेद अभेद कैसे प्रतीत
जैसे मधुरता, द्रवता, शीतलतारूप, जल फेन, बुद्बुदे,
कोंको उपदेश करे कि, तुम सब मुझसे अभिन्न होंगे, तो
बचोगे, भिन्न रहोगे तो कालका ग्रास होगे। यह तिसका उपदेश

योग्य है क्योंकि, फेन, बुद्बुदे, तरंगादिक, मधुरता, द्रवता, शीतलता, रूप जलसे पृथक् हैं ही नहीं।वा जलरूपही हैं, तिन तरंगादिकोंको जलसे भेद अभेदका उपदेश; जलको लज्जाका काम है।तैसे जब नित्य, सुख, प्रकाश, व्यापक, कालादिक स्वरूपभी तूही है, तब तुझसे कहो कौन भिन्न है? जो तुझसे अभिन्न होके कालसे बचे।इससे यह सब कहनेमात्र है।विष्णुने कहा—तुझ अवाङ्मनसगोचरने, मन वाणीका चिंतन कथन कैसे जाना? मैंने कहा मैं चिद्घन देव अवाङ्मनसगोचर होकर भी सर्वका आत्मा होनेसे स्वतःही सर्वको अनुभव करता हूँ, जो मैं अनुभवस्वरूप नहीं होऊं तो, यह जड, चैतन्य, है, यह नहीं, इत्यादि दृश्यके व्यवहारकी सिद्धि कैसे होवे।जैसे स्वप्नद्रष्टा सर्व स्वप्नसृष्टिसे अवाङ्मनसगोचर हुआ हुआभी सर्व स्वप्नसृष्टिको अनुभव करता है, जो स्वप्नद्रष्टा स्वयंप्रकाश, स्वप्नका अनुभव करनेवाला नहीं होता, तो स्वप्न सृष्टिका तथा तिसके व्यवहारोंका भिन्न भिन्न हाल कैसे जाना जाता, किन्तु नहीं जाना जाता।

। शिव ।

तिसी समय ज्ञानके समुद्र शिव आये और कहा—शिवनाम कल्याण स्वरूप तथा मंगलस्वरूप एक चिद्रूप मैंही हूँ, मुझसे पृथक् यह सर्व नामरूप दृश्य अकल्याण अमंगल स्वरूप है, मुझ करही यह मंगल स्वरूप होरहा है, अन्यथा नहीं। जैसे सूक्ष्म शरीर करही स्थूल शरीर मंगलरूप होरहा है क्योंकि, तिस अमंगल स्वरूप दृश्यका मैं शिव मंगल स्वरूप आत्मा हूँ। धर्मरायने कहा स्वरूप मंगल अमंगलसे न्यारा है, मंगलअमंगल दृश्य माया कोटिमेंही है; जैसे स्वप्नमें कोई पदार्थ मंगलरूप प्रतीत होता है, कोई अमंगलरूप प्रतीत होता है(मंगलनाम सुखकाहै अमंगल नाम दुःखका है) परन्तु स्वप्नद्रष्टा दोनोंसे अतीत है। शिवने कहा हे धर्मराय! अपेक्षित

दृश्यरूप मंगल अमंगलको प्रकाश करनेहारा मैं शि सिद्ध, मंगलस्वरूप हूँ ! व्यासने कहा जो मंगलस्वरूप अमंगल भी होगा । शिवने कहा मंगलस्वरूप चैतन्यको किसने किया है ? कहो ? जीव, वा ईश्वरने वा ब्रह्माने, वा वा मायाके कार्य प्रपंचने ? जीव, ईश्वर, ब्रह्म तो मुझ शिव होकर मुझको अशिव कर नहीं सक्के, मुझ शिव चिद्‌ भिन्न अशिव होनेके भयसे और मायाके कार्य प्रपंच मुझ शिवसे जुदे अशिव, असत् रूप हैं, सत् असत्का एक काल एकही स्थानमें, इकट्ठा संबंध होता नहीं । जैसे स्वप्न जाग्रतका होतानहीं । संबंध बिना शिवको अशिव कैसे करसकेंगे किंतु सकेंगे । इस कारण मैं एकही अनंत नित्य ज्ञानरूप शिव हूं । निमकके डलेको कोईभी मधुर नहीं करसक्ता, स्वभावसेही लव सिद्ध है । यमकिंकरने कहा जब तुम एकही शिव हो, तो अशि है ? जिसका निरूपण करतेहो ? शिवने कहा जिसने मुझ शिव होकर मुझ शिवका निरूपण सुनाहै, सोई अशिव है । हे यम जब मैंही हूं, तू हैहीनहीं, तूने मेरा निरूपण कैसे सुना । इस अशिव है ? यमकिंकर तूष्णीं हुआ ।

योगविषयक-सम्वाद ।

पराशर कहते हैं-मैंने कहा हे याज्ञवल्क्य ! रूप तेरा क्या है वल्क्यने कहा, मैं पूरक, कुंभक, रेचक करता हूँ, ईश्वरका विषे स्थित होकर ध्यान करता हूँ परंतु आपको नहीं जानता कौन हूं ? तूही कह मैं कौन हूं ? मैंने कहा हे याज्ञवल्क्य जिस कुंभक, रेचक, प्राणायामका न्यूनाधिक भाव जाना जाता है, जि योगविषे स्थित हुआ "मैं ईश्वरका ध्यानकरता हूं वा नहीं मनका धर्मरूप ध्यान अध्यान जिसने सिद्ध किया, सोई तू नि

निर्विकल्प, स्वतःसिद्ध, मनका ध्यानरूप योग, वा प्राणोंकी क्रिया रूप योगका द्रष्टा, चैतन्य है। हे याज्ञवल्क्य! तू बंधरूप दुःखकी निवृत्तिवास्ते और मोक्षरूप सुखकी प्राप्तिवास्तेही योगादिक साधनोंमें प्रवर्त होता है। और तो कुछ योगादि साधनोंसे मतलब नहीं। सो तू पक्षपातसे रहित होकर सूक्ष्म विचारसे देख! मनकी वृत्तिरूप, सुख दुःखके सिद्ध करनेवाला तुम द्रष्टा, साक्षी, चैतन्यमें, सुख, दुःख कहाँ—है? अंतर मनकी एकाग्रता रूप समाधिक सुखको और मनके विक्षेपरूप दुःखोंको वा शारीरक दुःखोंको, जिसने अनुभव किया, सोई तू अनुभव स्वरूप, सुख दुःखसे रहित आत्मा है। क्योंकि विना कीचड लागे कीचडके दूर करनेका यत्न करता है।आत्मविज्ञानवान् पुरुषोंके मध्यमें क्यों अपनी हाँसी कराता है। योग, अयोग, सुख, दुःखरूप, बंध, मोक्ष, और बंधमोक्षकी निवृत्ति प्राप्तिवास्ते यत्न, विद्या अविद्या, ग्रहण त्यागादि, सब अनात्म धर्म, तुझ आत्माकी दृश्य हैं। दृश्यके धर्म अपनेमें मानकर क्यों विक्षेपवान् होता है।

श्रवणादिका स्वरूप।

याज्ञवल्क्यने कहा हे पराशर! श्रवण, मनन, निदिध्यासन साक्षात्कारका स्वरूप कहो मैं तो तूष्णीं हुआ। शिवने कहा हे याज्ञवल्क्य! सुन! श्रवण करनेवाला चैतन्यके आभास सहित अंतःकरण और श्रवण नाम अंतःकरणकी वृत्ति और श्रवण करने योग्य शब्दका अर्थ, इस त्रिपुटीका प्रकाश करनेवाली जो चैतन्य वस्तु है, सोही मैं हूँ, अन्य नहीं। इस दृढ निश्चयका नाम श्रवण है। वा अंतर, प्राणरूप वायुके संचारसे साधारण शब्द होता रहता है जिसको अनहद शब्द बोलते हैं, सो मनकी भावनारूप, दश प्रकारके शब्दका कल्पना होता है उसीमें एकाग्रता वास्ते मनको जोडना होता है। सो दश

प्रकारके शब्द तथा तिन दश प्रकारके शब्दोंमें मनका
जुडना, जिसकर यह सर्व व्यवहार जाना जाता है; सोही मैं
निर्विकल्प वस्तु हूँ, अन्य मैं नहीं । इस निश्चयका नाम श्र
श्रवणका सिद्ध करनेवाला आत्माही श्रवणी है। इससे आपको
श्रवणी जान । इसीका नाम श्रवण है तात्पर्य यह कि, श्रोत्र
सहित मनका धर्म श्रवण है, मुझ चैतन्यका धर्म नहीं,
असंग चिद्घन देव हूँ। हे याज्ञवल्क्य ! तैसेही चैतन्यके
सहित मनन-कर्त्ता मन, मनकी वृत्ति तथा (धर्म, अर्थ,
मोक्ष) मनन करने योग्य पदार्थ, इस त्रिपुटीके सर्व
अनुभव करनेवाला मैं नित्यमुक्त ज्ञानस्वरूप आत्मा हूँ।
यह कि, मन और मनके मननको जाननेवाला मैं हूँ, इस
नाम मननहै; तैसे ध्याता, ध्यान, ध्येय, सारांश यह कि; सा
न्यके आभास सहित अंतःकरण ध्याता बालकके समान
बके जलके समान जानना । ध्यान डोरके समान वा तालाब
द्वारा निकले जलकूलके समान जानना और गुण वा निर्गु
श्वरसे आदिलेकर, सर्व, नाम रूप कार्य कारण प्रपंच, ध्येय
जानना । तथा कनकौवा क्यारीके, तुल्य दृष्टांत जानना।
यह कि, ध्याता, ध्यान, ध्येयरूप त्रिपुटीके न्यूनाधिक भाव
पहचान करने वाला, अपनी महिमामें स्थित, साक्षी आ
यह त्रिपुटी दृश्यरूप मैं नहीं । जैसे-सूर्य वा आकाश
डोरको, गुडीको निर्विकार असंग हुआ (पूर्वोक्त त्रिपुटीको)
करता अवकाश देता है, तिस त्रिपुटीको अपना स्वरू
जानता है, इस दृढ निश्चयका नाम निदिध्यासन है । जैसे
विपर्ययसे रहित सर्व अज्ञानी जीवोंकी, देहविषे आत्मबुद्धि
है । तैसेही-श्रवण मनन निदिध्यासन का जाग्रत, स्वप्न,

ादिका, तिनमें वर्तने वाले प्रपंचका, जो प्रकाशक है सो अनंत नित्य चिद्घन देव निश्चय कर मैंही हूँ। इस अपरोक्ष बुद्धिका नाम आत्मसाक्षात्कार है। परंतु इस बुद्धिके निश्चयरूप साक्षात्कारको ी मैं जाननेवाला इस साक्षात्कारसे परे, अवाङ्मनसगोचर, स्वयं प्रकाश स्वरूप हूँ, इससे परे और कुछ नहीं। यही अनुभवही परम अवस्था है, यही परमपद है, यही परमसाक्षात्कार है, आगे जो तेरी इच्छा हो सो कर। हे याज्ञवल्क्य! जब इस अनुभवका अनुभव होता है तब प्रह्लादके समान अनेक संकटोंमें प्राप्त हुआ भी अपने, अस्ति भाति प्रियरूप, सर्वात्मस्वरूपके निश्चयसे चलायमान नहीं होता। जिधर किधर अपनाही स्वरूप देखता है। बाहरसे तिसका व्यवहार जैसे पूर्व श्रेष्ठाचरणवाले विद्वान् पुरुषोंका हुआहै तैसेही होता है, परंतु वास्तवसे अन्तर तिसका, जड चेतनका, तथा जीव ईश्वर स्त्री पुरुष, शुभाशुभ, बंध मोक्षादि भेद निवृत्त होजाता है। याज्ञवल्क्य तूष्णीं हुआ। यमकिंकरने कहा, मन इन्द्रियोंका प्रकाशक, गोविन्द आत्मानेही अनेक नामरूप होकर प्रकाश किया है, कैसे एकात्मा जानूँ? शिवने कहा हे यमकिंकर! जैसे एकही सुवर्णसे अनेक नाम रूप भूषणोंका प्रकाश होता है, परन्तु सुवर्णही है, अन्य कुछ नहीं। जैसे अनेक नामरूप करके वृक्ष प्रकाशमान भी है, परन्तु विचारेसे सर्व काष्ठरूपही है; तैसे यह अनेक नामरूप जगत् भासता भी है परन्तु सम्यक् विचारनेसे सर्व नामरूप प्रपंच, अस्ति, भाति, प्रियरूप, आदि, मध्य,अंत तूही सर्वात्मा है,तुझसे पृथक् कुछ नहीं। यमकिंकर तूष्णीं हुआ क्योंकि, जब समुद्र लहर मारे तब हँसली रूप तालाब कहाँ रहे।

१ भजन किसे कहतेहैं?

गौतमने कहा—मुक्ति भजनसे होती है, भजन यही है कि, रसनासे "नारायण नारायण कहना"। मैंने कहा भजन सब करतेहैं पर सुखकी

अप्राप्ति है । हे गौतम ! भजन नाम भज जानेका नाम त्यागजाने जिस न अर्थ निषेधका है।तात्पर्य यह कि,इस कार्यकारणरूप संघातके जानने अनहुये अहंकारका त्याग करनेका नाम भजन है। पुनः तिस वस्त्र विषे, अहंकार बुद्धिके त्यागका भी, अभिमान न करनेका नाम तथा भजन है । माया और मायाके कार्य स्वप्नवत् सर्व नामरूप केवल नाम नर है सो नररूप गृहविषे अस्ति, भाति, प्रिय सर्वका हुआ रूपसे है निवास जिसका, सो कहिये नारायण। जैसे फेन बुद्बुद स्थिर गादि रूप गृहविषे,मधुरता,शीतलता,द्रवता रूपसे है निवास वस्तु सो कहिये जल । वा पूर्वोक्त नरका अयन (आश्रय) पसे सुख प्रकाश स्वरूप अधिष्ठान है, सो कहिये नारायण। रूप बुद्बुदे तरंगादिकोंका अधिष्ठान जल है । सो पूर्वोक्त नारायण रीति असंग, निर्विकार, बुद्धि आदिकोंके साक्षी, आत्मासे भिन्न आ भिन्न मानोगे तो तुम्हारा नारायण अनात्मा घटवत् अनित्य हूँसे वेगा क्योंकि, आत्मासे भिन्न अनात्माही होता है, यह जो इससे क्या सिद्ध भया कि,पूर्वोक्तरीतिसे इस संघातका तथा सुख दुःखादि धर्मोंका,अहंकार त्यागना पुनः तिस अहंकार काभी अभिमान न करके, सच्चिदानंद नारायणको अपने अभेद जाननाही परमभजन है । सब संतोंसे पूंछ देखो, अंतर, बाहर सर्व नारायण आत्माही है ।

विरक्त किसे कहते हैं ?

गौतमने कहा मैं सर्वको त्याग कर विरक्त होता हूँ। मैं विरक्त उसको कहते हैं, जो किसीसे हेत खेद न करे,परंतु तू दिक पदार्थोंको द्वेषसे त्याग करता है, किसी मोक्षादिक पदार्थ विरक्तता ग्रहण करता है;इससे तू विरक्त न हुआ । दूसरा यह

जिस अहंकारको त्यागवत् त्याग कर, आत्माकी प्राप्तिकी प्राप्ति जाननी थी, सो तो करता नहीं, जो अयत्नहीं सुखका हेतु है। कपासके वस्त्र सफेद तथा धातुके पात्रको त्यागके, सयत्न मृगछाला वा भोजपत्र तथा कमंडलुका ग्रहण करनेसे क्या त्याग और क्या ग्रहण किया? केवल जिस अभिमानसे संन्यास करना था उसीकी उलटी बुद्धिकी हुआ विरक्त वही है, जो ग्रहण त्याग बुद्धिरहित अपने स्वरूपमें स्थित है। जो एक वस्तुसे द्वेषपूर्वक संन्यास करता है और अन्य वस्तुको रागपूर्वक ग्रहण करता है, सो विरक्त नहीं। वा निजस्वरूपसे पृथक् दृश्यमें रति नहीं करता, तिसका नाम विरक्त है। वा नाम रूप दृश्यके मिथ्यत्व निश्चयपूर्वक, जो निजस्वरूपमेंही विशेष करके रति करता है, तिसीका नाम विरक्त है। गौतमने कहा भेष मेखली आदि विरक्त राखते हैं, तैसेही मैं भी होता हूँ। मैंने कहा तेरी बुद्धि हँसने योग्य है क्योंकि, विरक्तको भेष मेखलीसे क्या प्रयोजन है? जो अहंकारका त्यागी है सोई विरक्त है।

प्राणायामका फल वर्णन।

इतनेमें अत्रिने आकर कहा कि, प्राणायामरूपी योग करकेही मुनींद्र, योगेन्द्र मुक्त हुयेहैं, विना योग मुक्ति नहीं। व्यासने कहा योग स्वयंप्रकाश है कि परप्रकाश है? अत्रिने कहा योग करनेसे होता है इससे जाना जाता है परप्रकाश है। व्यासने कहा परप्रकाश योगसे, स्वयंप्रकाश, नित्यमुक्त, आत्माकी मुक्ति कैसे होगी, उलटा स्वयंप्रकाशकात्मासेही योगकी सिद्धि होती है। जो आगेही स्वरूपसे मुक्त है, सो किसी रीतिसे आपको भ्रमकरके अमुक्त माने, तिसी भ्रमकी निवृत्तिसे मुक्तकी मुक्ति होती है; अन्य किसी योग कर्मादि, अनेक क्रियारूप, साधनोंसे तिसकी मुक्ति नहीं होती

क्योंकि, कर्म योगादिभी भ्रमरूप हैं । जैसे स्वप्नमें राजा नि
आपको दरिद्री मानता है,सो तिसकी दारिद्रता,निद्रारूप दोष
त्ति बिना, अनेक क्रियारूप योगादि साधनोंसे दूर नहीं
जैसे—परप्रकाश स्वप्न पुरुषोंके योगादि अनेक साधनोंसे छूटे
स्वयंप्रकाश स्वरूपकी मुक्ति नहीं होती क्योंकि; स्वप्नपुरुष
सर्व योगादि स्वप्नके पदार्थोंका स्वप्नद्रष्टामें कल्पित हैं,
पदार्थ अधिष्ठानकी अनुकूलता तथा प्रतिकूलता कुछ
सक्ते । किंतु विचारहीद्वारा भ्रमकी निवृत्तिसे मुक्त स्वरूप
पुनः आपको मुक्तस्वरूप मानता है । अत्रिने कहा योग
होती है । व्यासने कहा कितनेही आपको योगी माननेवाले
जगत्में भी तिनका योगीपना प्रसिद्ध था, परन्तु जब वे
जीवित अवस्थामें भी, तिनके अंग, शरीर, मांस, त्वचा,
अस्थि,नाडी, रोम,मल,मूत्र,जैसे सर्व अयोगी पुरुषोंके हैं, तै
योगियोंके देखे गये हैं, विशेषता नहीं, रोजही नेती, धोती
पखालना;मलके दूरकरने वास्ते करते हैं परन्तु उलटी आगे
होती है, न्यून नहीं। यह सब विद्वानोंका अनुभव है।तथा यह
योग तो नट मंगता लोकभी करसक्ते हैं, (पंजाबके राजा
सिंहके वक्तमें यह प्रसिद्ध बात है, और पंजाब देशके निवासी
जानते भी हैं कि, कोइक मंगताने लाहौरमें रणजीतसिंहके
तथा अन्य हजारों पुरुष स्त्रियोंके सन्मुख, षट् मासका प्रा
करके संमाधिनामा दशवें द्वारमें प्राण चढाया था पीछे
इनाम माँगा) इससे योगक्रिया है, करनेवाला सम्यक्
सब हो सक्ता है।अन्य जगहमें भी सुननेमें आता है।देखो ! प्रसि
और नटनी लोगोंके शरीरकी कसरत देखकर सबको आश्चर्य
(नित्य अभ्यासका फल है) परन्तु तिनकी मुक्ति नहीं होती।

अपने सम्यक् आत्मविचारसे, सम्यक् स्वरूपको अपरोक्ष जाना है, वे जीवित अवस्थामेंही कृतकृत्य हुये हैं। इससे हे अत्रि ! आत्मविचारसेही भ्रम दूर होता है क्रियारूप योगसे भ्रम दूर नहीं होता। भ्रम छूटे विना सुख नहीं, आत्मविचारसे योग आपही आप होता है। अत्रिने कहा योगके बिना अंतर्दृष्टि कैसे खुले? व्यासने कहा अंतर-दृष्टि आत्मविचारसे खुलती है, योगसे नहीं। योगसे उलटा अंतर मलीन होता है क्योंकि; जब योग करता है, तब दृष्टि सर्व अंगोंपर करताहै, जिधर किधर रुधिर मांस ऊपर दृष्टि आती है और कुछ नहीं आती। शरीर अति मलीन है शारीरक दृष्टि भी मलीन है। जिसको सम्यक् आत्मविचार हुआ है, तिसको दिव्यदृष्टि कहते हैं क्योंकि, जो पिंडे सोई ब्रह्मंडे, जो खोजे सो पावे। जैसे—एक घटका सम्यक् विचार करनेसे, घटका मृत्तिकारूप; अपरोक्ष बोध (पुरुपको) होता है। तैसेही सर्व ब्रह्मांडके सर्व घटोंकाभी, विना यत्नसे तिसको मृत्तिकारूप, अपरोक्ष बोध होता है। तैसेही—जिस विद्वान् पुरुषने; इस व्यष्टि शरीरको, दृश्यरूपता वा पंचभूतरूपता वा मायारूपता वा अनात्मरूपता वा अपने आत्मस्वरूपमें कल्पित स्वरूपता और अपने आत्माको अवाङ्मनसगोचरता, वा अस्ति, भाति, प्रिय सर्वरूपता, सम्यक अपरोक्षरूप जाना है। तिसको समष्टिका बिना यत्न अपरोक्ष बोध होता है, जो पिंडे सोई ब्रह्मंडे। जिसको भूत, भविष्यत, वर्तमान कालका ज्ञान है; वह कालदृष्टि कहलाता है, सो ज्योतिषी आदिक घने हैं; कोई परमपदको नहीं प्राप्त होते। मोक्षके हेतु आत्मदृष्टि वास्ते आत्मविचार ही कर्तव्य है। इससे हे अत्रि ! अंतर बाहर सर्व गोविंद आत्मा मैंही हूँ, मुझ आत्मासे भिन्न कुछ नहीं। इस दृढ निश्चयका नामही योग है। जो अपने स्वरूपसे पृथक् देखना है, सोई मलीनता है; जैसे—जलसे भिन्न बुद्बुदे तरंगादिकोंकी प्रतीति भ्रम है। अत्रि तूष्णीं हुआ।

इन्द्र ।

तिसी समय इंद्रने आकर कहा "मैं नित्य सुख चिद्रूप संघातरूप स्वर्गविषे, मन चक्षु इंद्रियादि देवतोंका साक्षी स्थित हूँ। सत, रज, तम गुणरूप त्रिलोकीका मैं चैतन्य प्रेरकहूँ" वा स्थूल शरीर समष्टिव्यष्टि तथा समष्टि व्यष्टि सू तथा समष्टि व्यष्टि कारण शरीररूप, त्रिलोकीका चैतन्य इंद्रही सिद्ध करनेवाला हूँ। वा जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति कीका प्रकाशक, मैं ही तुरीय चैतन्यरूप इंद्र हूँ। माया आत्मा इंद्रकी इंद्राणी इस त्रिलोकीका उपादान कारण है। क देवतारूप इन्द्रिय, शब्द, स्पर्श, रूप, रस; गंध आप योंमें मुझ द्रष्टा साक्षी चैतन्य इंद्रकी आज्ञारूप सत्ता होते हैं अन्यथा, नहीं। पृथिवी, आप, तेज, वायु, आका चैतन्य इंद्रके आगे प्रधान देवता हैं; मैं चैतन्य साक्षी नामरूप त्रिलोकीमें पूर्ण हूँ, मैं चैतन्यही त्रिलोकीको प्रका हूँ। जैसे-स्वप्नद्रष्टा सर्व स्वप्न सृष्टिमें पूर्ण है, तथा सर्वको प्रका है; जो मैं पूर्ण नहीं होऊं तो तिनको सिद्धी कैसे होवे ? मुझ चैतन्यको त्रिलोकी तथा त्रिलोकी अंतर्वर्ती पदार्थ कोई भी सक्के मैं सबको जानता हूँ। इसीसे मैं स्वयंप्रकाश हूँ। व्यासने यंप्रकाश और परप्रकाश, मन वाणीका कथन चिंतनरूप ध आत्मा इससे भी परे हूँ, मुझ आत्मामें पूर्ण अपूर्ण दोनों स्वतःही निर्विकल्प हूँ। इंद्र तूष्णीं हुआ।

ब्रह्मा ।

तिसी समयमें ब्रह्माने आकर कहा-मैं व्यापक ब्रह्म, चैत यांमी, परमेश्वर, सर्व ब्रह्मलोकरूप देहोंमें साक्षीरूप होकर परन्तु जिस अधिकारीको मुझ व्यापक चैतन्य परमेश्वरके द

नेकी इच्छा हो, सो "इस मनुष्य देहरूप ब्रह्मलोकविषे, जो सर्व मनादिकोंका हरवक्त सदा अपरोक्ष साक्षीरूप चैतन्य आत्मा है; सोई मेरा स्वरूप है और इससे पृथक् नहीं, सो साक्षी चैतन्य आत्मा मैं हूँ "यही निश्चय करे, यही मेरा दर्शन है। ऐसा बहम (भ्रम) नहीं करना कि, पूर्वोक्त स्वरूपसे भिन्न परमेश्वरका स्वरूप किसी स्थानमें वा किसी कालमें मिलेगा परन्तु हे अधिकारी जनों ! मैं तुम्हारा आत्मा मनआदिकोंका साक्षीरूप होकर सदा अपरोक्ष स्थित हूँ। व्यासने कहा हे देवनके देव ! वचन तुम्हारा अमृतके समान है, तुम नित्य, सुख, अनंत, साक्षी, आत्मा, मन वाणीके अगोचर हो, तुमको कैसे जाना जावे ? ब्रह्माने कहा हे व्यास ! मुझ सुख, चित्, नित्य, साक्षी, आत्माका, अवाङ्मनसगोचर कर जो अनुभव होना है, यही मुझ परमेश्वर साक्षीका सम्यक् जानना है, अन्य प्रकार असम्यक् जानना है। व्यास तूष्णीं हुआ।

। महादेव ।

महादेव कहते भये हे सभा! जो तुम्हारे अंतर सच्चिदानंदरूप, मनआदिकोंका साक्षी, आत्मा है तथा मन वाणीके चिंतन कथनसे परे है तथा स्वरूपसेही बंध मोक्षसे रहित है, परन्तु सदा हाजिर हुजूर है, सोई वस्तु तुम आपको जानो। इस वस्तुसे जुदा, परमेश्वर, परमात्मा, ईश्वर, नारायण, गोविंद, विष्णु, शिवादिक नामोंसे प्रतिपादित परमात्मा भिन्न नहीं। जो भिन्न होवेंगे तो असत् जड दुःखरूप होवेंगे तथा मन वाणीके गोचर अनात्मा दृश्य होवेंगे, जो जो मन वाणीके कथन चिंतनमें आता है, सो सो दृश्य, दुःख, जड, अनित्य, अनात्मा है; तिनको तुम सम्यक् अपना स्वरूप मत जानो। काइक वाचिक मानासिक कर्म करते भी आपको अकर्ता, अभोक्ता, जानो। तुमको

तिन कर्मोंका स्पर्श सुख दुःख न होगा। जैसे चकोरकी साथ अतिप्रीति होनेसे, अग्निका भक्षण करता हुआ भी दाह तिसको नहीं होता।

। शुक्र।

तिसी समय शुक्र आये और कहने लगे—जबलग त्रिपु बैठे तबलग सुख नहीं पाता। इससे तुरीया श्रेष्ठ है। व्या हे शुक्र! जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्तिके प्रकाश करनेवाले आत्म तुरीया है, तिसकीही श्रेष्ठता है, अन्यकी नहीं। सो आ स्वप्न सुषुप्तिमें भी हरवक्त अपरोक्ष है, जो आत्मा तिनमें होवे तो तिनका प्रकाश कैसे होवे? इससे "जाग्रत् स्वप्न त्यागकर तुरीयामें स्थित होवे" यह वचन हाँसीके योग जाग्रतादिकोंमें पूर्ण हुआ तिनका प्रकाशक, सुखरूप तुरी मैं हूँ, यह निश्चय तो ठीक है तैसेही—सुखरूप आत्मा स पूर्ण है, जो आत्मा सर्व अंगोंमें पूर्ण नहीं होवे तो सर्व अं न होना चाहिये क्योंकि, ज्ञानस्वरूप आत्माही है अन्य अंगोंको त्यागकर त्रिपुटीमें स्थित होवे यह तेरा कहना ल है। क्योंकि, सुखरूप आत्मा पूर्ण है, त्रिपुटी तो रुधिर मां रूप है; तिसमें सुख कहां है? आत्मा सर्व अवस्थामें स आत्मामें सर्व अवस्था सम है।

मैत्रेयने कहा हे पराशर! मैं कौन हूँ? नेत्र, त्वचा, का घ्राण हूँ? वा हाथ, पाँव, वाक्, शिश्न, गुदा हूँ? वा शब्दा विषय हूँ? वा सत् रज तम तीन गुण हूँ? वा प्राण मन बु अहंकार हूँ? वा पंचभूत हूँ, वा जड़ माया हूँ? पराशरने सब तुझ चिद्घन देवसे प्रगट हुये हैं, तुझको कौन कहे जो तू अ

। संसार सागर ।

मैत्रेयने कहा इस संसारसमुद्र जलसे मैं पार कैसे होऊँ? पराशरने कहा—तुझ अस्ति भाति प्रियरूप वस्तुसे भिन्न संसार समुद्र जल ही नहीं तो पार किससे उतरता है? लज्जावान् हो, जो मृगतृष्णाके जलते पार होनेवास्ते नौकाकी इच्छा करता है; पहले संसारविषे जलको निश्चय कर पीछे पार हूजियो। मैत्रेयने कहा तुमहीं कहो जल कौन है? पराशरने कहा जैसे जलके बिना समुद्र असार है, तैसे तुझ सुख, अनंत, चिद् आत्मारूप जलसे, यह नामरूप संसार तरंग असार है। इससे तूही चैतन्य आत्मा जलरूप है, जब तूने आपको अस्ति भाति प्रियरूप सार जल जाना तो, विचार देख संसाररूप समुद्र कहां है? किंतु कुछ नहीं, यही मुख्यपक्ष है। गौण अर्थ यह है कि, संसाररूप समुद्रमें जल, अहंकाररूप वासना है! मैत्रेयने कहा वासनाका रूप क्या है? पराशरने कहा वासनाका रूप मैंने देखा नहीं। मैत्रेयने कहा जब रूप देखा नहीं तो संसार समुद्रविषे वासना जल है, यह कैसे कल्पा? जब अहंकाररूप वासना नहीं राखता तो; मुझको वासनासे क्या भयहै? क्योंकी, रूप रहित आकाश किसीको दुःख नहीं देता।

। गणेश ।

तिस समय गणेश आये और कहा गणनाम मन सहित चक्षु आदि इंद्रियोंका है, वा गणनाम इस नामरूप मूर्ति सहित सकारण समूह प्रपंचका है, तिनको जो नियमन करे नाम प्रेरणा करे, तिसका नाम ईश है, वा ब्रह्मा, विष्णु, शिवादिक, सर्व मूर्ति अमूर्तिमान्, प्रपंचगणका, जो मालिक होवे तिसका नाम गणेश है। सो यह पूर्वोक्त गणोंका ईशपना चैतन्य वस्तुमेंही घटसकता है, अन्य किसी सूक्ष्म वा स्थूल मूर्तिमान् वस्तुमें घटसकता नहीं क्योंकी, चैतन्यसे

भिन्न सर्व,संसारके अंतर्भूत है।इससे गणेश नाम मनआदिको चैतन्य आत्माका है। सो पूर्वोक्त गणेश तुम्हारा तथा सर्व स्वरूप है यह नहीं कि, ब्रह्मा, विष्णु, शिवादिक, देवतोंका गणेश आत्मा है और चींटीका आत्मा नहीं, चींटीका स्व है। ऐसा नहीं चाहे ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सत् वक्ता यथार्थ ज्ञाता बैठे हैं, तिनसे पूछलो। पुनः सबने कहा यथार्थ दृष्टि स्वरूपमें भेद नहीं, व्यवहारमें भेद है । पुनः गणेशजी लगे–हे सभा! असली विचार करें, तो व्यवहारमें भी भेद नहीं कि, व्यवहार नाम कथन प्रतीतिका है, सो भी एकसा है। पंच ज्ञानेन्द्रिय, पचं कर्मेंद्रिय, पंच प्राण मन, बुद्धि, चित्त अहंकार, ग्राहक और शब्दादिक विषय ग्राह्य सो, यह ग्राहक ग्राह्यभाव प्रीति सर्व शरीरोंमें तुल्य है।इन्द्रिय विषयके संयोग वियोगज दुःखकी प्रतीति भी पुरुषोंको तुल्यही है तथा पंच भूतोंकी प्र तुल्यही है। चक्षु आदिक इन्द्रियोंके दर्शनादिक व्यवहार सिद्धही भिन्न भिन्न सर्व शरीरोंमें होरहे हैं, यह भी तुल्यही है :सभा! सम्यक् गणेश अपने आत्माको जानो और संसारके में न्यूनाधिकभाव मत देखो, यह दृश्यमान प्रपंच मायामात्र कहकर गणेश तूष्णीं हुये, सर्व सभाने गणेशजीका अनुमोदन

। चन्द्रमा ।

फिर चन्द्रमा आये और कहने लगे–भ्रम सिद्ध जो बंध तमसे रहित विष्णु है, सोई शांतिरूप मुख्य चन्द्रमा है त स्वतःही ज्ञान अज्ञानसे, जन्म मरणसे, हर्ष शोकसे, सर्व धर्मरूपी तमसे रहित है सोई चन्द्रमा है।जो स्वतःही काम कोंसे तथा उदय अस्त भावरूपी तमसे रहित है, सोई शान्तिरू

चन्द्रमा है। जो न्यूनाधिकभावसे रहित, सदा एकरस, निर्विकार, दृश्य, संबंधसे रहित, सदा अपरोक्ष, मनादिकोंका साक्षी, आत्मा हृदयरूप आकाशमें स्थित है, सोई चन्द्रमा है। नित्य, चिद् सुख, आत्मारूप चन्द्रमाके दर्शनसेही अध्यात्म, अधिभूत, अधिदैव, ताप मिट-जाते हैं। तथा सर्व दर्शन अपनाही होजाता है, दर्शन योग्य अन्य कोई पदार्थ रहता नहीं। ब्रह्मलोक, विष्णुलोक, शिवलोकादिकोंके सुख जिस चन्द्रमाके नजदीक, समुद्रमें एक किनकेकी समान हैं, उसी आत्मारूप चन्द्रमाके सम्यक् दर्शनसे जो कुछ करना था सो होचु-कता है तथा जहाँ जाना था सो जा चुकता है, सर्व करता भोक्ताभी आपको अकरता अभोक्ता मानता है। उसी आत्मारूप चन्द्रमाके दर्शनसे वास्तवसे आप अकरता अभोक्ताभी अपनी मायासे सर्वका कर्ता भोक्ता आपको जानता है। उसी आत्मारूप चन्द्रमाके दर्शनमें इस अनित्य सर्व नाम रूप जगत्का आपकोही अधिष्ठान प्रकाशक नियामक, उत्पत्ति, पालक, संहारक, सम्यक् संशय रहित अपरोक्ष जानता है। उसी आत्मारूप चन्द्रमाको जानकर अस्ति भाति प्रियरूप से आपको सम्यक् सर्वात्मा जानता है। उसी अनंत, नित्य, चिद आत्मरूपी चन्द्रमाके आनंदसे, सर्व आनंदमान् होरहे हैं। यदि आनंद स्वरूप (सर्वके हृदयविषे) आत्मरूप चन्द्रमा न होवे तो सर्व जीवोंका कैसे जीवन होवे; किन्तु नहीं होवे। देखो शुद्ध चैतन्य चन्द्रमारूप आत्मा आनंदकी पूर्णता कि, मेहतर अपने हालमेंही मस्त है, जब मलसे निपटकर अपने बाल बच्चेमें निवास करता है, तब राजाको भी कुछ गिनता नहीं; अन्यकी क्या बात है ? तैसेही शूकर कूकरभी अपने बालबच्चेमेंही प्रसन्न हैं, इन्द्राणी सहित इन्द्रादिकोंके भोगोंकी इच्छा नहीं करते। देखो ! मजदूर सारा दिन मजदूरी करता है, परन्तु जब रात्रिमें अपने बाल

बच्चोंमें निवास करता है, तब धनियोंको स्वप्नमें भी याद नहीं होवे
आप लोग ख्याल करो मलका चींटा, मलमेंही (अपनी की
प्रसन्न है, अपनेसे भिन्न सृष्टिके भोग विलासको मंजूरही नहीं प्रक
तैसेही पक्षी अपनी सृष्टिमें खुश रहते हैं, बनोंके वृक्षोंमेंही अपूर्व
जूर रखते हैं (महलोंका नहीं) अन्य सृष्टीके भोग विलासोंको एक
समान जानते हैं। सारांश यह कि, एक दूसरेकी दृष्टिसे सुख दुःख न्यू
धिकभाव प्रतीति होता है, नहीं—स्वदृष्टिमें सुख ही इस
मृगादि पशुभी आप अपनी सृष्टिमें आनंदी हैं, अन्य सृष्टि रूप
देखो ! मच्छरादि हमारी दृष्टिसे तुच्छ जीव भी एक दिनमेंही चं
युवा, वृद्धादि, अवस्था अपने बालबच्चों सहित भोगकर नष्ट हु
हैं, परन्तु अन्य सृष्टिके सुखोंको तुच्छ जानते हैं इत्यादि। सू
सूक्ष्म अंतर विचार करनेसेही, अपने स्वरूप आनंदकी पूर्ण
होती है, अन्यथा नहीं। तात्पर्य यह कि, जहाँ कोई जिस कि
वा स्थानमें, जातिमें, मंत्र, तंत्र, औषधी, शास्त्र, वेद, पु
शास्त्रादि विद्यामें, विषय लंपटतामें, तथा धर्म, अधर्म,
चोरी, यारी, ठगी, दंभ, जिमींदारी, नौकरी, व्यापार, स्त्री, पुरु
वर्ण, आश्रम, ज्ञान, अज्ञान, फकीरी, अमीरी, ध्यान, पू
तप, योग, वेदांत, समाधि, व्रत, तीर्थ, यम, नियम, तमा
कविता, धूर्तता, तथा परमहंसीसे आदिलेकर जहाँ जो स्थित है
आनंद मान रहा है क्योंकि, आनंद स्वरूप चैतन्य साक्षी आ
हृदयमें पूर्ण है; इसीसेही सर्व आनंदमान होरहे हैं। जो चैत
अनुभव आत्मारूप, अलौकिक चंद्रमा, सर्व प्राणीमात्रके हृद
नित्य स्थित न होवे; तो यह सुख दुःखरूप संघातमें एक दिन भी
कठिन हो जावे। उलटा जिस शरीरमें है उस शरीरको अन्य
सुखरूप उत्कृष्ट मानता है। जो आपको निकृष्ट माने तो जीवन

होवे। इस हेतु आत्मारूपी चंद्रमाकी महिमा अवाङ्मनसगोचरहै। किसकी उपमा देवें मन वाणी आदिक सर्वका तथा षट् प्रमाणोंका वही प्रकाशक है। जो अनंत चित् सुखात्मारूप अलौकिक चन्द्रमाके पूर्वोक्त विशेषण कहे हैं, सो लौकिक दृश्यरूप आकाशज चंद्रमाविषे एकभी घटते नहीं अथवा और मनआदिक दृश्य पदार्थोंमें भी घटते नहीं। यह सूक्ष्म भाव बुद्धिके विचारसे जाना जाता है, स्थूलतासे नहीं। इससे पूर्वोक्त विशेषणोंयुक्त, नित्य, सुख, मनआदिकोंका साक्षी चिदात्मारूप, चंद्रमाही ब्रह्मासे लेकर चींटी पर्यंत सर्वका स्वरूप है। तिसी चंद्रमाको मैं, अपना आत्मा जानकर सर्व संसार, भ्रमसे रहित, संतुष्ट हुआ, सुखसे जीवता हूँ। कोई भी संसार धर्म मुझको स्पर्श नहीं करता सदा आकाशमें गमनरूप क्रिया करता भी अकरता हूँ।

। आत्मप्राप्तिका साधन ।

व्यासने कहा तिसके जाननेका साधन कौन है? चंद्रमाने कहा हे व्यास! तुमसरीखे सत्यवक्ता, ब्रह्मनिष्ठ, पक्षपातसे रहित हस्तामलकवत्, अपरोक्ष स्वरूपके, विद्वान् पुरुषोंका संगही परमसाधन है। आत्मा, साक्षीरूप चंद्रमाके देखनेको सत्संग नेत्र हैं। शम दमादि अन्य सर्व साधन सत्संगके अंतर्भूत हैं। इस हेतु निःसंग पुरुषोंको सत्संगही कर्त्तव्य है अन्य नहीं। व्यास तूष्णीं हुये।

। कुबेर ।

तिसी समय कुबेर आये और कहने लगे हे सभानिवासी! धन नाम प्रसिद्ध, निज कार्य सहित जड मायाका है, कैएकके महात्माओंने धननाम स्त्री पुत्र पैसा गृह पशु आदिकोंका कहा है, तदुपलक्षित सर्व संसार लेलेना, इस व्यक्ति सहित सर्व नाम रूप जगत्का जो स्वामी होवे सो कहिये धनेश। वा धन नाम है कृतकृत्यका सो कृत-

कृत्य धर्म मनका है क्योंकि, जो अकृत्य होताहै वही कृतकृत्य
सो मनआदिकोंको कृतकृत्यतारूप मोक्ष देवे अथवा अपनी
र्ति रूप धन देकर जड मनआदिकोंको ऐश्वर्यवान् नाम चे
तिसका नाम धनेश है।सो यह धनेशका अर्थ किसी माया तथा
कार्यरूप दृश्यवान् मूर्तिविषे घटता नहीं, साक्षी चैतन्य आ
हीं घटता है, सो पूर्वोक्त धनेशही सर्वका आत्मा है । इस बुद्धि
कोंके प्रकाशक धनेश (साक्षी आत्मा) कोही सम्यक् जान
कृत्य हुआ संसार भ्रमसे रहित होता है और तब संसारमें
जल कमलवत्, संसार धर्मोंसे असंग रहता है । इससे यह
व्यक्ति धनेश कहनेमात्रही है; असली धनेश चैतन्य आत्मा
मैं आत्मारूप धनेशही सर्वको स्फूर्तिरूप धन देता हूं।
कोई दृश्य पदार्थ सत्ता स्फूर्ति दे नहीं सक्ता । इस हेतु तुम मु
धनेशकोही अपना आत्मारूप जानो कि, जिससे तुमभी आ
रूप धनके ईश (धनेश) होओ वसिष्ठने कहा मैं चैतन्य
कर्तव्यसे धनेश नहीं होता, किंतु स्वतःही धनेश हूँ,जैसे
महाकाश रूप बनानेसे नहीं होता, किंतु आगेही महा
है । धनेशने कहा तू कौन है ? वासिष्ठने कहा तू है ।
कहा मैं कौन हूं ? वसिष्ठने कहा जो मैं हूं । धनेशने
मैं तू है वहां माया है, मैं मायासे परे हूँ। व्यासने कहा जो तू
सर्वरूप है कि, असर्व रूप है ? यदि तू चैतन्य धनेश
है तो मायाभी तूही है परे उरे भी तूही है । जो तू
है जो असर्वरूप होता है, सो परिच्छिन्न जड, उत्पत्ति
अनित्य, दृश्य होता है । धनेशने कहा सर्व असर्व
मैं चैतन्य आत्माही हूँ, क्योंकि, अस्ति भाति प्रियरूप
सर्व, माया, अमाया, जड, चेतन, नित्य, अनित्य मैंही
हूँ और अवाङ्मनसगोचर दृष्टिसे कल्पित सर्व संसारसे परे

ष्ठान हूँ। कल्पित अधिष्ठानकी यही रीति है; जैसे—स्वप्नद्रष्टा सर्व स्वप्नके पदार्थ रूप भी है और स्वप्न पदार्थोंसे अगोचर भी है क्योंकि, स्वप्न पदार्थ कल्पित हैं और स्वप्नद्रष्टा अधिष्ठान सत् है। व्यासने कहा "वाङ्मनसगोचर और अवाङ्मनसगोचर" तुझ चैतन्यमें यह भेद कहाँसे आया? धनेशने कहा भेद अभेद तूने कल्पा है, मुझ चैतन्यमें नहीं। जैसे—सूर्यमें दिन रात्रि नहीं, औरोंने दोनों कल्पे हैं। व्यास तूष्णीं हुये।

। ध्रुव ।

तिसी समय ध्रुव आये और कहा-हे मैत्रेय! विचार और शोच कर देख! यह जगत् अनादि कालका चला आता है, इस जगत्के व्यवहारकी मर्यादा स्थापन करने वास्ते, सच्चिदानंद आत्मा ध्रुव ईश्वरने, जैसे सूर्य चन्द्रमा लोक रचेहैं तैसेही ध्रुव (उत्तर और दक्षिण) दो रचे हैं; कोई पीछे होनेवाला उत्तानपाद राजाका पुत्र ध्रुव नहीं हुआ। ध्रुव सूर्यादि अनादि हैं। उत्तानपाद राजाके पुत्रका नाम भी ध्रुवही था, नाम नामकी तुल्यतासे लोगोंने अनादि आकाशज ध्रुवही कथामें लिख दिया। सो उत्तानपाद राजाका पुत्र ध्रुव भी अपने तपके प्रभावसे माता, पिता सहित वा एकलाही निश्चित बहुत काल स्थायी लोगोंको प्राप्त हुआ अथवा ध्रुव लोककोही प्राप्त हुआ है। [यहां ध्रुव नक्षत्रका प्रकरण है]

ध्रुव कहने लगा हे सभानिवासी उत्तम जनो! ध्रुव नाम निश्चयका है, तथा अचलका है; निश्चय करके जो अचल होवे तिसका नाम ध्रुव है। सो ऐसा निश्चय अचल नित्य, सुख, चिद्रूप, आत्माही है अन्य नहीं क्योंकि, ये नक्षत्र ध्रुवसे आदिलेके सूर्य, चन्द्रमा, सुमेरु, समुद्र, पृथिवी, आप, तेज, वायु, आकाशादि जो अचल महान् पदार्थ दीखते हैं, सो महाप्रलयतकही हैं, महाप्रलयमें चलरूप होजावेंगे।

अपनी उत्पत्तिसे पहले थे नहीं और अंत रहेंगे नहीं, मध्यमेंही अचलता प्रतीति होती है; सो भी भ्रममात्र है; इसीसे चलहै। चैतन्यद्वारा चल भी प्रपंच अचल प्रतीति होता है, सो अचल है क्योंकि, जिसका जो स्वरूप आदि अंत होताहै तिसका मध्यमें होता है, यह न्याय प्रसिद्ध है। आदि अंत तथा भूत भविष्यत् वर्तमान कालमें, जाका बोध ज्ञानसे वा अज्ञानसे न हो, किन्तु एकरस रहे सो अचल होता है। ब्रह्मा, विष्णु महाप्रलयमें अपने नित्य, चित्, सुख, ध्रुव स्वरूप, आत्मामें स्थित होनेपर भी उपाधिके अदृश्यताके कारणसे पुनः स्थित जैसे घटाकाश महाकाशरूप होनेपर भी घट उपाधिक "यह घटाकाश महाकाशरूप होगया है," ऐसे प्रतीति होता है ब्रह्मा, विष्णु, शिवादि भी अध्रुव दृश्यरूप शरीरोंको त्याग अन्यकी क्या बातहै ? इससे यह सर्वनामरूप प्रपंच अध्रुव ध्रुव नहीं। नित्य सुख चिद्रूप आत्माही एक ध्रुव है अन्य सोई सर्वका आत्मा है । अपने ध्रुवस्वरूके अज्ञानसे, अध्रुव मानते हैं। अपने ध्रुवस्वरूप आत्मासेही अध्रुव संघातकी तथा संघातके धर्मोंकी सिद्धि है। बडा आश्चर्य है अध्रुव नामरूप मन आदिकोंको यह ध्रुवात्मा सिद्ध करता है अपना स्वरूप मानता है, परन्तु वास्तवसे अध्रुवरूप होता मुझ ध्रुव स्वरूप आत्मा द्वाराही यह अध्रुवरूप संसार प्रतीति हो रहा है। जैसे अग्नि करही लोहा प्रकाशमान होता है अप्रकाश रूप है । इससे जिस अधिकारीको भ्रमरूप निवृत्ति और मोक्षकी प्राप्तिकी इच्छा होवे, सो मुझ चैतन्य अपना साक्षी आत्मा जाने । सारांश यह कि, "मैं नित्य, सुख रूप, बुद्धि आदिकोंको द्रष्टा, साक्षी आत्मा हूँ" सत्य सं धर्मपूर्वक सम्यक् ऐसा जाननाही कर्तव्य है और कोई भ्रम

वास्ते कर्तव्य नहीं। जैसे आकाशज ध्रुवके चौफेर शिशुमार चक्र फिरता है परन्तु ध्रुव नहीं फिरता, जो ध्रुव भी फिरेगा तो ध्रुव संज्ञासे रहित होवेगा। तैसे सर्वके अंतर, साक्षीरूप होकर जो मैं ध्रुव हूँ, सो मेरे चौफेर भी जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, तथा सत्, रज, तम, शुभ, अशुभ संकल्पादिक, तथा बालक युवा वृद्धादि, सर्व पदार्थोंका न्यूनाधिकभाव होनाही शिशुमार चक्र फिर रहा है। तात्पर्य यह कि, कभी जाग्रत् होता है, कभी स्वप्न होता है, कभी सुषुप्ति होती है, कभी तुरीया होती है, कभी सत्व, कभी रज, कभी तम होता है, कभी शुभ संकल्प विकल्प होता है, कभी अशुभ संकल्प विकल्प होता है, कभी बालक, कभी युवा, कभी वृद्ध अवस्था होती है, (ऐसेही सर्व पदार्थ जानलेने) परन्तु मैं चैतन्य ध्रुव निर्विकार स्थित हूँ। जो पूर्वोक्त चक्रवत् मेरा भी चक्र होवे मेरी भी अध्रुवता होवेगी। इससे मुझ चैतन्य रूप ध्रुवसे भिन्न, सर्व नामरूप जगत् अध्रुव जडरूप है।

पराशरने कहा हे मैत्रेय! ध्रुवकी वाणी सुनकर यमकिंकरने कहा "ध्रुव अध्रुव द्वैतमें हैं, मैं अद्वैत हूँ"। ध्रुवने कहा मुझ चैतन्य ध्रुवसे अभिन्न होकर तू अद्वैत सिद्ध होगा, नहीं तो अध्रुव होगा। यमकिंकरने कहा जब अद्वैत है तो भिन्न अभिन्न क्या? ध्रुवने कहा भिन्न अभिन्नभी अद्वैत ध्रुवही है धर्मरायने कहा ध्रुव है तो चलभी है। ध्रुवने कहा लौकिक ध्रुव अध्रुवसे रहित मैं अलौकिक ध्रुव हूँ, वास्तवसे अस्ति भाति प्रिय सर्व चल अचल नामरूप मैंही आत्मा हूँ। धर्मरायने कहा लौकिक अलौकिक, ध्रुव, तीन पद हुये। बुद्धिमान् एक कहते भी लज्जायमान होते हैं, तुम तीन कहते हो? ध्रुव तूष्णीं हुआ।

। दक्षप्रजापति ।

तिस समय दक्षप्रजापति आये और कहने लगे दक्षनाम चतुर का है; चतुराई बुद्धिसे होती है, बुद्धि नाम ज्ञानका है; इससे

दक्ष नाम ज्ञान स्वरूपका है । सर्व नाम रूप प्रजाका पति (स्व ज्ञानस्वरूप होवे तिसका नाम दक्षप्रजापति है । वा सर्व प्रजा होवे सो प्रजापति है। सो यह अर्थ ज्ञान स्वरूप आत्मामेंही घ इससे हे साधो ! इस ब्रह्मासे आदिलेके चींटी पर्यन्त, सर्व ज्ञानस्वरूप मैं आत्माही पति हूँ ? मनकरकेभी अचिंतनीय है जिसकी ऐसे, सर्व नामरूप, सर्व प्रजाकी उत्पत्ति पालना करता हूँ और मननादिक प्रजाविषे मैं निवास कर सर्वको आ व्यवहारमें नियमनभी करता हूँ (मेरा नियमन कोई नहीं करता तिनके कर्मोंसे अस्पर्शभी हूँ; यही मेरी चतुराई है जैसे आकाश स्थित हुआ हुआ अस्पर्श (अलग) है, यही आकाशकी चतुराई कारण तुम सर्व प्रजा मुझ, ज्ञान स्वरूप अनंत चिदात्माको पति क्योंकि, मैं ज्ञान स्वरूप आत्माही सर्वका स्वरूप हूँ। जो जि स्वरूप होता है सोई तिसका पति होता है; जैसे सर्प दंडमालादि पदार्थोंका रज्जुही पति है क्योंकि, रज्जुके अधीन ही तिन सर्प की प्रतीति होती है, अन्यथा नहीं । तैसे—मुझ चैतन्यसेही कल्पित इस दृश्य जडकी प्रतीति है, अन्यथा नहीं । चंद्रमा मुझ आनंद स्वरूपसे भिन्न तू दुःखरूप है । दक्षने कहा जो स्वरूप है सोई आनंदस्वरूप है, तथा सद्रूप है; मुझ ज्ञान तुम जुदे हुये, असत् जड होजावोगे । ज्ञानके भीतर सबको पडेगा चंद्रमा तूष्णीं हुआ और सूर्य भगवान् आये।

सूर्य्य।

सूर्य्य भगवान्‌ने कहा कि, मैं एकही चित्सुख नित्य आत्मा, सर्व सूर्य चंद्रमादिक ज्योतियोंका तथा मायासे आदि देहपर्यंत सर्वका प्रकाशक हूँ, मैं आपही स्वयंप्रकाश स्वरूप है

कोई प्रकाशक नहीं। जैसे बाहर सूर्यसेही चैत्रादि बारामास षट्ऋतु, तीन चतुरमास, सिद्ध होते हैं; तैसेही अंतर बाहर, पंचभूतोंको सात्विकी साँझी एक एक अंशसे होनेवाले ज्ञानेंद्रिय तथा अंतःकरण पांच जानना। तैसेही भूतोंकी, राजसी सांझी एक एक अंशसे प्राण तथा कर्मेंद्रियोंकी उत्पत्ति होती है इससे पांच यह जानने, देवता ११ विषय १२, तात्पर्य यह कि पंच ज्ञानेंद्रिय, पंच कर्मेंद्रिय, साधारण वायुरूप प्राण और अंतःकरण, तिन अंतःकरणादिकोंके देवता, तथा श्रोत्रादिक इंद्रियोंके विषयरूप बारामहीने मुझ चैतन्य साक्षी आत्मा सूर्यकर प्रकाशक हुये सिद्ध होते हैं। मुझ चैतन्य बिना इनकी सिद्धि कोई नहीं करसक्ता। तैसेही मनादिकोंके साक्षी मुझ चैतन्य सूर्य करही देहके षट्भाव विकार रूप, षट् ऋतु जाननेमें आती हैं, वा पृथिवी आप तेज वायु आकाश तथा तिनका कारण माया यह षट्ऋतु सिद्ध होती हैं। वा षट् शास्त्ररूपी षट्ऋतु भी मुझ चैतन्य सूर्य करही सिद्ध होती हैं वा मनसहित श्रोत्रादिक षट्इंद्रिय तथा षट्ही तिनके विषय ये दोनों प्रकारकी षट्ऋतु, मुझ बुद्धि आदिकोंके साक्षी नित्यसुख चैतन्य आत्मा सूर्य करही सिद्ध होती हैं। वा अन्नमयादि पंचकोश और एक अविद्या, यह षट्ऋतुभी मुझ चैतन्य सूर्य करही सिद्ध होती हैं। वा षट् दोष रूप षट्ऋतू भी मुझ चैतन्य सूर्य करही सिद्ध होती हैं। वा १ अविद्या २ अस्मता ३ राग ४ द्वेष ५ अभिनिवेश यह पंच क्लेश तथा पंचक्लेशोंके भोक्ता ६ जीव (सूक्ष्मशरीर) यह षट्ऋतु भी मुझ साक्षी चैतन्य अंतर सूर्यसेही प्रकाशमान होते हैं। वा जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीया और तुरीयातीत, ये पांच बुद्धिकी अवस्था तथा एक बुद्धि, यह षट् ऋतु। वा स्थूल, सूक्ष्म, कारण, तथा महाकारण शरीर तथा तिनका उपादान कारण माया, और तिन शरीरोंके निमित्त कारण कर्म, यह षट्ऋतु। वा जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति; मूर्च्छा, मरण,

समाधि यह षट्ऋतु हैं । वा तीन व्याष्टि शरीर तथा तीनसमष्टि भी यह षट्ऋतु हैं वा समष्टि व्यष्टि षट् शरीरोंके अभिमानी वि-राटादि षट्ऋतु हैं इत्यादि । अनेक ऋतु मुझ सम्यक् आत्मा सूर्यकरि सिद्ध होती हैं बाहरकी भी मधु, ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेम, शिशिर षट् ऋतु भी मुझ चैतन्य सूर्य करही सिद्ध होती हैं क्योंकि मेरा स्वरूप चैतन्य साक्षी, सूर्यादिकोंकाभी प्रकाशक है, सो सूर्यादिक षट्ऋतुका भी प्रकाशक है ।

चातुर्मास ।

तैसेही—जैसे बाहर सूर्य कर तीन चातुरमास सिद्ध होते हैं मुझ चैतन्य अंतर साक्षी आत्मारूप सूर्यकरही, सत् रज, तम गुणरूप तीन चातुरमास सिद्ध नाम जाने जाते हैं तथा जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति तथा तिनके अभिमानी विश्व, तैजस, प्राज्ञरूप तीन चातुर्मास मुझ तुरीयरूप सूर्य करही जाने जाते हैं । तथा समष्टि व्यष्टि स्थूल तथा समष्टि व्यष्टि सूक्ष्म तथा समष्टि व्यष्टि कारण शरीररूपो, तीन चातुरमासभी, मुझ चैतन्य तुरीयरूप सूर्य करि प्रकाशमान होते हैं । तथा बालक युवा वृद्ध अवस्थारूप चातुरमासभी मुझ चिदात्मारूप सूर्यसेही सिद्ध होते हैं जिस शरीरकी अवस्था है, सो शरीररूप जड सर्व संघात अवस्था सहित आपको जान नहीं सक्ते, बाकी शेषमें मैं ज्ञान आत्माही सर्वको असंग होकर सिद्ध करताहूँ । तथा जीव, ईश्वर शब्दरूप तीन चातुर मासभी मुझ चैतन्य सूर्य करही सिद्ध हैं अर्थ सहित जो शब्द रूप ऋक्; यजुः, सामवेद रूपी तीन तथा ब्रह्मादिक अभिमानी सहित जगतकी उत्पत्ति, पालन, संहार तीन चातुर्मास, मुझ चैतन्य सूर्यसे ही सिद्ध होते हैं । तथा मरण समाधि, तथा द्रष्टा, दर्शन दृश्य इत्यादि त्रिपुटीरूप तीन

भी, शुद्ध ज्ञान स्वरूप द्रष्टा साक्षी सूर्य करही जाने जाते हैं। त्रिलोकी रूपी तीन चातुर्मास शुद्ध चैतन्य सूर्य आत्मा करही प्रकाशमान हैं। त्रिलोकीरूपी मंदिरका मैं चैतन्य आत्माही दीपकहूँ।

। तीन प्रकारकी वृत्ति।

सुषुप्तिमें १ प्रिय २ मोद ३ प्रमोदरूप तीन वृत्तिरूप चातुर्मास भी शुद्ध निर्विकार साक्षी आत्मा करही सिद्ध होते हैं, अन्यसे नहीं। किसीका कोई मित्र वा पुत्र, बहुत कालसे परदेश गया होवे, सो अकस्मात् आजावे, तिसको वा मित्रके देखते ही जो तिस कालमें आह्लादकार अंतःकरणकी वृत्ति होती है, तिसका नाम प्रियवृत्ति है। जब परस्पर नजदीक हुये तिस कालमें जो वृत्ति होती है, तिसका नाम मोदवृत्ति है।जब भुजा पसारकर आपसमें मिले तिस कालमें जो वृत्ति होती है, सो प्रमोद नाम वृत्ति है, पूर्व पूर्व वृत्तिसे उत्तर उत्तर वृत्तिमें एकाग्रता और वृत्तिजन्य सुखकी अधिकता जानलेनी। यही हाल सुषुप्तिमें भी जानलेना।

। अयन।

जैसे बाहर सूर्यकर दक्षिणायन उत्तरायण दो अयन सिद्ध होते हैं। तैसेही बंधरूपी दक्षिणायन अयन, मोक्षरूपी उत्तरायण अयन भी, अंतर बाहर शुद्ध चैतन्य सूर्य करही सिद्ध होते हैं। पुरुषोंके अंतर बंध मोक्षका तो बाहरके हजार सूर्यसे भी प्रकाश नहीं होता, मैं चैतन्य सूर्य तो, पुरुषके अंतर मनकर कल्पित, बंध मोक्षको अपरोक्ष साक्षीरूपसे प्रकाश करता हूँ और बाहरके अयनोंको सूर्य मंडल होकर प्रकाशमान करता हूँ। इससे मैं चैतन्यही प्रकाशमान हूँ, अन्य जड दृश्य नहीं। तैसेही जैसे ब्रह्मांडविषे आकाशज सूर्य करही दिन और रात्रि सिद्धिभी होती हैं तथा दिन रात्रि विषे वर्तनेवाले साठ चौंसठ, मुहूर्त

भी तिसी सूर्य कर सिद्ध होते हैं, परन्तु सूर्य विषे दिन तथा आठ मुहूर्तोंका अत्यंताभाव है। तैसेही अंतर अज्ञान रूप दिन रात्रिका, तिनविषे वर्तनेवाले दैवी आसुरी गुण घटिका, मुझ सत् सुख, चिद्रूप आत्मा, सूर्यकरही सिद्ध परन्तु मैं चैतन्य आत्मा सूर्य, पूर्वोक्त सर्व पदार्थोंसे रहित मनसगोचर स्थित हूँ। मुझ चैतन्य सूर्यकीही यह सर्व किरणें हैं। कोई किरण ब्रह्मारूप, कोई किरण जटाधारी कोई किरण विष्णुरूप, कोई देवता, कोई दैत्य, कोई कोई चैतन्यरूप, होकर स्थित हुयी हैं। कोई किरण आप, तेज, वायु, आकाशरूप होकर स्थित हुई हैं किरण स्त्री, कोई पुरुष, वर्ण, आश्रमरूप होकर स्थित हुई हैं किरण सप्तव्याहृतिरूप, कोई अतलादि सप्त नीचेके लोक कोई स्वर्गरूप, कोई नरकरूप होकर स्थित हुई हैं। कोई तथा मनुष्य देहरूप कोई माया प्रकृति महत्तत्त्वरूप होकर हुई हैं। बहुत क्या कहूं ? अस्ति, भाति, प्रियरूप, सर्वात्मा मेरा मुझकोही नमस्कार है। मैं चैतन्य अपनी महिमाविषे स्थित हूँ; जैसे स्वप्नद्रष्टाही स्वप्नमें सर्वरूप होता है। हे कह तू कौन है ? यमकिंकरने कहा मैं आपको नहीं जानता कौन हूं ? क्योंकि, अवाङ्मनसगोचर हूं। तुमहीं कहो मैं सूर्यने कहा "मैं आपको नहीं जानता" यह मन वाणीका चिंतन, अंतर जिसने जाना, (मैं) सोई तू है। यमकिंकरने कहा स्वरूपको तुमने कैसे जाना? सूर्य तूष्णीं हुआ क्योंकि, जो जो से कथन चिन्तन करेंगे, तिस कथन चिन्तनकी, अनुत्पत्ति तिनके लयको, मानो पास बैठा देख रहा है। जैसे दाई अनुत्पत्तिको पुनः उत्पत्तिको, तथा तिसके अभावको जानता

जैसे अंकुरकी अनुत्पत्तिको, तथा तिसकी उत्पत्तिको तथा तिसके नाशको आकाश अवकाश देता है। इससे अंकुर आकाशके हालको क्या जाने।

बृहस्पति।

तिस समय बृहस्पति देवतोंका गुरु आया और कहा "गो नाम है इन्द्रियोंका वा पृथिवीका वा अज्ञानका और रूपनाम है प्रकाशका तात्पर्य्य यह कि, जो कारण अज्ञान सहित, सर्व नामरूप प्रपंचको, काँटे (तराजू) के समान परिमाण करे वा प्रकाशे नाम जाने सो कहिये गुरु"। सो ऐसा अनंत, चित्, सुखरूप, यह आत्माही गुरु शब्दका अर्थ बन सक्ता है। माया तथा मायाके कार्य्य, दृश्य वस्तुमें, गुरु शब्दका अर्थ घटता नहीं। सोई पूर्वोक्त गुरु आत्माही तुम्हारा हमारा तथा सर्व जगत्का अपना स्वरूप है, अन्य नहीं। चाहे इस सघात ब्रह्मांडमें खोज देखो। इससे हे अधिकारी जनो! पूर्वोक्त अपने आत्मा स्वरूपकोही, तुम सर्व सूर्यादि दृश्य प्रपंच, नीतिपूर्वक आप अपने व्यवहारमें, आज्ञा चलानेवाला जानो। तथा सर्व दृश्यसे अपने गुरु स्वरूपकोही महान् जानो तथा पूज्य जानो। तुम्हारे गुरुरूप आत्मासे भिन्न सर्व प्रपंच तुच्छ, अपूज्य, असत, जड, दुःखरूप है। यह प्रत्यक् चैतन्य आत्माही, लौकिक गुरु मूर्ति, धारण करके अपने सत्, चित्, आनंद स्वरूपका, सत् उपदेश कर; मुमुक्षुओंका उद्धार करता है। इस हेतु प्रत्यक् चैतन्यही तुम्हारा हमारा तथा सर्व जगत्का इष्टदेव है। इसीको अपना स्वरूप सम्यक् जाननेसे संसारसे मुक्त होता है। संसारके तरनेका यही जहाज है, अन्य तृणोंका आलंबन करना है।

पृथ्वी।

तिस समय मनुष्याकृति धारण कर, भूमि आई और कहने लगी, हे सभाके निवासी सज्जन पुरुषो! देहको देहीही धारण करता है, यह

अतिप्रसिद्ध बात है। यह दृश्यमान, पर्वतों सहित कठिनरूप पृथि
आदि लेकर, माया पर्यंत; सर्व नाम रूप, जगद्रूप देहको मैं
स्वरूप, प्रत्यक् आत्मा, चित् सत्ता; देही धारण कररही हूँ।
फेन बुद्बुदे तरंगादिक देहोंको जलही धारण करता है यह
तरंग बुद्बुदेको वा बुद्बुदा तरंगको धारण करता है क्योंकि
विषे सर्पवत् कल्पित होनेसे, परस्पर आधाराधेयभाव नहीं
सक्ते। तैसेही, इस पृथिवीसे आदि लेकर माया तक, सर्वके
अनंत चित् सत्ताविषे कल्पित होनेसे, इन कल्पित पृथिवी आदि
परस्पर आधाराधेयभाव नहीं बनसक्ता। जो कहो सर्व जग
पृथिवी धारण करती है, परन्तु पृथिवीको कौन धारण करता है
भी विचार किया चाहिये। इससे यह सिद्ध हुआ कि, जो पृथि
धारण करता है, सोई सर्व जगत्को धारण करताहै, अन्य नहीं
थो। देह अनेक हैं परन्तु मैं अनंत प्रत्यक् चिद् सत्ता देही एक हूँ
घट अनेक हैं परन्तु देही मृत्तिका वा आकाश एकही है। सारांश
कि, सर्व नाम रूप जगत्का मैं प्रत्यक् अनंत, चित्, सत्ता आत्मा
प हूं इसीसे पृथिवीके विकारभूत शस्त्रोंसे भी कटनेमें नहीं आ
क्योंकि, तिन शस्त्र आदिकोंका आत्मा हूँ अपने आत्माको
नहीं काट सक्ता है। इसीसेही सर्वका आधाररूप हूँ क्योंकि
अपना स्वरूपही कल्पित सर्वका आधार अधिष्ठान होता है
प्रसिद्ध है; जैसे घटका स्वरूप मृत्तिका है, सोई तिस घटका आ
अधिष्ठान है। जैसे पटका स्वरूप तंतु है; सोई तिसका आधार
धिष्ठान है इससे मुझ अनंत चित् सत्ता सर्वके अधिष्ठानको आ
आत्मा सम्यक् जाननेसे ही भ्रमकी निवृत्ति होगी। भ्रम दूर हुवे
मोक्षभी जाते रहेंगे आगे जो तुम्हारी इच्छा हो सो करो।

। वरुण ।

पुनः जलोंका राजा वरुण आया और कहा । माया और तत् कार्य मलसे रहित, मैं शुद्ध चैतन्य आत्मा हूँ। सर्व वस्तुका गीलापन भी मैं ही करता हूँ। गीला नाम द्रवणा, द्रवणा नाम सर्व पदार्थोंको आप अपने कार्यके सन्मुख करना। यमकिंकरने कहा जो मैं चैतन्य तुझ देह सहित जलको गीला कर रहा हूँ, सोई मैं सर्वको गीला कर रहा हूँ क्योंकि, तू जल मुझ चैतन्य आत्मासे भिन्न किया हुआ है ही नहीं, गीलापना किसको करेगा ? हे वरुण ! जैसे तुझ कर सर्व वृक्ष हरियालीको पाते हैं, तैसे मुझ चैतन्य आत्मासेही तुझसे आदिलेकर सर्व जगत हरियाई नाम स्फुर्ण होरहा है, अन्यथा नहीं। हे जलराज ! जो तेरा चैतन्य स्वरूप है, सोई शुद्ध है; अन्य नहीं । इससे परिच्छिन्न अभिमानको त्याग, पुनः तिसका भी त्यागकर ! पीछे निर्विकल्प तेरा स्वरूप है । वरुण तूष्णीं हुआ ।

। अग्नि ।

अग्निदेवता आया और कहनेलगा, मैं सर्वको भक्षण करता हूँ। धर्मरायने कहा सर्व कहां है ? तू ही है । अपने आपको भक्षण कर वा न कर। अग्निने कहा यह सर्व प्रकाश मेरा है। यमकिंकरने कहा तेरे प्रकाशसें हमें क्या मतलव है ? हम अपने प्रकाशसे प्रकाशमान हैं । तू अपना प्रकाश अपने पास रख । अग्निदेवने कहा मैं सर्वको दाह करूँगा । गणेशने कहा तेरी क्या ताकत है कि, मुझ चैतन्य विना एक तृणको भी दाहकरे । मुझ साक्षी चैतन्यसे पृथक् तू अनग्निरूप है, दाह क्या करेगा ? हे अग्नि ! तू अपनेसे भिन्न पृथिवी जलको तथा तिनके कार्य पदार्थोंकोही दाह करसक्ता है, आकाश वायुको भी दाह नहीं करसक्ता । तो आकाशसे अतिसूक्ष्म तेरा जो चैतन्य साक्षी स्वरूप

है तिसको तू दाह नहीं करसक्ता इसमें क्या कहना है। अ
कहा तू कौन है ? गणेश बोले हे अग्नि ! तेरे अंतर, तुझसे
और तेरे सर्व व्यवहारको जाननेवाला, सदा अपरोक्ष साक्षी
आत्मा स्वरूप मैं हूँ। अग्नि तूष्णीं हुआ।

।वायु।

तव वायु देवता आया और कहा। अबहीं मैं सर्वका शोषण
ता हूँ।व्यासने कहा पहले अपने अहंकार; अंतर शत्रुको, शोषण
जो तुमको दुःखदायक है; पीछे सबको शोषण करियो। वायुने
तूही मेरा शत्रु है जो मुझ निर्विकार निर्विकल्प चैतन्यमें अ
आरोपण करता है। व्यासने कहा जब तू निर्विकल्प है, तो मैं
कार आरोपणका तुझको ज्ञान कैसे हुआ ?

।आकाश।

वायु तूष्णीं हुआ और आकाश मनुष्य मूर्ति धारणकर आया
कहा कि,मैंहीं सर्वमें पूर्ण होरहा हूँ,निर्विकार हूँ,तथा अक्रिय हूँ पृ
आप, तेज, वायु तथा इनके कार्य मुझमेंही समारहे हैं परन्तु मैं
हूँ। वसिष्ठने कहा हे आकाश! लोकदृष्टिसे तथा पथिवी, जल,तेज
इन चार भूतोंकी दृष्टिसे, जैसा तूने कहा है तू वैसेही है, परन्तु ते
साक्षी चैतन्य अपना स्वरूप है, सो नित्य सुख चिद्रूप है। तू
जड दुःखरूप है तथा उत्पत्तिवान् है, इसीसे विकारी है। तेरी
आत्माकी उपमा एक कैसे होवे ? किंतु नहीं होती। जो चैतन्य
कोभी अवकाश देता है नाम स्फुरण करता है, सोई सर्वको अव
देता है। चैतन्य आत्माने इस संसार बगचिके निर्वाह वास्ते,तेरा
अवकाशरूपही रचा है, वायुका देह वैसेही रचा है, अग्निका प्र
मयही देहरचा है; आगेभी ऐसेही जानलेना परन्तु देही सबका

चैतन्य आत्मा है। कहो सुषुप्तिमें तेरा स्वरूप कहां रहता है ? इससे अपने प्रत्यक्ष चैतन्य आत्माको, अपना स्वरूप सम्यक् जानकर, मौन गहो। आकाश तूष्णीं हुआ।

दुर्वासा।

पुनः दुर्वासा ऋषि आये और कहने लगे; सर्वको मैं अभी भस्म करता हूँ। धर्मरायने कहा हे दुर्वासा ! जो शरीरको भस्म करता है; तो इसको तो भस्म कृमि विष्ठारूप होनाही है, तो भस्म करनेकी बडाई कुछ न हुई, केवल तेरा अभिमान ही है कि, मैं सर्वको भस्म करता हूँ। यह शरीर पंचभूतोंका है वा स्वप्नवत् मायाका कार्य है, इनके भस्म करने वालेके साथ मायाका वा पंचभूतोंका मुकद्दमा होगा, उनहीको इन शरीरोंके भस्म होने और नाश होनेमें हर्ष शोक होगा, हम संघातके साक्षी चैतन्यको हर्ष शोक नहीं। एक वक्त नहीं, लक्ष वक्त भस्म करो वा न करो, अपना जोर किसको दिखलाते हो ? जो तुम कहो मैं चैतन्यको भस्म करता हूँ, सो चैतन्य तुम्हारा आत्मा है, उलटा अपने आत्माको कोई भस्म कर नहीं सक्ता और होता भी नहीं। साक्षी चैतन्यसेही तुम सहित जगत्की तथा तुम्हारे भस्म करनेके संकल्पादि सर्वकी उपलब्धी हो रही है। इससे किसको भस्म करता है ? तुझको लज्जा नहीं आती। पहले भस्म करनेवाले अपने अहंकार दुःखदायक शत्रुको भस्म कर। पीछे दूसरेको भस्म करियो। आपको महान् तपस्वी तेजस्वी और पण्डित मानकर, लोगोंको वर शाप भय देता फिरता है, लोगभी यही कहते हैं, "जहां दुर्वासा जाता है वहां शापरूप भयही देता है और अभय नहीं देता" तू अपने नामके अर्थको स्मरण कर।

दुर्वासा नाम सच्चिदानंद आत्माकाहै। तू आपको शरीरमानके दूसरेको भस्म करा चाहता है। विचारे तो तू शिवरूप है क्योंकि; जन्म

मरणरूपी दुर्नाम दुःखका देनेवाला संसार, वा अहंकार वा तिसते परे होवे वाका नाम स्थिति जिसकी, सो कहिये दु वा दुर्नाम दुःख, असत्, जड, माया, विकाररूप, संसारको विषे उलटा सत्, चित्, आनंद, अमाया; असंरूप करके होवे जिसका, सो कहिये दुर्वासा । वा कठिनता करके होवे स्थिति सो कहिये दुर्वासा । वा दुर नाम कठिन है सहन जिनका; ऐ काम क्रोधादिकों विषे और दुर्वासना विषे तथा मायाविषे त मायाके कार्य मनादिकों विषे जो असंग, निर्विकार, नि अक्रिय रूप; होवै निवास जिसका सो कहिये दुर्वासा । सार कि; अवाङ्मनसगोचर पदविषे मनकी स्थिति अत्यंत कठि इससे तू अपने पूर्वोक्त स्वरूपमें स्थित हो। और सर्वको अभयद

नारद ।

दुर्वासा तूष्णीं हुआ, सभामें नारद आये और कहने लगे भक्ति करेगा, सोई कालके भयसे छूटेगा, अन्यथा नहीं । यम कहा भक्तिका स्वरूप कहो ? नारदने कहा "आप सहित सर्वको ह सम्यक् जानना" यही भक्तिका स्वरूप है । यमाकिंकरने कहा हे तुम सर्वस्थानमें गमन करते रहते हो, सबसे उत्तम स्थान क कहीं परमात्माभी आपने देखा कि, नहीं ? तिसका भी वर्णन क नारद कहने लगे हे साधो ! मैं दशोदिशा फिराहूँ परन्तु मायाके रूप; सर्वपंचभूतरूपही, सृष्टि दृष्टि आई है, कहीं भी इन पंचभूतोंसे सृष्टि नहीं आई । यही पंच ज्ञानेन्द्रिय, पंचकर्मेंद्रिय पंच प्राण, अंतःकरण; यही श्रोत्रादिक इंद्रियोंके शब्दादिक विषय और इंद्रियके संयोग वियोगजन्य सुख दुःख, सर्वत्र वैकुंठादि स्थान समही दृष्टि आया है । काम क्रोधादिकभी सर्वत्रही न्यूनाधिक भा

देखे हैं। कहीं जलका स्नान है, कहीं धातुमय वा पाषाणमय मूर्तिका दर्शन है। जैसे इंद्रिय अंतःकरणादिकोंका स्वभाव अस्मदादिकोंके शरीरोंमें वर्तता है, तैसेही सर्वत्र देखा है। सारांश यह कि,स्त्री, पुरुषादिक व्यवहारभी सर्वत्र एकसरीखाही देखा है और सर्वत्र असत् जड दुःखरूप पंचभूत भौतिकसृष्टिही देखनेमें आई है, कहूंभी सच्चिदानंद स्वरूप परमात्माकी मूर्ति देखनेमें नहीं आई क्योंकि, परमात्मा व्यापक सर्वके हृदयमें है; बाहर कहां देखनेमें आवे। विचाररूप दिव्यदृष्टिसे भी अंतर बाहर सर्वात्माही भान होता है।

। सनकादिक ।

इतनेमें सनकादिक आये और कहने लगे कि, हे नारद! सो नित्य चिद् अनंत परमात्मा अंतर तुम्हारा हमारा तथा सर्व जगत्का आत्मा है, बाहर देखनेमें कहां आवे। यद्यपि अस्ति, भाति, प्रियरूप; आत्मा ही अंतर बाहर; भेद रहित, सर्वदा सर्वको प्रत्यक्ष दर्शन होता है तथापि सम्यक् विचार दिव्यदृष्टिसे जानाजाता है। सम्यक् विचाररूपी दिव्य दृष्टिसे रहित पुरुषोंको पूर्वोक्त स्वरूप जाना नहीं जाता, किंतु मिथ्या; नामरूप माया तथा मायाके कार्य, असत् जड़ दुःखरूप, प्रपंचही तिनको प्रत्यक्ष दर्शन होता है। आत्मा अधिष्ठान ज्ञानी अज्ञानी सर्वको प्रत्यक्ष ही है, जानने न जाननेका भेद है। सारांश, यह कि, अधिष्ठान तथा कल्पितका विचार करनेसे, प्रथम अपरोक्ष अधिष्ठानके प्रतीति पूर्वकही, मिथ्या कल्पित नामरूपकी, पश्चात् प्रतीति होती है सर्वको, परन्तु जानने न जाननेका भेद है, दर्शनका नहीं। जैसे मधुरता, द्रवता, शीतलतारूप, जल अधिष्ठानकी प्रथम अपरोक्ष प्रतीति पूर्वकही, पश्चात् नामरूप मिथ्या तरंगादिकोंकी प्रतीति होती है। जैसे सुवर्ण अधिष्ठानकी, प्रथम अपरोक्ष, प्रतीति पूर्वकही, मिथ्या

नाम रूप भूषणोंकी पश्चात् प्रतीति होती है । जैसे प्रथम रज्जु ठूँठादिक अधिष्ठान अपरोक्ष प्रतीति पूर्वकही, कल्पित सर्पादिक रूपकी पश्चात् प्रतीति होती है इत्यादि अनेक दृष्टांत हैं तैसे हमारे तथा सर्व जगत्के स्वरूप, सच्चिदानंद आत्मा अधिष्ठान थम अपरोक्ष दर्शन पूर्वकही, सर्वनामरूप घट पटादिकोंका पश्चात् होता है। पूर्व अज्ञानी लोगोंकी दृष्टिसे जहाँ कहाँ नामरूप ही दर्शन कहा है। जैसे—तू नारदको बाहर तलाश करे सो कहीं किंतु नहीं मिलेगा क्योंकि, नारद आप ठहरा इससे हे सज्जनो! काल, वस्तु, भेद रहित, मन वाणीका अगोचर, अपरोक्ष सांक्षी आत्मा है, सोई आनंद, नित्य, चिद्रूप है, जो मन गोचर, देश, काल, वस्तु भेदवान; पदार्थ है; सो दुःखरूप जडरूप है । इससे बाहर मत खोज "जो पिंडे सोई ब्रह्मांडे" तूष्णीं हुआ ।

कागभुशुण्ड ।

पुनः कागभुशुण्ड आये और कहा, हे साधो! मैंने कोयन ब्रह्मांडोंकी उत्पत्ति, लय, स्थिति, सम और विलक्षण भी देखे अनेक ब्रह्मा, विष्णु, शिवादिकोंके, राम कृष्णादिक अवतार परन्तु सब प्रतीति मात्र हैं, सत् नहीं। आत्माही सत् है। जैसे स अनेक फेन बुद्बुदे तरंगादिक होते हैं, पुनः मिट जाते हैं ज्योंका त्यों स्थितहै । हे साधो! मेघोंसे जो चातुर्मासमें बूँद पड़े तिनकी गिनती होनी कठिन है समुद्रके किनारे बालूकी गिनती कठिन है, पर तिनकी गिनती भी कोई बुद्धिमान् करसके तो होवे परन्तु सत्, चित्, आनंदरूप, निज स्वरूप आत्मासे, यह माया अनंत ब्रह्मांड उत्पन्न होतेहैं, पुनः मिट जाते हैं, तिनकी गिनती हो सक्ती; जल तरंगोंवत्। जब अपने स्वरूपको जानता है, तब

कल्पित ब्रह्मांडोंका अत्यंताभाव प्रतीत होता है।जैसे-जलके जाननेसे अनंत फेन बुद्बुदे तरंगादिकोंका अत्यंताभाव प्रतीति होता है;किन्तु जलसे पृथक् सत्ता तिनकी नहीं प्रतीति होती। जैसे भौतिक पदार्थ अनंत हैं, परंतु तिन पदार्थोंका स्वरूप जो पंचभूत हैं, तिन पंचभूतों-के ज्ञाता पुरुषको भौतिक पदार्थोंविषे अनंतता किंचित् मात्रकी प्रतीति होती नहीं।

वसिष्ठने कहा हे कागभुशुंड ! अपने स्वरूपका स्वरूप क्याहै ? कागभुशुंडने कहा हे साधो ! किसी निमित्तसे दुःखाकार वा सुखाकार अंतःकरणकी वृत्ति उत्पन्न होकर, निमित्तके अभावसे वा स्वभावसेही मिटगई, पुनः दुःखाकार वा सुखाकार उत्पन्न हुई नहीं, वा उत्पन्न हुई है; इस व्यवहारको जिसने अनुभव किया है सोई अपने स्वभावका स्वरूप है।

तैसेही–पुण्य वा पापरूप संकल्प उत्पन्न होकर मिटगया है, पुनः पुण्य पापका संकल्प उत्पन्न हुआ नहीं, वा हुआ है, इस सर्व व्यव-हारोंको अंतर जिसने देखा है, सोई अपने स्वरूपका स्वरूप है।

तैसेही–सात्विकी वा राजसी वा तामसी अंतःकरणकी वृत्ति उत्पन्न होकर मिटगई,जबलग पुनःसात्विकी वा राजसी वा तामसी वृत्ति उत्पन्न हुई नहीं, वा उत्पन्न हुई है, यह सर्व व्यवहार अंतर जिसने जाना है, सोई अपने स्वरूपका स्वरूपहै।

तैसेही जाग्रत् वा स्वप्न वा सुषुप्ति अवस्था होकर मिटगई है।जब-लग दूसरी अवस्था प्राप्त हुई नहीं वा प्राप्त हुई है, इन सर्व संधियाक संधियोंमें स्थित हुआ जो स्वयंप्रकाशमान वस्तु है तथा पूर्वोक्त जाग्र-तादिक संधियोंकी जिससे सिद्धी होती है, सोई अपने स्वरूपका स्वरूप है।

तैसेही—कमर पर्यंत कोई पुरुष जलमें स्थित होवे, सो कम शीतलताका तथा कमरऊपर उष्णताका, जिससे अनुभव है सोंही निर्विकल्प अपना स्वरूप है।

तैसेही—कामाकार, क्रोधाकार, लोभाकार, मोहाकार तथा राादिक वृत्तियां उत्पन्न होकर नष्ट होगई हैं, पुनः कामाकारादि अकामाकारादिक वृत्तियां जबलग उत्पन्न हुई नहीं वा हुई है मध्यमें जो निर्विकल्प, निर्विकार, तिन कामाकारादिक वृ भावाभावको तथा अन्य वृत्तियोंकी अनुत्पत्तिको वा उत्पत्ति ताहै, सो द्रष्टा साक्षी वस्तु अपना स्वरूप हैं।

तैसे—शांति आदिक वृत्तियां उत्पन्न होकर नष्ट होगई है शांतिरूप वा अशांतिरूप वृत्तियां उत्पन्न हुई नहीं वा उत्पन्न तिनके भावाभावको प्रकाश करनेवाला, साक्षी चैतन्यवस्तु स्वरूपका स्वरूप है।

तैसेही—हर्षाकार वा शोकाकारवृत्ती उत्पन्न होकर समाप्त और अन्य उत्पन्न हुइ नहीं वा हुई हैं इन सर्व व्यवहारकी प करनेवाला अपना स्वरूप है।

तैसेही प्राणोंके बाहर कुंभकको, प्राणोंके रेचक पूरकको अंत कको, प्राणोंके गमनागमनको, प्राण अपानकी संधिको जो करता है, सोई अपना स्वरूप है।

ज्ञान, अज्ञान, बंध, मोक्षकी कल्पना जिसकर सिद्ध होती है अपना स्वरूपहै इत्यादिक अनेक संधियां हैं।

। योगी अयोगी और परमयोगी।

वसिष्ठने कहा हे कागभुशुंड ! तुम योगी हो और दीर्घ आयु हो, जो अलौकिक देखा हो सो कहो ? भुशुंडने कहा योग (चि एकाग्रता) के करनेवालेका नाम योगी है और चित्तकी एकाग्रता करने वालेका नाम अयोगी है। सो चैतन्यके आभास

मनरूपी जीव, योगका कर्ता है । इससे मनरूपजीव योगी है ।मनके धर्म एकाग्रता, न एकाग्रता रूप, योग अयोगके, भावाभाव सहित, जो मनके सर्वव्यवहारको अंतर जानता है, सोई परम योगी है । सो ऐसा परमयोगी अनंत, नित्य, चिद्रूप, प्रत्यक् आत्मा है, तिस पूर्वोक्त प्रत्यक् आत्माको, सम्यक् जो अपना स्वरूप जानता है, सो पुरुष परमयोगी है । नेति धोती जल पखालके करने वालेका नाम, न समान योगी है और न परमयोगी है, अयोगी है, । हे वसिष्ठजी ! अनंत ब्रह्मांड होगये हैं और अनंत होवेंगे परन्तु चैतन्यकी दृश्यरूप वा मायामात्ररूप, पंचभूत रूप, शब्दादि पंचविषयरूप, श्रोत्रमनादि इन्द्रियरूप, सात्विकादि त्रिगुणरूप, काम क्रोधादिरूप, जैसे यह ब्रह्मांड वर्तमानमें है; तैसेही अतीत ब्रह्मांड होगये हैं, तथा आगे होवेंगे । कदाचित् विलक्षणता होतीभी है, तो भौतिक पदार्थोंमें होती देखी है । पूर्वोक्त प्रकारसे नहीं देखी है ? हे वसिष्ठजी ! बहुत जीनेसे कुछ लाभ नहीं और थोडाजीनेसे कुछ हानि नहीं, परन्तु सम्यक् आत्मबोध पूर्वक जीनाही सफल है, अन्य नहीं । वास्तवसे पूंछो तो यह सर्व अज्ञानी जीवभी चिरंजीवी हैं क्योंकि, अनेक प्रलय इन्होंने देखेहैं और अनेक देखेंगे, अनेक बार अनेक ब्रह्मांडोंमें इनकी उत्पत्ति हुई है और होवेगी, इसीसे सर्व अज्ञानी जीव चिरंजीवी हैं । परन्तु अविद्या आच्छादित होनेसे इनको ज्ञान नहीं । इस विद्यमान् शरीरका अनेक (महा प्रलयतक) प्रारब्ध कर्म है । स्वरूपके सम्यक् ज्ञानपूर्वक इस शरीरका जीना है । ईश्वरकी नियति ऐसे ही है, इतनाही जीवोंके चिरंजीवतामें तथा मेरेमें भेद है, अधिक नहीं । जैसे स्वप्नमें सर्व जीवोंकी आयु समानही है, न्यूनाधिक भाव नहीं, एक स्वप्नद्रष्टाही चिरंजीवी है, अन्यनहीं । तोभी अविद्याने किसी स्वप्न नरमें चिरंजीवता प्रतीति करारक्खी है, किसी स्वप्न नरमें अचिरंजीवता प्रतीति करारक्खीहै,

वास्तवसे नहीं । अविद्याकी विचित्र महिमाहै, एककालावच्छेद स्वप्न सृष्टिकी उत्पत्ति होती है । निद्रारूप अविद्याके अभावसे कालावच्छेद कर नाश होता है, कहो चिरंजीवी और अ… कौन हुआ ? परन्तु तिसी स्वप्न सृष्टिमें किसी स्वप्न नरकोतो… तथा कल्पोंकी पंगती व्यतीत होती प्रतीति होती है किसीको… कालमें चार घटिकाही व्यतीत होती प्रतीहि होती है, किसी… कही प्रतीति होताहै, किसीको वही काल चित्त देशविषे होनेवा… भ्रमें अनंत योजनों सहित अनंत ब्रह्मांड प्रतीति होते हैं इ… अविद्याकी महिमा कहांतक कहूँ इससे चिरंजीवी एकचि… अन्य सर्व मायामात्र है ।

लोमश ऋषि ।

का भुशुण्डि चुप हुआ और लोमश ऋषि आये और … साधो ! यह मिथ्या मन वाणीका गोचर; परिच्छिन्न दृश्य… द्रष्टासाक्षी चैतन्य निर्विकार आत्माका रोम मात्रभी कुछ बिगा… करता । जैसे-पृथिवी, आप, तेज, वायु तथा तिनके कार्य आ… स्थित हुये आप अपना व्यवहार करते हुयेभी, आकाशका … मात्रभी बिगाड नहीं करसक्ते । तैसे सर्व देह इंद्रिय मनादि… व्यवहारमें, साक्षी आत्मा निर्विकार रहता है, कदाचित्‌भी अपने… स्वरूपको नहीं त्यागता ।

यमकिंकरने कहा हे रामशऋषि ! सुनते हैं कि, ब्रह्मा मरता… रोमशऋषि एक रोम उखाड कर फेंक देता है, यह बात कैसी… रोमशने कहा यह लौकिक व्यवहार है, वैदिक नहीं । इससे… आत्माकी तथा दृश्य वर्गकी अनंतता बोधन है और कुछ ता… नहीं है । हे साधो! जैसे तुच्छ आयुवाले जीव; सदा जीवनेकी…

रखते हैं; जीनेसे तृप्त होते नहीं तथा जैसे अज्ञानी मरनेते भय करते हैं, चक्षु आदिक इंद्रियोंसे रूपादिक विषयोंको ग्रहण करनेमें धापते (अघाते) नहीं। शरीरकी आरोग्यता चाहते हैं इत्यादि,अनेक व्यवहारोंमें पश्चात्ताप तथा विलाप करते हुये ही जैसे शरीरको त्यागते हैंतैसेही अज्ञानी दीर्घआयुवालोंका हालभी सम्यक् तैसेही जानना। यह व्यवहार सब विद्वानोंका अनुभव सिद्धहै, बल्कि ज्ञानीकोभी जीना अच्छा लगता है; मरना बुराही लगताहै। इससे नित्य चिद् अनंत निज स्वरूप आत्माका सम्यक् बोधही श्रेष्ठहै, न्यूनाधिक जीवना श्रेष्ठ नहीं। हे यमकिंकर! असली विचारकी बात सुन! जैसे स्वप्न नर किसी स्वप्नके ऋषिपुरुषको कहैं "हे ऋषि! अमुक (स्वप्नका) ऋषि स्वप्नावीके मरे वा स्वप्नावीके जागेसे एक अपना रोम उखाडके फेंक देता है" क्योंकि, स्वप्नावी (हमारे पिता) को रोज मरना ठहरा, हम रोज कैसे क्षौर कराते, तकलीफको पाते हैं। हे साधो! तुम अपने मनमें शोच देखो कि, स्वप्नावीके मरनेसे वा स्वप्नावीके जागनेसे, स्वप्नपुरुष पीछे कहां रहेंगे? किंतु नहीं रहेंगे। क्योंकि, स्वप्नसृष्टि स्वप्नावीके संकल्पमें है, अन्यमें नहीं। तैसेही समष्टि हिरण्यगर्भ परमेष्ठीके वा सबलब्रह्म विष्णुके, माया विशिष्ट चैतन्य ईश्वरके संकल्पमें अस्मदादिकों सहित सर्वसृष्टि है, तिसके संकल्पके अभावसे अस्मदादिकोंका शरीर पीछे रहना कैसे होगा? और शरीर विना रोम उखाड़ना कैसे होगा? जो कहो! हिरण्यगर्भ समष्टीके संकल्पसे अस्मदादिकोंके शरीर बाहर हैं; तो-जैसे दूसरे स्वप्नद्रष्टाकी सृष्टिको स्वप्नद्रष्टाको, स्वप्नद्रष्टाके मरनेको तिसके हर्ष शोकको, सारांश यह कि, तिसके सर्व न्यूनाधिकव्यवहारको, दूसरे स्वप्नके स्वप्ननर जान नहीं सक्ते; तैसेही हिरण्यगर्भकी संकल्पित सृष्टि सहित, हिरण्यगर्भको और हिरण्यगर्भकी कल्पित सृष्टिके बाहर, अस्मदादिकोंके शरीर जान नहीं सक्ते। जो हिरण्यगर्भके संकल्पमें

अस्मदादिकोंके शरीर हैं तो, पूर्वोक्त रीतिसे हिरण्यगर्भके आयुके क्षयसे, सर्वसंकल्पको त्यागके, विदेह कैवल्यको प्राप्त अस्मदादिकोंके शरीरही पीछे न रहेंगे । रोम उखाडनादि कैसे बन सक्ता है, अर्थात् नहीं बन सक्ता । इसहेतु यह सब भिन्न लौकिक बात है । जब रोमशने कहा तो सबने सुनकर श्लाघा की और बहुत हर्षित हुये ।

अश्विनीकुमार ।

तिसी समयमें अश्विनीकुमार आये और कहने लगे सदो । अनंत चित् सत्यरूप निजात्मा साक्षी सूर्य है, यह संघात, साक्षी चैतन्य रूप सूर्यका रथ है, समष्टि बुद्धिसे अभि व्यष्टि बुद्धिरूपी अश्विनी (घोडी) तिस रथके आगे जुडी तिस पूर्वोक्त बुद्धिरूपी अश्विनीसे नाम रूप अश्विनीकुमार हम उत्पत्ति हुई है, इसीसेही नामरूप हम दोनों अश्विनीकुमार रहते हैं । यमकिंकरने कहा हे अश्विनीकुमारो ! तुम कहाँ हो ? अश्विनीकुमारोंने कहा हे यमकिंकर ! मन वाणीसे अगो प्रत्यक् आत्मा अपरोक्ष है, तिसविषे हम नहीं रहसक्ते, तिस माया और मायाके सर्वकार्यमें हम पूर्णहोकर रहते हैं । यद्यपि आदिकोंकी अपेक्षासे, वायु आकाश मायामें शास्त्रदृष्टि प्रत्यक्षादि प्रमाणसे रूप प्रतीत नहीं होता, परन्तु चेतनकी वायु आकाश मायादिरूप रहित नहीं । क्योंकि, चैतन्यकी है । जो जो दृश्य होता है, सो सो नाम रूप स्वरूपही है जैसे अस्मदादिकोंकी दृष्टिसे, परमाणु सूक्ष्मरूप रहित हैं आकाशकी दृष्टिसे नहीं । तथा सूर्य जैसे सुमेरुको प्रकाशता है मणियोंको प्रकाशता है । हम देव वैद्य हैं, समष्टी ब्रह्मांडसे अभि

यह व्यष्टि संघातरूप स्वर्ग है, तिसमें हम मूर्तिधारकर विशेष रहते हैं। प्रत्यक्‌ साक्षी चैतन्य इस स्वर्गका महान्‌ इन्द्र है मन गरु बृहस्पति है। श्रोत्रादिक इंद्रिय देवता हैं। जीव केवल इंद्र है। हे यमकिंकर! जो पुरुष हमारी विचाररूप (मृत्यु संजीवनी) औषधी अंतर खावेगा, तिसका अज्ञान रूप रोग चला जावेगा।

विचार।

यमकिंकरने कहा विचाररूपी औषधि कहो? अश्विनीकुमार कहने लगे हे यमकिंकर! एक द्रष्टा पदार्थ है, एक दृश्य पदार्थ है, तीसरा पदार्थ हैही नहीं। द्रष्टा दृश्य नहीं होता, दृश्य द्रष्टा नहीं होता। दृश्यका कोई भी धर्म द्रष्टाको स्पर्श नहीं करता, यह नियम अति प्रसिद्ध है चक्षु, दीपक, सूर्यादिकों विषे सर्वलोकोंको देखनेमें आते हैं, जो जाननेमें आते हैं सो दृश्य हैं, जाननेवाला द्रष्टा है। सारांश यह कि, जो जो ज्ञानका विषय है, सो सो दृश्य, असत, जड, दुःखरूप, कोटिमें है और जो स्वयंप्रकाश ज्ञानहै, जिस ज्ञानद्वारा मायासे आदि लेकर, देह पर्यंत सर्व दृश्य जाना जाता है; सो ज्ञानस्वरूपसे ज्ञान एकही है। सो ज्ञान सत चित्‌ आनंदस्वरूप आत्मा साक्षी द्रष्टा है। सो साक्षी द्रष्टासे परमात्मा परमेश्वर, ईश्वर, गोविन्द, नारायणादिक; भिन्न माने, तो सर्वको असत, जड, दुःख रूपता तथा दृश्यरूपता बलात्कार आवेगी क्योंकि, सतसे भिन्न असत है, चैतन्यसे भिन्न जड जड है, सुखसे भिन्न दुःख है, द्रष्टासे भिन्न दृश्य है। इससे सत, चित, सुखरूप, द्रष्टा, साक्षी, आत्मवस्तुके अंतर्गतही, ईश्वरादि नामोंकरके प्रतिपादित वस्तु होगी, पृथक्‌ नहीं। जो पृथक्‌ मानो, तो पूर्वोक्त उनकी असत आदि गति होगी। इसहेतु इस प्रकरणमें महा वाक्योंविषे, जीव ईश्वरका भिन्न भिन्न लक्ष वाचका कथन तथा

वाच्य वाचक भागत्यागसे लक्ष लक्षकी एकता,लक्षणासे करना परिश्रमही है। हे यमकिंकर! पूर्वद्रष्टा साक्षी आत्मा कैसा है अंतर स्थित होकर भी स्वरूपसेंही बंध मोक्षादि धर्मोंसे र० जैसे–आकाश स्वरूपसे ही, सर्वमें स्थितभी, अस्पर्श है। यम किंकर! यह अधिकारी पुरुष अपनी शुद्ध बुद्धिसे वा संतोंसे विचार करे कि, इन द्रष्टा, दृश्य, दोनों पदार्थोंमें मैं कौन हूं ? द्रष्टा वा दृश्य हूँ ? जो मैं दृश्य हूं तो दृश्यको म जानूं कैसे, जो जानताहै सो दृश्य नहीं होता। जैसे–चक्षु रूपको जानतेहैं, तो रूप नहीं होते; तैसेही मैं सुषुप्तिमें अज्ञानसे आदिलेकर, जाग्रत पर्यंत; सर्व नामरूप दृश्यको प्रकाश करता हूं अर्थात् जानता इससे मैं दृश्य कदाचित् भी नहीं बनसक्ता। बाकी शेष द्रष्टा सम्यक् निश्चय करके हूँ, अन्य दृश्य नहीं। हे यमकिंकर! अधिकारीने अपनेको सम्यक् द्रष्टा जाना, तो बंध मोक्षादि उपा ध्योंसे रहित, निष्कलंक, स्थित होकर विराजमान् होवेगा। द्रष्टामें कोईभी बंध मोक्ष है नहीं,बंध मोक्षादि प्रपंचकी,अपने द्रष्टाविषे, निवृत्ति प्राप्तिवास्ते कर्तव्य भी कछु नहीं। जो बंध निवृत्त प्राप्तिवास्ते कर्तव्य करता है, सो भ्रमजन्य है। जिसने द्रष्टास्वरूपको सम्यक् जाना है; सो बंध मोक्षके फिक्रसे रहित व्यवहार परमार्थ दोनोंमें आनंद लूटता है।

जो ऊपरसे बंध मोक्ष भ्रमसे रहित आपको कथन करताहै सम्यक् भ्रम दूर नहीं हुआ,सो अनाधिकारी पुरुष,व्यवहार परमार्थ विषे तपायमान दुःखी रहता है। यमकिंकरने कहा तपायमान रहता है ? अश्विनीकुमारने कहा-मायाके कार्य जो वैराग,शम दैवीगुण हैं और काम क्रोधादिक जो आसुरी गुण हैं; सो स्थूल शरीरोंमें, न्यूनाधिक भावसे अनात्म धर्म है, तिसको अप

मानके तपायमान होता है क्योंकि, सम्यक् अपने द्रष्टा प्रत्यक् आत्माका अनुभव उससे नहींहै।"स्वभावसेही सर्व दृश्य और दृश्यके धर्मोंसे रहित अलिप्त साक्षी द्रष्टा आत्मा है, कर्तव्यसे नहीं" इसके प्रतिपादन करनेवाले शास्त्रमें सम्यक् तिसका विश्वास नहीं होता। हे यमकिंकर ! जिसको सम्यक् अपने स्वरूपका अनुभव हुआ है, सो किसी भी शास्त्रकी कुछ अपेक्षा नहीं रखता क्योंकि आँखोंदेखी चीजमें संशय नहीं होता।मायासे लेकर देहपर्यंत, सर्व द्रष्टा आत्माकी दृश्यका स्वभावसेहीं कोई भी धर्मद्रष्टाको स्पर्श नहीं करता।सम्यक् जाननाही कर्तव्य है, करना कुछ नहीं। सम्यक् अपने स्वरूपको न जाननाही तपनेका हेतु है, दूसरा नहीं।जैसे भेदवादियोंको वा निष्कपट श्रद्धालु सूधेशरीरको, गुरुशास्त्र जो परोक्ष बात भी पकडा देते हैं, सो मृत्युपर्यंत छोडते नहीं; वैसेही तपनेवाला जो वेदांती है, तिसकी सिद्धांतमें श्रद्धा नहीं है।यह नहीं विचारता कि, जो परोक्ष विष्णु, शिव, गणेशादिकोंके प्रतिपादक शास्त्र तथा मीमांसादिक पंचशास्त्र जो सत हैं; तो वेदांतशास्त्र भी छठवां सत् है, जो वह असत् है, तो यह भी असत् हैं। इससे "आप सहित सर्व हरि है" इस दृढ श्रद्धापूर्वक, भावनारूप उपासनासे भी ताप नहीं होता।

। अंगिरा ।

तिस समय अगस्त्य और अंगिराऋषि आये। अंगिरा कहने लगे हे साधो ! चार वेद, चार उपवेद, षट् तिनके व्याकरणादिक अङ्ग षट्शास्त्र और पुराण इत्यादिक सर्वविद्या अपर विद्या है, इन्हें निकृष्ट विद्या कहते हैं। साधारण भाषा वाणीद्वारा, चाहे फारसी द्वारा, चाहे अंग्रेजी, चाहे संस्कृत चाहे दक्षिणी भाषा, चाहे बंगाली भाषा; चाहे किसी भी देशांतरकी भाषाद्वारा अवाङ्मनसगोचर

सर्वाधिष्ठान, जगविध्वंस प्रकाशक, अवेदत्व, सदापरोक्ष, सा
द्धन, विशुद्धानंदका सम्यक् बोध होवे सोई परमवि
उत्कृष्ट विद्याहै । इससे येनकेन भाषाद्वारा वा संस्कृतद्वा
अपने स्वरूपका बोधकही परमविद्याहै ।

। अगस्त्य ।

तिस सभामें अगस्त्य आकर बोले कि, अगस्त्य ना
अभिन्न परमात्माका है।सारांश यह कि, अगस्त्य नाम अ
र्थकाहै, वा सूर्यकाहै, सो अगस्त्य नाम (परमात्मा) प्र
आदिमें, सूर्यरूप होकर, सर्व समुद्रादिकोंके जलको पान क
पुनः कोईकाल पीछे महाप्रलयके आरंभकालमेंही हाथीके
जलधाराको त्याग देता है वा हमेशा सालके साल
अगस्त्य नाम सूर्य जलको अपनी किरणोंद्वारा जलपान क
चातुर्मासमें त्याग देता है । वा सर्व जीवोंके सुख दुःखका
रूप भोग देनेवाले कर्मोंके उपराम होनेसे, अगस्त्यरूप
सर्वनामरूप प्रपंचरूप जलको, अपनी माया शक्तिमें खैं
पुनः जब भोग देनेके सन्मुख कर्म होतेहैं, तो अगस्त्यरू
नामरूप प्रपंचरूप जलको त्याग देता है, अर्थात् सृ
करता है।इसीसे तिस प्रत्यक् अभिन्न परमात्माका नाम अ
जो ऐसे नहीं माने परन्तु–अगस्त्यऋषिकेही समुद्र (जो पह
रता) किसी निमित्तसे पान करके पुनः लघुशंकावाले र
लनेसे, खारा होगया है, ऐसे माने तो धाता जो ईश्वर है,
पूर्वकल्पमें जगत्की मर्यादाथी, तैसेही उत्तरकल्पमें मर्या
भया, इस मंत्रकी अवस्था नहीं लगेगी।जो ऋषिसेही माने
अर्थ ऐसा लगे कि, हमेशह कल्पके कल्प पहले ईश्वर इस

शुद्ध मधुर जलको रचता है, पीछे अगस्त्य ऋषि पीकर लघुशंका कर-देता है, इससे खारा होजाता है। सो यह बात विद्वानोंके अनुभवसे मिले नहीं और सत् शास्त्रसे भी मिले नहीं। बृहदारण्यकके पंचम अध्यायमें, याज्ञवल्क्य भुजुके प्रसंगमें, तथा जगत्की अनेक उत्पत्ति प्रसंगमें, इस समुद्रको पहलेसेही खारा लिखते हैं। यह नहीं लिखते कि, पीछे अगस्त्य ऋषिने खारा किया है। इससे अगस्त्य नाम सूर्यका भी है, सो महाप्रलयके आदिकालमें वा हमेशह सालके सालमें, जल खैंचलेता है, पुनः त्यागदेता है।

क्षीर समुद्रमथन और चौदहरत्न।

यही हाल क्षीरसमुद्र मथनेका तथा चौदहरत्ननिकालनेका जान लेना क्योंकि, पूर्वसमुद्र प्रकरणके समान हरेक कल्पमें, पहले चंद्रमादि रत्नों रहित, यह जगत् उत्पन्न होता है, पीछे देवता, दैत्य क्षीर समुद्रको मथके चन्द्रमादि रत्नोंको निकालते हैं, सो वेद अनुभवसे विरुद्ध है। वेदमूलमें, ब्राह्मणमें, धर्मशास्त्ररूप स्मृतियोंमें, सम्यक् जगत्की उत्पत्ति पालना प्रकरणमें यह बात कहीं भी लिखी नहीं। श्रुतिमें रयीरूप चन्द्रमाको भोग्य लिखा है और सूर्यको भोक्ता लिखा है। भोक्ता भोग्यमयही यह सर्व संसार है, जो पुरुष सूर्य चन्द्रमाको, भोक्ता भोग्यमय सर्व संसार रूप जानकर, उपासना करता है, सो उत्तम सुखको प्राप्त होता है, ऐसे लिखा है। जो चन्द्रमा पीछे होवे तो चन्द्रमासे प्रथम होनेवाले वेद वाक्यकी व्यवस्था न होगी। तथा भोग्य बिना भोक्ताकी सिद्धी नहीं होगी; इससे सूर्यभी जगत्की उत्पत्तिके प्रथमही उत्पन्न होना चाहिये. साराँश यह कि, भोक्ता भोग्यमयही संसार है। अगस्त्यनाम भी ईश्वरका है तथा ऋषिनामभी ईश्वरका है। सो अगस्त्यऋषिनाम ईश्वरकी, तथा महान् तपस्वी ब्राह्मण अगस्त्यकी नाम संज्ञा, एक

होनेसे ऋषिका नाम लेते हैं। वा इससे तपकी महिमा प्राप्त इससे जगत्के पीछे जगत् हुआ, यह अर्थ अनुभवशास्त्रसे वि इसहेतु यह अर्थ जानना कि, शुद्ध माया वा अज्ञान क्षी जगत् रचनेकी ईश्वर इच्छा, मंदराचल पर्वत है। ईश्वरकी क्रिया नाग कर्म है। जीवोंके पुण्य पापरूप देवता और दैत्य हैं। ज्ञानशक्तिको कूर्म (कछुवा) जानना जिनने मंदराचल किया था क्योंकि, ईश्वरकी ज्ञानशक्तिसेही यथायोग्य धारण हो रही है। पूर्वोक्त क्षीरसमुद्र मंथन करनेसे, पंच पंचकर्मेन्द्रिय, चतुष्टय अंतःकरण, (प्राण कर्मेंद्रियोंके जानलेने क्योंकि, कर्मेंद्रिय तथा प्राण भूतोंकी रजो अंशसे हुये हैं) तिनके देवता तथा तिनके विषय, यह चौदह त्रिपुटीरूप चौदह १४ रत्न, भोक्ता भोग्यमय संसारमें यथार्थवक्ता अगस्त्यका वाक्य सुनकर सर्व सभा प्रसन्न हुई।

। काल ।

तिसी समय काल भगवान् आया और कहने लगा-हे विद्वान्लोको! कालतीन प्रकारकाहै १ एकका नाम केवल एक महाकाल है ३ एक अतिकाल है। तीन प्रकारका सत्, नंदस्वरूप, प्रत्यक् आत्माके अज्ञानसे उत्पन्न हुआ, जो सहित भूत, भौतिक, सूक्ष्म, स्थूल, जगत् है तिस जगत्में मैं केवल काल हूँ। कैसा मैं हूँ कि, जबलग अज्ञानरूप पि जीता है, तबतकही मेरी, भाइयों सहित आयु है, पीछे नहीं। हे मुझ केवल काल करकेही जगत्की उत्पत्ति, पालना, तिरोभाव मुझ करही जीवोंके स्थूलशरीर जीर्ण होते हैं, पुनः नवीन होते हैं; परन्तु मुझ केवल कालसे सूक्ष्म शरीर न जी

न उत्पन्न होते हैं। पूर्वोक्त सर्वके निजस्वरूप अधिष्ठानके अज्ञानने स्थूल सूक्ष्म संसाररूप बगीचा रचा है, तिस स्थूल बगीचेका मुझको मालीपना सिपुर्द किया है। जैसे माली जीर्ण झाडोंको काटके नवीन लगादेता है, कदाचित् नवीनभी झाड शोभादायक नहीं होते, तो तिसको भी काटके अन्य स्थानमें लगा देता है। परन्तु बीजका नुकसान नहीं करसक्ता क्योंकि, बीजविना झाड कहाँसे होगा। सारांश यह कि, मालीही बगीचेकी सफाई तथा गुलजार रखता है तथा जब बगीचा देखें तब वैसेका वैसाही दीखता है, नदी प्रवाहवत्। तैसेही पिता अज्ञानने मुझ केवल कालको स्थूल संसाररूप बगीचेका मालीकिया है, सो मैं मालीकी न्याई जीवोंके कर्मोंके अनुसार स्थूलशरीरोंको तथा अन्य स्थूलपदार्थोंको तोड फोडकर तथा नवीन पैदाकर वैसेका वैसाही गुलजार प्रतीति कराता रहता हूँ। जैसे—माली झाडोंको तोडे फोडे नहीं तथा नवीन लगावे नहीं, तो बगीचेकी शोभा जाती रहती है। जैसे बहुत प्राचीन झाड, कोई सूख जाताहै, कोई फल नहीं देता है।तैसे मैं स्थूल पदार्थोंको जीर्ण पुनः नवीन नहीं करूँ तो संसाररूप बगीचेकी शोभा जाती रहे। इससे मैं इस स्थूल संसार बगीचेकी सफाई करने वाला केवल कालरूप माली हूं। ब्रह्मा, विष्णु, शिवादिकोंकी स्थूल मूर्तियोंको भी नाश करता हूँ, मैं नहीं छोडता, चाहे ब्रह्मादिकोंसे पूँछलो, अन्यकी क्या बात है? पूर्वोक्त अज्ञान पिताकाही पुत्र और हमारो भाई सर्व नामरूप कल्पित संसारका अधिष्ठान जो अनंत चित् सत् स्वरूप बुद्धि आदिकोंका साक्षी आत्मा है, तिसका जो सम्यक् बोधरूप ज्ञान है, सो महाकाल है क्योंकि, अपने अज्ञान पिताका तथा पिताके कार्यरूप मुझ केवल काल भाई सहित परिवारका, एक कालावच्छेदकर नाश कर देता है। सारांश यह कि, सर्व कार्य कारण प्रपंचमें सम्यक् मिथ्यात्व दृष्टि करादेता है। इससे पूर्वोक्त सर्व कल्पित

संसारके अधिष्ठानका ज्ञानही महाकाल है । यमकिंकरने कहा
परिवार सहित अपने पिताको ज्ञानरूप महाकाल क्यों मा
कालने कहा हे यमकिंकर! वस्तुका स्वभाव अपना विगाना नहीं
जैसे अग्नि अपने उत्पत्ति कर्ताको, अपने पूजकको, तथा अपने
रीको स्पर्श करनेसे दग्ध कर देती है; जैसे-बिच्छू अपनी माता
करही उत्पन्न होता है । जैसे बाँसोंसेही अग्नि उत्पन्न होती है; पुन
कोही जलाती है । जैसे कोई राजाका दुष्टनौकर राजासेही वृद्धि
होकर पुनः राजाकोही नाश करता है, इत्यादि अनेक दृष्टांत
यह ज्ञानभी अपने कारणको नाशकरता हुआही उत्पन्न हो
इसीसे ज्ञान महाकालरूप है, मुझ काल सहित सर्व कार
जगत्के मिथ्यत्व निश्चयका नामही भक्षण है । तैसेही सत्
आनंद स्वरूप प्रत्यक् आत्मा अतिकाल रूप है क्योंकि,
महाकालको भी यह पूर्वोक्त साक्षी आत्मा भक्षण कर जाता
अग्नि सर्वको दाहकर, आपभी समानरूप महाअग्निमें लीन
है । जैसे निर्मल जलकी मलीनताको दूर करके, आपभी न
जाती है । इत्यादि अनेक दृष्टांत हैं विस्तृत् भयसे लिखते नहीं
ज्ञानरूप महाकाल, मुझ सहित सर्व कल्पित; जगत्की निवृ
अर्थात् मुझ सहित सर्व नामरूप जगत्में मिथ्यत्व निश्चय क
अभाव निश्चय कराके प्रारब्ध प्रतिबंधकके नाश हुये पीछे,
ज्ञान आपभी साक्षी चैतन्यमें लीन होजाताहै । इससे हे विद्वान
सच्चिदानंद प्रत्यक् मनादिकोंका साक्षी आत्माही अतिकाल
अतिकाल आत्माही ब्रह्मासे लेकर चींटी पर्यंत, सर्वका निजस्व
जो अधिकारी, अपने अतिकाल स्वरूपको, सम्यक् स्वत
मोक्षसे रहित ऐसा जानता है कि, मैं बुद्धि आदिक सर्व दृश्य
साक्षी चैतन्य निर्विकार निर्विकल्पहूँ । ऐसे अपरोक्ष दृढनिश्चय

है, सो मुझ केवल स्थूलके नाशकरनेवाले कालके भयसे भय नहीं करता। जैसे स्वप्नावीके निद्रारूप अज्ञानसे, देशकाल सहित सर्व स्वप्नसृष्टी उत्पन्न होती है और स्वप्न नर सत् जानता है सो स्वप्न स्थूल सृष्टिकोही स्वप्नका काल नाश करताहै, तिस कालसे स्वप्न पुरुष भयकरते हैं। कदाचित् स्वप्नके गुरु शास्त्रसे, स्वप्न पुरुषकोअपने स्वप्नाभी स्वप्न अधिष्ठानका सम्यक् ज्ञान होता है तो अज्ञान देश काल सहित, सर्व स्वप्नसृष्टिको मिथ्या निश्चय जानता है। वा स्वप्नावी अधिष्ठानविषे अत्यंताभाव निश्चय जानता है, यही तिस ज्ञानका सर्वको भक्षण करना है। कोई दृश्यकी अप्रतीतिका नाम भक्षण नहीं। जैसे घट कंबूग्रीवावान् प्रतीति होता हुआभी, घट नाम उच्चारण होता हुआ भी; जलका धारणरूप वा जलका लावनारूप क्रिया देताहुआ भी सम्यक् मृत्तिकाके ज्ञानवाले पुरुषको, पूर्वोक्त घटका मृत्तिकामें अत्यंताभाव है। यह सब विद्वानोंको अनुभव है और ठीक ठीक ऐसेही हैं घटको चूर्णकरके वा किसीरीतिसे घटकी अप्रतीति होवे, तबहीं घट मृत्तिकारूप होता है वा अभाव होता है यह नहीं। इसी प्रकार सुवर्णादि अनेक दृष्टांत हैं अपनी अक्कसे जानलेना। सारांश यह कि, जैसे–स्वप्नद्रष्टाका ज्ञान, स्वप्नसृष्टिको मिथ्यात्व निश्चयरूप वा अभाव निश्चयरूप भक्षण करजाता है, इसीसे महाकाल है। पुनः वह ज्ञानसहित पुरुष तथा ज्ञानकर बाधित हुईहुई सर्व स्वप्नसृष्टि, किसी निमित्तसे निद्रारूप प्रतिबंधके दूरहोनेसे, जिस स्वप्नद्रष्टाके अज्ञानसे हुईथी तिसी स्वप्नद्रष्टामें लीन होजाती है यही तिसका भक्षण है। इससे स्वप्नद्रष्टा अतिकाल है। तैसेही सांगोपांग अपनी अक्कसे, दार्ष्टांत (विद्वानोंको) जान लेना। हे सभानिवासी पुरुषो! मैं लौकिक केवल काल ब्रह्मासे लेकर चींटीतक, सर्वकी स्थूलताको ही नाश करताहूँ; पुनः नवीन पैदा करताहूँ, परन्तु सूक्ष्म

सृष्टि मुझसे नाश पैदा नहीं होती। वह ज्ञानरूप महाका
मिथ्यात्व निश्चयरूप वा अभाव निश्चयरूप नाश होता है,
नहीं। मुझ केवल कालकरही अनंतबार स्थूल सृष्टि उत्पन्न
पुनः लीन होती है। तात्पर्य यह कि, लौकिक वैदिक सर्व
मुझ कालकरही होते हैं, पुनः लीन होते हैं, परन्तु यह न
सृष्टि मिथ्या है और मैं सतहूं किंतु सृष्टिके साथही मेरी सत्ता
थक् नहीं। अतिकालरूप आत्मामें मुझसहित सर्वसृष्टि कल्पित
है,परन्तु नित्य सुख चिद्रूप प्रत्यक् आत्माने किसीको कोई भा
किया है, किसीको कोई।सूर्यादिकोंको उदय अस्तादिकोंका का
है;वह वैसाही करते हैं।जैसे जिसको जो व्यवहार राजाने सिपुर्द कि
सो तिसी हुकुम को तामील करते हैं,मुझको सर्व जीवोंके स्थूल श
नाश, उत्पन्न करनादिक काम सिपुर्द किया है,सो मैं तिसी हुकुम
मील बजाता हूँ, कोई मुझमें बडाई नहीं। काल सर्व स्थूलको
उत्पन्नादिक करता है इससे काल बडा है, सो नहीं; जैसे—स्वप्न
और सृष्टितुल्यही है।यमकिंकरने कहा हे यथार्थ वक्ता देव!कैएक
में अज्ञानको मृत्युनाम काल लिखा है तथा शब्दादिक विषयोंको
काल लिखा है वा काम क्रोधादिकोंको काल लिखाहै परन्तु आ
कालकास्वरूप औरही कहाहै ? कालने कहा हे किंकर!
देख ! अज्ञानसे तो सुख दुःखरूप जगत्की उत्पत्ति
है, कोई अज्ञान जगत्का नाशक नहीं, लौकिक पि
जैसे रज्जुका अज्ञान सर्पादिकोंकी उत्पत्तिका कारणहै,
सर्पादिकोंका नाशक नहीं। स्वप्नादिक अनेक दृष्टांतहैं तैसे श
क विषयही तो संसार है, सो विषय दुःख देनेवाले होनेसे
कहा है। सो विषय अपरोक्ष आत्मज्ञानीको तथा भ्रमज्ञानसे विष
टको भी तथा ब्रह्मादिकईश्वरोंको भी,दुःख नहीं देसक्ते और यहज्ञा
महाकाल तो सर्व दृश्यको मिथ्यात्व निश्चयरूप वा अभाव निश्च

भक्षण करजाता है। इसीसे ज्ञानही महाकाल है। आगे जैसी इच्छा-हो तैसे मान। ऐसें कहकर काल चुप हुआ।

माया (प्रकृति)

तिस सभामें जगज्जननी मायां, जिसको प्रधान, प्रकृति, अविद्या, अज्ञानशक्ति भी कहते हैं, सो मूर्तिधारकर आई और कहने लगी। हे पुत्रो! मैं सत्व, रज, तम, त्रिगुणात्मक रूप हूँ। नित्य सुख चिद्रूप प्रत्यक् आत्माकी मैं शक्ति हूँ, मैं आत्मासे भिन्न हूँ, न अभिन्न हूँ। न सावयव निरवयवहूँ, उभयरूपभी नहीं। न मैं सत् हूँ, न असत् हूँ; न उभय रूप हूँ (क्योंकि, विरोधी धर्म एकही स्थानमें नहीं हो सक्ते) किंतु अनिर्वचनीय हूँ। जैसे-अग्निविषे दाहक शक्ति, अग्निसे भिन्न अभिन्न तथा उभयरूपता नहीं। जैसे स्वप्नद्रष्टामें निद्रारूप अविद्या भिन्नाभिन्न कुछ नहीं कह सक्ते; परन्तु साक्षात् स्वप्न प्रपंच कार्यद्वारा निद्रारूप अविद्याका अनुमान होता है। यह नहीं कि, स्वप्नद्रष्टामें निद्रारूप अविद्या नहीं। यद्यपि प्रत्यक्ष नहीं दीखती, तौभी निद्रारूप अविद्या विना स्वप्न प्रपंच होता नहीं। जो स्वप्न प्रपंचको अनुभव करने वाला स्वप्नद्रष्टा चैतन्य वस्तु है, सोई जाग्रत् अवस्थाको अनुभव करनेवाला चैतन्य वस्तु अब भी वर्तमान हाजिर हुजूर है, परन्तु अब जाग्रतमें स्वप्न प्रपंच नहीं है। इससे प्रमाणित होता है कि, स्वप्न जगत्का उपादान कारण, निद्रारूप अविद्याही, स्वप्न प्रपंचकी उत्पत्ति पालना संहार का कारणहै और स्वप्नद्रष्टा निर्विकार असंगरूप है। यद्यपि निद्रारूप अविद्या अबभी है तथापि, कार्यके सन्मुख नहीं। तैसे तुम मुझ मायाको जगत्की उत्पत्ति पालन संहारादि सर्व व्यवहार का निर्वाहिक जानो, चैतन्य असंग पुरुष निर्विकार जानो। मैं माया चैतन्यके भासको ग्रहण करकेही जगत्की उत्पत्ति आदि सर्व व्यवहार

करनेको समर्थ होती हूँ, स्वतः नहीं. क्योंकि, स्वतः जड माया और मेरे ये सर्व नामरूप कार्य, चैतन्य द्रष्टाकी दृश कारण मिथ्या मृगतृष्णाके समान केवल प्रतीति मात्र है। मेरे कार्यका स्वरूप पृथक् नहीं।मैं माया अनेक अपने हाव भाव करती हूँ । तथा मोहित करनेवाले अनेक विचित्र कार्य उत्पन्न हूँ। सारांश यह कि,मैं अपना सर्व बल इस मनादिकोंके साक्षी मोहित करने वास्ते करतीहूँ। सत्को अपने बलसे असत्,असत् जडको चैतन्य, चैतन्यको जड, सुखको दुःख दुःखको सुख, अपूर्ण अपूर्णको पूर्ण, इत्यादि अनेकरूप अवास्तव समान कर दिखलाती हूँ वास्तवसे नहीं। तौभी प्रत्यक् आत्मा अप्रसन्न नहीं होता । तथा प्रसन्न करने वास्ते अनेक प्रकार आदि रस उत्पन्न करती हूँ,परन्तु नित्य सुख चिद्रूप यह साक्षी मुझ सहित मेरे चरित्रोंका (ऊपरका ऊपर) द्रष्टाही रहता है चित्भी साक्षी आत्मा हर्ष शोकको नहीं प्राप्त होता । जैसे- पुरुष अपनी मायाद्वारा रचे अनेक सुंदर असुंदर पदार्थोंसे शोकको नहीं प्राप्तहोता, अन्य होते हैं ।

देखो मेरी अवस्था-नवीन यौवनवान हूँ,अत्यंत सुंदररूप व्रत हूँ क्योंकि, अनंत चिद् सत् स्वरूप प्रत्यक् आत्मा (मीसे) भिन्न सर्व नामरूप प्रपंच, मेरा कार्य नाम बाल शेष एक चैतन्यही मेरा पति है । परंतु वह मुझ स्त्रीसे कदापि स्पर्श नहीं करता, जो मैं लीला रचूँ तिससे पहलेही स्थिर हो तथा मेरी लीलाका द्रष्टा रहता है । मैं क्षणमात्रभी तिससे नहीं करसक्ती । हे पुत्रो ! चैतन्य,तुम सर्व नामरूपका पिता मैं माया तुम्हारी माता हूँ । इससे तुमको योग्य है कि माता पिताका सम्यक् स्वरूप जानो । जो अपने माता

सम्यक् स्वरूप नहीं जानता सो पुत्र नालायक है। अर्थात् द्रष्टा दृश्यका सम्यक् स्वरूप जाननाही कल्याणका हेतु है। वर्त्तमान साक्षात् मातापिताके पुत्रको कोई अधिकारी पूछे कि, तुम अपने मातापिताको जानते हो? जो वह कहे कि, मैं सम्यक् जानता हूँ तो उत्तमता सिद्ध होती है और जो कहै मैं नहीं जानता तो नीचता सिद्ध होती है। तैसे—जो दृश्य द्रष्टारूप माता पिताको जानता है सो उत्तम है, जो नहीं जानता सो नीच है। इससे तुम लोग अपनी नीचताके दूरकरने वास्ते सम्यक् अपने माता पिताको जानो।

व्यासने कहा हे मातेश्वरी! तूही यथार्थवक्ता अपना तथा अपने पतिका सम्यक् स्वरूप कह? मायाने कहा हे पुत्रो! मुझ सर्वकी जननी मायाका तथा नामरूप आकाशादि प्रपंच मेरे बालबच्चोंका सम्यक् असत् जड दुःख परिच्छिन्नरूपही, स्वरूप जानना, अन्यथा नहीं। तात्पर्य यह कि, जो स्वरूपसे होवेनहीं और अधिष्ठानके अज्ञानसे प्रतीति होवे सो अपने कार्य सहित मायाका स्वरूपहै स्वप्नवत् तथा मृगतृष्णाके जलवत् है। तैसही सत् चित् आनंद स्वरूप, ब्रह्मसाक्षी आत्मा (मेरेसे पति और अपने पिता) का सम्यक् स्वरूप जानना, अन्यथा नहीं। सारांश यह कि, आपको सर्वदृश्यका द्रष्टा जानना। मायासे लेकर देह पर्यंत अपनी दृश्य जाननी। द्रष्टा स्वभावसेही बंध मोक्षसे रहित है क्योंकि, बंध मोक्षकाभी द्रष्टा है। इस हेतु बंध मोक्षकी निवृत्ति प्राप्ति वास्ते प्रयत्न भ्रमसिद्ध है सम्यक् नहीं। यह कहकर माया चली गई।

। कश्यपऋषि ।

(देवतादैत्यकी उत्पत्ति, सुरासुर लडाई, स्वर्गनर्क बन्ध मोक्ष तथा मनोनाशका वर्णन.)

कश्यप ऋषि आये और कहने लगे—हे सभासद् जनो! दैवी आसुर गुणदोषरूप जो देवता दैत्यहैं, मुझ कश्यप नाम चैतन्यसेही उत्पन्न

होतेहैं और मुझमेंही लय होतेहैं, परंतु मैं चैतन्य निर्लि
रहताहूँ; जैसे स्वप्नद्रष्टा स्वप्नप्रपंचको उत्पन्न करताभी निर्लि
जैसे अनेक अँधेरी वर्षादिक उत्पन्न लय होतेभी आकाश निर्लि
इससे मैंही चैतन्य सर्वाधिष्ठानहूँ; मुझ चैतन्यको अपना
जानो । तब कालके भयसे छूटोगे अन्यथा नहीं । वा मनरूप
जानों, प्रवृत्ति निवृत्ति तिस मनरूप कश्यपकी दिति अ
स्त्रियां जानो, तिनसे दैवी आसुरी गुण देवता दैत्य हुये।
शरीरमें दैवीगुण अधिकहै, सो शरीर स्वर्गवत् जानो और
शरीरमें आसुरीगुण अधिकहै, सो शरीर पातालवत् जानो।
एकही शरीर स्वर्ग पातालरूप जानो क्योंकि, जब इसी
अमानित्व अहिंसादिक दैवीगुणरूप देवतोंकी अधिकता
बलिष्ठता और क्रोधादिक दैत्योंकी निर्बलता तथा न्यूनता
तब यही शरीर स्वर्गरूप जानना और जब इसी शरीरमें काम
लोभ, मोह, अहंकार, दंभादिक, आसुरी गुणरूप दैत्योंकी अ
बलिष्ठता, अमानित्व, अहिंसा; ब्रह्मचर्यादिक, दैवी गुणरूप दे
न्यूनता तथा निर्बलता होती है, तब यही शरीर पातालरूप
वा नरकरूप जानो । जब दैवी आसुरी गुणरूप देवता दै
शरीरमें सम रहें, तो तब इस शरीरको भूमि लोक जानो । हे
पूर्वोक्त इस शरीरमें दैवी आसुरी गुणरूप देवता दैत्योंकी
होती रहती है तथा सर्वदा विरोध रहताहै । जब कभी दैवी
देवता बली होजातेहैं, तब शरीररूप स्वर्गमें यह जीवरूप इं
शोभाको पाताहै और आसुरी गुणरूप दैत्य शोभा रहित
मलीन भावको प्राप्त होतेहैं । जब आसुरी गुणरूप दैत्य बली
हैं, तब इस शरीररूप पातालविषे दैत्य शोभायमान होते हैं ।

शोभा रहित होते हैं। हेविद्वान्लोगो! यह दैवी आसुरी गुण दोनों इस जीवको बंधनके हेतु हैं।जैसे सुवर्णकी बेडी तथा लोहेकी बेडी दोनों बंधनके हेतु हैं। ये सब दैवी आसुरी मनके धर्म नाम बालबच्चे हैं,प्रत्यक साक्षी आत्माके यह धर्म नहीं। मन अनित्य है क्योंकि, सुषुप्तिमें अपने बालबच्चों सहित इसका अभाव हो जाताहै, पुनः जाग्रत् स्वप्नमें अपने बालबच्चे सहित उत्पन्न होताहै, एक रस नहीं रहता; इसीसे अनित्य है। जब यह पुरुष मनको नाश करता है तब सर्व बंधनोंसे छूट जाता है।मन और किसी भी उपाय कर नाश नहीं होता, जिस नित्य सुख चैतन्यरूप आत्मासे यह फुरनारूप मन उत्पन्न हुआ है तिसीमें डालनेसे नाश होताहै।सारांश यह कि, सूर्यकी किरण सूर्यरूप हैं, लालकी दमकां लालरूप हैं।तैसेही चैतन्यरूप सूर्य लालकी मनरूप किरणें दमकां हैं पृथक् नहीं। यही जाननाही मनका नाश करना है।जैसे घटको तथा भूषणोंको मृत्तिका सुवर्ण रूप जाननाही घट भूषणोंका नाशहै।जैसे कोयला किसी भी उपायसे सफेद नहीं होता परन्तु जिसके वियोगसे काला हुआ है, तिसीमें डालदेनेसे तिसकी कालखता मिटती है; अन्यथा नहीं।सारांश यह कि, मनको मिथ्या जाननाही मनका नाश है। आपसहित सबको वासुदेव जानना यही परमउपदेश मुमुक्षुओंको है; अन्य नहीं।

पूर्वोक्त दैवीगुणोंसे संयुक्त, जो पुरुष है सो देवता हैं और पूर्वोक्त आसुरी गुणोंकर जो पुरुष संयुक्त हैं सो दैत्य हैं। दोनों इस भूलोकमेंही रहते हैं, तिनका परस्पर विरोध हमेशह बना रहता है क्योंकि; सच्चे पुरुषका और झूंठे पुरुषका एकत्व कैसे होगा? किंतु नहीं होगा। इत्यादि दृष्टांत अपनी बुद्धिसे जानलेना। इन मनुष्योंमें ही देवता दैत्य दोनों संज्ञा हैं।धर्मात्मा राजाही इंद्रहै और अधर्मात्मा राजाही दैत्यराज है। ऐसे कहकर कश्यपऋषि चुप हुये।

। मनु ।

पश्चात् मनु भगवान् आये और कहा कि, हे साधो। मनोमात्रहै, जैसे–संकल्प मन दृढ करता है, तैसेही भासता देह सहित जगत्का सत् संकल्प करता है, तो सत् भान असत् संकल्प दृढ करता है तो असत् भासता है। जैसे-एक अनेक पुरुषोंके अनेकही संकल्प होते हैं। तिन पुरुषोंको अपने२संकल्पके अनुसार,अनेकरूप प्रतीति होती है। "मैं किन्तु मैं प्रत्यक् साक्षी आत्मा हूँ" यही निरन्तर दृढसंकल्प तो काल पाकर वैसेही होजावेगा।

। सृष्टि उत्पत्ति ।

मनुने कहा हे सभासदो ! चूना मट्टीसे यह संसार बनाया नहीं और न बनसक्ता है। केवल समष्टि वा व्यष्टि फुरनेसे हुआ है। जब लग फुरना है तबहींतक जगत फुरना नहीं तब सुषुप्ति आदिकोंमें जगतभी नहीं। अपना आनंदरूप, प्रत्यक् आत्मा एकरस; विकारशून्य है और सर्व णीके गोचर पदार्थ एक रस नहीं। जैसे स्वप्नका प्रपंच केवल मात्र है, एक रस नहीं; स्वप्नद्रष्टाही एक रस नाम एकरूप जाग्रत् स्वप्न सुषुप्त्यादि सर्व पदार्थ, परस्पर व्यभिचारी आत्माही अव्यभिचारी है, आत्मा व्यभिचारी नहीं।

यमार्किंकरने कहा हे मनु ! शास्त्रमें लिखा है कि, मनु श सृष्टि हुई है, सो कैसे है ? मनुने कहा हे साधो ! मनु नाम चैतन्य षका है। शतरूपा नाम प्रकृतिका है।सो प्रकृति पुरुषके यह सृष्टि उत्पन्न होती है; नहीं तो मनु शतरूपा कहांसे उत्पन्न जो कहो ब्रह्मासे तो ब्रह्मा कहाँसे उत्पन्न हुआ ? जो कहो

विष्णुसे, तो विष्णुकी व्यक्ति किससे हुई ? जैसे तरंगसे तरंग नहीं होता, जलसेही तरंगादिक होते हैं। जैसे स्वप्नद्रष्टाके और निद्रारूप अविद्याके संयोगसेही स्वप्न सृष्टिहोती है, अन्य हेतुसे नहीं। स्वप्न सृष्टिसे स्वप्नसृष्टि नहीं होती। सो चैतन्य पुरुषही तुम्हारा हमारा तथा सर्व जगत्का साक्षी आत्मास्वरूपहै, यह कहकर मनु तूष्णीं हुये।

। परमात्मा ।

इतनेमें सर्व जगत्का स्वामी जो परमात्मा है सो मुमुक्षुओंके निःसंदेह अपरोक्ष, अपने स्वरूपको बोध करने वास्ते, दिव्यमूर्तिको धारणकर तिस सभामें आया। सर्व सभा उठ खडी हुई और सब दंडवत् प्रणामकर स्तुति करने लगे। हे परमेश्वर ! सर्वरूप तुमहींहो और असर्वरूप भी तुमहीं हो। सर्व जगत्की उत्पत्ति, पालना, संहार करते भी आप निर्विकार हो तथा आकाशके समान असंग हो, स्वप्न द्रष्टावत्। करते भी अकरता हो। हे भगवन् ! आप हम सर्व अधिकारियों प्रति उपदेश करो। यद्यपि "आपकी यथार्थ वेदरूप वाणी, सर्व अधिकारियोंको उपदेश प्रसिद्ध है, अब नवीन मैं क्या कहूँ" जो ऐसे कहो तथापि वही वेदरूप उपदेश पुनः हम अधिकारियोंके प्रति कथन करना योग्य है क्योंकि, आपका इस सभामें उपदेश सर्वके कल्याणका कारण होगा। हमको पूछो तो आज हम कृतकृत्य हुये हैं क्योंकि, जिसकी प्राप्ति वास्ते कर्म, उपासना, ज्ञानकांडरूप, वेद साधन कहते हैं सो आप हमको अपरोक्ष प्राप्त हुये हो। इससे हमको अब करना कुछ नहीं रहा परन्तु, अन्य अधिकारियोंको अपने सम्यक् अपरोक्ष स्वरूपका उपदेश करो। परमेश्वर कहने लगे–हे अधिकारी जनो ! मैं सत, चित, आनंदस्वरूप, परमात्मा, देश, काल, वस्तु भेदसे, रहित परिपूर्ण हूँ। ब्रह्मासे लेकर चींटी पर्यंत, सर्वके हृदय विषे, मनादिकोंका साक्षीरूप करके नित्य प्राप्त अपरोक्ष स्थित हूँ। मुझ नित्य प्राप्त साक्षीकी प्राप्तिवास्ते जो यत्न करना है सो भ्रम है।

संसार उत्पत्तिके (वेदादिमें) कथन करनेका आशय।

हे अधिकारी जनों! मुझ परमात्मानें जो त्रिकांडरूप वेद सो संसाररूप भ्रमकी निवृत्ति निमित्त रचेहैं; कोई संसारके प्रकारकी रचना विषे मेरा तात्पर्य नहीं। वेदविषे सृष्टिका कथन करके पुनः अपवाद किया है, जो संसारकी रचनामेंही तात्पर्य होता तो अपवाद पुनः वेद नहीं कहता। इससे जिस परमात्मासे यह भौतिक सृष्टि हुई है, पुनः तिसीमें लीन होती है, सो परमात्मा तुम्हारा स्वरूप है। जैसे—कोई तरंगको उपदेश करे कि, हे तरंग! तुम्हारे सहित जिससे यह तरंग बुद्बुदा फेनादि उत्पन्न होकर पुनः लीन होतेहैं सो तुम्हारा स्वरूप है। जैसे—स्वप्नजीवको कोई उपदेश करे कि, तुम सहित यह स्वप्नप्रपंच जिस स्वप्नद्रष्टा चैतन्यसे उत्पन्न होकर तिसीमें लीन होता है, सो स्वप्नद्रष्टाही तुम्हारा स्वरूप है। स्वप्नप्रपंचकी तथा तरंगादिकोंकी उत्पत्ति लीनताके कथनमें वेद का तात्पर्य नहीं, किन्तु जल (स्वभावी निर्विकार निर्विकल्प) में है। कोई तरंगादिकोंकी सृष्टि कथनमें तात्पर्य नहीं। नहीं तो तथा संसारके पदार्थोंके कथनमें जीवको तथा वेदको क्या लाभ? उलटा संसार कथनमें दुःखकी प्राप्तिरूप भ्रमही फल है। इस रूप संसार भ्रमकी निवृत्तिकी निवृत्ति और सत् चित् आनंद ब्रह्मकी प्राप्तिकी प्राप्तिमें, वेदका तात्पर्य है।

वेदमें त्रिकाण्डकथनका आशय।

उपरोक्त गुह्य तात्पर्यके अज्ञात भ्रमी पुरुषोंके भ्रम दूर करने वेदमें कर्म, उपासना ज्ञान कथन किया है, कोई बंध मोक्ष यथार्थ इस अभिप्रायसे नहीं कथन किया। हे अधिकारी जनो! जैसे आकाशही घट उपाधिसे घटाकाश संज्ञाको पाता है; तैसे मैं परमात्मा

देहरूप उपाधिसे साक्षी आत्मा संज्ञाको प्राप्त हुआ हूँ; जैसे एकही आकाश ब्रह्मलोकादिकोंमें तथा ब्रह्मलोक निवासी पुरुषादिकोंमें तथा इस भूमिमें, अंतर बाहर, व्यापक एकरस है; तैसे मैं सत् चित् आनंदरूप परमात्मा, सर्वके हृदयदेशमें मनादिकोंके साक्षीरूपसे स्थित हूँ।

परमात्मा कहाँ रहताहै?

हे अधिकारी जनो! यह संशय नहीं करना कि, "यह बुद्धि आदिकोंका प्रकाशक आत्मा, परमात्मारूप नहीं, परमात्मा तो ब्रह्म वैकुंठादिक लोगोंमें रहताहै" बरन् मैं परमात्मा तो तुम्हारा प्रत्यक् आत्मा स्वरूप हूँ, इसीसे पूर्ण हूँ। जो ऐसा मुझ परमात्माको नहीं मानोंगे तो जो देश काल वस्तु भेदवान् पदार्थ हैं, सो अनित्य हैं। अनित्यके जाननेसे अनित्यही फल होता है। इससे अपने प्रत्यक् आत्मासे पृथक् करके जो मुझ परमात्माको जानेगा तो मानों मेरा तिसने खंड खंड किया है और असत्में सत् बुद्धिवान् भ्रमी है। इससे तुम भूलकरभी अपने प्रत्यक् आत्मासे मुझको भिन्न नहीं जानना।

परमात्मा कहाँ मिलेगा?

मुझको अपने अंतर सम्यक् अपरोक्ष स्वरूप, विद्वान् पुरुषोंके साथ मिलके, आत्मा नात्माके विचाररूपी उपाय, निरअहंकारसे करोगे तो अवश्यमेव मुझ परमात्माका तुमको दर्शन होगा, दर्शन नाम मुझको निःसंशय साक्षी आत्मारूप जानोगे। बाहर कोई हठ क्रियासे वा अंतर हठक्रियासे वा अभिमानसे, मुझको ढूँढोगे तो लाखों वर्षतक न मिलूंगा। जैसे कंठस्थित माला बाहर कभी भी नहीं मिलती।

कर्मउपासना और ज्ञानकाण्डसे क्या फल है।

हे अधिकारिजनो! कर्मकांड अंतःकरणकी निर्मलताके लिये है। निर्गुण वा सगुण उपासना अंतःकरणकी निश्चलताके लिये है। ज्ञान

कांड अज्ञानरूप आवरणकी निवृत्ति वास्ते है । जब मुझ प...
सम्यक् अपना आत्मारूप जाना तो कृतकृत्य होता है । ...
कुछ जानना नहीं । वेदसहित सर्व संसारको स्वप्नवत् जान...
इससे आगे भी कर्तव्य माने सो भ्रमी पुरुष है ।

परमात्मा पूर्ण है ।

हे अधिकारीजनो ! मुझ सत, चित्, आनंद रूप ब्रह्म...
उपासना तो बेशककरो, परंतु मुझ पूर्णको अपूर्ण मत करो...
पूर्ण है सो अनित्य है । अपने प्रत्यक् आत्मासे जुदा ...
मानो क्योंकि, आत्मासे भिन्न अनात्मा होता है । इससे...
मुझे भिन्न मानोगे तो मुझ परमात्माको अनात्मापना सि...
दूसरी परिच्छिन्नता होगी। मुझ सत, चित, आनंदरूप परमात्मा...
आत्माको भिन्न मानोगे तो प्रत्यक् आत्माको असत ...
रूपता सिद्ध होगी । प्रत्यक् आत्माकी असत् जड दुः...
किसीको इष्ट नहीं और अनुभव शास्त्रसेभी प्रत्यक् आत्मा...
जड दुःखरूपता जानी जाती नहीं । इससे मुझ ब्रह्मात्माके...
सम्यक् जानो, असम्यक् मत जानो । क्योंकि सम्यक्रूप ...
लाभ है, अन्य नहीं ।

परमात्माका स्वरूप ।

हे विद्वान् पुरुषो ! जो मैं चैतन्य आत्मा तुम्हारे अंतर...
न होऊँ तो मनादिक जड पदार्थोंकी सर्व चेष्टा कैसे जानी जा...
जडको स्वपरका ज्ञान नहीं होता । और किसीदेशमें परमा...
हरी लगाकर नहीं बैठा । हे अधिकारीजनो ! इस नामरूप...
रूपी, जड पुतरीको, मैं चैतन्यदेवने रचा है और मैंही इस...

र, इसकी चेष्टा करता हूँ. क्योंकि मुझ परमात्मासे भिन्न और कोई तन्य है नहीं । और स्वतःसिद्ध जडभी चेष्टा होती नहीं । इससे ह विचारना चाहिये जो इस मनादिक जड संघातकी चेष्टा करता तथा जो चेष्टाका प्रकाशक है सो ईश्वरका रूप है । सुषुप्तिकालमें ो केवल अज्ञानका द्रष्टा है और जाग्रत् स्वप्नमें जो अज्ञानसहित, ज्ञानके कार्यका द्रष्टा है; सोई ईश्वरका स्वरूप है । जो प्रिय मोद मोद वृत्तियोंके भावाभावको अनुभव करनेवाला है, तथा सात्त्विकी जसी तामसी मनके स्वभावोंको जाननेवाला है तथा समाधि आदि न्य सुखका, तथा विक्षेपजन्य दुःखका जो अंतर अनुभव करता और आप किसीसे अनुभव नहीं होता सोई ईश्वरका रूप है । जिस-कर ध्याता, ध्यान, ध्येय; ज्ञाता, ज्ञेय; प्रमाता, प्रमाण, प्रमेय; द्रष्टा, दर्शन, दृश्यादि, अनेक, त्रिपुटियां अंतर बाहर निरंतर सिद्ध होती हैं सो ईश्वरका स्वरूप है । ज्ञान, अज्ञान, बंध, मोक्ष है, उपादेयादिक मनकी कल्पनाको तथा मनादिकोंका जो द्रष्टा है सो ईश्वरका रूप है ।

स्वरूप कैसे प्राप्त होगा ?

हे विद्वान्लोगो ! पूर्वोक्त ईश्वरही तुम्हारा स्वरूप है, मैं सत् कहताहूँ । ब्रह्मचर्यादि व्रतोंपूर्वक सत्संगमें तुम आत्मविचार निरंतर करोगे (श्रद्धापूर्वक) तो अपने स्वरूपको सम्यक् अपरोक्ष जानोगे। जो मन वाणीका गोचर वस्तु है, सो ब्रह्मात्माका स्वरूप नहीं किंतु सो दृश्यका रूप है । जो मन वाणीसे अतीत है और मन वाणी सहित मन वाणीकी कल्पनाको जो सदा परिमाण करता है सो ब्रह्मात्माका स्वरूप है । देश देशांतरको मन जाता है, पुनः आता है, पुनः आयकर दूसरे कार्यमें लगता है, कभी शुभाशुभकी कल्पना

करता है; यह सर्व मनका व्यवहार जिससे जानागया है स्वरूप है ।

स्वरूप अपरोक्षके हेतु कर्तव्य।

हे साधो! अपने स्वरूप अपरोक्षके लिये प्रथम अंतःकरण वास्ते तुम निष्काम कर्म करना और अंतःकरणकी. निश्च तुम सगुण वा निगुर्ण वा अन्य कोई वेदरीति अनुसार करनी, इन दोषोंको दूरकरके पश्चात् ज्ञानमार्गमें पडना। करे जो कर्म उपासनासे पूर्वोक्त दोष अंतःकरणमें नहीं देखे ज्ञानमें प्रवृत्ति करे और वासना त्यागे । इसप्रकार पर अधिकारियों प्रति उपदेशकर अंतर्धान होगये ।

पराशरने कहा हे मैत्रेय ! अपने चैतन्यस्वरूप आत्म देहादिकोंमें आत्मबुद्धि होनी, यही अहंकाररूप वासना परमात्माने कहा है. क्योंकि इसी अहंकारपूर्वकही आगे रूप संसार पसरता है; जैसे बीजसेही वृक्ष पसरता है अहंकार संसार समुद्रका मूल नाम बीज है, तो मुझ असंग क्या प्रयोजन है ? जैसे वृक्षका बीज पृथिवीमें है आकाश क्या प्रयोजन है ? इससे अहंकारभी मैंने किया है;त्यागना ही है । पारभी मुझकोही होना है । भ्रमकर बंध मोक्षभी मैं है और विचार कर बंध मोक्षका वहभी मुझको ही छोड और किसीका क्या काम है आपही आप हूँ ।

संसारसागरसे पार उतरनेकी नौका।

पराशरने कहा हे मैत्रेय ! जो तू संसारसमुद्रसे पारहुआ तो आत्मविचाररूपी नौका कर, जो अयत्नही पार होवे । वि है कि, अनविचारे मिथ्या परिच्छिन्न अहंकारको त्याग संसारसमुद्र कहां है ? जिससे पारहोता है, आप मुये जग

मैत्रेय ! तूने कभी चाहनासे रहित स्वरूपको न जाना, यही दृढ़ किया कि, किसीका ग्रहण करना, किसी वस्तुका त्याग करना । जो झे धनकी उत्पत्तिकी बात कहै, उसीकी तरफ तेरे मन इंद्रियां प्राण द्रूप होजाते हैं, स्वरूप चिंतनमें आलस्य करता है । पर कह तू कौन है? मैत्रेयने कहा मैं चैतन्यस्वरूप ब्रह्महूँ । पराशरने कहा तू जीवत्व अहंकारमें मिथ्याबंध है, मैं चैतन्यरूप ब्रह्म हूँ, यह कैसे जाना जावे? मैत्रेयने कहा जानाजावे चाहे न जानाजावे; मुझको अपने निश्चयका फल होना है; परन्तु तुमने भला कहा है; ब्रह्म पूर्ण-को कहते हैं। जब मैं ब्रह्म चैतन्य हूँ, जीवत्व मिथ्या अहंकार बंधमें भी व्यापकहूँ, तबहीं तिनकी सिद्धि होती है जो मैं पूर्णनहीं होऊँ तो ति-नकी सिद्धि कैसे होवे? पराशरने कहा हे अभाग्य! तुझको कालसे भय नहीं? यह सर्व देवता ऋषि मनुष्य कालके भयमें हैं। मैत्रेयने कहा जब मैं दृश्यके अंतर बाहर, आस्ति भाति प्रियरूप सर्वात्मा हूँ तो कालका भी मैंही आत्मा हूँ। अपने आत्मासे भय किसीको होतानहीं वा अपने आत्माको कोईभी भय देता नहीं भय द्वैतसे होता है मैं आत्मा अद्वैत हूँ। भय अभय सर्व चिद्रूप है । वर्तमानमेंही, स्वरूपसेही; मुझ असंग चैतन्य साक्षी आत्माका काल, रोममात्रभी छेदन नहीं करसक्ता, पीछे क्या भय देवेगा। हां! जब मैं चैतन्य असंग भ्रमसे संगी दृश्यरूप होजाऊँ तो काल भय बेशक देवें परन्तु मुझ कालादिक दृश्यके द्रष्टा असंग चैतन्यका कभी भी संगीस्वरूपसे दृश्य होना नहीं। इससे विचार देखो मैं असंग चैतन्य कालसे भय कैसे करूँ? जिसका स्वभावसे जो स्वरूप होता है, अन्यथा सो किसीसे भी नहीं होसक्ता,जैसे—अग्निका स्वभाव अन्यथा किसीभी प्रकार नहीं होसक्ता तथा जैसे स्वभावसे असंगी आकाशको कोईभी पृथिवी आप तेज वा-यु तथा इनके कार्य देश काल अंधेरी आदिक पदार्थ संगी तथा भय नहीं

करसक्ते। हे पराशर! मैं भयसे रहित हूँ; उलटा कालादिक नि
चैतन्यसे भय करते हैं। कालकाभी यह नियम है "संक
वाणीके गोचर दृश्य वस्तुकोही भक्षण करना" तो
वाणी अगोचर आत्माको कैसे भक्षण करेगा, किंतु कदाचित्
नहीं। पराशरने कहा अब मैं तुझको परब्रह्म कहूँगा। मैं
तुम्हारी कल्पनाहै, कोई नाम राखो; मैं चैतन्य नामरूप
अपरसे परे हूँ। पराशरने कहा ऐसे मत कह, आप नाम
पडा है और कहता है मैं नाम रूपसे परे हूँ। मैत्रेयने कहा
मृत्तिका सर्व नाम रूपमें फँसी पडी है (घटादिकोंका स्व
तैसे—मैं नित्य सुख प्रकाशस्वरूप आत्मा, सर्व नामरू
फँसापडा हूँ, (सर्व नाम रूपका स्वरूप होनेसे)। पराश
इंद्रियोंकी पालनामें तत्पर है और बातें अतत् परकी
मैत्रेयने कहा जो मैं सत् अधिष्ठान चैतन्य आत्मा, इंद्रिया
त्य जड प्रपंचकी पालना नाम चेष्टा प्रतीतिका, तत्पर ना
नहीं होऊँ तो इनकी चेष्टाकी प्रतीति कैसे होवे, किंतु नहीं
इससे मैं चैतन्य इंद्रियोंका पालक ठीक ठीकही हूँ। जैसे
नहीं होवे तो स्वप्नके इंद्रियादिक प्रपंचकी चेष्टाकी प्रतीति
इससे स्वप्नद्रष्टा ठीक स्वप्न प्रपंचका पालक है। तथा जैसे
होवे तो जड पुतलियोंकी चेष्टा कौन करावे। इससे पुरुषही
लियोंका पालक है। इसमें जलतरंगादि अनेक दृष्टांत हैं।

। अनेक अनात्म साधनोंके नाम ।

पराशरने कहा हे मैत्रेय! कहन मात्र बात और होती है,
बात और होती है। मैत्रेयने कहा पूर्व तुम आपही कहचुके हो,
स्वरूप अधिष्ठानविषे भ्रम सिद्ध जो बंध मोक्षादि प्रपंच है,

निवृत्ति प्राप्ति वास्ते, केवल अधिष्ठान आत्माका, सम्यक् जाननाही, कर्तव्य है शारीरादिकोंके कर्तव्य कुछ नहीं करना" अब कुछ शारीरक कर्तव्य अन्य बतलाते हो! जो आप कहो? तो बंध मोक्षवान् आपको मानूँ, मोक्ष सत् मानूँ बंध वा बंध मोक्षरूप भ्रमकी निवृत्ति वास्ते मैं तीर्थ पर्यटन करूं कृच्छ्रचांद्रायणादि व्रत करूं, अन्न नहीं खाऊँ दूधही पिया करूं वा फलाहारही करूं वा नग्न होऊँ वा हठकर एक मकानमें ही पडा रहूँ। वा मौनी हो जाऊँ वा पंचधूनी तापूँ वा पूजा करूं, वा गृहस्थ त्यागकर जंगलमें चला जाऊँ वा शरीरको अनशन व्रत कर नाश करूं। वा अनेक न्यायादि शास्त्र पढूं, मंत्र यंत्र विद्या सीखूँ, वैद्यक शास्त्र पढूं। मंडली चलाऊँ वा अनेक अनात्म उपाय कर लोगोंको वा रईसोंको चिताऊँ। किसीकी माला कंठी छापा मारकर अर्थात् तिलक करूं वा जपकरूं वा अपनी सामर्थ्यके अनुसार मानसी वा शारीरक यज्ञ दान होमादि करूं। वा विभूतादि लगाऊँ इत्यादि अनेक साधन जो तुम कहो अपनी सामर्थ्यके लायक सोई करूं और करे भी हैं। परन्तु "यह सब भ्रममात्र संसारही है विना भ्रमके अधिष्ठान सम्यक् जाने बिना, भ्रमकी निवृत्ति नहीं होती, अन्य अनेक साधनोंसे भी" जो यह ठीक है तो आप हमको अन्य जंजालमें क्यों गेरतेहो? आगे हम अनेक जन्मोंमें तथा इस वर्तमान शरीरसे भी बहुत भटके हैं, आप सत्यवक्ता हो, यह बात ठीक नहीं तो आप पुनः पुनः यह बंध मोक्षादि प्रपंच भ्रममात्रहै, क्यों उपदेश करते हो? जो ठीक नहीं उसके ठीक कहना विप्रलिप्सादि दोष होता है। तथा वेदांत उपनिषदोंमें इस भ्रमरूप संसारकी निवृत्ति और परम आनंद मोक्षरूप आत्मकी प्राप्ति, केवल अधिष्ठानके ज्ञानसेही, वारंवार डोंडी पिटाकर कहा है। सो निष्फल होजावेगा। यह बात अप्रमाण है। इसलिये मैंने तुम्हारी कृपासे इस संसार भ्रमका अधिष्ठान अपने सच्चिदानंद स्वरूप

आत्माको सम्यक् अपरोक्ष जाना है । इससे मुझ चैतन्य को भ्रमरूप बंध मोक्षरूप संसारकी निवृत्ति प्राप्तिवाले मात्र भी कर्तव्य नहीं। चाहे तुम, चाहे शास्त्र, चाहे कोई औ भी अनेक उलट पुलट कहे भी, परन्तु जो मुझको सम्यक् हुआ है, तिसको कोई भी दूर नहीं कर सक्ता। जैसे-किसी किसी स्पर्शादिक विषयका अपरोक्ष सम्यक् अनुभव किया है शरीरको, मारो ,बांधो, तिरस्कार करो, अनेक पीडा दो, परन्तु अनुभवको नाश कोई भी नहीं करसक्ता। जैसे ब्राह्मणको राजपुरुष, लोभ भयादि देके, निज ब्राह्मणत्वसे उलट पुलट चाहे तो यद्यपि भयादि कारणोंसे मैं क्षत्रियादि हूँ ऐसा कहे भी भीतरसे क्षत्रियादि आपको नहीं जानेगा, किन्तु ब्राह्मणत्व ही रहेगा।

एक कथा।

(ज्ञानविषयक अनेक संशय निवारण.)

पराशरने कहा हे मैत्रेय ! इसीपर एक सूक्ष्म कथा सुन समय मैं वनविषे गया, परन्तु उस समय मेरे मनविषे लक्ष थी न दूसरेकी ॥ न जानताथा कि, मैं कौन हूँ। जो मेरा लेकर पुकारता तो मुझसे शब्द न निकसताथा। उस वनमें वसते थे। उन्होंने यह मेरी अवस्था देखकर जाना कि, उन्होंने लकडी इकट्ठी कर मेरा शरीर चितामें डालदिया और लगा दिया। परन्तु लकडी जलती थी और मैं होशमें न था। मुझको अग्निका स्पर्श नहीं हुआ। तू इन्द्रियोंके पालनेमें बंध ताहै, "मैं देहसे मुक्त हूँ" कैसे प्रतीत करूँ। मैत्रेयने कहा न्यका नामही,इन्द्रियोंकी पालनामें बंध है,जो मैं चैतन्य इन्द्रिय सर्व जड जगत्की पालना नाम सत्तास्फूर्ति नहीं करूं तो जैसे तागे कर मणियां बंधनमें रहती है; तैसे मुझ चैतन्य तागेके

नाम रूप मणियां, ठीक ठीक बंधनमें रहती हैं अर्थात् मेरी सत्तास्फूर्तिसे स्फुरण होता है । हे पराशर ! तुमहीं धर्मपूर्वक कहो—मैं साक्षी आत्मा देहसे भिन्न स्वतःसिद्ध स्वरूपसे हूँ वा यत्नसाध्य हूँ । जो स्वरूपसे हूँ तो मेरा कहना भी सफल है और न कहूँ तो भी सफल है । जो यत्नसाध्य हूँ तो मुझको यत्न कहो; देहनाशपर्यंत करूँगा । यह प्रकरण जैसे है तैसेही रहो परन्तु यह कहो तुम बेसुध कैसे हुये ? क्या भाँगपीथी ? वा तुमको सिरसाम रोग होगया था ? वा ज्ञानसे बेसुध करदिया था ? भाँग और रोगकी विशेषता होनेसे तो बेसुध सब होजाते हैं, इसमें तुम्हारी बडाई क्या ? जो ज्ञानसे बेसुध हुये थे, तो तुमको ज्ञान न हुआ एक महान् रोग हुआ ? अन्य पुरुषोंकी प्रवृत्ति कैसे होगी ? ज्ञानसे कोईभी वर्त्तमानमें विद्वान बेसुध होता देखा नहीं; न कोई सुना है । जान करके भलाही बेसुध होवे वा होश मन्द हो । कोई २ विद्वान् बावला देखनेमें आता है सो रोगकी वृद्धिसे होता है । ज्ञानसे नहीं । उलटा ज्ञानसे अन्य पुरुषसे कईदर्जे बुद्धि अधिक होजाती है । कहो तुम बेसुध कैसे हुये ? दूसरा तुमको अग्निने दाह न किया इसमें कारण कौन है ? तुम जंत्री मंत्री हो, वा अग्निने तुमसे भाईचारा किया जो तुम न जले ? वर्त्तमान विद्वानोंका तो अग्निके संबंधते शरीर न जलै, ऐसे देखनेमें नहीं आता । वा तुमको वर्तमान विद्वानोंसे आत्मज्ञान अधिक है, इससे न जले । जो सम्यक् आत्मज्ञानको न्यूनाधिक भाव कहोगे, तो श्रुति अनुभव दृष्टिविरोध होगा, क्योंकि हजारों विद्वानोंका सम्यक् अनुभव एकही है (वस्तु एक होनेसे) जैसे एक घटके हजार सम्यक् द्रष्टा पुरुषोंको मृत्तिका रूपही बोध होवेगा, अन्यथा नहीं यह श्रुति कहती है । जो जानने योग्य वस्तु पुरुषोंको भिन्न भिन्न होवे तो पुरुषोंको शांति कदाचित् भी नहीं होगी; परंतु ऐसा नहीं;

ब्रह्मासे लेकर चींटीपर्यंत, सर्वका स्वरूप, अखंड सच्चिदानं
आत्मा, एकही, बंधमोक्षसे रहित, निर्विकार, निर्विकल्प है
नहीं । इसीसेही सर्व जीव अपने आनंदसे आनंद हैं, ब्रह्म
आनंदकी इच्छाभी नहीं रखते, क्योंकि जिस आनंदस्वरूप
ब्रह्मादिकभी आनंदी हैं, सो आत्मा सर्वके हृदयविषे
होकर विराजमान होरहाहै । इससे सम्यक् आत्मज्ञानमें
भाव नहीं होसक्ता । तुम अग्निमें प्रवेश होकर कैसे न जले
रने कहा, जैसे प्रह्लाद नहीं जला था, ऐसे हमभी नहीं जले
कहा प्रह्लाद भेदउपासक था, अपने इष्टको अपनी रक्षा
अपनेसे भिन्न जानताथा इसीसे तिसकी रक्षा होतीथी,
ज्ञानीलोग तो अपने आत्मासे भिन्न इष्ट मानते नहीं, तुम्
किसने की । ऋषभदेव अग्निके संबंधसे जलगया, महाज्ञानी
पराशरने कहा हे मैत्रेय ! मेरे शरीरकी प्रारब्ध शेषथी तिस
करी; जैसे भृगुके पुत्र शुक्रके शरीरकी शेष प्रारब्धने
जैसे बालक वा अन्य पुरुषभी तीसरे वा चौथे अंवा
कुवेमें तथा दीवालादिकोंके नीचे आजाते हैं, तिनके
कारण प्रारब्ध किंचित् मात्रभी चोट नहीं लगने देती
हँसते रहते हैं। तैसे हमारीभी प्रारब्धने रक्षा की ।
कहा हे मैत्रेय ! जैसे तू कहता है व्यवहारमें ऐसेही है,
प्रकरणका तात्पर्य औरही है । मैत्रेयने कहा सो कहो
शरने कहा हे मैत्रेय ! सुषुप्ति वा समाधि अवस्थामें, भोग
प्रारब्धकर्मोंके, उपराम हुये, मुझको जाग्रत् स्वप्नमें, सुख
भोग देनेवाले, प्रारब्धकर्मरूप तपस्वियोंने, विषय इंद्रियरू
इकट्ठा कर, विषय इंद्रियके संबंधरूप अग्निमें गेरदिया ।
चैतन्यको अपनी तथा परकी सुधि नहीं थी, इसका अर्थ
मैत्रेय मैं चैतन्य स्वयंप्रकाश स्वरूपहूँ, किसी मनादिक

मैं विषय नहीं, आपने आप भी मैं अपने आपका विषय नहीं (आत्माश्रयादि दोष तथा अवाङ्मनसगोचर होनेसे) यही मुझको स्व परकी सुधि न थी। मुझको अग्निने नहीं दाह की; तिसका अर्थ सुन। जो मैं चैतन्य समाधिकालमें तथा सुषुप्तिकालमें निर्विकार, निर्विकल्प, सर्व दृश्यसे रहित स्वयंप्रकाशरूप था, सोई मैं चैतन्य जाग्रत् स्वप्नादिक अवस्थामें तथा विषय इंद्रियके संबंधरूप अग्निमें असंग निर्विकार हूँ। अन्यथा भाव मैं चैतन्य कदाचित्भी नहीं होता" यह मुझको दृढ निश्चय था यही अग्निका अस्पर्श है। जैसे आकाशको यह निश्चय दृढ है कि, जैसे मैं ब्रह्मलोकादिक उत्तम स्थानोंमें, सर्व पदार्थोंसे आलिप्त व्यापक शुद्ध निर्विकार हूँ, तैसेही भूमिलोकविषे तथा पातालविषे तथा नरकादिक मलीन स्थानोंविषे, मेरा वही स्वरूप है। यह बात ठीकही है सब जाने हैं। इससे हे मैत्रेय! जो तू चैतन्य आत्मा जगत्की उत्पत्तिसे आदि निर्विकार निर्विकल्प था, सोई तू चैतन्य अब वर्त्तमानमें भी वही है, अन्यथा नहीं हुआ। यह दृढनिश्चय कर। यह निश्चयही जन्म मरण संसार-रूप अग्निके दाहसे रहित है।

। दत्तात्रेयकी एक समयकी वार्ता ।

हे मैत्रेय! इसीपर एक कथा सुन। एकसमय दत्तात्रेय स्वाभाविक वनमें विचरता था। तिस स्थानमें जो पक्षी थे तथा मृगादि पशुथे, वे सर्व शिव शिव पुकारतेथे। दत्तने कहा शिव तो आप हैं शिवके पुकारनेसे क्या प्रयोजन है? उत्तर आया कि, जब सर्व शिव है तो पुकारना, न पुकारनाभी शिव है। दत्त आगे चले—तब शीशकी जटा एक वृक्षसे अटकिगई तब विचारा कि, स्थावर जंगम सर्व शिव है, कैसे छुटाकर जाऊं। पुनः विचारा कि, जब सर्व शिव है तब छुटाना न छुटाना तथा छुटानेवालाभी शिव है। तिस बनके निकट एक नगर था। तिस देशके राजाको भवानीने स्वप्न दिया कि, "मेरा तुझको तब दर्शन होगा, जब अपना मनुष्य शरीर बलि देवेगा" दे-

वीके तात्पर्यको मूर्ख राजाने न जाना । अपने नगरमें ढं
कि, जो अपना शरीर देवे तिसको धन बहुत मिलेगा परन्तु
भी स्वीकार नहीं किया । तब प्रातःकाल राजा जिसवनमें
खेलनेको निकसा, तिसी वनमें दत्तभी विचरतेथे । कैसे दत्त
हिंदू, न मुसल्मान प्रतीति होते हैं । न वर्णी, न आश्रमी,
न पंडित मालूम होते हैं तिनको देखकर राजाने पूछा कि, तु
हो ? दत्तने कहा शिव हूँ । राजाने जाना यह मूर्ख है, इसके
कोई दोष नहीं । नौकरोंसे हुकुम किया कि, इसको बांधले
नोंने वैसेही किया । दत्त जैसे अबंध अवस्थामें था तैसेही बंध
हर्ष शोकको न प्राप्त हुआ. क्योंकि बांधनेवाला और बंधन
साधन, बंधन योग्य, सर्व त्रिपुटी शिव है; यह तिसको नि
इसीसे हर्ष शोक न हुया । दत्तको देवीके देवलमें लेगये ।
पूछा तेरा माता पिता कौनहै ? दत्तने कहा शिव है । पुनः पू
वर्णाश्रम कौन है ? दत्तने कहा शिव है । राजाने कहा तेरा
वीकी प्रसन्नता वास्ते काटतेहैं । दत्तने कहा शिवहै । राजाने
कहाँसे आया है?कहाँ जावेगा?दत्तनेकहा सर्व शिव है।राजाने
खाता पीता है ? दत्तने कहा सर्व शिव है । वह अशा
देशका राजाथा, दत्तके गलेमें रस्सीडाली और खड्ग निकास
कि, इसका शीशकाटूँ । तिसी कालमें आकाशवाणी हुई
राजा ! अबतक तूने जाना नहीं कि, इसको आदिसे लेकर
वास्ते सियानसे खड्ग (तेरे) निकासने तक एकसा है, हर्ष
प्राप्त नहीं हुवा । यह विद्वान् है इसको सुख देनेवाला तथा
देनेवाला एकसा है; किसीको भी वर शाप नहीं देता । पूर्व जो
मैंने स्वप्न दिया था, तिसका तात्पर्य तूने नहीं समझा । राजाने
पूर्वक कहा हे मातेश्वरी ! सो तात्पर्य कहो ? आकाशवाणीने

पूर्व जो मेरा तूने अनेक जन्मसे पूजन किया है, तिसका परमफल आत्मज्ञान है। तिस ज्ञानकी प्राप्ति वास्ते मैंने तुझको यह उपदेश किया था कि, मानस सूक्ष्म शरीर भेंटकर मेरा तुझको साक्षात् होगा। तात्पर्य यह कि शरीरसे आदि लेकर ब्रह्मादिक पर्यंत-बंध, मोक्ष, सुख, दुःख, हर्ष, शोकादिक, सर्व नाम रूप प्रपंच मनका मननहै, कोई अन्यरूप प्रपंचका नहीं। क्योंकि जब मन सुषुप्तिमें अपने कारण उपादान अज्ञानमें लीन होता है,तब संसारकी गंधमात्र-भी प्रतीति होती नहीं। जो यह प्रपंच मनकर रचित न होता तो उनके अभावसे जगत् प्रतीत होता। मनके अभावसे जगत् प्रतीत होता नहीं। इससे जाना जाता है "जगत् मनोमात्र है पृथक् नहीं" सो पूर्वोक्त मन मेरी भेंटकर, पीछे जो शेषरहेगा सोई तेरा बंध मोक्षसे रहित अवाङ्मनसगोचर स्वरूप है। यही ज्ञान है यही मेरा दर्शनहै। वा यह उपदेश किया था कि मैं देवी समष्टी फुरणारूप मनसे आदि लेकर देह पर्यंत सर्व जगत्का उपादान कारण हूँ; जैसे निद्रारूप अविद्या; मन देह सहित स्वप्न प्रपंचका, उपादान कारण है (घट मृत्तिकाके समान) इससे निद्रारूप अविद्या, स्वप्नप्रपंच है। जैसे स्वप्नद्रष्टा निद्रारूप अविद्यासहित, स्वप्नप्रपंचका, प्रकाशक, असंग, निर्विकार, अपनी महिमामें स्थित है। तैसे मन शरीर सहित, सर्व जगत् मेरा है तेरा नहीं। मेरी चीज मेरेकोही सम्यक् भेंटदेदेना, अर्थात् मन शरीर सहित; सर्व नाम रूप जगत्, माया मात्र जानना नाम मिथ्या जानना (स्वप्नवत्) शेष जिस अधिष्ठानकी सत्तास्फूर्तिसे मिथ्याकी प्रतीति होती है, (जैसे स्वप्नद्रष्टा कर स्वप्नकी प्रतीति होती है) सो अधिष्ठान चैतन्य निर्विकार, बंध मोक्षादि रूप सुख दुःखसे रहित, स्वयंप्रकाश स्वरूप मैं हूँ; यह भेंट देनेका उपदेश किया सो प्रतिबंधके वशसे तूने तात्पर्य जाना नहीं।

हे मैत्रेय ! दत्त सर्व पूर्वोक्त व्यवहारोंमें एकसा था,इस प्र परमहंसोंकी अवस्था होती है । तू कहता है ? मुझमें नामरूप नहीं, अभी तेरा नाक कान काटें तो कहै "मैं ब्रह्म नहीं इससे तेरी दृष्टि शरीरपर है । भक्ति गोविंदकी कर जो नि मैत्रेयने कहा हे पराशर ! जब सर्व जीव ब्रह्म ईश्वरादिक मैं हूं कहनेसे शरीरादिकोंका उपद्रव मिटजावे तो क्या नुकसान है नहीं । जब सर्व मैं हूं तो जीवभी मैं हूं, कहा तो क्या हानि न कहा तो क्या लाभ है ? कुछ भी नहीं । जैसे एकही आ घटाकाश, मठाकाश, महाकाशादिक,अनेक नाम उपाधिक हैं,तिस आकाशको, आपको घटाकाश कहनेसे उपद्रव मिटे हानि है क्योंकि, घटाकाश मठाकाश महाकाशनाम आका सर्व नामरूप अपनेही हैं, एक नामीके नामोंका अर्थ एक घटता है; जैसे गंगाधर, नीलकंठ, विश्वेश्वरादिक नाम मह हैं । जैसे एक पुरुषके दो नाम होवें और एकको छोडके दू लेनेसे उपद्रवसे मुक्त होता होवे तो क्या तिसको हानि है यह कि, सम्यक् अपने स्वरूपके विद्वान् पुरुषको मैं जीव हूँ, वा ब्रह्मनहीं जीवहूं इत्यादि सर्व कायिक, वाचिक, व्यवहारोंमें मनका आग्रह नहीं । अगर किसी व्यवहारमें आग्रह होजावे,किसीमें न होवे,तिसमेंभी तिसको आग्रह नहीं आपको अवाङ्मनसगोचर, सर्वाधिष्ठान, जगविध्वंस प्रका द्वत्व सदा अपरोक्ष, सर्वदृश्यका साक्षी सच्चिदानंद, विशुद्ध नता है और सर्व कायिक, वाचिक, मानसिक व्यहारोंको चैतन्य दृश्य,मायामात्र नाम मिथ्या जानता है । वास्तवमें अजाननेसे आप परे हैं ।

मैत्रेयने कहा कथा राजाकी कहो ? पराशरने कहा हे मैत्रेय ! इस प्रकार विद्वानोंकी स्तुतिपूर्वक, अनेक प्रकारके वाक्य, देवीने कृपादृष्टिसे राजाको कहे, और राजाके ज्ञानका प्रतिबंधका निमित्त भी यहांतकही था, सो इस निमित्तसेही दूर होना था, यही नेति थी। लज्जायमान होकर राजाने दत्तके मारनेका त्याग करके, नम्रतापूर्वक कहा "मेरे कर्मको मतदेख, मेरे अपराधको क्षमाकर, जो कुछ हुआहै सो अविद्यासे हुवा है" दत्तने कहा हे शिव ! तुझसे भिन्न कौन है ? जो क्षमाकरे। राजाने कहा नाम रूप इस संसारसे मैं कैसे छूटूँ। दत्तने कहा नाम रूपको तूने आप पकडा है, नामरूपने तुझको नहीं पकडा। इससे दूसरा कौन है ? जो तुझको छुडावे। बडा आश्चर्य है जो है तू आप मुक्त और छूटनेकी इच्छा करता है, सो भ्रम है। सारांश यह कि, अपने स्वरूपके न पछाननेके कारणसे है। जैसे स्वप्नद्रष्टा कहै कि, मुझमें कल्पित स्वप्नप्रपंच; नाम रूपसे मुझको कोई छुडावे, सो न पछानने अपने स्वरूपके निमित्तसे, यह स्वप्नद्रष्टाका फुरणा है। उलटा तुझ चैतन्य अधिष्ठान आत्मासे कल्पित, नामरूप संसारका, छूटना मुश्किल है। तुझ चैतन्य अधिष्ठानका नहीं. क्योंकि कल्पित पदार्थ अपने अधिष्ठानसे बिना नहीं होता और कल्पित बिना अधिष्ठान होता है। जैसे सुषुप्तिमें और समाधिमें तथा जगत्‌की उत्पत्तिके आदिमें, तू चैतन्य कल्पित जगत्‌के बिना स्थित है और जगत् तुझ चैतन्य बिना नहीं; जैसे भूषणोंकी कल्पना बिना सुवर्ण है और सुवर्ण बिना भूषणोंकी कल्पना नहीं; जैसे स्वप्नद्रष्टा बिना स्वप्न प्रपंच नहीं और स्वप्न प्रपंच बिना स्वप्न द्रष्टा चैतन्य जाग्रत्‌में भी है तथा सुषुप्ति आदिकोंमें भी है परन्तु स्वप्नप्रपंच नहीं। हे राजन् ! तू चैतन्य मनादिकोंका द्रष्टा है, मायासे लेकर देहपर्यंत यह तेरी दृश्य है, दृश्यको द्रष्टाका बाँधना, न कभी किसीने देखा है और न शास्त्रमें सुना है। कोई चैतन्य दूसरा हैही नहीं, जो तुझ चैतन्यको बाँधे तब किससे मैं

तेरेको छुडाऊँ। हे राजन्! व्यवहारक सत्तावाले; आका
व्यवहारक सत्तावाले, पृथिवी आप तेज वायु, तथा तिनके का
शरीरादिक भी, रज्जु आदिक साधनोंसे बांध नहीं सक्ते क्यों
आदिकोंका कारण तथा सूक्ष्म, निराकार, व्यापक, असं
आकाशहै,परन्तु तू चैतन्य तो परमार्थद्रष्टा सत् स्वरूपहै, य
तुझ चैतन्यकी दृश्य असत् रूपहै; सत्को असत् कैसे बां
नहीं बांधेगा। हे राजन्! वैराग्य करके अर्थात् परिच्छिन्न अ
कारको त्यागकर देख संसार कहां है? यही परमवैराग्य है।
वैराग्य न हो तो जो नामरूप संसार भासताहै सो आपसे
सर्वको वासुदेव जान। हे राजन्! पंचभूतोंका विकाररूप
महामलिन संधान है, तिसको आप मत जान। तू तो
संघातका साक्षी है और मल मूत्र रूप संघात आपको
यही बंधन है तुमको किसीने बाँधा नहीं; अपने संकल्प
बाँधागया है। जैसे छुरायण आपहीअपना मकान बनाक
रती है। इससे हे राजन्! तू आपकोमनादिकोंका द्रष्टा जा
बंध मोक्ष हैही नहीं। इसीसे बंध मोक्ष की निवृत्ति प्राप्ति वा
न्मात्र भी तुझको कर्तव्य नहीं। अपने स्वरूप आत्माको
जाननाही कर्तव्य है। हे मैत्रेय! ऐसे कहकर दत्त चले
जीवन्मुक्त होकर यथालाभमें विचरने लगा।

पराशरने कहा हे मैत्रेय! राजा यत्किंचित् सत्संग होने
स्वरूपको सम्यक् जान गया और तुझ, अभिमानीको
स्पर्शही नहीं होता। मैत्रेयने कहा चारोंओर दृश्यके मा
जो मैं निर्विकार चैतन्य हूँ सो मुझको ज्ञानसे प्रथम स
जिस दृश्यकी तिसका संग नाम स्पर्श नहीं होता क्योंकि
चैतन्य असंग हूँ। इससे ठीक है मुझ अभिमानीको सत्संग
नहीं होता। मनसहित वाङ्मनसगोचर मैं अवाङ्मनसगोचर है

अपने सहित सर्व वासुदेव है, यही मुझको अभिमान है, इससे मैं ीक अभिमानी हूँ। पराशरने कहा—तू कौन है? मैत्रेयने कहा मैं ापको नहीं जानता; जानना द्वैतमें है; मैं चैतन्य स्वयंप्रकाश अद्वै- हूँ। सर्व शास्त्रोंकर मैं चैतन्यही प्रतिपाद्य हूँ, सर्व ब्रह्मादिक मुझ तन्यको अपना आत्मा जाने हैं इससे तुमही कहो मैं कौन हूँ? राशरने कहा "मैं हूँ"

ब्रह्मलोक विषय ऋषियोंका सम्वाद ।

हे मैत्रेय! इसीपर एक कथा सुन—एक समय मैं ब्रह्मलोकविषे या, वहाँ ब्रह्मा, सर्व देवता, ऋषीश्वर, मुनीश्वर, योगीश्वर गंधर्वों युक्त बैठेथे. मुझको देखकर ब्रह्मा हँसा और कहा हे पराशर! किस निमित्त यहां आया है। मैंने कहा निजस्वरूप पानेवास्ते आयाहूँ। ब्रह्माने कहा बड़ा आश्चर्य है; जैसे फेन बुद्‌बुदादिक अपने स्वरूपके ानेवास्ते देशान्तरको गमन करें; जैसे घटाकाश अपने स्वरूपके ानेवास्ते देशांतरको गमन करे; जैसे प्रतिबिंब अपने स्वरूपके ानेवास्ते देशांतरको गमन करे, तो हँसने योग्य है; तैसे तेरा कथ- भी हँसने योग्य है। योगियोंने कहा हे पराशर! योगकर जो स्वरूपको पावे। मैंने कहा करता हूँ, पर योगके करने, न करने- ालेके जाननेवालेको, प्रथम पहँचान करनी चाहिये, जब तिसको जाना तो आपसे आप योग होगा। योगेश्वर तूष्णीं हुये। सनका- दिकोंने कहा बड़ा आश्चर्य है। हे पराशर! अपने देखनेको यहां आया है; जैसे कोई अपने देहके ढूँढनेवास्ते देशांतरको जावे। र कहो जो सर्व अस्ति भाति प्रियरूप है तो द्रष्टा दर्शन दृश्य कहां है? मैंने कहा जब सर्व स्वरूप है, तो द्रष्टा दर्शन दृश्यभी स्वरूपही है। पुनः मैंने कहा—जो मैं हूँ तो अपने आपको क्यों नहीं जानता? सनकादिकोंने कहा तू आपही कहता है तथा जानता है कि, हाथ, कान, नाक, नेत्र, शीश, उदर, छाती,

और पाऊँ मेरे हैं, मन बुद्धि मेरी व्याकुल है वा नहीं है मनादिक इंद्रियोंके तथा जाग्रत, स्वप्न,सुषुप्ति आदिकोंके होते हारोंको जानता है; कह! आपको कैसे नहीं जाना? जाननेका मार्ग नहीं। मैंने कहा जो दृश्य है सो मिथ्या भ्र दृश्यका प्रकाशक दृश्यसे परे है तिसको कौन जाने? जो मैंने आता है सो दृश्य भ्रम है। उन्होंने कहा जो दृश्य है सोही स्वरू क्योंकि आदि अंत मध्य अव्यक्तरूप तेरा है। मैंने कहा जो तो चाहना करता हूँ क्यों नहीं पूर्ण होती? उन्होंने कहा चाहै चित्तका है,तू चैतन्य अचिंतहै; तेरी चाहना कैसे पूर्ण होवे? कहा मैं कौन हूँ? ब्रह्माने कहा,"सो" मैंने कहा "सो" कौन है? ने कहा "अहं" पुनः मैंने कहा "अहं" कौन है? ब्रह्माने कहा मैंने कहा "सो" कौन है? पुनः ब्रह्माने कहा "अहं"। मैंने किया कि, मैंने सो को पूछा, तो अहं और अहंको पूछा इससे अब क्या पूछूँ; जैसे"सोयं देवदत्तः"इस शब्दका अर्थ शरीरमात्र है; तैसे सोहंका अर्थ अखंड सच्चिदानंद प्रत्यक हूँ, अन्य दृश्यजगत् मैं नहीं । तब ब्रह्माने कहा हे पराशर! है? मैंने कहा जिस अखंड सच्चिदानंद पूर्णसें इस जगतकी होती है सो सो है । पुनः ब्रह्माने कहा कि, अहं कौन है? अहं साक्षी चैतन्य मैं हूँ, परन्तु अहं, और सो, शब्द तथा अर्थसे रहित अवाङ्मनसगोचर हूँ। तात्पर्य्य यह कि, "मैं अ सगोचर हूँ" इस मनके चिंतनसे भी परे हूँ ब्रह्मा तूष्णीं हुआ। मैंने

वसिष्ठने कहा हे पुत्र! योग कर जो स्वरूपको पावे! मैंने हे पिताजी! बिना अपने पहचाने योग कैसे करूँ? स्व सर्वका मूल है, तिससे तो अज्ञात रहूँ और अनात्म तिससे क्या प्रयोजन सिद्ध होगा ? अनात्मताकी प्राप्ति

होगी, अन्य नहीं। भृगुने कहा योग, अभ्यास, कर्म, सर्व शरीरसे होते हैं और शरीर अनित्य है। इससे शरीरके कृत्यका जो फल है सोभी अनित्यही है; अनित्य फलकी प्राप्तिवास्ते बुद्धिमान् यत्न नहीं करते। वसिष्ठने कहा देखना स्वरूपका योगसे होता है, कहनेसे नहीं। मैंने कहा स्वरूपसेही योग अयोग देखनेमें आता है। योगसे स्वरूप देखनेमें नहीं आता, क्योंकि जब योग नाम चित्तकी एकाग्रताको तथा चित्तके आदि अंत मध्यको जो देखता है सोई सर्वको देखता है। वसिष्ठने कहा जो देखना योगसे नहीं तो यहां क्यों आयाथा ? और क्यों पूंछता है कि, मैं कौन हूँ ? मैंने कहा इस कारण आयाथा कि, ये क्या अनुभव कहेंगे, पर देखा तो सम्यक् आत्माका अनुभव एकही है, असम्यक् अनुभव अनेक हैं। ब्रह्माने कहा जब तूही है तो क्यों अन्य उपाय करता है ? सर्व जगत्‌को मृगतृष्णाके जलवत् जान और अपनेको अधिष्ठान जान। पराशरने कहा जब सर्व जगत् मृगतृष्णाका जल है, तो तुझसे क्या काम है ? क्योंकि, तूभी जगत् कोटिमेंही है।

ब्रह्माने कहा हे पुत्र ! अपने आत्मासेही हेत कर, जो सत् है। जान कि, मैं शरीर नहीं; शरीररूप वस्त्रसे नग्न हूँ, अर्थात् आपा अहंकार त्याग, जो सुखी होवे। यह जो अतीत वनोंमें फिरते हैं तथा नगरोंमें फिरते हैं, इनसे पूँछे तुम किससे अतीत हुये हो, तो कहेंगे गृहस्थ से। सो यह आपसे आप सिद्ध है क्योंकि, स्त्री मुई भर्ता रहा और भर्ता मुआ स्त्री रही। हे पुत्र! तू ऐसा अतीत हो कि, इस संघातरूप गृहस्थमें स्थितभी, संघात तथा संघातके धर्मोंके अहंकारका त्याग कर। यद्यपि तू साक्षी आत्मा स्वतःही संघातसे अतीत नाम जुदा है, परन्तु जुदेको जुदाही जानना यही अतीत होना है। जब तू परिच्छिन्न पराशर नहीं, तब देख जगत् कहां है। पाप पुण्य

तबतकही है, जबतक मायाके गुणोंके साथ मिलके कुछ
जहाँ बीज है तहाँ वृक्ष भी है; तैसे जहां परिच्छिन्न अहंकार
संसार है। जहां अहं नहीं तहां संसार नहीं। मैंने कहा
पराशर नहीं तूही है? क्यों कहता है "पराशर जीव है" है,
जीव, ईश्वर, ब्रह्मको मैं चैतन्य सिद्ध करता हूँ और जीव
सर्वरूपभी मैंही हूँ तथा कर्मभी मैंही हूँ; जैसे स्वप्नद्रष्टा, स्व
ईश्वर, ब्रह्म, सर्व स्वप्न जगत्का सिद्ध करता भी आप है
स्वप्न जगत् रूपभी आपही है।

मीमांसा।

पुनः मीमांसा आया और कहा कि, जैसे कर्म करे तैसे
फल पाता है। इससे कर्मही प्रधान है। हे प्रजापते! यह बा
कि, झूठ? ब्रह्माने कहा सत् है; अंतःकरणकी शुद्धि वास्ते
प्रधानता है। मैंने कहा हे ब्रह्मा! तू कहता था कि, मैं
कौन करे? ब्रह्माने कहा जब सर्व मैं हूँ तो कर्मभी मैं हूँ।

वैशेषिक।

वैशेषिकने आकर कहा, सब झूठ कहता है, कालही सर्व
है कालकरही जगत्की उत्पात्ति पालना संहार होती है, का
है अन्य ईश्वरका प्रकाश है। हे ब्रह्मा! कहो मैं सत् कहता हूँ
कहता हूँ? कालका किसवक्त अभाव है। भृगुने कहा स्वप्न
स्वप्नसे भिन्न, पूर्व उत्तर नहीं, स्वप्नके अंतरवर्ती होनेसे। स्वप्न
है, स्वप्नके कालका जाग्रत्में अभाव है और जाग्रत्के कालका
अभाव है। परन्तु कालही सत है, कालही ईश्वर है, काल
आदि करता है, यह बात जिसकर सिद्ध हुई सोई सत है,
नहीं, उसमें कालका अभाव है। हे वैशेषिक! सु

करके होवे, परन्तु कहो अनुभव सिद्ध सुषुप्तिमें काल है? नहीं। इससे काल मिथ्या हुआ, अज्ञानके भावका और कालादिकोंके अभावका, सुषुप्तिमें सिद्ध करनेवाला, साक्षी चैतन्य आत्माही सत् है; तथा ईश्वर है, अन्य कालादिक नहीं।

न्याय।

पुनः न्यायने आकर कहा कि; सर्व जगत् ईश्वरके अधीन हैं, कर्मबीज है, कालसे प्रगट होता है, पर ईश्वर चाहे तो नाश होजाय इससे सब ईश्वरसे है। मैंने कहा मुझ सत्, चित्, आनंद, प्रत्यक् आत्मासे भिन्न, ईश्वर नरशृंगवत् है; स्वप्नद्रष्टासे भिन्न स्वप्न ईश्वरवत्। स्वप्नमें राजा तथा प्रजा भासती भी है, परन्तु सब प्रतीतिमात्र है, पूर्व उत्तर नहीं, स्वप्नद्रष्टाही तीनों कालोंमें सत् है। स्वप्नसृष्टीके संगही स्वप्नके ईश्वरादिक हैं। तैसेही द्राष्टांत जानलेना। न्यायने कहा ईश्वर वह है; जिसने तुझको उत्पन्न किया है। मैंने कहा—मैं चैतन्य स्वयंप्रकाशरूप हूँ; मेरी उत्पत्ति करनेवाला कोई नहीं। न्यायने कहा हे पराशर! ईश्वररूप सूर्यसेही सर्व जगतकी तथा तेरे संघातकी चेष्टा होती है। मैंने कहा सो चैतन्यरूप सूर्य मैं हूँ? हे न्याय! वेद सत् कहते हैं "एकनारायण अद्वितीय है"। न्यायने कहा सबको भक्षण करूँगा। भृगुने कहा सर्व—श्रुतिस्मृतिप्रतिपाद्य, ईश्वर तेरा स्वामी, उपास्य है तिसको भक्षण कर कि, तेरा स्वामी दासपना सिद्ध होवे। हे मूर्ख! जल और बुद्बुदे विषे क्या भेद है? न्यायने कहा जीव ईश्वर नहीं होसक्ता क्योंकि, यह पराधीनादिगुणोंवाला है, ईश्वर स्वतंत्रादि गुणोंवालाहै। अगस्त्यने कहा मैं नहीं जानता—जीव ईश्वर क्यावस्तुहै? भिन्न है वा अभिन्न है? परन्तु मैं सत् चित् आनंद प्रत्यक् आत्मा हूँ, यह मैं जानता हूँ। जो जीव ईश्वर सत्, चित्, आनंद, आत्मासे भिन्न है, तो ऐसे असत्, जड़, दुःखरूप, अनात्मा जीव, ईश्वरको हम क्या

करें ? चाहे भिन्न रहे चाहे अभिन्न रहे । जो सच्चिदानंद आ
मेरा स्वरूप है, स्वरूपविषे भिन्नाभिन्न क्याहै ? जैसें स्वप्न जा
ईश्वर भिन्न होवें वा अभिन्न होवें; स्वप्नद्रष्टाको क्या ? स्वप्नद्र
जीव ईश्वर का अत्यंताभाव है । हे न्याय ! कहो जीव ईश्वर
है ? न्यायने कहा देखा नहीं ? भृगुने कहा हे मूर्ख ! देखा
भिन्न अभिन्न कैसे कल्पा है ? न्यायने कहा जीव ईश्वरका
भृगुने कहा अंशका अर्थ क्या ? मृत्तिकाका जैसे घट अं
जलका जैसे बुद्बुदा तरंगादिक अंश है ? वा सुवर्णके
अंश हैं ? जैसे महाकाशका घटाकाश अंश है ? तब भी
भाव नहीं होता है । पितापुत्रकी न्याईं जीव ईश्वरको कहे
नहीं, क्योंकि श्रुति स्मृतिसे विरोध होनेसे, अंशअंशीभाव
दोनों अनित्य हैं । और जीवको नित्य कथन किया है
कहा—जगत् परमाणुओंसे होता है । बृहस्पतिने कहा है
धर्मसे कह स्वप्न प्रपंच किन परमाणुओंसे होता है ? एक
परमाणुओंसहित, स्वप्न जगत् निद्रारूप अविद्याने उत्पन्न
किसीभी पुरुषके अनुभवमें नहीं घटे कि, स्वप्न जगत् पर
उत्पन्न हुआ है । तद्वत् जब घटको कुलाल मृत्तिकासे ब
नाश होता है, तो परमाणु बिखरते मिलते किसीनेभी नहीं
न्याय ! पृथिवीका गर्दा, वायुसे आकाशमें देखकर, पर
कारणरूपतासे नित्य और कार्यरूपतासे अनित्य कथन हो
है। हे न्याय ! इंद्रजालकर रचाहुआ जगत् कह किस परमाणु
जाता है ? और किन परमाणुओंके बिखरनेसे नाश होता है
रज्जुविषे, सर्प दंड मालादिक पदार्थोंकी उत्पत्ति नाश किन प
से हुई है ? किंतु किसी परमाणुओंसे नहीं हुई; केवल रज्जुके
सर्पादिकोंकी उत्पत्ति हुई है; रज्जुके ज्ञानसे सर्पादिकोंका

नेमें आता है। तैसे—यह जगत् जिस सच्चिदानंद साक्षी आत्माके अज्ञानसे उत्पन्न होताहै, तिसीके सम्यक् ज्ञानसे लीन होता है, बीचमें परमाणुओंकी टांगडी अडानी केवल मूर्खता है। न्यायने कहा सप्त वा षोडश पदार्थोंके सम्यक् ज्ञानसे मोक्ष होता है। मैंने कहा हे न्याय! जिस अधिष्ठानके अज्ञानसे बंध होती हैं, तिसीके ज्ञानसे मोक्ष होती है; अन्यथा नहीं। तात्पर्य यह कि, अपने स्वरूपके अज्ञानपूर्वक आपको जन्म मरणवान्, बंधवान् तथा पंचक्लेशादिकोंसहित संसारी मानता है; ज्ञान पश्चात् आपको नित्यमुक्त चैतन्यरूप मानता है; यही मोक्ष है और कोई मोक्ष पदार्थ नहीं। केवल मननरूपही बंध मोक्ष है। हे न्याय! स्वप्न पदार्थोंके ज्ञानसे वा निर्णयसे पुरुषको क्या सिद्धि है? निद्रारूप अविद्याके नाश बिना, स्वप्न भ्रमरूप पदार्थोंका हजारों वर्षतक निर्णय करे, तो भी अंत नहीं होता। यह अनुभव सिद्ध है, इससे मायामात्र पदार्थोंके अंतके हेतु, अधिष्ठान, चैतन्य, आत्माका, सम्यक् जाननाही कर्तव्य है, न भ्रमरूप पदार्थोंका निर्णय।

पराशरने कहा हे मैत्रेय! मैंने कहा हे ब्रह्मा! जब सर्व तूही है तो न्याय कहां है? ब्रह्माने कहा जब सर्व मैं हूँ; तो न्याय भी मैंही हूँ। मैंने कहा न्याय कर्मपर है वह कौन कर्म है? जिसपर न्याय करेगा। ब्रह्माने कहा अपना आप न्याय करता हूँ। वास्तवसे असंग निर्विकार हूँ; जैसे स्वप्नद्रष्टा सर्व स्वप्नका व्यवहार भी आपही करता है और वास्तवसे असंगभी है।

पातञ्जल।

पुनः पातंजल योगशास्त्र आया और कहा कि, जो प्रणवको लेकर योग करे सो जीवनन्मुक्त है। मैंने कहा प्रणव शब्दमात्रहै, प्रणवको लेकर मनको योग करना है; मन प्रणवको सिद्ध करनेवाला, प्रत्यक् चैतन्य, आत्मा, स्वतःसिद्ध, जीवन्मुक्त है; योग करनेसे नहीं। जो

कर्तव्य सिद्ध होता है सो अनित्य है। पुनः मैंने कहा यो
स्वरूप है? याज्ञवल्क्यने कहा जिसने अहंकारकों जला
भस्म शरीरपर लगाई है और मन परमेश्वरमें जोडा है,सो
मैंने कहा जब अहंकार भस्म हुआ तो जीव ईश्वर मन कहा
जोडना होवे? परमेश्वरका स्वरूप क्या है? याज्ञवल्क्यने
चित् आनंदरूप है; परंतु वास्तवसे अवाङ्मनसगोचर है।
जब सच्चिदानंद परमेश्वर आत्मा मन वाणीके अगोचर है,
जोडनारूप योग कैसे होगा? किंतु किसी दृश्य अनित्य
मनका जुडानारूप योग होगा, परमेश्वरमें नहीं।

मन किसप्रकार वश होताहै।

पराशरने कहा हे मैत्रेय! तब पतंजलीने कहा
सोनादि व्यवहार अल्पकरनेसे इंद्रिय अपने वश होते हैं,
होता है। अगस्त्यने कहा खाने पीने सोनेसे इंद्रियां वश
बरन् संसारमें सम्यक् मिथ्यत्व ज्ञानपूर्वक स्वस्वरूपके सम्यक्
इंद्रियें वश होती हैं, अन्यथा नहीं। जैसे इंद्रजालद्वारा
आदिक पदार्थ हैं, तिनके सम्यक् ज्ञाता पुरुषके इंद्रिय, ति
की तर्फ भोग बुद्धिकर नहीं प्रवर्त होते किंतु विलास
हैं। हे पतंजली! खाने आदिकोंके अभावसे तो रोगि
वश होते हैं, परन्तु पदार्थोंका सूक्ष्म राग बनारहता है
अधिक होजाता है। याज्ञवल्क्यने कहा तू निगुरा है, तुझ
योग्य नहीं। परंतु मन योगसे शुद्ध होताहै। मैंने कहा
अज्ञान तत्कार्यका है, रू नाम प्रकाशकका है। इससे
अज्ञान तत्कार्य को जो अपनें स्वयंप्रकाशसे प्रकाशे, ति
गुरु है तिस स्वयंप्रकाशका और कोई प्रकाशक है नहीं
चैतन्य ठीकही निगुरा हूं। पुनः मैंने कहा दयालु होकर क

मन कैसे शुद्ध होता है। पतंजलीने कहा प्राणायाम् करके, प्रणोंको रोकके पीछे, अनाहत शब्द सुने। मैंने कहा यह करनेसे नहीं, अनाहत शब्द आपसे आप होता रहता है क्योंकि, अंतर अवकाशरूप आकाश है, तिसमें प्राण वायुका संचाररूप शब्द यत्न बिना हमेशह होता रहता है। प्राणरूपबायुका संचाररूप, दश प्रकारका अनाहत शब्द, तिस शब्दमें मनका जुडना वा न जुडना, तिन दोनोंको जो चैतन्य, साक्षी, आत्मा जानता है सोई शुद्ध है, तिसको अपना आप जाननेसे ही मन शुद्ध होता है।

इतना कहकर फिर मैंने कहा कहो योगके वास्ते और क्या करना चाहिये? याज्ञवल्क्यने कहा—जब गुरुशास्त्र अनुसार, प्राणायामका अभ्यास करते, सुषुम्ना नाडीद्वारा, प्राण दशवेंद्वार स्थित होवे, तब जिह्वाको लंबा कर, तालूमें लगाके, प्राणोंको ऊपरही रोके, नीचे आने नहीं देवे, तब योगी अमृत पीता है। मैंने कहा हे विद्वान्! आपलोग विचारो कि, शीशम कोई अमृत पडा है नहीं, केवल मिझ, मज्जा, मांस, अस्थि, रुधिर है (यह सबको अनुभव है) शीशमें योगी अमृतपान कैसे करता है? हाँ प्राणके रुकनेसे अग्नी प्रज्वलित होतीहै, तिस अग्निके तेजसे मिझ, मज्जा, मांस, पिघिल २ कर शीशसे नीचे गिरता है, तिस अमृतको योगी पानकरता है। इससे भिन्न अमृत कोई अनुभवमें नहीं आता। याज्ञवल्क्यने कहा परमेश्वरका माराहो जो तुझसे वचन करै! मैंने कहा परमेश्वर और आपमें जो बीच अहंकार है तिसका नाश करे सोई परमेश्वरका माराहै पर मैं तेरा चेला हूँ मुझको त्याग मतकर। पर कहो तिससे आगे योगी किससे जुडे? याज्ञवल्क्यने कहा दशवां द्वार कैसा है कि—वहाँ सूर्य, चंद्रमा, बिजली, तारागण, विनाहीप्रकाशहैं और ईश्वर का वहांही निवास है तथा प्रकाश है। मैंने कहा झूठ मत कहो दशवें द्वारमें प्रकाश कहां है? शीशमें तो अंधकारही है; यह बात सबको

अनुभवसिद्ध है । हे याज्ञवल्क्य ! साक्षी आत्मा इस शरीरके है
पर्यंत पूर्ण है, इसीसे दशवें द्वारसें भी आत्माकाही प्रकाश
का नहीं. इसीसे आत्मासेही दशवें द्वार तथा सर्व प्राणों
धिक्य, व्यवहार जाना जाता है । इतने काल प्राण मेरे दशवें
रहता है, इतने काल नहीं रहता इन विचारोंको, आत्मा जा
आत्माही सर्वका प्रकाशक है । हे याज्ञवल्क्य ! जैसे स्वप्नद्रष्टा
वास्ते स्वप्न नर प्राणायाम करके प्राणोंको दशवें द्वार चढावे
मूर्खता है क्योंकि, स्वप्नद्रष्टा स्वप्नरका आत्मा है ।

योगका अधिकारी कौन है ।

अपने आत्माके ढूँढनेवास्ते क्रियारूप प्राणायाम योग
केवल विवेक द्वारा जाननाही है । जिसका चित्त अ
है, विचार करनेमें असमर्थ है, तिसके वास्ते " स्थूलारुंधती" में
हठयोग है, अन्यके लिये नहीं । याज्ञवल्क्यने कहा योग स
तेरे न माननेसे योगको खंडन नहीं होता मैंने कहा-जैसे
शास्त्र तथा पृथिवी, आप, तेज, वायु, आकाशादिक अज्ञान
तन हैं; तैसेही योगशास्त्र भी संसार अंतःपाती होनेसे सनातन
सर्व शास्त्रोंको तथा प्रत्यक्षादि प्रमाणोंको सिद्ध करनेवाला
दृश्यको सिद्ध करनेवाला आत्माही असली सनातन है

सांख्य ।

पुनः कपिलदेव आये और कहा कि, जो स्वरूपको
चाहे, तो नित्य अनित्यका विचार करे । मैंने कहा हे कपि
क्या और अनित्य क्या ? कपिलने कहा-तीन गुणोंसे
वाला शरीरसहित संसार अनित्य है । तीन गुण अहंकारसे
यह सर्व प्रकाशमान हैं सो नित्य है । प्रकृतिपुरुषके अवि

और विवेकसे मोक्ष है। पुरुषके सुख दुःखके भोगवास्ते प्रकृति स्वतंत्र जगत्को रचती है। पुरुष असंग है, अनेक है और चौवीस तत्त्व हैं। यह संक्षेपसे सांख्यशास्त्रका सिद्धांतहै। मैंने कहा हे कापिल! तेरा वचन सब ठीक है, परन्तु पुरुष असंगको अनेकता तथा प्रकृतिको स्वतंत्रता, जगत्की रचकता यह ठीक नहीं। कपिलने कहा भिन्न भिन्न पुरुष नहीं माने तो एकके सुखसे सुखी और एकके दुःखसे दुःखी, सबको होना चाहिये? मैंने कहा जैसे एकही आकाश अनंत घटोंमें स्थित है, घृत तेलादिक अनेक पदार्थ तिन घटोंमें पडे हैं और सर्व मृत्तिकाके घटभी एक हैं, परन्तु एक घटके फूटने तथा एक घटमें क्रिया होनेसे, सर्व घट फूटते तथा क्रियावान् नहीं होते, आकाश सर्व घटोंमें एकही असंग निर्विकार स्थित है। तैसे सत्से भिन्न, प्रकृति असत् जड है। जड पदार्थमें स्वतंत्र क्रिया होती नहीं, जैसे पुतलियोंमें स्वतंत्र चेष्टा होती नहीं। इससे चैतन्यके आभासयुक्तही प्रकृति जगत्को रचती है, स्वतंत्र नहीं। हे कपिल! सद्विचारसे देख पक्षपात न कर! सुख दुःखके संकरवास्तेही, असंग पुरुषको, अनेक माननाथा सो पूर्वोक्त प्रकारसे बनसक्ता है, तब तो असंग पुरुषको नाना मानना व्यर्थ है, कपिल चुपहुआ।

।वेदांत।

व्यासने कहा एक अद्वितीय नारायण है, द्वैत नहीं। मैंने कहा एक है, तो दूसराभी है। व्यासने कहा नारायणविषे दूसरा कहां है? स्वयंरूप है। मैंने कहा दूसरा नहीं तो एक क्यों कहा? व्यासने कहा द्वैत अंगीकार विना वचन नहीं चलता। इससे तेरे कहनेसे ऐसा जाना जाताहै कि, मुखबंधही राखना भला है। मैंने कहा संत पदको वेद क्या जाने? क्योंकि वेद त्रिगुणरूप है और संत पद त्रिगुणातीत है? इससे कुछ कहो कुछ सुनो? व्यास भी चुपहुआ।

सिद्धांत।

तब ब्रह्माने कहा हे पराशर! तूने आपको सबसे बड़ा मलमूत्रका यह शरीर कालका ग्रासहै, जो जगतकी उत्प संहार करतेहैं, वहभी अहंकार नहीं करते, क्योंकि चैत इस नामरूप जड मनादिक दृश्यसे, स्वतंत्र कोई कार्य न विद्या आदिकोंका अभिमानभी विद्वान् नहीं करते क्योंकि ज्वर ठाढ होवै, वा छिदामकी भांग पीनेसे; सर्व विद्या होजाती है वा कोईक औषधी सूँघनेसे सर्व विद्या नष्ट हो इन अनित्य पदार्थोंका क्या अभिमान करना है। अभिमान यह करे कि, मैं देहादिक संघात नहीं, किन्तु "मैं अवाङ्मन सर्वाधिष्ठान, जगविध्वंस, प्रकाशक, अवेद्यत्व, सदा अपरो सच्चिद्घन, विशुद्धानंद स्वरूप हूँ" यही निरन्तर चिन्तन करे। हे ब्रह्मा! वास्तवसे विचारे तो, शुद्ध, अशुद्ध, अभिमान तुल्य धर्म हैं। जैसे सोनेकी बेडी और लोहेकी बेडी पुरुषके बं धमें, तथा दुःख देनेमें तुल्यही हैं, क्योंकि अभिमान किं गुणको लिये देह अध्यासपूर्वक होता है। तुम अंतर्यामी हो मुझमें पराशरकी रेखमात्र भी नहीं। मैं स्वयंप्रकाश स्वरू साक्षी चैतन्यमें बडाई भी होवे तो छुटाई भी होनी चाहिये वस्तुके निरूपणमें अभिमान और निरभिमानका क्या प्र हे ब्रह्मा! भ्रममात्र सिद्ध बंध मोक्षकी निवृत्ति प्राप्तिवास्ते, रहित मुझ चैतन्य मात्रको, योगादिक साधन किंचित् मात्र नहीं। यही मुझको बेशक अभिमानवत् अभिमान है, तुम कहो? यह बात ठीक है कि, नहीं? जैसे स्वप्नद्रष्टाका, सर्व से रहितता तथा स्वप्नके बंध मोक्षसे रहितता, तथा स्वप्नके रकी कल्पनासे रहितता तथा निष्कर्तव्यताका चिन्तन

हीं ? तुम कहो ! ब्रह्माने कहा—कहो ब्रह्मकारूप क्या है ? मैंने कहा अंतर बाहर जिसकर सर्व मनादिकोंका व्यवहार जाना जाता है, उसको ब्रह्म साक्षी चैतन्य कहते हैं; वा यह सर्व ब्रह्मही है। ब्रह्माने कहा जो दृश्यमान है सो नाशी है और ब्रह्म नाम रूपसे रहित है; कैसे उसको ब्रह्म जानिये ? मैंने कहा हे ब्रह्मा ! वस्तुके सम्यक् स्वरूप विचारे बिना जो प्रतीत होवे सो भ्रममात्र जानिये. जैसे मधुरता, द्रवता, शीतलता रूप, जलके स्वरूप विचारे बिना, जो फेन बुद्बुदा तरंगादिकोंकी प्रतीति है, सो भ्रममात्र है। तैसे अस्ति, भाति, प्रियरूप ब्रह्मकेस्वरूप विचारे बिना, जो नामरूप संसारकी प्रतीति है सो भ्रममात्र है। इत्यादि मृत्तिका स्वर्णादिकोंके अनेक दृष्टांत हैं। भ्रमी पुरुषकी दृष्टि प्रमाण नहीं होती। ब्रह्माने कहा तूने देखा है ? मैंने कहा मायासे लेकर देहपर्यंत सर्वको देखनेवाले मुझ ब्रह्मको कौन देखे ? क्योंकि, माया और मायाके मन देहादिक कार्य दृश्य, अपने द्रष्टाको देख नहीं सक्ते. क्योंकि इस साक्षी चैतन्यके पृथक् और कोई द्रष्टा है नहीं। इससे इस ब्रह्म चैतन्यको कौन देखे स्वयंप्रकाश है। जैसे सूर्य सर्वको प्रकाशता है, परंतु सूर्यको कोई प्रकाश्य पदार्थ प्रकाशता नहीं।

ब्रह्माने कहा भजन कर ! मैंने कहा भजनका रूप क्या है ? ब्रह्माने कहा "आप सहित सर्व भगवद्रूप जानना भजन है परंतु तू वर्णाश्रममें तथा शुभ अशुभमें तथा इन्द्रियोंके विषयोंमें बंध है, भजनका रहस्य क्योंकर देखे ? मैंने कहा यह सर्व दृश्य मुझ चैतन्य कर बँधा हुआ है, मैं चैतन्य इनकर बँधाहुआ नहीं; जैसे स्वप्नद्रष्टाकर सर्व स्वप्नपदार्थ बाँधेहुये हैं। ब्रह्माने कहा हे पराशर ! जिस समय तू कर्मसे निष्कर्म होवेगा, सर्व आशासे निराश होकर आत्मविचारके सम्यक् सन्मुख होवेगा, तब देवता शोकवान होवेंगे, क्योंकि देह अभिमानीही

देवतोंका पशु है। देह अभिमान रहित सम्यक् विद्वान् पुरुष
गुरु नाम आत्मा होता है। उससे काल भी कांपता है, क्योंकि
विद्वान् पुरुष कालकाभी काल होता है। मैंने कहा जो आशा
है सो निराश होवे; मैं चैतन्य सर्व दृश्यरूप आशासे नित्य

। निर्वाणवैराग्य ।

ब्रह्माने कहा आपा अहंकारको त्याग और निर्वाणवै
जो शांतिमान होवे। मैंने कहा निर्वाणवैराग्यका क्या रूप है?
कहा—बाण नाम देहादिकोंका है "मैं देह मनादिक यह संघात
किन्तु मैं चैतन्य इन देह मनादिक संघातका साक्षी हूं" इस
निश्चयका नाम निर्वाणवैराग्य है। मैंने कहा हे ब्रह्मा! जो
भजनकारूप कहा था कि, "आप सहित सर्व गोविन्द है
भजन करता हूँ। ब्रह्माने कहा जब सर्व गोविंद है तब तू
मैंने कहा जब सर्व गोविंद है तो मैं भी गोविंद हूं। ब्रह्माने
स्वयंप्रकाशरूप है, मैं तू कहाँ है? मैंने कहा जब सर्व गोविंद
मैं तूभी गोविंदही हैं। हे ब्रह्मा! मैं पराशर नहीं हूं। ब्रह्माने
तू नहीं तो भजनसे क्या प्रयोजन रखता है? मैंने कहा
जानता नहीं सुनकर कहता हूँ कि जीव हूं। ब्रह्माने कहा
आपको नहीं जानता तो जीव, ईश्वर, कैसे थापा।
जानाजाता है कि, जीव ईश्वरको तुझ चैतन्यने सिद्ध किया
कहा जो मैं भगवान् चैतन्य हूँ तो आपको क्यों नहीं
ब्रह्माने कहा जाननेका तुझमें मार्ग नहीं क्योंकि, जो तू ही है तो
जाने? कौन है जो तुझको जाने? तू स्वयंप्रकाश है। जब तू
निश्चय हुआ तो आवागमनसे मुक्त हुआ। सर्व कर्म कर
अहंकार मतकर आपसहित सर्व गोविंद जान और सर्व

चाह हो! गोविंद भी कहां है? जो मुझ चैतन्यको अपना आत्मा जानता है सो अचिंत्य मेरा रूप होताहै। हे पराशर! आप कुछ मतकर करने अकरनेको देखता रह।

। विष्णु आये ।

पुनः विष्णु आये और कहा हे ब्रह्मा! मैं अपनेरूपको नहीं देखा, कहो रूप मेरा क्या है? ब्रह्माने कहा रूप तेरा शिव है, तुझको कौन देखे? तुझविना कुछ नहीं। मैं चुपकर बैठा था। विष्णुने कहा हे पराशर! तू चिंता मतकर। ब्रह्माने कहा हे विष्णु! पराशर तूने एकार्थ माना है, सर्व तूही है तो पराशर कहाँ है? विष्णु हँसा और कहा हे ब्रह्मा! जो सर्व मैं हूं तो पराशर भी मैंही हूं, तुझको पराशर और मैं दो भासते हैं। जानता हूँ तेरा द्वैतभेद गया नहीं। ब्रह्माने कहा जब सब तूही है; द्वैतभेदभी तूही है, तुझको लज्जा नहीं आती जो अपनेमें अपना देखता है; जैसे स्वप्नद्रष्टा कल्पित स्वप्नभेदकर अपनेमें भेद नहीं मानता। विष्णुने कहा लज्जा तो करूं तब जो द्वैत रखूं, जब सर्व मैंही हूँ तो लज्जा किससे करूं। ब्रह्मा चुप हुआ।

पराशरने कहा हे मैत्रेय! तू भी सत् है कुछ कह? मैत्रेयने कहा सर्व मैंहीं चैतन्य कहता हूँ, सुनता हूँ देखता हूँ, देता लेता हूं सर्व रूप मेरा है, स्वप्नद्रष्टावत्। कहो मुझ चैतन्यसे भिन्न वह कर्ता कौन है? जो कथन करे। पराशरने कहा तुझको मूर्ख कहा चाहिये जो तू एक कर्ता है तो भेद क्यों किया? मैत्रेयने कहा मुझ चैतन्यमें भेद अभेदका मार्ग नहीं तेरे वचनका उत्तर दिया है।

। ब्रह्मयज्ञ ।

पराशरने कहा ब्रह्मयज्ञ सुन! मैंने कहा हे विष्णु! तू भजन किसका करता है? विष्णुने कहा-ब्रह्मासे लेकर चींटीपर्यंत, सर्वका स्वरूप सत, चित, आनंद, आत्मा है, सो स्वतः बंधमोक्षरूपी सुख-

दुःखसे रहित, अजन्मा व्यापक अद्वितीय मैं हूँ—यह दृढ़ भजन करनाहै। वा मन वाणी शरीरकर जो कुछ प्रवृत्ति करनी है, सो सुखकी प्राप्ति वास्ते और दुःखकी निवृत्तिवा सुखकी प्राप्तिरूप और दुःखकी निवृत्तिरूप, पूर्वोक्त आ सिद्ध नित्य सर्वको प्राप्त है। भजन करनेसे वा कोई निवृत्ति करनेसे प्राप्त नहीं होता। इससे अपनेसे भिन्नका भ भ्रममात्र है। यह स्वयंप्रकाश है, भजन त्रिपुटीमें होता है त्रिपुटीसे रहित हूँ; क्योंकि त्रिपुटीरूप भजनका द्रष्टा हूँ, द्रष्टा है नहीं; जैसे स्वप्नद्रष्टाको, सुख दुःखादि स्वप्न पदार्थों निवृत्ति वास्ते, किंचित् मात्रभी कर्तव्य नहीं। जो आत्मासे भिन्न जान मेरी उपासना करता है सो निजस्व भ्रष्ट है, क्योंकि उपासना करनेवालेका मैं आतमा हूँ।

शिव आये (शिवके विषखानेका आशय

पुनः शिव आये और कहा ब्रह्मा, विष्णु, पराशरादि मैं चैतन्य अद्वितीय शिव हूँ। विष्णुने कहा जो सर्व शिव है भी शिव है। शिवने कहा विष्णु विश्वको कहते हैं, मेरेविषे है ? मैं निर्मल हूँ। विष्णुने कहा विश्वको जो अपना स्व वही शिव है। शिवने कहा ऐसी विचाररूपी निर्मल विष तुझ विष्णुरूप विश्वको विचाररूप विषके साथ मिलाकर नि हूँ। सारांश यह कि, अपने चैतन्यस्वरूपमें विश्वका अत्यंता भव करताहूँ। विश्वविषे विश्वपना कहाँ है ? शिव है। ज्ञाता पुरुषको भूषणोंविषे भूषणपना कहाँ है ? सुवर्णही है कहा विष्णुविषे शिव हैही नहीं क्योंकि शिव नाम आनंद विषे सुख दुःख दोनों नहीं। ब्रह्माने कहा विष्णुपना तथा मुझ चैतन्य ब्रह्मस्वरूपमें दोनों नहीं। प्रगट है कि

ादि ब्रह्म है, विष्णु शिवादिक मुझ चैतन्यसे प्रकाश रखते हैं, मुझ वाङ्मनसगोचर साक्षी चैतन्यविषे पूर्णापूर्ण तथा भेद अभेद दोनों हीं। ब्रह्माने कहा मैं सर्वसे अतीत हूँ यहभी भूलकर कहा है, नहीं तो तीत किससे हूँ सर्वसे अतीत भी सर्व मैंही हूँ; जैसे स्वप्नद्रष्टा कहै स्वप्नप्रपंचसे अतीतहूँ परन्तु स्वप्नद्रष्टाही सर्वरूप है, अन्य वस्तुका भाव होनेसे। शिवने कहा हे विष्णु! रूप अपना कहो? विष्णुने हा किसको कहूँ? मुझ चैतन्यसे भिन्न सर्व दृश्यजात जड है श्रोता ोई नहीं, पर कहताहूँ जो यह दृश्यमान है सर्व मैं हूँ। शिवने कहा ो दृश्य है सो नाशी है। विष्णुने कहा अस्ति भाति प्रियसे भिन्न श्य कहां हैं? जो नाशी होवे। मैंही सर्वते अतीतभी हूँ और सर्व-रूपभी मैंही हूँ; जैसे स्वप्नद्रष्टा स्वप्नप्रपंचसे अतीतभी है और सर्व स्वप्नप्रपंचरूपभी है।

पराशरने कहा हे मैत्रेय! मनको सचेत कर सुन! मैत्रेयने कहा मन कहां है जो सचेत करूँ? शिव है। पराशरने कहा; चित्तबिना चैतन्य कैसे कहेगा? मैत्रेयने कहा जैसे स्वप्नद्रष्टा स्वप्नमें चित्त बिना चिंतन करता है, वाणी बिना कहता है। तात्पर्य्य यह कि, संघात बिना संघातका व्यवहार करता है; तैसे मैं चैतन्य चित्त वाणी बिना सर्व व्यवहार करता हूँ इससे वास्तव अचिंतभी माया कर सचिंत हूँ; सचिंतभी वास्तव अचिंत हूँ। शिवने कहा मायारूप विश्वसे रहित तुम्हारे स्वरू-पका स्वरूप क्या है? विष्णु चुप हुये क्योंकि, मायासे रहित, अवा-ङ्मनसगोचर पदमें, वचनका अवसर नहीं।

शिवने कहा हे विश्वरूप! बोलना न बोलना निजस्वरूपमें तुल्य है, परन्तु वचनसे संशय नाश होता है; जो संशयसे छूटा है वही मौनी है। विष्णुने कहा सत् तुमने कहा है, पर क्या कहूँ बुद्धि नहीं रही। शिवने कहा जिसने शरीर वाणीको स्थिर कररक्खा है और मन

स्थिर नहीं की तो मौनी होना निष्फल है। मन, आत्म
पदार्थोंमें दोषदृष्टिके विचारसे, वा योगसे वा किसी अन्य
नसे स्थिर है अर्थात् संघातविषे अहं नहीं करता और
लौकिक शास्त्री व्यवहार करताहै, तिसकोभी मौन होना
क्योंकि तिस विज्ञानीके वचनसे अनेक जीव कल्याणवि
और मौनीपुरुष दूसरे वास्ते भीततुल्य है। उपदेश विना
सम्यक् होतानहीं, इससे विद्वानोंको मौन, अमौन तुल्य
कहा सत्य कहा है। प्रथम जिज्ञासूको योग्य है कि, ज्ञानका
(विद्वानों संग मिलकर) आत्मविचार करे। जब स्वरू
तब मन स्थिर होगा। विना विचार स्वरूपप्रकाश नहीं
मुमुक्षुको तूष्णीं होकर प्रथम विचार करना भला है।
जब आप चैतन्य स्वरूप हैं तो कर्तव्य करनेसे क्या
क्योंकि; चैतन्यरूप परमात्माकी प्राप्ति वास्तेही सब सा
इन्द्रियका वचन करना धर्म है,वाक् इन्द्रिय केवल भजन वा
हुई हैं, वा भ्रमकी निवृत्तिद्वारा, निज चित् सुख नित्य
दर्शनवास्ते, सम्यक् आत्मदर्शी पुरुषोंके आगे, प्रश्न
हुई हैं। भजनसे अंतःकरणकी शुद्धि होती है, अंतःकर
बिना ज्ञान नहीं होता, ज्ञान विना सुख नहीं। इससे
आपा त्यागकर, भजन गोविंदका करो। जो आवागमन
ग्रहण त्याग बुद्धि केवल दुःख है। जिह्वा जो मुखमें चाम
है, भजन विना राखनी योग्य नहीं। चाहनासे अचाह
करो क्योंकि, शरीर स्वप्नके समान क्षणभंगुर है और भज
तारनेकी नौका है। यदि पूछो भजन क्या ? तो "आप
हरि है वा मैं परिच्छिन्न नहीं" पीछे जो शेष रहा सो
वही सर्वका स्वरूपहै, इस निश्चयहीका नाममुख्य भजन
कहा गोविंद जिह्वासे उच्चारण करना, इसीका नाम भजन

।क्षेत्रक्षेत्रज्ञव्याख्या।

शिवने कहा हे विष्णु! क्षेत्र कौन है? विष्णुने कहा जो मुझ व्यापक चैतन्य क्षेत्रज्ञसे आपको भिन्न मानता है वही क्षेत्र है। शिवने कहा भिन्न क्या? विष्णुने कहा यही भिन्न है कि; आप व्यापक चैतन्य है विष्णु और कहता है "मैं देहवान्, वर्णी, आश्रमी हूँ"।

विष्णुने कहा हे पराशर! कहो तेरा निश्चय क्याहै? मैंने कहा क्या कहूँ, निश्चय बुद्धिसे होता है, मैं चैतन्य बुद्धिसे रहित बुद्धिका साक्षी हूँ; पर जो तुम कहो सोई निश्चय करूँ। विष्णुने कहा तू निर्लज्ज है, तुझको कहना योग्य नहीं। मैंने कहा शरीरके पहरावेसे नग्न हूँ, इसी ते निर्लज्ज हूँ। हे विष्णु! रूप तुम्हारा क्या है? विष्णुने कहा शिव। मैंने कहा हे शिव! रूप तुम्हारा क्या है? शिवने कहा विष्णु। अगस्त्यने कहा न शिव न विष्णु आपसे आप अवाचपद हूँ।

हे मैत्रेय! तिस सभामें यही निश्चय हुआ कि,आत्माविना और कुछ नहीं। तूभी शरीरके पहरावेसे नग्न हो। मैत्रेयने कहा मैं तो हैही नहीं तो नग्न होऊँ क्या? मनकल्पित नवीन वनतेही नग्न होना है पर कहो नग्न किसको कहते हैं? पराशरने कहा वही नग्न है जो स्थूल सूक्ष्म कारण शरीरके पहरावेसे तथा सर्व पदोंसे मुक्त है। मैत्रेयने कहा तू सबसे बडा भासता है, मानों दूसरा ब्रह्माहै। पराशरने कहा द्वैत अद्वैतसे रहित स्वयं हूँ। ब्रह्मा विष्णुके देहसे लेकर सर्व नामरूप विकारको मैंने उत्पन्न किया है; परंतु मैं विकारी नहीं होता, जैसे स्वप्नद्रष्टा सर्व स्वप्नविकारको अविद्यारूप निद्रासे उत्पन्न करता है परंतु आप विकारी नहीं होता।

।अतीत अर्थात् भेषधारियोंके विषयमें।

हे मैत्रेय! तू अतीत हो जो सुखी होवे। मैत्रेयने कहा अतीत होने का मार्ग बताओ! पराशरने कहा वस्त्र उतार दे और रोम शीश दाढीको

मुंडाडाल,सब कहेंगे मैत्रेय बडा परमहंस सिद्ध है, तेरी कृपा
भी चलेगा। हे मैत्रेय ! किसी अतीतसे पूछिये "तू किस
हुआहै कहेगा गृहस्थसे"। पूछिये "गोविंदके मिलनेका मार्ग
तो कहेगा भक्ति"। पुनः पूछे "भक्ति क्या है" कहेगा राम
करना पुनः पूछे "रामनामका स्वरूप क्या ?" तो कहेगा
नामका स्वरूप ऐसे नहीं बताया जाता, गुरुनकी बारा
हे मैत्रेय ! तूभी लंबी माला लेकर भजन कर और राजा
चिता, स्वांग विरक्तताका धारकर निज भोगोंके लिये
नेसे द्रव्य इकट्ठा कर। अपने भेषवृद्धिके वास्ते यत्न कर
के ठगने वास्ते अतीतोंकी मंडली बाँधकर विचर।

सच्चे वैरागीका स्वरूप।

हे मैत्रेय ! सच्चे दिलसे अतीत हो, इस लोक परलोक
इच्छाको त्याग, शरीररूप पहरावेसे नग्न हो और कुछ
तेरी इसीमें है। मैत्रेयने कहा भक्तिका रूप कहो ? परा
"आप सहित वासुदेव जानना सर्व मनादिक माया पर्यंत स
दृश्य जाननी और आपको द्रष्टा जानना, सो द्रष्टा आत्मा
निर्विकार, नित्य, मुक्त, चैतन्य, आनंदस्वरूप है, काल
तिस आत्माको जो अपना रूप जानना है सोई भक्ति है"
भयसे रहित होना है। जो कालके भयसे रहित है तिसका
नासे नहीं कहा जाता क्योंकि सर्व जगत कालके भयसे
वस्तुको अपना स्वरूप जानेबिना कालका भय दूर नहीं
मैत्रेय ! अपरोक्षसे तथा विद्यत अविद्यत मनके धर्मोंसे तथा
दिक संघातसे भिन्न, आपको जानना अथवा स्वयंप्रका
आपको जानना, यही अतीत होना है, कोई स्वांग बदल
रोमकटानेका नाम अतीत नहीं। यह अनेकता जो भास

भी अपना स्वरूपही जान, क्योंकि जो आदि अंत होता है, सोई मध्यमें भी वही होता है। जो आदि अंत नहीं होता, सो मध्यमें भी नहीं होता। इससे अपने स्वरूपमें तो अनेकता किसी कालमें भी नहीं, जो है तो वही रूप है, जैसे स्वप्नद्रष्टामें, अनेकता आदि अंत नहीं, मध्यमें अर्थात् स्वप्न कालमें जो अनेकता भासती है सो स्वप्नद्रष्टा रूपही है; प्रत्यक् नहीं। ऐसा अपने स्वरूपका सम्यक् दृढ जिसको निश्चय है, वही पुरुष सर्व कायिक, वाचिक, मानसिक, व्यवहार करता भी अकर्ता है। स्वरूपसे अकर्ता भी मायारूप उपाधिकर सर्व कर्ता है। जैसे स्वप्नद्रष्टा स्वरूपसे अकर्ता असंगभी निद्रारूप अविद्या कर, सर्व करता है। सर्व करता भी अकर्ता है। हे मैत्रेय! वही नग्न है, जो स्थूल सूक्ष्म कारण शरीर रूप वस्त्रोंके अभिमानसे नग्न है। यह सब तुझसे प्रगट हुये हैं, नहीं तो कहां हैं? तूनेही बंध मोक्ष, ज्ञान, अज्ञानादि; प्रपंचकी कल्पना की है, आपही तिनमें वध्यमान हुआ है; सोभी कब तक? जब तक तूने आपको नहीं खोजा, जैसे नट अपनेको सम्यक् जानताहुआ, अनेक स्वांग करता हुआ भी बंधमान नहीं होता। हे मूर्ख! भली प्रकार देख! जो तुझ विना यह नाम रूप जगत् कुछ नहीं; जैसे सुवर्णसे विना भूषण कुछ नहीं। हे मैत्रेय! कहना मेरा अकार्थ है क्योंकि, तुझको निश्चय नहीं। वचन मेरा अद्वितीय है जो अद्वितीय होवे तिसको ही मेरे वचनोंका सुख है, अन्यको नहीं। मैत्रेयने कहा—निश्चय अनिश्चय बुद्धिका धर्म है और मैं मन बुद्धिसे परे हूं। पराशरने कहा श्वानके समान असत विषे बंध है; तुझको क्या सुख है, मैं मूर्खोंके ठगने-वास्ते नहीं हूं। मैत्रेयने कहा मैं पूर्ण हूं, इसीते मैं असत्में भी पूर्ण हूं। मैत्रेयने कहा उपदेश करो? पराशरने कहा यही उपदेश है "न तू, न मैं, यह जगत् एक अद्वितीय आत्मा मैं हूं, वा सर्व नामरूप जगत् अस्ति भाति प्रिय रूप मैंही आत्मा हूं" हे मैत्रेय! जिन्होंने

परमार्थ जाना है वे मौन हुये हैं, पर मौन होना यही है
मन वाणीसे परे सम्यक् जानना वा "मौन अमौन"
निर्विकार एकरस चैतन्य मात्र जानना । वेद और संत
हैं कि, सर्व नारायण है । मैत्रेयने कहा नारायण कोई
नहीं क्योंकि, सर्वके हृदयविषे, मनादिकोंके साक्षीरूपसे
जो साक्षी, चैतन्य, नित्य, आनंदस्वरूप, आत्मासे,
भिन्न मानते हैं; मानो वे नारायणके घातक हैं क्योंकि,
आनंदसे, भिन्न, नारायण, असत्, जड, दुःखरूप होगा।
कहा हे मैत्रेय ! आत्मारूप नारायणविषे जाननेका
है, इसीसे छिपाहुआ है । इसीहेतु भजन गोविंदका
पूछे क्या है तो "आपसहित सर्व हरि है" इस भजनका
चिंतन कर क्योंकि, जीवना श्वासमात्र है जबतक
तक सब वस्तु अपनी हैं; नहीं तो स्वप्न समान है।
अचाह हो और प्रसन्न रह ! देख ! जगत्का राजा मुआ
लेगया । इससे देहाभिमान त्याग और चाहनासे नि
जो प्रारब्ध है सो अमिट हैं, चाहना करे अथवा न
मैत्रेय ! जिस शरीरकी प्रारब्धहै, तिसने तो कभी चिंता
काहेको चिंता करता है । इससे अचिंत होकर भजन कर
परिच्छिन्न नहीं, तो तू और जगत् कहां है । मैत्रेयने कहा
करूं ? मन भजनका मार्ग रोकता है; कहा नहीं मानता ।
कहा–तू इसीसे पाखंडी है कि, मनके कहे चलता है।
कुछ वस्तु नहीं, जो तुझको रोके । पर कहो मनका रूप
मैत्रेयने कहा रूप मनका नहीं देखा। पराशरने कहा हे मूर्ख !
रूप नहीं देखा सो तुझे क्या रोकेगा, जैसे आकाश रूपरहित
किसीको रोकता नहीं; पर जान कि, संकल्पविकल्प मनके

आपको संकल्प विकल्पका साक्षी जान, यही परमभजन है। हे मैत्रेय! मैंने तुझको अनेकरीतिसे उपदेश किया है, जब तू आप न विचारेगा तो स्वरूपका जानना कैसे होगा इसी पर एक इतिहास सुन।

एक संशयात्मक ब्राह्मणतपस्वीकी कथा।

एक ब्राह्मणने विष्णुका अतिदारुण तप किया और विष्णुने दर्शनदिया और कहा हे ब्राह्मण! मैं विष्णु व्यापक, चैतन्य, तेरे हृदय विषे, साक्षी आत्मा तेरा स्वरूप हूँ; मुझ व्यापक विष्णुको अपने आत्मासे भिन्न मतजान। यह दुःख तपस्याका मुझको मत दे क्योंकि, अंतर बाहर मैंही हूँ; मुझको अपना आत्मा जान! अपने आत्माको मुझको जान; जैसे घटाकाश आपको महाकाशरूप जान और महाकाश सर्व घटाकाशोंको अपना स्वरूप जानता है, यह वाक्य सुनकर ब्राह्मणने मनमें विचारा कि, यह कोई भजनमें विघ्न करनेवाला देवतोंका दूत है, यह विचारकर बोला कि, मैं मूर्ख नहीं हूँ, जो तेरे कपटसे निश्चयका त्याग करूं; जहाँ से आया है, तहां चलाजा; नहीं तो तप अग्निसे तुझको भस्म कर दूंगा। विष्णुने कहा सुन जब अपने कर्मसे आप न फिरै, तबतक कहना गुरुशास्त्रका व्यर्थ है। विष्णु यह बात कहकर चलेगये।

हे मैत्रेय! आपको पहचान अपने कार्यका करता आप है, अन्य नहीं।

। कच तथा बृहस्पतिका सम्वाद।

हे मैत्रेय! एक समय कचने बृहस्पति पितासे पूछा कि; हे पिता! सर्व विद्यामें मैं कुशल हूँ, पर यह नहीं जानता कि, मैं कौन हूं? बृहस्पतिने कहा यह सर्व नाम, रूप, दृश्य जगत, तुझ चैतन्यसेही प्रकाशमान है और तू साक्षी चैतन्य स्वयंप्रकाश अविनाशी है। हे पुत्र!

अन्नमयादिक पंचकोशरूप देह तेरा स्वरूप नहीं, यह पृथिवी पंचभूतोंका विकाररूप हैं। तू चैतन्य निर्विकार है सो नाशादि विकारोंका तू साक्षी है। हे पुत्र ! सर्व दृश्यका भूमा सुखरूप है; जैसे सर्व स्वप्नप्रपंचका स्वप्नद्रष्टाही प्रति

पक्षियोंके आत्मनिरूपणकी कथा।

(कच तथा बृहस्पति सम्वादान्तर्गत.)

इसीपर एक कथा सुन ! हंस अवतारने पक्षियोंको ज्ञान किया था, सो परंपरा ज्ञानसंप्रदायरीतिसे चली आती है। एक समय सारस पक्षीने अपनी बोलीमें अपनी स्त्रीको ज्ञान किया। सारसने कहा हे रूप ! मेरे यह जो अनेक प्रकारका जगत् है केवल नाशी और मृगतृष्णाके जलवत् मिथ्या है विना प्रतीति होता है। तेरा स्वरूप इस दृश्यमानसे परे ना स्त्रीने कहा हे प्रभो ! दृश्यमान तो नाशी है और द्रष्टा अगोचर है; पर निश्चय कैसे करिये ? सारसने कहा हे रूप साक्षी आत्मा मन वाणीसे अगोचर होनेपर भी मन वाणी रूपसे प्रगट है; छिपा नहीं। पर निश्चय तब हो जब दृष्टि सूक्ष्म जैसे पत्र फूल फल मूलके अंतर्भूत हैं। स्त्रीने कहा सो मूल सारसने कहा "मूल कौन हैं ?" इस मनके चिंतनको तथा जिसने जाना वही मूल है। स्त्रीने कहा सो तो मैं हूँ, पर नहीं कि; कौन हूँ ? सारसने कहा सत्, चित्, आनंद, तेरा रूप सुनकर हँसी और कहा हे निर्बुद्धि! यह सर्व लक्षण द्वैत हुये हैं क्योंकि, सत् तब कहिये जब असत् होवे, चैतन्य जड हो और आनंद तब हो जब दुःख होवे, सो मैं इन प हूँ ? अवाङ्मनसगोचर मेरे स्वरूपमें, सत्; चित्, आनंद, कल्पता है ? पर कहो रूप मेरा क्या है ?

गरुड़ ।

पुनः गरुड आया और कहा सर्व जगत्‌विषे एक विष्णुही है द्वैत नहीं। सारसने कहा जो केवल विष्णुही है, तो जगत् कहां है? परन्तु हमको क्या लाभ है दूसरेके धनसे। गरुडने कहा जब सर्व विष्णु है, तो तू भी विष्णु है। सारसने कहा इस तेरे वचनको मेरी स्त्री प्रतीत न करेगी। गरुडने कहा तेरी स्त्री स्वरूपसे अप्राप्त है। "एक दो कहां है? और विष्णुही सर्व है" ऐसे कथन चिंतन करता है, पर अपने साक्षी चैतन्य आत्मासे विष्णुको भिन्न मानता है, तब मानो विष्णुका घाती है क्योंकि, आत्मासे पृथक् अनात्मा है। इससे विष्णुको अपने आत्मासे अभेद जानना, कथनसे अद्वितीयपना नहीं सिद्ध होता । सारसने कहा जब सर्व विष्णु है; तो आपको आप कहे तो क्या हानि है? गरुडने कहा मेरा वचन ज्ञानियों प्रति है, अज्ञानी प्रति नहीं। सारसने कहा अबतक तेरी द्वैतदृष्टि नहीं गई, यह अस्ति भाति प्रिय रूप विष्णु चैतन्य आत्माही है, द्वैत नहीं तो ज्ञानी मूढ कहां है? तुझको मूलकी अप्राप्ति है और मलीनताविषे बंध है ।

।कागभुशुण्ड ।

एतेमें कागभुशुण्ड आया और कहा ब्रह्मासे लेकर चींटीपर्यंत एक रामही है। गरुडने कहा जब रामही है तब तू कौन है? भुशुण्डने कहा मैं रामका दास हूँ गरुडने कहा तब राम पूर्ण न हुआ क्योंकि, आदि अंत मध्य जब राम है तथा अंतर बाहर परोक्ष अपरोक्ष सर्व रामही है, तब तूने अकार्थ आपको दास मानाहै । भुशुंडने यह वचन सुनकर मनमें विचारा और खोजा कि, जो कुछ मैंने पूर्ण राम विषे अहंकार कर आपको माना है, सो मैं नहीं क्योंकि; मानना केवल मनका मनन है; जैसे स्वप्नमें स्वप्नद्रष्टासे जो कुछ पृथक् मानना है, सो भ्रम है; जैसे स्वर्णसे पृथक् कुछ भूपणोंकी सत्ता मानना है सो केवल भ्रम है। इससे जब सर्व राम है तो मैंजुदा कहाँहूँ, मैं भी

रामहूँ । ऐसे विचार कर कहा हे गरुड ! मुझहीको राम कहं अद्वितीय राममें दास स्वामी भाव मानना केवल भूल है। कहा अभी विष्णुको जाकर कहूँ कि, कागभुशुंड तेरी आज्ञा हुआ है, "कहता है मैं विष्णुहूँ" । भुशुंडने कहा जो मैं उसमें फर्क नहीं; जैसे घटाकाश यह कथन चिंतन करे महाकाश स्वरूप हूँ, तो ठीकही है ।

। हंस ।

पुनः हंस आया और कहा "शुद्ध चैतन्य मैं ब्रह्मस्वरूप हे डने कहा हे गरुड ! देख यह क्या कहता है कि, मैं ब्रह्महूँ कहा कि, मैं विष्णुरूपहूँ तो क्या भय है? अचिंत्य आप विष्णु है । गडरुने कहा जो मैं प्रभुके सन्मुख हंसको लेके यह हंस कहता है मैं ब्रह्महूँ, तो तू साक्षी कैसे देवेगा । भुशुंड यह कहूँगा हे विष्णु ! तूने मुझ चैतन्यसे प्रकाश पाया है।

। मयूर ।

पुनः मयूर आया और कहा "सर्व जगत् विषे प्रकाश हैं स्वयं प्रकाशमान हूँ" । भुशुंडने कहा हे मयूर ! ऐसे मत राम रूप है । मयूरने कहा–राम तेरा किस ठौरमें है ? भुशुं राम सर्व ठौरमें है । गरुडने कहा जो राम एक ठौरमें है उसमें त्रिपुटी किया । आत्मामें द्रष्टा दृश्य दर्शन तीनों नहीं कहा हे गरुड ! तुझको अपने स्वरूपकी अप्राप्ति है, जब सर्व तो त्रिपुटीभी राम है; जैसे स्वप्नकी त्रिपुटी स्वप्नद्रष्टारूप है डने कहा हे मयूर ! राम एक है कि, दो ? मयूरने कहा हे भुशुं जब सर्व राम है तो एक और दो क्या ?

कुलंग ।

पुनः कुलंगने आकर कहा हे मयूर! जब तक तू त्रिगुणरूप प्रणवको नहीं त्यागता, तबतक तुझको सुख न होगा क्योंकि, आत्मा प्रणवसे परे है। मयूरने कहा जो विचाररहित है सो ग्रहण त्यागकी इच्छा करते हैं; जैसे मृगतृष्णाके जलको न जानकेही जलपानकी इच्छा करता है । हे कुलंग! कल्पितके अधिष्ठानके ज्ञाता पुरुष कल्पित पदार्थोंमें ग्रहण त्यागबुद्धि नहीं करते क्योंकि, जो मूलसे कुछ है ही नहीं, तो किस वस्तुका ग्रहण त्याग करिये। हे कुलंग! जो मैंही हूँ, तो ग्रहण त्याग मुझमें अविद्यासे है प्रणव मुझ चैतन्य कर सिद्ध होता है, इसीसे दृश्य है। इससे रसना प्रणवका जप करो वा न करो, मुझ चैतन्यको हानि लाभ नहीं। हे कुलंग! जब तू स्वरूपको जानेगा तब तेरा ग्रहण त्यागका भ्रम दूर होगा; विचार कर देख! वक्ता श्रोत्रादिक आपही है। सारसने कहा हे मयूर! तुझको आत्मबोधकी अप्राप्ति न होती तो तुझको कैसे भासती कि: कुलंगने कहा है। हंसने कहा हे सारस! तू भी आत्मबोधसे अप्राप्त न होता तो इनको आत्मबोधसे रहित क्यों कहता? सारस तूष्णीं हुआ। गरुडने कहा हे हंस! तू कह तूने स्वरूप देखा (जाना) है कि, नहीं? देखानाम जाना है तोभी कह और न जानाहै तोभी कह? हंसने कहा हे अंध! प्रगट तुझको स्वरूप ज्ञान नहीं क्योंकि, अपना आत्मस्वरूप जानने न जाननेसे परे है। न जानना रूप अज्ञान और जानना वृत्ति ज्ञानभी मायारूप है, वा मायाका कार्यरूप है। आत्मा, माया और मायाके विकारसे परे नाम भिन्न है, जानना न जानना आत्मामें कैसे होवे? जानना न जानना दूसरेमें होताहै। आत्मा तो जाननेवाले जीवका, तथा जानना न जानना बुद्धिरूप वृत्तिका आत्मा (स्वरूप) है। स्वरूपमें जानना न जानना नहीं होता। जुदेमें होता है। आत्मासे पृथक् सर्व ज्ञान अज्ञानादिक

कल्पित अनात्मा प्रगट है। कल्पित पदार्थ अधिष्ठान नहीं करसक्के;जैसे निद्रारूप अविद्याका स्वप्नद्रष्टा चैतन्य कर रचा जो ज्ञान अज्ञानादि स्वप्न प्रपंच; सो स्वप्न नहीं कर सक्ता है। हे मूर्ख! देखना नाम जानना न जान मात्रहै। सर्व सत् चित् आनंदस्वरूप आत्मा मैं ही हूं; थक्क कौन है? जो मुझको देखे वा न देखे क्योंकि देखना न जानना न जानना त्रिपुटी विना होता नहीं, जब त्रिपुटी न्यही हूँ, तो जानने न जानने योग्यभी मैंहीहूं और जानेनेके अयोग्य भी मैंही चैतन्य हूं। भिन्न भी तथा अभि हूंऔर सर्वसे असंगभी हूं; जैसे स्वप्नद्रष्टाही सर्व स्वप्न है और असंग निर्विकार सर्व स्वप्नसृष्टिसे अगोचरभी है। किसी वस्तुकी जब जाननेकी चाहना करता है, तब ति प्रथम स्थानापन्न करता है, पीछे दृष्टि जानने वास्ते पुनः पीछे तिस वस्तुको देखता है। जहाँ एककीभी तहाँ तीन कैसे होवेंगी? किंतु नहीं होवेंगी। गरुडने मेरा सुन। हंसने कहा कान (श्रोत्र) नहीं राखता विना सुनता हूं कहो? गरुडने कहा रसना नहीं पर गरुडने कहा मैं चैतन्य आत्माही जब सब हूं तो त्रिपुटीरूप भी मैंही हूं। हंसने कहा जब मैं आत्मा नहीं, द्वैत अद्वैतसे मुक्त हूं, द्वैत अद्वैत कहना मात्रहै। हुये। कुलंगने कहा हे मयूर! कुछ मुझको उपदेश कहा ऐसा उपदेश करता हूं कि, तू न रहै। कुलंगने न रहा तब तीनोंलोक न रहेंगे।

मयूरने कहा सभी मेरा सत् वचन सुनो! सर्वोंने कहना सुनना दोनों नहीं पर कहो? मयूरने कहा कुछ हुआ भी सर्व कहता हूं। सर्वोंने कहा उपदेश उपदेष्टा

ह सर्व त्रिपुटी स्वप्न भ्रममात्र हैं। मयूरने कहा सबको निर्वाण उप-
श करता हूँ। सबोंने कहा हमारे स्वरूपमें बाण निर्वाण दोनों नहीं
वयं रूप हूँ; सबने कहा नमस्कार हमारी हमको है। यह तीन लोक
तन्य रूप हमकोही नमस्कार करते हैं तथा उपासना करते हैं। सर्वके
र्ता भी चैतन्यरूप हमही हैं और सर्वको भोक्ता भी हमही हैं। दिन
ात्रि देवता मनुष्य यह सर्व दर्शन चैतन्य रूप हमाराही है। ब्रह्मा,
विष्णु, रुद्र, सूर्य, चन्द्रमा, यम कुबेरादिकोंने चैतन्यरूप हमारेसेही
प्रकाश पाया है।

पराशरने कहा हे मैत्रेय! संतोंकी यही नमस्कार है कि, सर्वरूप
हमही हैं।

। चकवी चकवा ।

एतेमें चकवी चकवा आये और कहा कि, यह दृश्यमान क्षेत्र है
सो नाशी है और मैं चैतन्य क्षेत्रज्ञ अदृश्यमान हुआ हुआ सत् हूँ।
सबने कहा तू कहां है? हमही हैं।

कचने कहा हे पिता! वह संत कैसे थे जो ऐसी नमस्कार कर-
ते थे? बृहस्पतिने कहा हे पुत्र! जो उन संतोंने कहा सो सत्ही कहा
है-क्योंकि चैतन्यही सर्वको उपास्य है तथा सर्व कर्ता भोक्तादिक
चैतन्यही है, तिससे पृथक् सर्व मायामात्र है। हे कच! कारणही
कार्यका भोक्ता, कर्ता, उपास्यादिक होता है, कार्य कारणका नहीं।
सो चैतन्यही सर्व नामरूप दृश्यका कारण है; वे आपको चैतन्यदृष्टि
लेकर कहते थे, उनकी शरीरदृष्टि न थी। उन्होंने जो कहा था "हे
चकवा तू क्षेत्रज्ञ नहीं हमही हैं" सो क्षेत्रको उठाकर कहा था क्योंकि
क्षेत्रके अभावसे क्षेत्रज्ञ कहां है? जैसे दंडके अभावसे दंडी कहां है?
कोई क्षेत्रज्ञके अभाव कहनेमें उनका तात्पर्य नहीं किन्तु, क्षेत्रज्ञ क्षेत्र
शरीरसे है; स्वरूपमें नहीं बनसक्ता है।

हे पुत्र ! सुन। चकवा कहने लगा कहनेमें तो नहीं आता है हे संतो ! यह सर्व विकाररूप चकवी है और मैं चैतन्य नि... होनेसे निर्विकार हूँ। यह चकवी प्रकृति है, मैं पुरुष हूँ। ... जगत्का इसके मिलापसे है और मैं अक्रिय सर्वव्यापी ... आनंद ब्रह्मरूप हूँ। जब मैं चकवीरूप प्रकृतिको अपने ... करता हूँ, तब प्रकृतिका कार्य जगत् नाश होता है और मैं ... सदा आपसे आप रहता हूँ, क्योंकि मैं निराश्रय हूँ और सब ... के आश्रय हैं. जैसे स्वप्नद्रष्टा आप किसीके आश्रय नहीं ... स्वप्नप्रपंच स्वप्नद्रष्टाके आश्रय है ! तुम कहो प्रकृति ... नहीं ? सब पक्षियोंने कहा हे चकवा ! जो तू चैतन्य है ... कहां है ? जो प्रकृति है तो तू कहां है ? क्योंकि पद एक ... कहो वा पुरुष कहो। चकवेने कहा एकताविषे वचन नहीं ... इसिसे प्रकृतिको संग लिया है। सबने कहा तू आत्मासे ... अबतक दृष्टि मायामें राखता है। चकवेने कहा सत है, मैं ... भिन्न रहा हूँ, क्योंकि आत्माको मिलना भ्रमसे है, मुझ ... सगोचर विषे, पावना मिलना जुदा होना न होना है नहीं।... आत्मा पाया है, तुमको लज्जा नहीं आती ? आत्मा ... स्वरूप है, भ्रम विना अपने स्वरूपका पावना मिलना जुदा ... जैसे भूषणोंको तथा घटको तथा पटको सुवर्ण, मृत्तिका, ... पावना मिलना जुदा होना नहीं होता। यह वचन ... तूष्णीं हुये।

चकवेने कहा तुम सर्व मेरे शिष्य होओ। सबने कहा, जहाँ ... पावना जुदा होना नहीं, तहां गुरु शिष्य कहां है ? चकवेने ... कुछ वचन मननमें आता है सो कर्मसहित, सर्व नामरूप ... प्रगट करनेवाला, मैं चैतन्य हूँ; अपनी कीहुई वस्तुसे क्या ...

है ? जैसे इंद्रजालीको अपनी मायाकर रचे पदार्थ बध्यमान नहीं करते; जैसे नट अपनी विद्याकर अनेक स्वांग करताहुआभी तिन स्वांगोंमें बध्यमान नहीं होता किन्तु, अपनेको नटत्वभावही जानता है; सर्व अपने स्वांगको मिथ्या जानता है। हंसने कहा-जिस पदमें वचन नहीं तिस पदमें मैं तू कहां है ? तू चकवेपनेको और मैं हंसपनेको त्याग तब पीछे वचन करैं । चकवेने कहा तू निश्चय कर कि, मैं हंस नहीं हूँ, जब हंस नहीं, तब चकवा आपसे आप न रहा। आप मुये जग प्रलय होती है। हे हंस ! यह सर्व दर्शन मुझ चैतन्यका है, मैं किसीका दर्शन नहीं; स्वयंप्रकाश हूँ। हंसने कहा तुझको इस वचनसे लज्जा नहीं आती जो सर्व दर्शन तेरा हुआ तो तू भिन्न कैसे हुआ ? जैसे राजा कहै सर्वदर्शन मेरा है तो क्या राजा दर्शनसे भिन्न है ? चकवेने कहा हे हंस ! ऐसे नहीं, जैसे सुवर्ण कहै यह सर्व भूषणदर्शन मेरा है, तो द्वैतापत्तिदोष नहीं; जब सर्व मैं चैतन्य हूँ तो कहनेसे क्या हानि है ? कहना और लज्जाभी मैं हूं। अहंकारसे बंध होता है, देहाभिमान रहित मोक्ष है; परन्तु बंध मोक्षादि केवल मनका मनन है; मैं प्रत्यक् चैतन्य निर्विकार हूँ। सारसने कहा हे चकवा ! जब तेरेमें बंध मोक्षरूप जगत् नहीं, तो तूने बंध मोक्षकल्पना कैसे की ? जैसे आकाश असंग निर्विकार है, तिसको विकार संगकी कल्पना भ्रमविना नहीं होती। चकवेने कहा मैं चैतन्य अद्वितीय हूँ, सर्व कल्पनासे रहित हूं परन्तु, जैसे नेत्ररोगसे आकाशमें दोचंद्रमा भान होते हैं, तैसे तुझ जीवको अविद्यादोषसे, मुझ चैतन्य अधिष्ठान निर्विकल्पमें, बंध मोक्षादि प्रपंच प्रतीत होता है। जैसे स्वप्ननरोंने स्वप्नद्रष्टामें बंध मोक्षकी कल्पना की है, परन्तु स्वप्नद्रष्टा निर्विकार है। हे सारस ! सोया पुरुष जाग्रत् पुरुषके हाल नहीं जान सक्ता। सारसने कहा जो तू अद्वितीय है तो प्रश्न उत्तर

किससे करता है ? चकवेने कहा प्रश्न उत्तरादि सर्व व्यवहार मायासे करता हुआ, सद्वितीयभी वास्तवसे अकर्ता है जैसे निद्रारूप अविद्यासे अनेक प्रकारका स्वप्नप्रपंच भी, स्वप्नद्रष्टा वास्तवसे अद्वितीय है।

मयूरने कहा यह सर्व प्रकाश मेरा है; जैसे सर्व किरणें लोगोंको नेत्रदोषसे किरण लाल; सुफेद, नीली प्रतीत होती सूर्यको अपना रूपही भान होता है। तैसे न चकवा न सारस एक मैंहीं अद्वितीय हूँ। हे सभा ! अहं त्वं का त्याग निजस्वरूपको भजो, मुक्ति आनंदको पावोगे। सबने प्रत्यक् चैतन्यस्वरूपमें ग्रहण त्याग है नहीं। हम आप स्वरूप हैं, हमारे बंध मोक्ष है नहीं, बंध मोक्ष केवल है वास्तवसे नहीं. क्योंकि आत्मामें बंध हो तो मोक्षभी होवे अनस्थिर रूपभी हमहीं हैं और स्थिर अनस्थिरसे रहित हीं हैं। आश्चर्य रूप हमारा है। मन वाणीके गोचर रहितभी हमहीं हैं। ऐसे चिंतन करते हुये सब तूष्णीं कुछ बल न रहा जो वचन करें। सारांश यह कि, द्वैतसे रहित होगये।

कोकिला।

कुछ कालपीछे कोकिला आई और कहा हे सभा ! तुम्हारा तूष्णींहोना मुक्ति है और वचन करना बंध है परंतु यह नहीं और वचन दोनों अहंकार है। कुलंगने कहा हे कोकिला ! न जानना तथा अहंकार अनहंकारको त्याग। जो तुझको आत्माकी प्राप्ति होवे; तूष्णीं वचनादि सर्वसंघातके धर्म निजस्वरूपमें माया और मायाके कार्य तूष्णीं और वचन व्यवहार कल्पित होनेसे, सम है। अपरोक्ष आत्मस्वरूप

तू ज्ञाता संत, चाहें तूष्णीं होवें चाहे वचन करें। हे कोकिला! अहंकार जो तूने कल्पा है तिसकारूप कह। कोकिलाने कहा अहंकारका रूप यही है कि, मनकी एकाग्रतामें वा तूष्णींमें सुख मानना और मनकी विक्षेपतामें वा वचन करनेमें आपमें दुःख मानना। विना अनात्म अहंकार अनात्मधर्म अपनेमें मानने होते नहीं और पूर्व जो तूने कहाहै कि, अहंकारको त्याग! सो हे कुलङ्क! मुझ अस्ति भाति प्रेयरूप आत्मासे भिन्न कुछ नहीं जिसका मैं ग्रहण त्याग करूँ; जैसे पंचभूतोंसे भूतोंका कार्य भिन्न नहीं, इसीसे पंचभूतोंको अपने कार्यमें ग्रहण त्याग नहीं। मयूरने कहा हे कोकिला! तू कौन है? कोकिलाने कहा "तू कौन है" जिसकर यह अंतर मन वाणीका कथन चिंतन अपरोक्ष जाना जाता है वही मैं हूँ; यह सब दर्शन मेरा है, मुझ विषे दर्शन नहीं। सब तूष्णीं हुये।

कोकिलाने कहा सबोंका गुरु मैं हूँ। हंसने कहा तेरे विषे गुरु शिष्य कहां है? कोकिलाने कहा जो सर्व मैं हूँ, तो गुरु शिष्य भी मैं हूँ; मुझ चैतन्यसे क्या भिन्न है? मयूरने कहा मैं तेरा शिष्य होता हूँ पर पहले तेरा नाश करूँगा। कोकिलाने कहा, तुझ सहित सर्व नाम रूप दृश्य, मुझ सच्चिदानंद अधिष्ठान प्रत्यक् आत्माके शिष्य हैं; पूर्व तुम दृश्यरूप शिष्यने मुझ अधिष्ठानका नाश न किया तो अब कैसे करेगा? जैसे स्वप्नसृष्टी सर्व स्वप्नद्रष्टाके शिष्य हैं। सारांश यह कि, कल्पित पदार्थोंका अधिष्ठानही गुरु (आश्रय) होता है; रज्जु सर्पवत्। हे मयूर! यह सर्व कौतुक मेरा है, मैं चैतन्य कौतुकी किसीका कौतुक नहीं; जैसे मायारूप इन्द्रजाल, मायावी इन्द्रजालीका कौतुक नाम लीला है; इन्द्रजालीं किसीकी लीला नहीं। हंसने कहा मैं चैतन्य, विना वाक् और कान वाणी वचन कहता सुनता हूँ; विना पांव हाथ; चलता लेता देता हूँ; विना नेत्र नासिकासे, देखता सूँघता हूँ, विना

त्वचा रसना, स्पर्श रस लेता हूँ; विना मन, बुद्धि, चित्त, अहंकारों संकल्प विकल्प; निश्चय, चिन्तन, अहंपना, करता हूँ; जैसे स्वप्नमें विना इंद्रियोंके व्यवहार शब्दादिकोंका प्रकाशक बात प्रसिद्ध है कि, अंतर्दश प्रकारके शब्दको अनुभव का विना कानों सुनता है तैसेही अंतर जो चैतन्य पदार्थ सर्व न्यूनाधिक व्यवहारको अनुभव करता है सो विना इंद्रियों है, इसीसे मैं चैतन्य आत्मा स्वप्रकाशरूप हूँ।

प्राणवाद ।

कोकिलाने कहा, यह प्राणरूपी पवनही स्वप्रकाश है कहा निर्बुद्धिकी समान मतकह, प्राणरूपी वायु जड है तथा कार्य है । सुषुप्तिमें इसका अभाव होजाता है तथा न उष्ण शंवाली है, चैतन्यका दृश्य है । इसीसे परप्रकाश है और प्राणोंरूप वायुके विशेषणोंसे रहित है इसीसे स्वयंप्रकाश प्राणरूप वायु चैतन्य होवे तो सोया पुरुषका धन तस्कर ले प्राण ज्योंके त्यों चल रहे हैं क्यों नहीं चोरोंको वर्जित कोकिला! "पवन स्वप्रकाश है" इस कथन चिंतनको जि सो स्वप्रकाश है । कोकिलाने कहा सो अनुभव पव है । सबने कहा तेरा कहा नहीं मानते । कोकिला एक अद्वितीय हूँ, मुझ विना कौन है जो वचन मेरा माने स्वयं है" । मयूरने कहा तुरीयामें पवन कहां है ? हे कोकि शास्त्रोंमें पंचभूत कहा है और पंचभूतोंका कारण माया तथा पंचभूतोंमेंही वायु है । जो पवन स्वप्रकाश होवे कहना चाहिये इससे जो सर्वका साक्षी है; सोई स्वप्रकाश लाने कहा सर्वका साक्षी प्राण है । सबने कहा वचन तेरा

कोकिलाने कहा योग्य अयोग्य सब पवन है। मयूरने कहा सत् कभी असत् नहीं होता, असत् कभी सत् नहीं होता। कोकिलाने कहा यह सत् असत्भी पवन है। में माया अनंत शक्ति रखती हूँ;सतको असत और असत्को सत् करसकती हूँ। सभी कहो यह सर्व नाम रूप पवन है। मयूरने कहा जो कहनामात्र है तिसका क्या प्रमाण है? हंसने कहा ब्रह्मा कहता है, पवन परप्रकाश है; जड चेतनका क्या संयोग है? कोकिलाने कहा,ब्रह्मासे लेकर चींटीपर्यंत, सब जड चैतन्य नाम रूप, पवनहींसे प्रगट है।

पराशरने कहा हे मैत्रेय! कोकिला आपको कभी मायारूप कहती थी; कभी प्राणकर अज्ञानरूप कहतीथी और आत्माको अवाङ्मनसगोचर कहतीथी क्योंकि मायारूप द्वैत विना अवाचपदमें कहना बनता नहीं; जो कथन चिंतन करेंगे सो मायाही है, अवाच पदमें कथन चिंतन है नहीं।

। जलकुक्कुट ।

बृहस्पतिने कहा हे कच! पुनः जलकुक्कुट आया और कहा जब ईश्वर सर्व जगत्को अपनेमें लीन करता है तब पवनरूप अज्ञान कहां है? कोकिलाने कहा ईश्वरता, जगत्की लीनतादि व्यवहार, पवनरूप अज्ञानकरही होता है; आत्मा अवाचपद है। हे सभा! जितना तुम कथन चिंतन करोगे, सो पवनरूप मायामात्र है। माया अंगीकार करे विना अवाचपदका कभी कथन चिंतन नहीं होगा। सब तूष्णीं हुये।

गरुडने कहा ब्रह्मविषे माया कहां है? कोकिलाने कहा माया विना अवाचपदका ब्रह्म नाम किसने रक्खा? गरुडने कहा हे भुशुंड! तुमने हजारों वर्षोंसे भक्ति तप किया है, कोकिलाको उत्तर देओ।

भुशुंडने कहा असंतोंकी सभामें आया हूँ, बुद्धि नहीं रही
कहा जाता नहीं इससे क्या कहूँ ?

मैत्रेयने कहा हे गुरु ! भुशुंडने असंत सभा क्यों कही
संतनाम श्रेष्ठका है, जहाँ श्रेष्ठता है वहां अश्रेष्ठता भी
सापेक्षक श्रेष्ठ अश्रेष्ठसे रहित जो पद है सो असंत कहिये
है श्रेष्ठता परे जिसके, तिसके अपरोक्ष निष्ठावान्, जिस ज
होवें तिसका नाम असंत सभा है ।

सबने कहा हे कोकिला ! मायारूप वायुकरही सर्व क
बनसत्ता है और जिसका कथन चिंतन करता है सोभी माया
है तिस कथन चिंतनका विषयभी माया तत्कार्य रूप
कथन चिंतनभी मायारूप है । परंतु यह सर्व त्रिपुटीरूप
यरूप पवन, चैतन्य आत्माकी त्रिपुटी दृश्य होनेसे
चैतन्य आत्माही स्वयंप्रकाश है । कोकिलाने कहा
निश्चयही देखतीथी, कोई पवनको स्वप्रकाश कहने
तात्पर्य नहीं किन्तु, आत्मवस्तुही स्वप्रकाश है,
काशही है; जैसे निद्रारूप अविद्याकरही; सर्व
तथा स्वप्न प्रपंचका व्यवहार है, तथा वायु आदित्यभी
परन्तु स्वप्नद्रष्टा कर प्रकाशित हैं, इसीते परप्रकाश हैं,
स्वप्रकाश है ।

तिस समय ब्रह्मा अपने मरीच्यादि पुत्रोंसहित आकाश
किसी कार्यके वास्ते चले जाते थे, पक्षियोंका अपनी बोली
निरूपण सुनने लगे ।

हंसने कहा ब्रह्मासे लेकर चींटीपर्यंत सब प्रकाश मुझे चै
गरुडने कहा मुझ अवाच पद आत्मामें प्रकाश्य प्रका
दोनों नहीं; ब्रह्मादिक सर्व दृश्यका उपास्य मैंहीं हूँ ।

कुलंगने कहा उपास्य उपासकभाव द्वैतमें होता है, मैं अद्वैत हूँ। ह्मा सुनकर हँसा और मरीचादिकोंको कहा कि, तुम आपको बडा ानतेहो पर आत्मविचार नहीं राखते, जो आत्मविचाररूपी परम र्मवान् है, वही बडा है, अन्य नहीं है। ब्रह्माने कहा हे पक्षियो! तुम न्य हो जो देहाभिमान त्यागकर अपने निर्विकारस्वरूपमें स्थित येहो। सबोंने कहा हे ब्रह्मा! तुम्हारेविषे समता न देखी क्योंकि बको तुमनेही उत्पन्न किया है, भला बुरा क्यों कहतेहो? सर्वरूप आत्माही जब इस संसाररूप मढीमें स्थित है तो भला बुरा कौन है? ह्माने कहा जब सर्वात्मा है तो भला बुरा भी आत्मा है हे कुलंग! जैसे पिता पुत्रोंको उत्पन्न करता है और वही गुणोंके अनुसार भला बुरा भी कहता है।

प्रणव।

पुनः ब्रह्माने कहा हे कुलंग! तू कौन है? कुलंगने कहा आत्मा हूं। जिससे ब्रह्मा विष्णु शिवादिक दृश्य सर्व प्रगट हुआ है क्योंकि सर्व सृष्टि प्रणवरूप है। अकार, उकार, मकार, क्रमसे; स्थूल सूक्ष्म कारण प्रपंचरूप है; तथा जाग्रत् स्वप्न सुषुप्तिरूप है; तथा विराट्ट हिरण्यगर्भ ईश्वररूप है। तथा विश्व तैजस प्राज्ञ रूप है तथा भूर्भुवः स्वः त्रिलोकी रूप है इंद्रिय विषय देवता रूप है; तथा ऋक् यजुः साम रूप है; तथा सत्व, रज, तम रूप है। तात्पर्य यह कि, सर्व जगत् प्रणवरूप है। प्रणव मायारूप है; माया यह मन शरीरादिक संघातरूप है और मैं नित्य चैतन्यरूप आत्मा इस मन शरीरादि संघातका द्रष्टा निर्विकार निर्विकल्प आप अपनी महिमामें स्थित हूं। हंसने कहा नमस्कार मेरी मुझको है। कुलंगने मुझको त्रिगुणं मायारूप प्रपंचसे अतीत जाना है इसकी उपासना सफल हुई है। तीन गुणभी कहनामात्र हैं नहीं तो मैं चैतन्यही हूँ।

कुलंगने कहा हे गरुड़ ! जो तूने विष्णुसे आत्मनिरू...भी सो कह । गरुडने कहा सर्व विष्णु है । मयूरने कहा वि... प्रकट किया है नहीं तो विष्णु कहां है तूही है । जो सर्व वि... तो सर्व चतुर्भुज होते ।

ब्रह्मा सबके यथार्थ वाक्य सुनकर बहुत प्रसन्न हुये । ... हे ब्रह्मा ! पवन स्वप्रकाश है कि परप्रकाश है ? ब्रह्माने कहा ... पवनमें तुमने स्वप्रकाशता और परप्रकाशता सिद्ध कियाहै ... स्वप्रकाशहो वायु नहीं । कोकिला प्राणरूप उपाधिको लिये... परन्तु प्राणउपहित चैतन्यआत्माको स्वप्रकाश कहनेका इस... है । जैसे बत्तीरूप उपाधिको लियेही दीपकको स्वप्रकाशता ... है पर जब वस्तु विचार करें तो, दीपकमेंही स्वप्रकाशता ... नहीं क्योंकि प्राण और बुद्धि आत्माकी मुख्य उपाधि ... बुद्धिकी तथा आत्माकी किंचित् उपचारक समानता भी ... जैसे आत्मा शरीरमें व्यापक है, तैसे बुद्धि और प्राण ... व्यापक हैं । जैसे आत्मा चैतन्य विना शरीर स्थित नहीं ... प्राण बुद्धिसे विनाभी शरीर स्थित नहीं होता । तथा आत्मा... अंतर है और प्राण बुद्धिभी अंतर हैं इत्यादि अनेक तरह... शास्त्रमें लिखी हैं । हे कोकिला ! उपाधि उपहितरूप कभी ... होती । कोकिलाने दोनों हाथ उठाकर पुकारा हे ब्रह्मा ! ... समता त्यागी और विषमता ग्रहण की क्योंकि मुझ निर्विकार ... चैतन्य स्वरूपमें तूने उपाधि खडी की । ब्रह्माने कहा कोक... विचार ? प्राण कैसे स्वप्रकाशहैं ? कोकिलाने कहा प्राण न हों ... बोलो कैसे ? ब्रह्माने कहा प्राण इंद्रिय पंचभूत आत्मासे उत्प... उत्पत्तिवान पदार्थ स्वप्रकाश नहीं होते । कोकिलाने कहा ... शास्त्रमें क्या भेद है ? प्राण जिससे उत्पन्न हुये हैं वही रूप ...

भी प्राण स्वयंप्रकाश हैं। ब्रह्माने कहा प्राणोंकी स्थिति होनेसे शरीर स्थित है, शरीरसेही नित्य स्वयंप्रकाश होता है, पर शरीर प्राण कर्म उपासना ज्ञान स्वप्नकी समान कहन मात्र हैं, स्वप्नद्रष्टाके समान मैं ब्रह्मरूप आत्माही नित्य स्वयंप्रकाश अक्रियरूप हूँ। कोकिलाने कहा जो तू अक्रिय है तो रूप अपना कह ? ब्रह्माने कहा अज्ञानीको कहना योग्य नहीं, जो समझै नहीं और ज्ञानीको भी कहना योग्य नहीं, जो कृतकृत्य है, मुमुक्षुको कहना योग्य है। हे कोकिला ! ब्रह्मासे लेकर चींटी पर्यंत, जो सर्व जीवोंके हृदयविषे, मनादिकोंका साक्षी रूप करके, नित्य, चैतन्य स्थित है, सोई मेरा स्वरूप है। कोकिलाने कहा यह तो सभीका स्वरूप है ? ब्रह्माने कहा जो सभीका स्वरूप है सोई मेरा स्वरूप है और जो मेरा स्वरूप है सोई सभीका है, इसमें संशय नहीं। कोकिलाने कहा जब तूही है तो "स्वरूप किसीने जाना, किसीने न जाना" यह व्यवहार त्रिपुटी विना नहीं होता। ब्रह्माने कहा जब सर्व मैं हूँ तो त्रिपुटीभी हूँ। ब्रह्मा उठ खड़ा हुआ कहा यह उत्तर तुमको विष्णु देवेगा। तब सर्व संत वहाँ बैठेही बैठे विष्णुकी स्तुति करने लगे "चतुर्भुज विष्णुकी मूर्ति सहित, सर्व जगत; हमारे स्वरूप चैतन्य आत्मासेही प्रकाशमान है, उत्पत्तिमान है, तथा हमारे स्वरूप चैतन्य आत्माकी सत्तास्फूर्ति करही इस जगत्की स्फूर्ति है, स्वतः नहीं; जैसे स्वप्नद्रष्टा करही सब स्वप्नकी स्फूर्ति होती है और हमारे स्वरूपमें आवागमन नहीं।

कोकिलाने कहा हे विष्णु ! मैं तेरा ऐसा आवाहन करतीहूँ जिसमें तू, मैं, आवाहन, तीनों नहीं और तीनों रूपहैं।

हंसने कहा मेरा आवाहन सुन ! न कोई द्वेषी, न प्रीतम, न गमनागमन, न सुख, न दुःख, न हेय, न उपादेय, न बंध, न मोक्षादि, केवल मैं एक चैतन्य आत्माही विष्णु हूँ नमस्कार मेरी मुझको है। कुलङ्गने

कहा ब्रह्मा विष्णु रुद्रादि सर्व मुझ चैतन्य आत्माकी उपा
हैं उपासना आवाहन अपना आपही करता हूँ।

इतनेहीमें विष्णु आये और कहा हे पक्षियो! तुक कौन
लाने कहा मै चैतन्य स्वप्रकाश तुम सहित सर्वका सा
स्वरूपहूँ। हे विष्णु! तुमको लज्जा नहीं आई ? जो माया
पंचभूतरूप यह शरीर मनादि संघात तो जड है और आत्
से अगोचर है; कौन तुमको उत्तर देवे कि, यहहै! विष्
तुम्हारा क्या प्रश्न है ? कोकिलाने कहा आप उत्तर पूर्व दे
जो पूछा "तुम कौन हो ?" जब तुमको अपने स्वरूपकी
तो तुमसे क्या पूछे ? शिवलोक विषे जाते हैं। सुना था वि
देशमें हैं, पर देखा वेदांत कहां है केवल भ्रम है ? विष्णुने
ईश्वरहूँ वेदांत और अवेदांत मुझ चैतन्य आत्मामें दोनों
प्रश्न कहो ? सबने कहा पवन स्वप्रकाश है कि, पर प्रकाश है
कहा पवनको स्वप्रकाश और परप्रकाश सिद्ध करनेवाला
है क्योंकि, प्राण चलते हैं वा नहीं चलते इत्यादि प्राणोंके
सिद्ध करनेवालाही स्वयं है; अन्य नहीं, सत्को असत् औ
त्को सत् कैसे कहैं ? कोकिलाने कहा सर्वका सिद्धकरता
विष्णुने कहा हे कोकिला! सुषुप्ति मूर्छामें पवन तो है, पर
चैतन्य होवे तो सुषुप्ति मूर्छादिक वा अन्य कोई शरीरादिक
व्यवहार वतलावे, सो कुछ संघातका व्यवहार नहीं वतला
न अपना, इससे पवन जड है। कोकिलाने कहा चैतन्य
पवनमें नहीं, हे विष्णु! तेरी कल्पना है, पवन तो अ
विष्णुने कहा जीव मेरा अंश है। कोकिलाने कहा आपको
क्यों करता है? अंश अंशी भाव अनित्य होताहै। जैसे पिता
अंशीभाव है, इसीसे अनित्य है। हां! महाकाशकी घटाका

है, चिनगारा अग्निका अंश है, अर्थात् वहीरूप है। विष्णुने कहा हे कोकिला! तेरा रूप क्या है?कोकिलाने कहा मैं रूप अरूपते रहित हूँ, और सर्वरूप अरूप मैंही हूँ। विष्णुने कहा जब पंचभूत नाश होते हैं, तब पवन कहां है? पुरुषमें पवन नहीं। कोकिलाने कहा पुरुष चिदाभास किससे प्रकाश रखता है? विष्णुने कहा मुझ पुरुषोत्तम चैतन्यसे। कोकिलाने कहा तू किससे प्रकाश राखता है? विष्णुने कहा मैं स्वयं हूँ। कोकिलाने कहा असत् मत कह यह आपसे आपही पवन ईश कथन चिंतनको सिद्ध करे है। इससे पवन स्वयंप्रकाश है।

तब ब्रह्मा विष्णु सहित सर्व विलासपूर्वक शिवलोकमें शिवके पास गये। सबने कहा हमारे रूपको हमारी नमस्कार है। शिवने कहा न तुम सब और न मैं, केवल मैं शिव हूँ वा सर्व मैंही हूँ। सब तूष्णीं हुये। शिवने कहा हे रूप! मेरे यह क्या कौतुक है? सबनें कहा आप मंगलरूप हो और अपक्षपात हो,कोकिला पवनको स्वप्रकाश कहता है और हम कहते हैं स्वप्रकाश हमारा स्वरूप चैतन्य है; सो आप कहो स्वप्रकाश कौन है? शिवने कहा प्रथम तुम आपसमें प्रश्न उत्तर करो पीछे मैं उत्तर दूँगा।

हंसने कहा यह दर्शन अदर्शन, रूप अरूप मेरा है और मैं सर्व दर्शनादिकोंसे रहित हूँ; जैसे स्वप्नद्रष्टा सर्व स्वप्नरूपभी है और रहित भी है। इससे मुझ चैतन्यकी आश्चर्य महिमा है। कुलंगने कहा आश्चर्य होना, न आश्चर्य होना, सर्व रूप आपको जानना, असर्व रूप जानना, वा सर्व असर्वसे अतीत जानना, वा आपको सत् चित् आनंद जानना, वा असत् जड दुःखरूप जानना, तथा पवनको स्वप्रकाश मानना, अन्यको पर प्रकाश मानना, तथा आत्मा ब्रह्मको स्वप्रकाश साक्षी मानना, अन्य दृश्यको परप्रकाश मानना, अहं त्वं

परोक्ष अपरोक्ष मानना इत्यादि, मनकी मानिन्दी है जो
अवाचपद है। जो मनकी सर्व मानिन्दीसे परे है सोई अवाङ्मन
तुम्हरा हमारा तथा सर्व जगत्का, तथा ब्रह्मा, विष्णु, शिव
का स्वरूप है; तिसको आपना आत्मस्वरूप जानो।

शिव ब्रह्मा विष्णु आदिक यह अमृतरूप वचन सुनकर
प्रसन्न हुये। शिव बोले हे कोकिला! तू धन्य है निश्चय
पुरुषको तुझ जैसाही दृढ चाहिये झूठ भी सच कर दिखलाया
शास्त्र, अपने अनुभव विचारसे जो निश्चय हुआ है, सोई
तिससे परे सत्का निर्णायक कोई नहीं इससे पुरुषको सत्
त्याग कदाचित् भी न करना चाहिये। हे कोकिला! तू
रहित होकर विचार देख पवन तुझ चैतन्यसे प्रगट हुआ है,
किसी पवनादिकोंसे प्रगट नहीं हुआ। इससे तूही चैतन्य
है, अन्य नहीं। अपने स्वरूप ऊपर पवनको स्वप्रकाश
है? लज्जा तुझको नहीं आती कोकिलाने कहा अस्ति भाति
ब्रह्मरूप आत्मा है; सोई स्वयंरूप है। इससे घटभी विधि
प्रकाश है; पटभी स्वयंप्रकाश है; तृणभी स्वयंप्रकाश
नामरूपभी अस्ति भाति प्रियरूप कर स्वयंप्रकाश रूप है
क्या स्वप्रकाश रूप नहीं? किंतु स्वयंप्रकाश रूपही है क्यों
भाति प्रियरूप ब्रह्मात्माहि स्वयंप्रकाश है और पवनादिक
प्रियरूप है पृथक् नहीं, जो पृथक् होवे तो पर प्रकाश
पवनभी स्वप्रकाशरूप है। इस दृष्टिको लिये मैं पवनको
कहतीथी, पवनको आत्मासे भिन्न कर स्वयंप्रकाश नहीं
यह कहकर कोकिला तूष्णीं हुई।

पराशरने कहा हे मैत्रेय! इतनी कथा कहकर पुनः
कहा हे पुत्र! निश्चय जो चाहिये ऐसाही दृढ चाहिये,

जो कहता है, सुनता है चिन्तन करता है सो सब अकार्थ है। कहता है "मैं द्रष्टा सर्व दृश्यका हूँ, तथा निर्विकार बंध मोक्षसे रहित हूँ, मुझको किंचित् मात्रभी निवृत्ति और मोक्षकी प्राप्तिवास्ते कर्तव्य नहीं; मैं चैतन्य निष्कर्तव्य निर्विकल्प हूँ" पर इस कथन चिंतनपर दृढनिश्चय नहीं तो व्यर्थ है, तिसने अपने स्वरूप अमृतको नहीं पान किया क्योंकि स्वभावसे बंध मोक्षसे रहित, जब आपको मन शरीरादिक संघात तथा संघातके धर्मोंसे जुदा सम्यक् जानता है, तब बंधकी निवृत्ति मोक्षकी प्राप्ति वास्ते सर्वका यत्न है, तिस यत्नसे रहित हुआही शांत होताहै, अन्यथा नहीं। हे कच! तू आप सहित सर्व शिवरूप जान? कचने कहा हे पिता! दृढनिश्चय होना न होना, सर्व रूप जानना; तथा न जानना यह अंतःकरणका धर्म है और मैं चैतन्य निश्चय अनिश्चयका प्रकाशक अवाङ्मनसगोचर हूँ, बुद्धिका धर्म निश्चय अनिश्चय मुझको स्पर्श नहीं करसक्ता। बृहस्पतिने कहा हे पुत्र! सर्व इंद्रियोंके व्यवहार होते वा न होते, सर्व कल्पित नाम रूप संसारका अधिष्ठान होनेपर भी,अवाङ्मनसगोचर संसारसे अपने प्रत्यक् आत्माको, अवाङ्मनसगोचर सम्यक् जानना ही ज्ञान निश्चय है; यही परमभक्ति है। हे पुत्र!शरीर नाश हो तोभी अपना सत् निश्चय न त्यागना और पिता पुत्रका अहंकार भी त्याग। तू चैतन्य आत्मा है, न तू किसीका पुत्र है, न किसीका पिता है, यह संसार भ्रममात्र है जैसे स्वप्नद्रष्टा सर्व स्वप्न प्रपंचरूपभी तिससे अगोचरही है स्वप्नवत् पिता पुत्रादिरूप भी तूही है। हे पुत्र! तेरा स्वरूप आत्मा स्वतः सिद्ध सुख दुःख रूप बंध मोक्षसे रहित; निर्विकार, निर्विकल्प है, आकाशकी समान। तुझ चैतन्य सर्वके साक्षीको बंध मोक्ष वास्ते किंचित् मात्रभी कर्तव्य नहीं; जैसे स्वप्नद्रष्टा चैतन्यको स्वप्न प्रपंचकी बंध मोक्षकी निवृत्ति प्राप्ति-

वास्ते, किंचित्‌भी यत्न नहीं (भ्रम विना) जैसे किसीके कंठ
है और भ्रमसे खोया जानता है और आपको दुःखी कहे
उसकी प्राप्ति वास्ते यत्न करता है, परन्तु माला खोई जा
निवृत्तिवास्ते और मालाकी प्राप्तिवास्ते, किंचित मात्रभी
कर्तव्य नहीं।

कचने कहा हे पिता! जो तुम कहो सो मैं करूं।
कहा हे पुत्र! आप सहित सर्वको आतमस्वरूप सम्यक्
आपको पंचकोश रूप त्रिपुटी सहित; शरीरका तथा
सुषुप्ति आदि सर्व प्रपंचका साक्षी जानना वा साक्षी
छोडके केवल आपको अवाचपद सम्यक् जानना। वा न
हूँ, न जगत्, केवल चैतन्य स्वयं प्रकाश मैं आत्मा हूं
तप है। वा इस तपका साधन भूत, अन्नमयादि कोशोंका
त्माका, अन्वय व्यतिरेक युक्ति करके, जाग्रतादि अवस्था
को भिन्न जानना। साधनरूप इस विचाररूपी तपको
करोगे, तब पूर्वोक्त परम तपरूप फलको पाओगे। इस
तपके, शम दम वेदाध्ययनादि अनेक साधन हैं, यही
यथार्थ जान और मनमें राख। पूर्ण तप अपने स्वरूप
ना है। जब देहाभिमान परिच्छिन्न दूर हुआ पीछे जो शे
वाच पद है। वही अपना रूप है। हे पुत्र! बंध मोक्षरू
भयरूप तप मनसे दूर होजाना इस सम्यक् अधिष्ठान
परमतप है। हे कच! त्वंपद नाम जीवपनेका अभ्यास
नाम ईश्वरपनेका सभ्यास त्याग और जहां जीवत्व ईश्वरत्व
नहीं ऐसे असिपद, ब्रह्मरूप चैतन्य अवाचपद आत्मा
जान! जैसे जीव ईश्वर स्वप्नके, स्वप्नद्रष्टा चैतन्य
होते हैं। जैसे घटाकाश मठाकाश, आकाश मात्रमें संज्ञा

कहा हे पिता ! संत कहते हैं बुद्बुदा नदीरूप नहीं होसक्ता, जल कहें तो बनता है, तुम कहते हो--अपने बुद्बुदेरूप जीवत्वको त्याग ब्रह्मरूप समुद्रहो । बृहस्पतिने कहा हे पुत्र ! इन स्वप्नकी बातोंमें तू स्वप्नद्रष्टा बंध मत हो क्योंकि त्वम्पद, तत पद और असिपद, केवल इनका मनन तुझ चैतन्यसे पृथक् कहनमात्र है । जैसे नदी, तलाव, समुद्र जलसे भिन्न कहनमात्र हैं । जैसे स्वप्नका जीव ईश्वर ब्रह्म स्वप्नद्रष्टा चैतन्यसे पृथक् कहनमात्र है। हे पुत्र ! तुझ चैतन्य लालकी जीव, ईश्वर, ब्रह्म, दमकां है। तू चैतन्य अपनी महिमामें आप स्थित है। कचने कहा हे पिता ! जो यह तीनों कुछ नहीं, तो जीव, ईश्वर; ब्रह्म, भेद संतोंने क्यों कहा है ? बृहस्पतिने कहा हे पुत्र ! स्वप्नके संतोंने स्वप्नमें जीव ईश्वर ब्रह्मकी कथा कही, तो तुझ स्वप्नद्रष्टा चैतन्यकी क्या हानि है ? जो न कही तो क्या लाभ है ? न लाभ है न हानि है । हे पुत्र ! जीव ईश्वर ब्रह्मादिक शब्दका अर्थ, तुझ अनंत चिद्; सत्, रूप आत्मामेंही घटता है इससे तूही जीव ईश्वर ब्रह्म है, अन्य नहीं । हे पुत्र संतोंने जो कल्पना तत् त्वं असिपदकी की है, सो जीवोंके कल्याणवास्ते की है। इनके विचारसे निज स्वरूपको पाता है । कचने कहा हे पिता ! एकही चैतन्यके तीन भेद, देखकर संतोंने कहा है कि, सुनकर ? बृहस्पतिने कहा हे पुत्र ! सबने सुनकर कहा है क्योंकि आपसे भिन्न कौन है ? जो एक और दो कहे । कहना चिंतन करना मन वाणीका कर्म है । देखना सुननादि श्रोत्र नेत्रादि इन्द्रियोंका कर्म है । तू चैतन्यस्वरूप आत्मा मनादि सर्व इन्द्रियोंसे अगोचर है । तुझ चैतन्यको कौन देखे तथा कौन सुने ? कचने कहा तुम्हारे वचनसे आश्चर्यमान हुआ हूँ । जो कुछ संतोंने कहा सो निर्बीज निकला, तिस स्वप्नके सत्संगते क्या लाभ है ? बृहस्पतिने कहा हे पुत्र ! संतोंमें असंभावना मतकर। संसारसमुद्रसे तर-

नेको सत्संग नौका है। सत्संगसे आत्मविचार होता है। ज
कर आत्मा स्वरूप सम्यक् अपरोक्ष जाना तब सत्संग कहां पक्ष
वास्तवसे तो ऐसे है; जैसे स्वप्नकेही गुरु शास्त्र संत हैं, तिनका
स्वप्नकाही है, मुमुक्षु बोध लेनेवाला तथा बोधसे पूर्व अ
अज्ञान जन्मबंध तथा बंध मोक्ष स्वप्नकाही है। सारांश
अपने सच्चिदानंद स्वरूप आत्मासे जो कुछ पृथक् प्रतीत
सो सर्व स्वप्न नाम मायामात्र मिथ्या है, भ्रम है। हे पुत्र
स्वप्नसे जाग्रत् हो। कचने कहा हे पिता! कथा उन पत्रि
जो अमृत समान है। बृहस्पतिने कहा तू निश्चय नहीं क
क्या कहूँ? कचने कहा तुम्हारे संगसे मेरी बुद्धि नहीं र
कौनकरे? परन्तु तुम्हारे संगसे मुझको यह अनुभव हुआ है
"मैं चैतन्यरूप ब्रह्मात्मा, निरुपाधि, अक्रिय, असंग हूँ श
बाल, युवा, वृद्धादि तथा शरीरसे असंग तिनका द्रष्टा हूँ।
पमें न दिन है न रात्रि है; उदय अस्तसे रहित हूँ! न हेय
देय है, न जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति है। न मैं स्थूल सूक्ष्मकार
तात्पर्य यह कि, कार्य कारण संघातरूप जगत् मैं नहीं, मैं
जगत्का द्रष्टा हूँ। वा आस्ति भाति प्रियरूप द्रष्टा दर्शन
मैं चैतन्यही हूँ तथा द्रष्टा दर्शन दृश्यसे परेभी मैं चैत
अवाङ्मनसगोचरभी मैंही चैतन्य हूँ, और अवाङ्मनस
मैं चैतन्यही हूँ। मुझ चैतन्यकी महिमा अवाचपद है, वा
कहूँ? पर ब्रह्म यज्ञकहो, मैं कानों विना सुनता हूँ, तुम क
कहो? बृहस्पतिने कहा मेरे संगने तुझको फल दिया।
अहंकार तूने विचाररूप अग्निसे जलाया और आप
ब्रह्मयज्ञ सुन।

पराशरने कहा हे मैत्रेय! बृहस्पति कहने लगा कि, हे पुत्र! सब पक्षी एकभाषा कहने लगे कि, हमारा स्वरूप है सो न ग्रहण किया जाता है न त्यागाकिया जाता है। बंध, मोक्ष, ज्ञान, अज्ञान, माया, अमाया, हमारे स्वरूपमें नहीं और सर्व हमहीं हैं। कुलंगने कहा, जो कुछ तुम कथन चिंतन करतेहो सो मेरा स्वरूप नहीं, तिससे मैं चैतन्य अतीतहूँ, जो तुम कथन चिंतन करते हो सो सब उपाधि है। सबने कहा उपाधि, अनउपाधि, धनी, दरिद्री, पाप, पुण्य, हमहीं हैं और इनसे रहितभी हमहीं हैं। दिन, रात्रि, क्रिया, अक्रिया, करता, अकरता, भोक्ता, अभोक्ता, योग, अयोग सब हमहीं हैं। भूत भविष्यत् वर्तमान जो कुछ है सो सब हमहीं हैं और सर्वसे अतीतभी हमहीं हैं; जैसे स्वप्नद्रष्टा सर्व स्वप्नप्रपंचरूपभी है और तिस स्वप्न जगत्से अतीत भी है। तैसे अस्ति, भाति, प्रियरूप, सर्व हमहीं हैं; सर्व नाम रूप कल्पितका अधिष्ठान साक्षी द्रष्टा होनेसे सर्वसे अतीत है। कोकिलाने कहा तुम सब वायुमें घरेघट शब्दके समान शब्द करते हो क्योंकि जो पूर्ण है सो क्या कहे?सबोंने कहा हे कोकिला! जो संतोंने कहा है सो क्या पूर्ण नहीं ?कोकिलाने कहा, कहना, चिंतन करना, द्वैतमें होता है; संतपद अवाच्य है। संत अनिच्छित हैं, चाहना नहीं राखते, तो क्या कहैं, कहना चाहनामें है। सबने कहा आपतकामवचन करता है कि,नहीं ? कुलंगने कहा सम्यक् अपने ब्रह्मरूप आत्मा के अपरोक्ष ज्ञाता पुरुष पर, शास्त्रकी विधि नहीं वचन करे वा न करे, तिसका द्रष्टा कोई अन्य नहीं,आप स्वयं है।मयूरने कहा ब्रह्मा, विष्णु, शिव यह आपतकाम हैं, इसीसे श्रेष्ठ हैं। कुलंगने कहा हे साधो! सर्वथा विचारें तो मनादिकोंका साक्षी चैतन्य आत्माही आपत् काम है क्योंकि आपत् काम होना,और अनापत् काम होना; सब मनके स्वभाव हैं; तिनका साक्षी आत्मा निर्विकार निर्विकल्प है; तिसमें आपतकाम अनापतकामादि नहीं । शरीरमें भी आपतकामता

तथा अनापत्कामता नहीं क्योंकि जड विकारी है। इसकारण
अचाहना मनविषे है और मन असत् है। इससे तिसका कहना
असत् है।जबतक शरीर है, तबतक सर्व रीतिसे आपतकाम
सकता, चाहे ब्रह्मा विष्णु शिवादिक होवें। देहधारी किसीमें
आपतकाम होता है और किसीमें अनापत् काम होता है
अनुभव सिद्ध है।इस हेतु मनके धर्म आपत् अनापत् काम
आत्मांही सर्वरूपसे आपत् काम है। शिवने कहा हे कुलंग
पिता तेरे कौनहैं? कुलंगने कहा मैं चैतन्य आपही पिता
रूप हूँ, तिनसे रहित भीहूँ। सर्व नाम रूप दृश्य रूपी
नाम कारण मैं चैतन्यहीहूँ, मेरा पिता नाम कारण कोई नहीं
जैसे स्वप्नद्रष्टाही स्वप्नके निद्रारूप अविद्या कारण माता पिता
आपही है; निद्रारूप अविद्यासे रहित तिनसे अतीत भी है
स्वप्नप्रपंचका पिता नाम कारण भी आपही है, तिसका
कारण और कोई नहीं।शिवने कहा तेरा गुरु कौन है?कुलंगने
चैतन्य गुरु शिष्यभावसे रहित, सर्वदृश्य जडका गुरु
करनेवाला हूँ; तथा नियामक हूँ। गुरु शिष्य भी मैं हूँ,
स्वप्नवत्। हे शिव! यह सर्व दर्शन मेरा है,मैंही चैतन्य
स्वयंप्रकाश स्वरूप भी हूँ। शिवने कहा जाति तेरी क्या है?
कहा अजात हूँ, जाति उपाधि है तथा मलीन है, मैं चैतन्य
हूँ तथा माया तत्कार्यरूपी मलसे रहित हूँ। हे शिव! तेरा
कहन मात्र है, मैं अवाचपद हूँ।

शिवने विष्णुसे कहा कुलंग क्या कहता है? विष्णुने कहा
का मूल उखाडता है क्योंकि आदि हम तीनों देवताओंको
पीछे दृश्यको; इससे इसका वचन सुनना योग्य नहीं।
क्या भय है? हम चैतन्य इसके आत्मा हैं, अपने

खाड नहीं सक्ता। नामरूप दृश्यको तो तुम भी उठाते नाम असत कहते हो, आत्माको सत कहते हो, सोई बात यह कहता है। धन्य ! जो सम्यक् स्वरूपको जानता है। मैं सर्व त्रिलोकीको ग्रास महाप्रलयमें) करता हूँ पर जिसको अहंकार रहित सम्यक् निजबोध आ है सो मुझको ग्रास करलेता है। हे विष्णु! इसीपर एक कथा सुनो।

।राजा भरतकी कथा।

एक समय भरत राजा (जिसके नामसे यह भरतखंड नाम पड़ा) सो राज्य छोडकर वनको गया; वहां देखा तो कितनेक तपस्वी रीर इंद्रियोंको कष्टदेनारूप तपमें आरूढ हैं; केते ध्यानमें लगेहैं। क और संत देखा जो आत्मविचारमें है और शिष्योंको उपदेश रता है कि, न तू, न मैं, न यह जगत, एक चैतन्य आत्माही है। जाने निकट जाकर हाथ जोडके कहा कि, हे विद्वन्! मुझको भी आत्मउपदेश करो! इस असार संसारसे मुझको वैराग हुआ है, म्हारी शरण आया हूँ। संतने कहा ज्ञान उपदेश यही है कि, हूँ मैं हंकारको त्याग; अर्थात "न मैं हूँ, न यह जगत् है एक चैतन्य ष्णुही है" ऐसा जान। राजाने विचारा जो संत कहते हैं सो सत , पर जब सर्व विष्णुव्यापक चैतन्य है, तो मैं कौन हूँ, अथवा मैं ष्णुही हूँ। पुनः विचार कि, विष्णुको मैंने जाना है, मैं जाननेवाला कौन हूँ? पुनः राजाने संतको कहा हे विद्वान् पुरुष! विष्णु शिवको जाननेवाला मैं कौन हूँ; संतने कहा तू ब्रह्म है; यह वचन सुनकर चारा कि, जैसे मैं विष्णुको जाना था, तैसे ब्रह्मको जाना, पर ापको नहीं जाना कि, मैं कौन हूँ। संतने कहा हे भरत! तत्त्वं सिपद अर्थात् जीव, ईश्वर ब्रह्म, तुझ चैतन्य आत्मासे ही सिद्ध ते हैं, जो तू चैतन्य आत्मा न होवे तो इनको कौन ाने। परन्तु तुझ, चैतन्य आत्माका कोई सिद्ध करनेवाला

२३

नहीं; तू स्वयंप्रकाश स्वरूप है क्योंकि, तुझ चैतन्य
सर्वके द्रष्टाका और कोई द्रष्टा है नहीं, इसीसे तू स्वयं
हे भरत! जो कुछ जीव, ईश्वर, ब्रह्म, जगत्, तत्कारण अ
वाणीका कथन चिंतन है तिससे तू चैतन्य आत्मा अलग ही
गा, इसीसे तू मन वाणीका अगोचर है। जीव, ईश्वर, ब्रह्म
हैं, तू चैतन्य मात्र निर्विशेष है; जैसे घटाकाश, मठाकाश, म
निर्विशेष, (निरुपाधिक,) आकाशमात्रसे ही, सब शेष वि
क्योंकि सविशेष नाम घट उपाधिवाला है इससे तू विशे
हुआ है चुप हो। भरतने कहा तूष्णीं अतूष्णीं आदि स
मन वाणी शरीर आदि, संघातका है, मुझ चैतन्यका न
कहा तूष्णीं नाम निर्विकल्पका है, सो तू चैतन्य आत्मा स
निर्विकल्प है क्योंकि, मनादिकोंकी निर्विकल्पता और सवि
साक्षी द्रष्टा है; इससे अपने आत्माको स्वाभाविक निर्विकल्प
इसीका नाम तूष्णीं है। भरत यह संतका वाक्य सुनकर
लीन हुआ।

शिवने कहा हे विष्णु! काल पायकर धर्मरायने दूत
भरतको ले आओ। धर्मरायकी आज्ञासे जाकर दूतने दे
भरत नाम मात्र भी नहीं; अंतर बाहर केवल शिव है।
कि, "मैं भरत हूं, इस परिच्छिन्न अहंकारसे रहित आ
प्रियरूप मैं चैतन्य आत्मा हूँ, सर्व मनादिक दृश्यसे रहित
दिक सर्व दृश्यका द्रष्टा, अवाङ्मनसगोचर स्वप्रकाशरूप
तिसका दृढनिश्चय था। अवाङ्मनसगोचर निश्चयभी मन
कथन चिंतन रूपही है सो मैं नहीं; जो मैं सोई हूँ, क
क्या करूँ? दूत देखकर आश्चर्य हो रहा कि,
वस्तुको शरीरसे निकासकर धर्मरायके पास लेजा
धर्मरायके निकट गया और कहा—हे धर्मराय! तु स
मार; जो लोकोंको हमारे हाथसे आत्मउपदेश क

देते हैं क्योंकि तेरी आज्ञासे जब हम भरतके निकट गये उसके देह अभिमानको सर्व रूपकर खोजा, पर न पाया। देहाभिमान विना ल्यावें किसको? हे धर्मराय! तेरी फाँसमें देहाभिमानी नहीं पडता है, अन्य नहीं। तात्पर्य यह कि, इस पंच भौतिक संघातको अपना अहं अभिमान करनेसेंही, यह जीव स्वर्ग नरकको जाता है, अन्य नहीं। कि, जो दूसरेकी वस्तुमें स्वत्त्व करता है यह जगत् में प्रगट है न्यायपूर्वक जेलखानेमें जाता है। हे विष्णु! मैं विचरता हुआ भरतके पास गया, सूक्ष्मदृष्टिसे देखा तो यही कथन चिंतन करता था कि, सर्व मैं चैतन्यही हूँ और सर्वसे अतीतभी हूँ, पर यहभी कथन चिंतन मन वाणीका है, मैं चैतन्य इनसेभी अतीत हूँ, पुनः इस अतीतपनेसे भी अतीत हूँ। मैंने कहा हे भरत! तू धन्य है जो स्वरूपसे जुडा है। भरतने कहा जुडना न जुडना मुझ चैतन्यमें नहीं यह मायामात्र दृश्यमें है। मैंने कहा जब सर्व तूही चैतन्य है तो दृश्य अदृश्य जुडना अजुडनादिभी तूही है। भरत तूष्णीं हुआ (तूष्णीं नाम निर्विकल्प अवस्थामें प्राप्त होनेका है) पुनः मैंने दो तीन वार प्रश्न किया कि, हे भरत! कौन तू है? उत्तर कुछ न दिया क्योंकि तिसकालमें परिच्छिन्न भरतभाव नहीं था। किंचित् काल पीछे बोला बडा आश्चर्य है कि, हे आप शिव और पूछता हैं तू कौन है? हे शिव! भरतको ज्ञानरूपी कालने खाया और कालको मैं चैतन्य स्वयंरूपने खाया क्योंकि भरतनाम अज्ञानकाहै और अज्ञानको ज्ञान नाश करताहै, सो ज्ञान मुझ चैतन्य अधिष्ठानमें लीन होजाता है; जैसे रज्जुके अज्ञानको रज्जुका ज्ञान नाश करता है और वृत्तिरूप ज्ञानभी मायाका कार्य होनेसे, कल्पित रज्जु सर्पवत् है। इससे सो ज्ञानभी ज्ञानस्वरूप चैतन्य अधिष्ठानरूप है। मैंने कहा हे भरत! मैं तेरे पास आया हूँ, कुछ आत्मनिरूपण कह। भरतने कहा निकट दूर मुझ चैतन्यमें नहीं। अवाचपदको क्या कहूँ? और मुझसे भिन्न कौन है जो कहूँ, स्वयंरूपहूँ।

जीव दुःखी क्यों होता है?

शिवने कहा हे विष्णु! जिस किस योनिमें स्थित हुआ
बुद्धि आदिकोंका साक्षी चैतन्य आत्मा, निर्विकार निर्वि
मोक्षादि संसार धर्मोंसे रहितही स्थित है; परन्तु जबतक आ
महिमाको नहीं जानता, तबतक (संसारी भ्रम कर) आप
मानता है। जब पूर्वपुण्योंके प्रतापसे सत्संगद्वारा अपने
सम्यक् अपरोक्ष जानता है; तिस तिस योनि शरीरके अ
रहित होकर तथा सर्वविश्वका आत्मा होकर बंध मोक्षादि
धर्मोंसे मुक्त होता है; तिसको कौन नाश करे? विष्णुने य
सुनकर कहा हे शिव! मैं सर्व जगत्की पालना करता
जगत्को संहार करता है, ब्रह्मा सर्व जगत्की उत्पत्ति क
जो आपत्काम सम्यक् अपने आत्माका ब्रह्मरूप कर अप
वान है, सो जगत् सहित हम तीनों देवतोंका पालक
अपनी सत् चित् आनंदस्वरूप स्फूर्तिकर, सर्व असत् जड़
दृश्यको स्फुरना करता है नाम सत् चित् सुखरूप प्रतीति
जैसे स्वप्नद्रष्टा अपने स्वरूप प्रकाश कर अप्रकाश स्व
प्रकाशमान करता है। इसीपर एक कथा सुन।

एक राजपुत्रकी कथा।

विष्णुने कहा हे शिव! एक राजा था और एकही तिसक
सो बालपनेमें मेरी उपासना करताथा। बैठते उठते खाते पि
गते सर्व कालमें विष्णु विष्णु कहता रहता था और राजवि
सिखता नहीं था। पिताने कहा हे पुत्र! जब मैं शरीर त्यागूँगा
कौन करेगा? सर्व कालमें विष्णु विष्णु कहने और भूतके स
के पीछे दौडनेमें क्या लाभ है? जो कोई किसीका नामले बा
हैं वह क्रोध करता है। जिसका तू दिन रात्रि

है क्या वह क्रोध न करेगा ? किंतु करेगाही । हे पुत्र ! विष्णु शब्द जो वाचक है सो किस नाभी वाच्य अर्थका वाचक है; यह तुझको विचार करना चाहिये । विष्णु नाम सत्,चित्, आनंद,व्यापक वस्तु-का है, सोई बुद्धि आदिकोंका साक्षी आत्मा तेरा स्वरूप है । सो अपने ऐसे स्वरूपकी प्राप्तिवास्ते जंगलमें जाना और आत्मविचार विना और उपाय करना, पुनः पुनः अपना नाम लेना लज्जाका काम है । हे पुत्र ! विष्णु तेरा आत्मा है,जो तू विष्णुको अपने आत्मासे पृथक् जानेगा तो विष्णु अनात्मा सिद्ध होगा, तो तेरी भक्तिका लक्षण सिद्ध न होगा । इस प्रकार विद्वान् पिताने अनेक रीति कही पर पुत्र वैसा का वैसाही रहा । कछुक काल पायकर पिता तिसका कालवश हुआ । पीछे शत्रुओंने राज्य लेलिया, पर राजाके पुत्रको कुछ हर्ष शोक नहीं हुआ मेरे स्मरणमेंही उन्मत्त रहा । हे शिव ! मैं तिसके पास गया और कहा हे पुत्र ! तू राज्य कर और प्रजाके पालनाका बंदो-बस्त मैं करूंगा । उसने कहा मैं तेरीभी चाहना नहीं रखता,तो राज्य की क्या बात है ? तुझसे विशेष क्या वस्तुहै ? जो तुझको त्यागकर उसको लूँ । राज्य सहित त्रिलोकीको मैंने तृण समान जाना है । उस की तो यह अवस्था हुई वनोविषे विचरने और आप सहित सर्व विष्णुही कथन चिंतन करने लगा ।

। ज्ञान तथा उपासनादिका स्वरूप और फल ।

कचने कहा हे पिता ! आप सहित सर्व विष्णु आत्मा चैतन्यही है यही ज्ञान है।बृहस्पतिने कहा हे पुत्र ! "आप सहित सर्व विष्णु आत्माही मेरा स्वरूप है" यही अर्थ सम्यक् बुद्धिमें जचजानेका नाम ज्ञान है । यह पूर्वोक्त अर्थ बुद्धिमें नहीं जाचना और विष्णु शिवादिकों को अपने आत्मासे पृथक् मानके तिनका नाम और स्वरूप कथन चिंतन करनेका नाम भेद उपासना(भक्ति)है । आप सहित सर्व विष्णुही

है, वा ब्रह्म है वासुदेव है इत्यादि तिनको अपनेसे अभेद संभा-
परमात्माके सर्व रूपताका जो निरंतर कथन चिंतन है, सो
उपासना भक्ति कहाती है। मैं चैतन्य ब्रह्मरूप आत्मा
भाति प्रिय सर्वरूपभी हूँ और असर्वरूपभी हूँ। सर्व जग
चैतन्य आत्माही उत्पत्ति पालना संहार करता हूँ। तथा
असंग हूँ। सारांश यह कि, त्रिपुटीरूपभी मैं हूँ, त्रिपुटीसे र-
हूँ, अवाङ्मनसगोचरभी मैं हूँ वाङ्मनसगोचर भी मैंहीं हूँ।
गोचर अवाङ्गमनसगोचर शब्दसे अतीत भी हूँ, तिस अतीत
भी अतीत हूँ इत्यादि अर्थ अपरोक्ष सम्यक् अंतःकरणमें ज-
नाम ज्ञानहै। इसी अर्थकी अपने स्वरूपमें संभावना करनेका
ग्रह उपासना है और तत्त्वदर्शी अभेद उपासना कहते हैं। है
हंग्रह उपासनाके निरंतर चिंतन करते हुये ज्ञान नहीं प्राप्तहो
अश्वमेधादि यज्ञोंका फलरूप, वा अहंग्रह उपासनाकाफलरूप
त पुण्योंका फलरूप जो ब्रह्मलोक सप्तमी व्याहृति है तिसको
है। तहां अनन्तब्रह्माकी आयुपर्यंत भोगोंको भोगकर, ब्रह्माके
वा सत्वगुणकी तहां प्रधानता होनेसे, स्वतःही पूर्व अहंग्रह
प्रतापसे सम्यक् अपने स्वरूपका अपरोक्ष ज्ञान होता है। पश्चा-
साथ विदेह कैवल्य मोक्षको प्राप्त होता है; तिसकी पुनरावृत्ति
इत्यादि शास्त्रोंका लेख है। जिसको अहंग्रह उपासना करते
मान जन्ममें अपने ब्रह्मरूप आत्माका सम्यक् अपरोक्ष बोध
सो शरीर होतेही आपको, बंध मोक्षादि संसारसें रहित शिव
है। जीवन्मुक्ति और विदेहमुक्ति तिसको तुल्य है क्योंकि जीवन्मु-
विदेहमुक्ति अनात्म, मन शरीरादिक संघातके धर्म हैं आत्मा
जो पूर्वजन्मोंमें कृत्यउपासक हैं उसको श्रवणमात्रसे, वा श्र-
श्रवणविना वा वेदांतश्रवण मात्रसे, सम्यक् अपरोक्ष स्वरूप
धक रहित ज्ञान होता है।

हे पुत्र ! वह राजाकापुत्र रात्रिको वनमें विचरताथा, तिस समय तिसी वनमें दत्त विचरते हुये स्वभावसे राजाके पुत्रके पास आये और कहा इस समय तू कौन है ? राजपुत्रने कहा मैं विष्णुका दास हूँ । दत्तने कहा बडा आश्चर्य है वह स्वामी और तू सेवक परन्तु आपाअहंकाररूप मलीनता तेरी दूर न की, दास स्वामी भावरूप उपाधि दूर न हुई । राजपुत्रने कहा जब सर्व विष्णुहै तो तूभी विष्णु है, मैं भी विष्णुहूँ, यह जगत् भी विष्णु है, दूर समीप भी विष्णु है । पर कहो उपाधि मलीनता (नामरूप) कैसे दूर होवे ? दत्तने कहा जब सर्व विष्णु है, तो तू बीचमें कौन है, जो आपको दास माना है, मानो विष्णुको तूने खंड खंड किया है । यही उपाधि मलीनताभ्रम है कि, एक अस्ति भाति प्रियरूप विष्णु आत्मा मैं दास यह दासस्वामी भाव बनानाही भ्रमहै । हे राजपुत्र ! सत् चित् आनंदरूप विष्णु तेरा रूप है, आपा अहंकारको त्यागकर देख । पीछे शेष जो अवाचपद है, वही तेरा स्वरूप है । दासस्वामी भाव कथन चिन्तन संघातका धर्म, स्वप्नवत् है । तू स्वप्नद्रष्टा चैतन्य स्वप्न व्यवहारोंमें क्यों बन्धमान होता है ? तथा क्यों भयमान होता है ? जब विष्णुको तू अपना आत्मा सम्यक् अपरोक्ष जानेगा तो विष्णु प्रसन्नहोगा क्योंकि विष्णुका स्वरूप यथार्थ यही है, अन्य मायामात्रहै । मायाके भजन चिन्तनसे क्या लाभ है ? जो लाभ होगा तो मायाकाही होगा क्योंकि कोई जैसे भावनारूप उपासना करता है, वैसाही तिसका रूप होता है । मैं सत् चित् आनंदरूप आत्मा हूँ, ऐसी दृढ निरन्तर भावना करेगा तो वही रूप होवेगा । जो इससे पृथक् भावना करेगा तो वही रूप होवेगा । राजपुत्रने कहा मुझको वैराग्य उत्पन्न हुआ है, ज्ञान उपदेश करो ? दत्तने कहा नाम रूपको त्याग नाम मिथ्या जान । प्रतीति मात्रही नाम रूपका स्वरूप है, भिन्न नहीं । अपनेको नाम रूपका अधिष्ठान

सत् चित् आनंद स्वरूप जान, जो कुछ नाम रूपमें सार है; जैसे स्वप्न प्रपंचका सार स्वप्नद्रष्टा है। जैसे भूषणोंका है इत्यादि अनेक दृष्टांत हैं। राजपुत्रने कहा हे दत्त! मैंने रूपको सम्यक् अपरोक्ष जाना है अर्थात् मैं मन वाणी तका द्रष्टा मन वाणीसे अतीत हूँ और मन वाणीका विषय टीरूप भी मैंही हूँ, स्वप्नद्रष्टावत्। दत्तने कहा हे राजपुत्र! जानना न जानना तू अपने स्वरूपको जानेगा, तबतक अप्राप्तिहै, जब जानना न जानना तेरे स्वरूपमें न रहा, तो स्वरूपकी प्राप्ति हुई क्योंकि तुझ अस्ति भाति प्रिय रूप जानना न जानना भिन्न नहीं? जिसको तूने जाना और जब तूही है तो किसको जाने और किसको न जाने। राजपुत्र स्वरूपविषे लीन हुआ।

विष्णुने कहा—हे शिव! मैंने अंतर्यामी रूपसे जाना राजपुत्रको अपना सत् उपदेश कर सम्यक् बोधवान् तिस राजपुत्रके पास मैं गया और कहा हे राजपुत्र! शरीरको मुझको सौंप। मैं इसकी योग क्षेम रूप पालना राजपुत्रने कहा हे विष्णु! सर्व जगत्की पालना मैं चैतन्य करता हूँ क्योंकि तुझ विष्णु नामरूप सहित सर्व जगत् आत्मासे प्रकाश रखते हैं। मुझ चैतन्य आत्माका प्रकाश नहीं, मैं स्वयं हूँ; जैसे स्वप्नद्रष्टाही सर्व स्वप्न जगत्की पालना स्वप्नके कल्पित पदार्थ कोई किसीकी पालना नहीं कर सकते चैतन्यही सर्व इस नामरूप मिथ्या पदार्थोंकी पालना करता हूँ; मैं तू मिथ्या पदार्थ कोई किसीकी पालना नहीं हे शिव! मैं तिस राजपुत्रके वचन सुनकर आश्चर्यमान् इसको क्या हुआ है। दास दास पुकारता था आप हुआ।

दत्तकी है। मैंने पूछा रूप तेरा क्या है ? कहा रूप मेरा तू है। मैंने कहा मैं कौन हूँ ? कहा मैं हूँ हे शिव! इत्यादि अनेक वचन परस्पर कहे, पर राजपुत्रको अचल बोध हुआ था अपने स्वरूपसे न चलायमान हुआ। यह अवस्था तिसकी देखकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ और अपने वांछित स्थानको गया।

बृहस्पतिने कहा हे पुत्र! इसप्रकार आपसमें आत्मनिरूपणकर ब्रह्मा आदिक देवता और पक्षी आप अपने वांछित स्थानको गये।

पराशरने कहा हे मैत्रेय! तब कच अपने अवाच्य पद स्वरूपमें स्थित हुआ, तू भी तिसके समान हो। मैत्रेयने कहा मैं नहीं हूँ तो तिसकी समान क्या होऊँ ? जहाँ कुछ क्रियाकर होना है सो ठीक केवल स्वांग मात्र मिथ्या है, जो कुछ है सो आगेही स्वतः सिद्ध है, केवल जाननाही योग्य है। पराशरने कहा तू कौन है ? मैत्रेयने कहा मुझ चैतन्यसे भिन्न कौन है ? जो कहे तू अमुक है, मैं अमुक हूँ। जो किसी रीतिसे मुझ चैतन्य आत्मासे भिन्न दृश्य कहोगे, तो तिसको असत् जड दुःख रूप होनेसे, अहं त्वं फुरणा नहीं और मुझ अवाङ्मनसगोचरमें भी अहं त्वं फुरणा नहीं। अब कौन कथन चिन्तन करे ? कि, मैं अमुक हूँ। पराशरने कहा हे मैत्रेय! तू स्वरूपको प्राप्त हुआ है अपने दृढबोधके वास्ते एक कथा सुन।

भुशुण्ड राजाकी कथा।

(ज्ञानकी दृढताके हेतु.)

एक समय स्वाभाविक विचरते हुये दत्त कागभुशुंडके आश्रमम गये (कागभुशुंड एकराजा हुआ है जो सगुण विष्णुरूप रामका उपासकथा) तिसके आसनसे बाहिर सो रहे। भुशुंडके कुमार नामा पुत्रने दत्तको देखा और पिताको कहा कि, एक संत नगरसे बाहर सोया पडाहै, आपको दर्शन करना योग्य है। पुत्रका वाक्य सुनकर कागभुशुंड

अभिमानसे रहित दत्तके पास आया। देखा तो सारा शरीर सो
लिप्त है, नहीं जाना जाता यह कौनहै ? प्रश्न किया हे पीछे
तू कौन है ? दत्तसुनकर हँसा और कहा बडा आश्चर्य है। की
राम रूप ! और पूछताहै ? तू कौन है ? हे कागभुशुंड! जब पर
तो तू और मैं भी राम हैं। कागभुशुंडने कहा जब सर्व है,
पूछना अपूछना भी राम है। दत्तने कहा हे कागभुशुंड! हे शरीर
जो वर्ण आश्रम राखता होवे, तिससे पूछ ! तू कौन है ? क
कहा हे दत्त ! वर्णाश्रमकी पोटका बोझ किसीने लादा नहीं
श्रम मानना न मानना केवल मनका मननहै; जबतक श
तक कोई न कोई वर्णाश्रममें रहेगा क्योंकि, वर्णाश्रम श
हैं, जब धर्मी है तब धर्म भी है। इन दोनों धर्म धर्मीसे राम
रहित है, शरीर नहीं। दत्तने कहा हे कागभुशुंड! यही
कहता हूं कि; जो कुछ तूने अंतर वा बाहर कथन चिंतन
सो सब मनका मनन है; तू रामरूप आत्मा इससे अती
तुझको चाहिये एकांत बैठकर राम राम जप! कागभुशुं
हे दत्त ! तू आपही कहचुका है, यह सर्व नामरूप मनका
तो रसना रामराम कथन करे, मन तिस राम शब्दके अर्थ
करे, पर रामरूप आत्मा इनसे परे है, और उसमें
आत्माही है। इससे राम वा अन्य कथन चिंतन
करना रामही हुआ। पुनः भुशुंडने कहा हे दत्त ! नगर
दत्तने कहा स्थूल सूक्ष्म कारण समष्टि नगरका वा
कारण व्याष्टि नगरका तथा जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति तीनों नगर
नगरनिवासि विश्व तैजस प्राज्ञ जीवोंका, मैं चैतन्य, एक
शके समान, (सर्वका) आत्मा हूँ और सर्व मेरे आत्माहैं। मैं
चल अचल संघातका धर्म है, मुझ चैतन्य आकाशका नहीं
अचलसे अतीत सदा चल अचलका साक्षी हूँ। जो शरीर

सो ईश्वरकी भी शक्ति नहीं जो बढ घटकरे। हे भुशुंड! देहाभिमान त्यागे पीछे अवाच रामही तेरास्वरूप हैं। भुशुंडने कहा देहाभिमानसे राम की भक्ति होती है, कैसे त्यागूँ ? दत्तने कहा सुनाथा कि, कागभुशुंड परमहंस है, पर देखा तो कागहै क्योंकि स्याना काग विष्ठा परही बैठता है, माता पिताका मलरूप यह शरीर मल है, शरीराभिमानी काग है। मैं शरीरादिक हूँ, तथा शरीरके जन्म मरणादिक धर्मवान् हूँ यह चिंतनही मलका भक्षण है। हे कागभुशुंड ! जिस रामचन्द्र अयोध्यावासीका तू भजन करता है, तिसका स्वरूप चैतन्य आत्मा मैं हूँ, सो मेराही तू भजन करता है। वास्तवसे हे भुशुंड ! मुझ चैतन्यके अनेक रामादिक नाम हैं। भजन रामका यही है "आप सहित जाने सर्व वहीं है, न और पर" यह बुद्धि तुझको कहांसे प्राप्त होवे, पिता तेरा काग और माता तेरी हंसनी। तूने जाना है कि, माया मेरे निकट नहीं आती, पर मायारूप शरीरके साथ तू एकमेक होकर मायारूपही है। तेरे निकट माया कैसे आवे ? इसीको माया कहते हैं जो स्वामीदासभाव से रहित चैतन्यमात्रमें स्वामीदासभाव कल्पना। हे भुशुंड! ज्ञान दृष्टिसे वा भक्तिदृष्टिसे देख, जब तू परिच्छिन्न कुछ बनता है, तो राम भी है, जब तू नहीं; शेष जो है सो अवाचपद है, तिसका अनेक रामादि (नामीके बोध वास्ते) नाम राखते हैं। पर कह माया किसको कहते हैं ? भुशुंडने कहा रामरूप आत्मासे पृथक् जो कुछ जानना है, सोई माया है। दत्तने कहा इसीसे नित्य चित् सुख निज आत्मा से भिन्न तत् त्वं ब्रह्मकी प्रतीति करना माया है। भुशुंडने कहा हे दत्त ! संत जो यह चिंतन करते हैं, "अहंब्रह्मास्मि" यह कैसे है? दत्तने कहा यह चिंतन मनका मनन मायारूप है क्योंकि तत् त्वं ब्रह्मादिक पदोंकी इसने कल्पना की है, यह कल्पना नहीं करे तो तत् त्वं आदिक कहां हैं ? ज्ञानके प्रथम कालमें मैं ब्रह्म नहीं जीव हूँ

और ज्ञान पीछे ब्रह्म हूँ;विचार देखें तो जीव ब्रह्मसे प्रथमही
चैतन्यको सिद्धि होतीहै और इस साक्षी चैतन्यनेही जीवब्रह्म
कियाहै। जो यह प्रथम सिद्ध नहीं होता तो वृत्तिरूप ज्ञानके
नेमें ब्रह्मका अभावपना, जीवका सत्पना और ज्ञान पीछे
ब्रह्मका सत्पना और जीवको अभावपनेका कैसे अनुभव हो
नहीं होता। इससे मनके मननरूप सर्व पद इस साक्षीने
प्रकाश राखते हैं क्योंकि,ज्ञान पूर्वकालमें मनने आपको जीव
नहीं माना; इस व्यवहारकोभी साक्षी चैतन्यने प्रकाश किया;
उत्तरकालमें मननेही, आपको ब्रह्ममाना,जीव नहीं माना;यह
हार साक्षी चैतन्यने सिद्धकिया विचार देखो तो कभी जीवमा
ब्रह्म आपको मानना, केवल मनका मनन है। प्रत्यक् आत्मा
मनकी कल्पनाका साक्षी और मनके मननते परे है। जैसे
असिपद तथा सर्व स्वप्नके पदार्थ, एक स्वप्नद्रष्टासेही सिद्ध
और स्वप्नद्रष्टा सर्वसे प्रथम सिद्ध है।सुख दुःखते रहित यह
नसे प्राप्त होता है। भुशुंडने कहा रामरूप आत्मा विषे प्र
दोनों नहीं।सबमें रमण करनेवालेको राम कहते हैं, तिसमें
दोनों नहीं। हे दत्त! अंतःकरणरूपी दर्पणके मलके
अनेक साधन हैं, साधनों विना साध्य नहीं प्राप्त होता
साधनोंका साध्य है।

। मीमांसा ।

तहां मीमांसा आया और कहा कि,जो वेदोक्तकर्म नहीं क
रूप कैसे होवेगा? दत्तने कहा आत्मा अक्रियहै; शरीर जडहै,
कौन करे? कर्मोंसे रामरूप होताभी नहीं क्योंकि जो यह राम
जार वेदोक्त कर्मोंके करनेसे राम कैसे होगा? जो रामरूप
है भ्रमसे अरामरूप आपको मानता है, भ्रमकी निवृत्ति

होता है जैसे चिनगारी भ्रमसे आपको अग्निरूप न माने, तो भी भ्रमकी निवृत्तिसे वही अग्निरूप होता है। अनेक कर्म करनेसेभी अग्नि शीतलरूप नहीं होता। जल अग्निरूप नहीं होता। मीमांसा तूष्णीं हुआ।

। वैशेषिक ।

तिस समय वैशेषिक आया और कहा सर्व जगत् कालके अधीन है। दत्तने कहा कर्म है, तो अधीनताभी है, जब कर्म नहीं तो अक्रिय अविनाशी स्वतंत्र असंग आत्मामें कालका क्या संबंध है? वैशेषिक तूष्णीं हुआ।

। न्याय ।

पुनः न्याय आया और कहा जो कुछ करता है सो ईश्वर करता है। दत्तने कहा कर्म है तो करता भी है, जो कर्म नहीं तो करता कहां है? दंडसे दंडी है, दंड नहीं तो दंडी कहां है? न्याय तूष्णीं हुआ।

। पतञ्जली ।

पतंजली आया और कहा योगसे मुक्ति होती है। दत्तने कहा योग स्वप्रकाश है कि, किसीका किया होता है? पतंजलीने कहा, किसी कर्तासे योग होता है। दत्तने कहा कर्ताका क्या स्वरूप है, मन वा आत्मा? पतंजलीने कहा प्रत्यक् आत्मा असंग निर्विकार है, शेष जड चेतनके मध्यवर्ती, साक्षी चेतनके आभास सहित, अंतः-करण ही योगका करता है; आत्मा पुरुष योगका अनुभव करता है। दत्तने कहा अधिकारी पुरुषको अपनेको क्या जानना चाहिये? आत्मा कि, अंतःकरण। पतंजलीने कहा आत्मा। दत्तने कहा आत्मामें योग है वा नहीं? पतंजलीने कहा नहीं। दत्तने कहा फिर योगसे क्या प्रयोजन है? पतंजली तूष्णीं हुआ।

। सांख्य ।

पुनः सांख्य आया और कहा; नित्य अनित्य विचार करे विना स्वरूपकी प्राप्ति नहीं होती। दत्तने कहा नित्य अनित्यका विचार

द्वैतमें होता है और मनके धर्म नित्य अनित्य विचारसे आ... है साक्षी होनेसे । सांख्य तूष्णीं हुआ ।

। राम ।

लक्ष्मण सीता सहित राम आये । दत्तने कहा हे भुशुं... रामरूपहूँ, नहीं तो मुझको तथा (राम तुम दोनों जीव ... भस्म करूंगा; जैसे स्वप्नके जीव ईश्वर स्वप्नद्रष्टाके जाग्रत ... होते हैं । राम सुनकर हँसे और कहा हे भुशुंड ! निःसं... होकर कह "मैं रामस्वरूप हूँ" क्योंकि, जब सर्वरामहै तो ... है ? तूभी राम है। भुशुंड प्रसन्न होकर कहा राम कहनेसे ... दृश्य द्रष्टा नहीं होसक्ता, द्रष्टा दृश्य नहीं हो सक्ता, यह ... रामने कहा भुशुंड ! स्वप्नमें द्रष्टाही दृश्यरूप होता है और ... स्वप्नद्रष्टासे भिन्न स्वरूप कुछ नहीं । इससे वह निषेध ... स्वरूप आत्माकी असंगता तथा निर्विकारताके बोध अर्थ ... राम है, यह विधि पक्ष फलरूप है ।

पराशरने कहा हे मैत्रेय ! राम और दत्तके वचनसे भुशुं... को प्राप्त हुआ । हे मैत्रेय ! तूने कभीभी वर्णाश्रम अभिमान ... जो देहाभिमान है, तिसको न त्यागा । मैत्रेयने कहा मुझ ... विषे देह होवे वा मुझ चैतन्यका देह धर्म होवे, तो त्याग ... अनहुई वस्तुका त्याग कैसे करूँ दूसरा यह कि, मुझ ... देहाभिमान किंचित् मात्रभी हर्ज नहीं करता; जैसे स्वप्न ... मान स्वप्नद्रष्टाको हर्ज नहीं करता क्योंकि मुझ चैतन्यको ... काश होनेसे द्रष्टाका हर्ज दृश्य कुछ नहीं करसक्ता; जैसे पृथि... तेज, वायु तथा तिनके कार्य, तिनमें व्यापक असंगआकाश... करसक्ते। देहाभिमान मन करता है तथा नहीं करताहै, इन दोनों ...

का साक्षी मुझ असंग चैतन्यकी क्या हानिहै ? जो मुझमें अभिमान हो तो मैं त्यागूँ भी जो नहीं हो तो त्यागूँ कैसे ? पराशरने कहा—यह सब तू बातें बनाता है, तुझको निश्चय नहीं। मैत्रेयने कहा आपने कहा—सो ठीक है क्योंकि मुझ अवाचपदको बुद्धि निश्चय कैसे करे, बुद्धि तो नाम रूपकाही निश्चय करती है, मैं नामरूपसे रहित हूँ।

कपिल और एक राजाका सम्वाद।

पराशरने कहा हे मैत्रेय! इसपर एक इतिहास सुन! एक राजाथा वह नित्य कपिलमुनिके दर्शन करताथा। एक दिन प्रश्न किया कि, हे ऋषि! यह जगत् क्याहै ? तू कौनहै ? मैं कौन हूँ ? ऋषिने कहा न तू न मैं, न यह जगत्, एक ब्रह्मही है। तू मैं यह जगत् सब ब्रह्मस्वरूप है। राजाने कहा मैं तू जगत् नहीं तो ब्रह्म क्या है ? ब्रह्मको नहीं जानता। कपिलने कहा ब्रह्म तुझसे प्रकाश रखता है क्योंकि जब तूने शास्त्र संतोंका वचन नहीं सुना था तब तू ब्रह्मशब्दके अर्थको जानताही नहीं था। ब्रह्म शब्द वा ब्रह्म शब्दका अर्थ ग्रंथोंमें लिखरक्खा है; कोई तुझ चैतन्यसे पृथक् देशांतरमें वा सन्मुख देशमें ब्रह्म खेलता नहीं फिरता, जो जाना जावे अथवा न जाना जावे। परन्तु गुरु शास्त्रसे ब्रह्मादि शब्द और ब्रह्मादिक शब्दके अर्थ सुने पूर्व तू प्रत्यक् आत्मा था, जो तू पूर्व न होता तो ब्रह्मको सुनता कौन ? पुनः सुनकर ब्रह्मको जाना अपने आत्मासे भिन्न करके वा अभिन्न करके। हे राजन्! जो वस्तु जानने न जाननेमें आई तो जानने न जाननेवालेका प्रकाशक सिद्ध होता है, जो जाननेमें आवे सो प्रकाश्य सिद्ध होता है; जैसे नेत्र नीलादि रूपके जाननेवाले प्रकाशक सिद्ध होते हैं और रूप प्रकाश्य सिद्ध होता है। इससे तुझ प्रत्यक् चैतन्य आत्मासे ब्रह्म प्रकाश रखता है। राजाने कहा ब्रह्मको सिद्ध करनेवाला मैं कौन हूँ ? कपिलने कहा सत् चित् आनंदरूप तेरा है। राजाने कहा "सत् चित्

आनंद रूप ब्रह्म है" ऐसे श्रुति कहती है। कपिलने कहा है ते
यह पूर्वोक्त लक्षण तुझ बुद्धि आदिकोंके साक्षीमें ही घटता चैत
तूही ब्रह्म है; जैसे निरुपाधि महाकाशमें अवकाश-दातृता संच
अलिप्तता, व्यापकतादि लक्षण है, सोई घटाकाशमें घटे भा
घटाकाश महाकाशरूपही है। हे राजन्! सत् चित् आनंदरूप
वस्तुको ब्रह्म कहो, चाहे प्रत्यक् साक्षी कहो, नामांतरका भेद सुष्
का भेद नहीं। राजाने कहा, मैं शरीरसे भिन्न हूँ कि शरीररूप नि
लने कहा, तू शरीर नहीं, शरीर तुझसे प्रगट हुआ है; जैसे
शरीर नहीं, स्वप्नके शरीरादिक स्वप्नद्रष्टासे प्रगट हुये हैं। र
वचन सुनकर हँसा और कहा-हे मुने! मुझ एक चैतन्य
पद कैसे कल्पते हो? प्रथम मुझको अद्वैत कहते हो;
हो तू शरीर नहीं, जड चैतन्य दो पद हुये-मुझ चैतन्य
में एक पदकी भी समाई नहीं, तो दो कैसे होवेंगे?

साधन।

कपिलने कहा सम्यक् स्वरूप जाने विना; हे राजन्!
मात्रही है स्वरूप जानना कठिन है। राजाने कहा है
कहना जानना क्या है? सो कहो। कपिलने कहा जो तुझ
कहना जानना होय तो मैं कहूँ, दोनोंसे तू परे है। हे राजन्
जानना वही है, जिसके कहने जाननेसे मायासे लेकर देह
ब्रह्मासे लेकर चींटी पर्यंत सर्वका कहना जानना होजावे।
अपरोक्ष निश्चय तब होता है, जब विज्ञान होता है। वि
ज्ञानसे होता है और ज्ञान उपासनारूप भक्तिसे होता
वैराग्यसे होती है वैराग्य शुभ कर्मोंके अनुष्ठानसे होता है।
राजन्! इनको तू क्रमसे कर। राजाने कहा जब मैं आपही हूँ
प्राप्तिवास्ते निश्चयादि करनेसे क्या प्रयोजन है? कपिलने

है तो निश्चय भी तू कर। राजाने कहा निश्चय कल्पनासे होता है, मैं चैतन्य निर्विकल्प हूँ, निश्चय अनिश्चय मुझविषे नहीं, यह बुद्धि आदि संघातका धर्म है। अथवा किस वस्तुका निश्चय करूँ, मुझ आस्ति भाति प्रियरूप आत्मासे पृथक् क्या है? जिसका निश्चय करूँ। कपिलने कहा वेद कहता है, जाग्रत्में नेत्रोंविषे, स्वप्नमें कंठ विषे, सुषुप्तिमें हृदय विषे, तुरीयामें दशवें द्वारविषे, ब्रह्मरूप आत्मा निवास करता है, सो यही निश्चय कर। राजाने कहा और अंगोंने क्या पाप किया है जो उनमें आत्मा नहीं। क्या आत्माको सर्व अंगोंमें रहनेमें शर्म आती है? आकाशके समान आत्मा सर्वमें पूर्ण है। ऐसे नहीं कि, एक स्थानमें है, एकमें नहीं है, सर्वकालमें सर्व स्थानमें एकसा है। कपिलने कहा सूर्यका प्रकाश सब ठौर पूर्ण है, परन्तु जहाँ दर्पण जलादि होवें तहाँ प्रतिबिंब सहित सूर्यका विशेष प्रकाश होता है, अन्य घटपटादि पदार्थोंमें आभास भी नहीं और सूर्यको घटपटादियोंमें विशेष जलादिकोंकी समान प्रकाश करते परिश्रम भी नहीं होता, उसका स्वभावही है। इससे जो आत्माको अपरोक्ष सम्यक् देखा चाहे तो पूर्वोक्त स्थानोंमें सुखपूर्वक दर्शन होगा अन्यत्र नहीं।

दत्तात्रेय।

तिससमय विचरते हुये दत्त आये और कहा सर्व जगद्रूपी भूषणों-विषे मैंही एक सुवर्णरूप आत्माहूं। कपिलने कहा जो तू ही सर्व है; तो सुनाता किसको है? दत्तने कहा आपही वक्ता, श्रोता, तथा वक्तव्य रूप हूँ और इनसे अतीत भी हूं। यह वचन सुनकर राजा स्वरूप विषे लीन हुआ और कपिल तथा दत्त भी अपने आत्मस्वरूपके चिंतनमें निमग्न हुये।

कुछ काल पीछे दत्त हँसके बोले। कहा बडा आश्चर्य है चैतन्य स्वरूपमें मनका लीन होना, न होना; उदय होना होना; यह सब मनकीही अवस्था है, मुझ इन अवस्थाओंके की नहीं है, इन अवस्थाके होने मिटनेसे मेरी हानि लाभ हे कापिल! जीव ईश्वर ब्रह्मकी मुझ चैतन्यने संज्ञा बांधी है ब्रह्मने आयकर मुझ चैतन्यकी संज्ञा नहीं बांधी। कापिलने जन्! ब्रह्मयज्ञ कर; स्वाभाविक ब्रह्मयज्ञ आके प्राप्त हुआ है कहा करना न करना मुझ विषे नहीं पर करताहूं। कापिलने दत्त! तेरा रूप क्याहै? दत्तने कहा नाम रूप मुझमें नहीं स्वरूपसे आज्ञातहै तो सहस्र वर्ष पर्यंत नाम रूपको कहूंगा क्या लाभहै? स्वरूप जाननाहै तो तूष्णीं हो! कापिलने अतूष्णीं जानना न जानना मन वाणीका धर्म है, मुझ इनके व्यवहारमें तुल्यता है। दत्त तूष्णीं हुआ। राजाने मत हो, सर्व रूप तेराहै, तू सर्वका रूपहै, कुछ कह और कापिलने कहा वचन बुद्धितक है, बुद्धि नहीं रही, वचन दत्तने कहा तू चैतन्य बुद्धिके अधीन नहीं, उलटा बुद्धि तुझ चैतन्यके अधीनहै। कपिल तूष्णीं हुआ।

। स्कंद ।

पुनः स्कंद आया और कहा हे सभा! कुछ कहो जिस नहीं। क्या मैं चैतन्य अवाङ्मनसगोचर और वाङ्मनस राजाने कहा तू कौन है? स्कंदने कहा वही हूं जो तू है। कहे कि, तू कौनहै? राजा तूष्णीं हुआ।

कपिलने कहा हे दत्त! तू कहांसे आयाहै? कहां माता पिता कौनहैं? तेरा गृह कौन है? दत्तने कहा जहाँसे तहाँसेही मैं आयाहूं, जहाँ तू जावेगा वहांही मैं जाऊँगा, पिताहैं, सोई मेरे हैं। जो तेरा गृह है सो मेरा है।

कहा तेरा गोत्र कौन है? दत्तने कहा मैं अगोत्रहूँ परंतु जो तेरा गोत्र है मेरा सोई गोत्रहै। हे कापिल! तू अपनी उपमा सर्वमें जान ले। आना जानादिक शरीरका है, शरीर पंचभूतरूप है; सर्व शरीरोंके माता पिता प्रकृति पुरुषहैं, और चैतन्य ही सर्व शरीरोंका गोत्रहै। सारांश यह कि, चैतन्य दृष्टी कर वा मायादृष्टि कर वा पंचभूत दृष्टि कर वा पंचभूतोंका रूप दृष्टि कर जो तेरा प्रकरण है सोई सर्व जगत्का प्रकरणहै, अन्यथा नहीं। जो एक स्वप्ननरका हालहै, सोई सर्व स्वप्ननरोंका हालहै। स्वप्नद्रष्टा दृष्टिसे भी सर्वका हाल एकही है, अन्यथा नहीं। कपिलने कहा मुझमें नाम रूपके अभावका अभावहै? दत्तने कहा नाम रूपमें भेद मत जान, नाम रूपभी तूही है। कपिल तूष्णीं हुआ और सर्व निर्विकल्प होगये।

प्रणव और प्रणवके चिंतनके अधिकारी।

कुछ काल बीता तब स्कंद बोला—आत्मज्ञानका साधन, प्रणवके अर्थ रूपका चिंतन, वा अंतर प्रणवका मानसी उच्चारण, अधिकारी जनोंको करना चाहिये। कपिलने कहा सर्व वचनोंकी समाप्ति प्रणवमें है, प्रणवसे उपरांत वचन नहीं। प्रणवका जो उच्चारण श्रद्धापूर्वक सदा करता है; मानों चारों वेदोंका पाठ नित्य प्रति तिसका होता रहता है। क्योंकि चारोंवेद प्रणवरूपहैं और एक अक्षरका छंदहै। इसीसे इसके उच्चारणसे शुद्धि अशुद्धिभी नहीं होती। सर्व स्त्री, पुरुष चारों वर्णाश्रम प्रणवके अर्थ चिंतनके तथा प्रणवके मानसिक वाचिक उच्चारण करनेके अधिकारी हैं। दत्तने कहा हे कपिल! प्रणवका माहात्म्य ऐसेही है, परन्तु प्रणव शब्दमात्रहै, परतंत्रहै तथा जडहै, आत्मा अधिष्ठानमें; जैसे घटपटादि सर्व नाम रूप दृश्य कल्पित हैं तैसे प्रणवभी कल्पित है आत्मा विषे भेद नहीं; जैसे स्वप्नमें घटपटादि स्वप्न-

द्रष्टामें कल्पित हैं, तैसे स्वप्नका प्रणवभी स्वप्रद्रष्टामें कहा
न्यूनाधिकभावनहीं। आत्माही सत् है, आत्मा पृथक् सो आप
मिथ्या मायामात्रहै। हे कपिल! मन वाणीकी क्या
आत्माविना एक अक्षरका अर्थ तथा उच्चारण चिंतन करेजो
का पद बुद्धिसे परे है, बुद्धिमान् संत पदको क्या जाने स्कं
बुद्धिमान् बुद्धिके अधीनहै, संत बुद्धिसे परे पदविषे
कपिल! वचन मेरा ज्ञानी सुने तो तिसको दृढ़ ज्ञानहो कह
तो तिसको भक्ति हो, अज्ञानी सुने तो तिसको भक्तिज्ञान
स्कंदने कहा जो तू ऐसाहै तो मुझको क्या सुखहै? हे
जो गुण दोष है सो उसीको सुख दुःख देतेहैं, अन्यको नहीं।
वचन मेरा वही है, जिसमें वचन नहीं पर कहताहूँ। सर्व जग
त्ति पालन संहारादि सर्व व्यवहार तथा इस संघातका व्यव
करताहुआभी, मैं चैतन्य निर्विकार सर्वसे अतीत हूँ;
सर्वस्वप्न व्यवहार करता भी, निर्विकार सर्वसे अतीत है;
सर्व स्वांग करता भी अपने नटत्वभाव निश्चयको नहीं
इसीसे सर्व स्वांग करता भी सर्व स्वांगोंसे अतीत है क्योंकि
के अभिमानसे रहित है।

पराशरने कहा हे मैत्रेय! वे संत अनेक वचन कहतेथे,
कहता। मैत्रेयने कहा कहना मेरा वहांही योग्यथा, अब क्या
मैं संत असंत दोनों नहीं, कहे कौन? और सर्व मैंहीं कहता
भ्रांति है, जो वह संत कहतेथे। वहांभी मैंही कहता सुनता
मैंहीं कहता सुनता हूँ। आगेभी मैं चैतन्य हूँ, पीछेभी मैं
दशोंदिशा मैंही हूँ। पराशरने कहा सत्संग कर।
तुम्हारे सत्संगते मैं नहीं रहा; जैसे पारसके संगसे
नहीं रहता, इससे परे और सत्संग क्याहै? यही परम सुख
कहा जो आप न रहा तो सुख क्या? आपेतकही सुख

कहा परिच्छिन्न आपा अहंकारका न रहना और सर्वरूप होना, यही आपा न रहना है । पर ब्रह्मयज्ञ कहो ।

पराशरने कहा अबतक अज्ञानमें तू बंध है ब्रह्मसे भिन्न क्या है ? जो कहूँ ब्रह्मको अपना आत्मा जाननाही ब्रह्मयज्ञहै पर ब्रह्मयज्ञ सुन ! स्कंदने कहा मैंने सुनाथा कपिल परमहंसहै पर तुझको तो स्वरूपकी प्राप्ति नहीं क्योंकि है सर्वब्रह्म, तू वीच जुदा कहांसे रहता है । कपिलने कहा तूने सत्य कहा, अज्ञान ज्ञानकी मुझ चैतन्यमें समाई नहीं । दत्तने कहा मुझ स्वप्रकाश चैतन्यसेही तुम ज्ञानी अज्ञानी आदि सर्वकी स्फूर्ति होती है; जैसे रज्जुकरही सर्पादिकोंकी स्फूर्ति होती है। कपिलने कहा हे स्कंद ! स्वरूप तेरा क्या है ? शरीर वा मनादिकोंका साक्षी आत्मा ? स्कंदने कहा शरीर और आत्मा दोनोंके अहंकारसे नम्र हूँ क्योंकि, अवाचपद हूँ । इससे तूभी देहाभिमान रूपी पहरावेसे रहित हो । कपिलने कहा हे दत्त ! जहां मैं तू जगतादि शब्द नहीं सो कौन है ? दत्त तूष्णीं हुआ क्योंकि वचनकी आगे ठौर नहीं ।

। लोमश ऋषि ।

तिस समयमें लोमशऋषि आया और कहा; मैं चैतन्य कालका भी काल हूँ । यह सब प्रजा मुझ चैतन्यरूप कालके मुखमें महाप्रलयमें आन पडती है; जैसे समुद्रमें नदियां आन पडती हैं, मुझहीसे प्रगट होती हैं, मुझ चैतन्यमेंही स्थित हैं, पर मैं चैतन्य आत्मा एकसा हूँ। दत्तने कहा इस तेरे कथन चिंतनका द्रष्टा मैं हूँ । लोमशने कहा द्रष्टा दृश्य दर्शन तीनोंके द्रष्टाका द्रष्टा कोई नहीं, यह अनुभवसिद्ध है, तू कैसे द्रष्टाका द्रष्टा हुआ है ? दत्तने कहा हे लोमश ! तूने जो कथन चिंतन किया कि, मैं त्रिपुटीका द्रष्टा हूँ, सो कहो यह चिंतन किसने किया ? लोमशने कहा मनने किया । दत्तने कहा हे लोमश!

तूने आपको मनरूप मानके त्रिपुटीका आपको द्रष्टा माना
भी कहा कि, मैं द्रष्टाका द्रष्टा हूँ, यह भी मनका चिंतनहै।
अवाङ्मनसगोचर वस्तु हूँ, आदि अंत मध्यकी मुझमें समाई
लोमशने कहा और किसमें समाई है ? दत्तने कहा पूछे ति
लोमशने कहा हे बुद्धिखोये ! स्वप्नसृष्टिकी आदि अंत मध्य
मेंही समाई है; कहो अन्य किसमें है ? दत्त तूष्णीं हुये।

। सप्त ऋषि ।

(सत्संग माहात्म्य.)

तिससमय सप्तऋषि आये और कहने लगे। हे मित्रो!
सत्संगमें आत्मनिरूपण परस्पर करनेसे होता है; तूष्णीं
प्रयोजन है ? क्योंकि, सम्यक् आत्म अपरोक्ष विद्वान् पुरु
उपदेश द्वारा अनेक मुमुक्षु पुरुषोंका कल्याण होता है।
कारण भगवान्की भक्ति करे, गभवान्को पूर्ण जाने।
भगवान्की भक्तिसे वर्तमान विद्वानोंकी भक्ति श्रेष्ठ है।
संग विना स्वतः दासत्व अहंकाररूपी मलीनताको त्याग न
इसीसे स्वरूपसे अप्राप्त रहता है। अपनेसे भिन्न परोक्ष ईश्वर
करनेसे शांति नहीं होती और विद्वानोंके संगसे शांति वि
है। विद्वानोंके संगसेही निरहंकार विचारद्वारा वैरागादि पूर्वक
प्राप्त होता है । भक्ति नाम "आप सहित सर्व भ
निरंतर देहाभिमानरहित पूर्वोक्त भक्तिरूप उपासनाके
इसी जन्ममें वा प्रतिबंधके वशते भावी जन्ममें, स्वरूप
होती है और भगवान् विश्वेश्वरको निज आत्मा जा
सप्तऋषियोंने कहा शरीर तेरा नाशी है; विष्णुसे
कैसे करता है ? दत्तने कहा; जैसे मेरा शरीर
तैसे विष्णुका शरीरभी नाशी है। हे लोमश ऋषि !

शुंड ! तुमने अनेक ब्रह्मांडोंकी उत्पत्ति तथा संहार ब्रह्मा विष्णु शिव सहित होते देखे हैं; सत् कहो विष्णु आदि शरीर नाशी हैं कि, नहीं । दोनोंने कहा दृश्यमान शरीर मायामात्र है, किसीका शरीर अविनाशी नहीं सर्वका नाशी है । अनेक बार ब्रह्मा विष्णु महेशादिक शरीर जलतरंगवत् उत्पन्न होते मिटजाते हैं । एक रस केवल साक्षी चैतन्य आत्माही है, अन्य दृश्यमान मायाका कार्य स्थित नहीं । सप्तऋषियोंने कहा वैराग विना विज्ञान नहीं मिलता । दत्तने कहा परिच्छिन्न अहंकार संतोंके संग विचारद्वारा त्यागनाही वैराग है। पुनः दत्तने कहा हम नहीं शेष भगवान् हैं । पर जब हम नहीं तो वैराग करनेकी आवश्यकता कहाँ है ? आप न रहना यही वैराग है । जब आप नहीं तो वैराग तथा भगवान्से क्या प्रयोजन है ? शेष अवाचपद है । तिस अवाचपद चेतन करही सर्वकी सिद्धि होती है । उन्होंने कहा विष्णु ईश्वर है, हम नहीं । दत्तने कहा तुम नित्य सुख चैतन्यसे पृथक् ईश्वर क्या वस्तु है ? कहो । हे ऋषे ! यह आत्माही ईश्वर है ?

। षट् प्रमाण ।

तिस समय प्रत्यक्षादि षट् प्रमाण रूप सिद्ध आये और कहा सर्व वस्तुओंकी सिद्धि हमसे होती है । दत्तने कहा तुम्हारी सिद्धि किससे होती है, जिस चैतन्य साक्षी आत्मासे तुम्हारी सिद्धि होती है तिससे सर्वकी सिद्धि होती है । प्रत्यक्ष प्रमाणने कहा जब नेत्र मूँदे तब रूपकी सिद्धि नहीं होती; नेत्र खुले रूप मालूम होता है । इससे नेत्र करही रूपका ज्ञान होता है, आत्माकर नहीं । (इसी प्रकार सर्व प्रमाणोंमें जान लेना) दत्तने कहा हे सिद्धो ! आत्मा साक्षी नेत्रोंका नेत्ररूप है, श्रोत्रका श्रोत्ररूप है, (इसी प्रकार सर्व इन्द्रियोंमें जोड लेना) । सारांश यह कि, आत्मा पूर्ण है तथा सर्वका स्वरूप है । इससे आत्मा चैतन्यही नेत्रादि

इंद्रियोंमें स्थित हुआ, रूपको देखता है। जब नेत्र मुं
तब अंधकारको प्रकाश करता है। आत्माकी ज्ञानरूप
कालमेंभी रुक नहीं सक्ती, नेत्रादिक इंद्रिय नष्ट होवें चाहे
राजाका हुकुम मंत्रीद्वारा प्रजामें प्रवर्त होता है परंतु
प्रजा राजाकेही गुलाम हैं; जैसे स्वप्नद्रष्टाकी ज्ञानरूप
पदार्थोंसे रुकती नहीं क्योंकि स्वप्न कल्पित और
स्वप्रकाश है। सिद्धोंने कहा न तुम, न हम, न जगत्
चैतन्य मात्र हम हैं। दत्तने कहा तुम हँसो! सिद्धोंने
आत्मस्वरूपमें हँसना रोना दोनों नहीं और हँसना
हमंही हैं।

।कुमारसिद्ध।

(सिद्धिआदिके विषयमें.)

कुमारसिद्धने कहा जब मैं योग करता हूँ तब अपने
देखताहूँ। दत्तने कहा जब तू स्वरूपका देखनेवाला
स्वरूप तुझसे भिन्न हुआ। हे बुद्धिखोये! जो कुछ तू
देखता है, सो दृश्यकोही देखता है। इससे योग तेरा दृश्य
द्रष्टा हुआ। बालक है, सत्संग कर जो निर्मल होवे।
कहा ठीक मैं बालकहूँ क्योंकि मन वाणी शरीरसे सर्व लीला
मैं असंग चैतन्य हर्ष शोकको नहीं प्राप्त होता, इसीसे बाल
योगके बलसे जो मैं चाहूँ तो इस शरीरका त्यागकर अन्य
प्रवेश करूँ। किसीको वर शाप दूं तो होसक्ता है और
धिक न्यून करसक्ताहूँ। सर्वप्रकारकी सामर्थ्य योगसे होसक्ती
क्या प्राप्ति है? दत्तने कहा हे मूर्ख! यह बात कहते तुझको
लज्जा नहीं, आती? योगी एक शरीरको त्यागके अन्य
प्राप्त होताहै और अनेक प्रकारके कष्ट पाताहै; ज्ञानी

स्थित हुआ हुआ सुखपूर्वक ब्रह्मासे लेकर चींटी पर्यंत आपको पूर्ण जानता है। सर्वका भोक्ता एक कालमें ही होता है, सर्व जगत्पर आज्ञा चलानेवाला होता है। सर्वरूपभी आप होताहै, सर्वसे अतीत भी आपही होताहै। सर्व शक्तिमान् होताहै, सर्व अशक्तिरूपभी आपही होताहै। सर्व व्यवहार करताभी आपको अकर्ता जानता है। जिस अवस्थाको सम्यक् आत्म अपरोक्ष विद्वान् पुरुष प्राप्त होताहै, सो अवस्था स्वरूप अज्ञात; वर शापादि पूर्वोक्त सामर्थ्य, योगीको स्वप्नमें भी नहीं प्राप्त होता। कुमारने कहा योगके बलसे जो चाहूँ तो आकाशमें जाऊँ। दत्तने कहा पक्षी आकाशमें उडते फिरते हैं क्या सिद्धि हैं? कुमारने कहा योगी एक एक श्वासमें अमृत पान करता है अन्य नहीं। सोहं जाप करता है, सुख पाता है। दत्तने कहा हे बालक! ज्ञानीको लज्जाहै। अपने सुखरूप आत्मासे भिन्न योगादिकोंसे सुख चाहे, जैसे गुडको लज्जाहै कि, अपनेसे पृथक् चणकादिकोंसे मधुरता चाहै। योगी चित्तकी एकाग्रता रूप योगसे सुख मानता है और योग विना आपको दुःखी मानता है; ज्ञानी योग अयोग दोनोंको अपनी दृश्य मानता है। यह सब मनके ख्याल हैं, योगरूप मनके ख्यालसे मैं चैतन्य प्रथमही सुखरूप सिद्धी हूं। सुखरूप अपनी सिद्धि वास्ते मुझे योग क्यों करनाहै? जैसे कोई भी अपने शरीरकी प्राप्तिवास्ते योगादिक साधन नहीं करता क्योंकि योगादि करनेसे शरीर प्रथम सिद्ध है। प्राणोंके रोकनादिकरूप. योगसे क्या सुख है? आपसे अप्राप्त होना, आशा मुक्तिकी प्राणोंसे चाहना, केवल विचार हीनता है।

दूसरे सिद्धने कहा योग नाम जुडनेका है, यह जो सनकादिक ब्रह्मादिक स्वरूपमें लीन होते हैं, सो योगसे रूप ज्ञानको पाते हैं। दत्तने कहा जिस स्वरूपमें ब्रह्मादिक लीन होते हैं, तिस वस्तुको

ज्ञानी अपना आत्मा जानता है। हे सिद्धो! मिथ्या मत क
और योगका क्या संयोग है। योग साधनरूप है, ज्ञान फल
ज्ञानमें बिछुरना मिलना दोनों नहीं, योग करताके अधीन
क्रिया रूप है। कापिलने कहा आत्माके सम्यक् अपरोक्ष
योगसे सर्व पदार्थोंका जानना रूप योग हो जाता है, केवल
रूप योगसे सर्व पदार्थोंका जानना नहीं होता क्योंकि; आ
ज्ञानसेही सर्व कल्पित पदार्थोंका ज्ञान होता है; योगसे नहीं
आत्म अधिष्ठान विषे आप कल्पित है (अन्य पदार्थवत्)
के ज्ञानसे अन्य कल्पितका ज्ञान नहीं होता, अधिष्ठानके
कल्पितका ज्ञान होता है; जैसे—एक कल्पित स्वप्नपदार्थसे
अन्य स्वप्नकल्पित पदार्थका ज्ञान नहीं होता, किन्तु स्व
ज्ञानसे सर्व स्वप्न कल्पित पदार्थोंका ज्ञान होता है; जैसे रज्जु
नसे सर्प दंड मालादिकोंका ज्ञान होता है, कल्पित सर्पसे
कल्पित दंडादिकोंका ज्ञान नहीं होता, यह नियम है।

स्कंदने कहा आत्माके जाननेके अनेक साधन हैं, योग,
ज्ञान, पर आत्मा इन पदोंसे अतीत है; यह सब बुद्धिका वि
लोमशऋषिने कहा हे सिद्धो! योग मुझसे हुआ है, पर मैं
योग वियोग दोनों नहीं। योगसे शरीरके अंतर बाहर स
दीखते हैं, पर स्वरूपसे अप्राप्त होता है। दत्तने कहा जब
है तो उससे भिन्न कौन है? जो जुडे। कुमार तूष्णीं हुआ।

दत्तने कहा हे कुमार! तुमको लज्जा नहीं आती जो
सभामें अयोग्य वचन करता है। कुमारने कहा क्या कहूँ? तू
है। दत्तने कहा कह! मैं चैतन्य मनकी एकाग्रतारूपयोग
साक्षी स्वप्रकाश हूँ। सिद्धोंने कहा तू कौन है? दत्तने कहा
ध्यान अध्यानका तथा तुम्हारी सिद्धि असिद्धिका द्रष्टा हूँ।

कहा तुमको भस्म किया चाहिये। दत्तने कहा प्रथम तुम अपने अहंकारको भस्म करो, जो तुम्हारे अंतर शत्रु है, मुझ भस्मको भस्म क्या करोगे। हे सिद्धो! मैं चैतन्य तुम्हारा आत्मा हूँ, अपने आत्मा को भस्म कैसे करोगे? सिद्ध तूष्णीं हुये। दत्तने कहा तूष्णीं मत होवे, यह सब कौतुक तुम्हारा है, तुम कौतुकी हो; जैसे स्वप्नसृष्टी सर्व स्वप्नद्रष्टाका कौतुक है, स्वप्नद्रष्टा कौतुकी है। सिद्धोंने कहा तूष्णीं अतूष्णीं आदिक भी कौतुकहै। दत्तने कहा हे सिद्धो! यह सुख ज्ञानसे प्राप्त होता है। लोमशने कहा तुझको ज्ञानसे सुख नहीं; अपने आनंदसे आनंद, अपने प्रकाशसे प्रकाश है। वृत्तिरूप ज्ञान भी अज्ञारूप है, तू ज्ञान अज्ञानसे रहित है। राजाने कहा तुझको लज्जा नहीं आती कि, रहित अरहित भी तूही है। लोमशने कहा जब मैंही हूँ तो लज्जा किससे करूं? लज्जा, इच्छा, संशय, ज्ञान, ध्यान; निश्चय, अनिश्चय, बंध, मोक्ष, हर्ष, शोक, मान, अपमान, राग, द्वेष, ग्रहण, त्यागादिक मानने केवल मनके धर्म हैं और मैं चैतन्य मनादिकोंके धर्मों सहित मनादिकोंका साक्षी हूँ। साक्ष्यके व्यवहार-की मुझ साक्षीको क्या लज्जा है? जैसे सूर्य प्रकाशको प्रका-श्य जगत्की लज्जा आदिक व्यवहारोंसे क्या लज्जा है। हे दत्त! मैं चैतन्य निर्लज्ज हूँ तू भी निर्लज्ज हो। सारांश यह कि आपको सत् चित् आनंद जान! जो लज्जारूपी द्वैतसे छूटे। दत्तने कहा मुझ चै-तन्यमें बंधन हो तो छूटूँ, मैं तो निर्बंध हूँ।

तिस सभामें हे मैत्रेय! यही निश्चय हुआ कि, अस्ति, भाति प्रिय रूप ब्रह्मात्मा हम हैं। मैत्रेयने कहा हे पराशर! तिस संतोंकी सभामें और कोई था कि, न था? पराशरने कहा इतने कहनेसे तुझको निश्चय न हुआ तो बहुत कहनेसे क्या लाभ होगा? तुझको ज्ञान न हुआ, सब उपदेश मेरा अकार्थ गया। मैत्रेयने कहा मुझ चैतन्य

में निश्चय धर्म नहीं, निश्चय कैसे कहूँ ? शिष्य गुरु, इत्या
मुझमें नहीं अथवा मुझसे भिन्न कौन हैं ? जिसका मैं निश्च
पराशरने कहा भय मतकर जो तू सर्व है तो निश्चयादि भी
है । मैत्रेयने कहा वह कहो जिसमें विकार न होवे ? निश्च
विकार हैं । पराशरने कहा यही चिन्तन कथन कर, "मैं नि
चैतन्य साक्षी आत्मा हूँ" मैत्रेयने कहा जो मैं ऐसा हूँ तो
कथनसे क्या गुण है ? जैसे कि, कोई अपने नामको और न
सारी अर्थको कथन चिन्तन हरवक्त करता रहे तो क्या
उलटा विकल बाजता है । पराशरने कहा हे मैत्रेय ! आ
सर्वको ब्रह्मरूप जान । मैत्रेयने कहा इस चिन्तनसे क्या
यह सब मनका मनन है; मैं चैतन्य अवाङ्मनसगोचर हूँ।
कहा शरीर नाश होय तो होय पर इस निश्चयको त्यागियो म
यने कहा मुझमें ग्रहण त्याग नहीं;स्वतः होय सो होय।परा
हे मैत्रेय ! यह आनंद कहना मात्रसे नहीं, निश्चयसे है। मैत्रे
मैं वह शिष्य नहीं जो गुरुके उपदेशसे केवल देहाभिमान त्या
द्वैत बनी रहे । देहाभिमान सहित द्वैतदृष्टि त्यागे और गुरु
रसनासे सुनकर अमृतके समान अचवे । पराशरने कहा—
मेरा है ? मैत्रेयने कहा जो मैं हूँ तो कहनेसे क्या प्रयोजन
ब्रह्मयज्ञ कहो; उस सभामें जो संत थे तिनोंने और क्या कहा
पराशरने कहा उसके वचन सुनेसे तुझको क्या लाभ है जो तू
न जाने । मैत्रेयने कहा तुम्हारे कहनेसे आश्चर्यमान् होता
कुछ मुझ चैतन्यसे भिन्न होय तो तिसको जानूँ जब मुझमें
नहीं तो क्या जानूँ ? पराशरने कहा हे मैत्रेय ! सो और
तुझमें नहीं सो अयं पद तुझने सिद्ध किया है ।

स्वरूपपानेका साधन।

राजाने कहा हे दत्त ! जिसको चाहना स्वरूपके पावनेकी हो सो कैसे पावे ? दत्तने कहा प्रथम निष्काम कर्मसे अंतःकरणकी शुद्धि करे; निर्गुण वा सगुण उपासनादिकर अंतःकरणकी चंचलता दोषको दूर करे, वैरागादि साधनों सहित, शास्त्रोक्त रीतिसे गुरुकी शरणागत होवे। पुनः गुरु उपदेशसे अपने आत्माको ब्रह्मरूप और ब्रह्मको अपना आत्मारूप सम्यक् अपरोक्ष जाने। जैसे—महाकाश घटाकाश रूप है और घटाकाश महाकाश रूप है। हे राजन् ! अपने स्वरूपके पावनेमें देहाभिमानही आवरण है, जैसे सूर्यके दर्शनमें बादलही आवरण है। हे राजन् ! जाग्रत् स्वप्न सुषुप्तिमें तथा भूत भविष्यत् वर्तमान कालमें, मन वाणीका गोचर, मन वाणी सहित जितना प्रपंच है, सो सर्व तुझ साक्षी चैतन्यकी दृश्य अनित्य है; तू तिस सर्व जड दृश्यके न्यूनाधिकभावका प्रकाश करनेवाला चिद्घन देव है; तुझको कोई नहीं जानता तू सर्वको जानता है। इसीसे तू चैतन्य स्वप्रकाश रूप है। अज्ञानी अनित्य दृश्यमेंही मग्न है, विज्ञानी अपने आत्मस्वरूपमें मग्न है, पर मेरे स्वरूपमें ज्ञान अज्ञान दोनों नहीं। राजाने कहा तू कौनहै ? दत्तने कहा तेरे हृदयविषे, ब्रह्मा विष्णु शिवादिकोंके हृदय विषे तथा सर्वप्राणी मात्रके हृदय विषे, मनादिकोंके साक्षी रूपता करके स्थितहूं। साक्षीमें भी त्रिपुटी होती है तिसका प्रकाशक त्रिपुटिसे परे अवाच पद हूँ जहाँ बुद्धि नहीं तहां रूप मेराहै। राजाने कहा जहाँ एक, अनेक, मैं, तू नहीं वहीरूप मेरा है। दत्तने कहा आपा अहंकारको त्यागकर, जो अवशेष रहै सो आत्माका स्वरूप है। राजाने कहा जिसमें शेष अवशेपहै दोनों नहीं वही अवशेष है कपिलने कहा यहभी अहंकार है, जोहै सोई है। राजाने कहा हे कपिल ! तुझे बुद्धि नहीं जो सर्व अवशेषहै तो अहंकार कहां है ? अहंकारका नाश अवशेषसे होता है। कपिलने कहा जो वचन चिंतनमें

आता है सोई अवशेष है, नहीं तो अवाचपदमें शेष अवशे
राजाने कहा जिसमें वचन मौन दोनों नहीं, वही अवशेष
तूष्णीं हुआ क्योंकि जिसकर विधिनिषेध सिद्ध होते हैं जिस
निषेध समाप्ति होतीहै विधिनिषेधका और जो अवधीभूत है
नाम अवशेषहै ।

रोमशने कहा फुर्णा अफुर्णा रूप शेष अवशेष मनका
आत्मा इन मनके धर्मोंसे अतीत है राजाने कहा वही मैं अ
पदोंसे अतीतहूँ । दत्तने कहा जिसमें अशेष व शेष नहीं, सो
राजाने कहा वही अवशेष है । रोमशने कहा जाग्रत् स्व
तुरीया अवशेष है, मुझ चैतन्य तुरीया अतीत अवाचपदमें है,
कहां है ? राजाने कहा जैसे तुरीयातीत अवाचपद नाम है; तैसे
नाम है; जो तुम कथन चिंतन मनका करोगे, तिनका जो
सोइ अवशेष है और उस सर्वके साक्षीका साक्षी और कोई है

सिद्धोंने कहा अवशेष पद योगसे प्राप्तहोता है । राजाने कहा
अवशेष होता है, यह किसने जाना ? जिसने जाना वही
जो अवशेष नहीं होवे तो योगको कौन सिद्ध करे ।

। मीमांसा ।

पुनः मीमांसा आया और कहा कर्म करनेसे अवशेष
होती है । राजाने कहा हे मीमांसा ! जो कर्मउपासनाका फल
अनित्य है; हां कर्मउपासनासे अंतःकरणके दोषोंकी निवृत्ति
सो दोषभी अनित्य हैं; इसीसे दूर होते हैं । जहाँ कर्म उपासना
नहीं और जिस चैतन्यकर मन शरीरके धर्म उपासना कर्म
हैं, जो कर्म उपासनाके आरम्भमें तिनका साक्षी है, आदिमें
है, कर्म उपासनाके समाप्तिका जो अधिष्ठान साक्षी अवधी
अवशेष है। सो स्वप्रकाश सर्वकी आदिसिद्धि है । पीछे होवे
उपासनासे तिसकी कैसे प्राप्ति होगी ? किंतु नहीं होगी ।

वैशेषिक ।

मीमांसा तूष्णीं हुआ और वैशेषिकने आकर कहा अवशेष कालसे हुआ है । राजाने कहा सुषुप्तिमें काल कहां है ? अवशेष आत्मा काल के भावाभावको अनुभव करनेवालेसेही काल होता है । अवशेष आत्मा स्वतःसिद्ध है, उत्पत्ति नाश तिसका नहीं, यह सर्व धर्म मनादिक दृश्यके हैं ।

न्याय ।

पुनः न्यायने कहा सर्व जगत्के करता ईश्वरमें अवशेष कहाँ है ? राजाने कहा जो अवशेष आत्मा न हो तो, सर्वजगत्का ईश्वर कर्त्ता है, यह कथन चिंतन धर्म, मन वाणी सहित, धर्माधर्मी कैसे सिद्ध होवें ? जब यह कथन चिंतन नहीं था तो भी अवशेष आत्मा सिद्धहै और जब नाश हुआ तब भी नाशका साक्षीरूपकर अवशेष आत्माही सिद्ध है । इससे सर्व ब्रह्मरूप अवशेष आत्मासे यह नामरूप जगत होता है । हे न्याय ! तिसीका नाम ईश्वर कहैं तो ठीक है । नामांतरका भेद है । न्यायने कहा जबलग अवशेष विशेषको न त्यागे सुखस्वरूपको न पावेगा । राजाने कहा मुझ चैतन्य आत्मा सुख स्वरूपको, सुख पानेसे क्या प्रयोजन है ? सुखरूप अपनेसे पृथक् जितने सुखपाने के समाधि आदिक साधनोंमें प्रवृत्ति है,सो भ्रमसे है;जैसे जलको तथा अग्निको शीतल उष्ण होनेकी इच्छा भ्रमसे है । न्यायने कहा तू सर्वसे ऊंचा है ? राजाने कहा मैं चैतन्य आत्मा ऊंच नीचसे रहित एकरस सम हूँ ।

पातंजल ।

न्याय तूष्णीं हुआ । पातंजल बोला हे राजा ! तू कौन है ? राजाने कहा मैं चैतन्य आत्मा योग वियोगका कौतुक देखनेवाला अवशेषरूप हूँ ? याज्ञवल्क्यने कहा अनहद शब्दविषे अवशेष कहां है ?

राजाने कहा जो अवशेष आत्मा इंद्रियद्वारा बाहरका कौतुक मेरा
हारा है, सोई अवशेष आत्मा अंतर इंद्रिय विना सोहं अनि
कौतुकको देखने नाम अनुभव करनेवाला है । सारांश यह
हद शब्दके भावाभावका जाननेवाला है;जो अवशेष नहीं
हद शब्दके भावाभावकी सिद्धि कैसे होवे ? याज्ञवल्क्यने
विना सुख नहीं और सर्व अङ्ग शरीरके देखे नहीं जाते
सुखरूपमें योगसे क्या प्रयोजन है ? "शरीरसहित सर्व
चका, मृगतृष्णाके जलवत्,मिथ्या सम्यक् अपरोक्षको जा
पूर्वोक्त प्रपंचका अपनेको सम्यक् अपरोक्ष अधिष्ठान जा
जगत्रूप अंगोंका देखना है; हाड मांसादि अंगोंको योग
बुद्धिहीन पुरुषोंका काम है । जब यह आप है तो योगसे
जन है ? याज्ञवल्क्यने कहा जब तू है तो ज्ञानसे क्या
राजाने कहा मुझ चैतन्य अवाचपदमें ज्ञान अज्ञान,
मोक्षादि प्रपंचका अत्यंताभाव है परन्तु मुमुक्षुको ज्ञान
ज्ञानरूपी विचार कर वस्तुका सम्यक् अपरोक्ष स्वरूप
है, योगसे नहीं । योग सिद्धहुये योगीको भी विचारकी अपे
होती है । इससे गौरवताके दोषते प्रथमही वस्तुविचार
है । सम्यक् अपरोक्ष स्वरूपका जाननेवत् जाननाही
हठयोग हठियोंके वास्ते है विचारशीलोंके वास्ते नहीं।

सांख्य ।

याज्ञवल्क्यके तूष्णीं होनेपर सांख्यने आयकर कहा
अनित्यका विचार नहीं करे तौलों आत्मसुखसे अप्राप्त
कहा जिसकर नित्य अनित्यका अंतर विचार सिद्ध होता
विचारके आदि अंत मध्यमें साक्षीरूपकर स्वस्थित सुख

मेरा रूप है, तिस नित्य सुखरूप आत्माकी प्राप्ति वास्ते नित्य अनित्यका विचार भ्रमसे है, अन्यथा नहीं। सांख्य तूष्णीं हुआ।

वेदांत।

पुनः व्यासने आकर कहा, जब मैं चैतन्यही हूँ, तो नित्य अनित्य से क्या प्रयोजन है? मुझ चैतन्यसे अवशेष भिन्न नहीं; जो भिन्न होवेगा तो जड सिद्ध होगा। हे राजन्! जहां मैं तू अवशेष तीनों नहीं, सो मैं हूँ? राजाने कहा यदि मैं चैतन्य सर्वात्मा हूँ, तो अहं त्वं आदिभी मैंहीं हूँ? व्यासने कहा बारंबार उसका नाम लेनेसे क्या प्रयोजन है? राजाने कहा विलासमात्र है, नाम लेना न लेना मुझमें तुल्य है। दत्तने कहा जो कुछ कथन चिंतनमें आता है सो अवशेप है, जहां यह नहीं सो रूप मेरा है। राजाने कहा वही अवशेष है।

पराशरने कहा हे मैत्रेय! मैंभी तिस सभामें गया और कहा हे रूप मेरे! जिसने अवशेष थापा है, सो अवशेप कैसे होता है? राजाने कहा किसने थापा है? मैंने कहा तुम चैतन्यने थापा है राजाने कहा इसीसे मैं चैतन्य ही अवशेप हूँ। हे मैत्रेय! राजाने अपने स्वरूपको सम्यक् अपरोक्ष जाना था, तिसको कौन अपने निश्चयसे चलायमान करे। राजाने कहा हे संतो! सर्व पदोंसे अवशेपको ऊपर राखो! दत्तने कहा सर्वपदोंको कथन करनेवाला शास्त्र तथा पद, स्वप्नवत् मूलसे हैही नहीं, तो अवशेप मुझ अवाचमें ठौर कैसे पकड़ेगा और अवाच चैतन्य अवशेपको कहां राखेगा। राजा तूष्णीं हुआ।

हे मैत्रेय! उस राजाने किंचित् कालही सत्संग करके अपने स्वरूपको पाया, मैं तुझको अनेक प्रकार उपदेश करता हूँ पर तुझको कुछ प्रवेश न हुआ। हे मैत्रेय! इस समयको दुर्लभ जान, अपने सम्यक् स्वरूपके जानने वास्तेही यह मनुष्य शरीर है, नहीं तो

अकार्थ है। मैत्रेयने कहा हे गुरु! जितनेक नामरूप प्रपंच
अकार्थ हैं अर्थरूप मैं चैतन्य आत्माही हूँ; जैसे सर्व
अकार्थ हैं, स्वप्नद्रष्टाही अर्थरूपहै। पराशरने कहा तेरा रू
मैत्रेयने कहा मैं रूप अरूपसे रहित हूँ।

। निदाघ और ऋषभदेवका सम्वाद।

पराशरने कहा हे मैत्रेय! एक समय निदाघराजाने ऋ
प्रश्न कियाकि, हे प्रभो! मुझको संसारसमुद्रसे पार करो। ऋ
कहा संसारसमुद्र मेरी दृष्टिमें है नहीं, तुझे नौका बनाकर
करूं। हे मैत्रेय! जैसे मैंने तुझको बहुतकालसे उपदेश कि
तुझको प्रवेश नहीं हुआ। तैसे ही ऋषभदेवने निदाघको
किया पर उसको कुछ प्रवेश न हुआ। हे मैत्रेय! जबलग
विचार न करे तबलग गुरु शास्त्र क्या करें। हे मैत्रेय! जो दे
रूप कीचडमें फँसे हैं और मन विषयोंकी इच्छारूप जेवड़ी
तिसको कौन छुडावे। इसहेतु अपना विचार आप करो
स्वरूपके अज्ञानसे, बंध मोक्ष भ्रांति दूर होवे, अन्यथा नहीं।
बहुरि निदाघने कहा हे गुरो! आज मुझको रात्रिमें स्वप्न
शरीर मेरा विनशा है और यमदूत मुझको धर्मरायके पास
धर्मरायने कहा तू कौन है? अपने भलेबुरे कर्म प्रगटकर।
मैं आपको नहीं जानता। धर्मरायने कहा जो तू आ
जानता, तो शासना अपने करेहुये कर्मोंसे, तुझको होगी।
तुम्हारा संस्कारोंके वशसे स्मरण हुआ और मेरी रसनासे
कि, हे धर्मराय! मैं सत्, चित्, आनंद, सर्व मनादिक
आत्मा हूँ, देहादिक संघात मैं नहीं, ये मायामात्र है। त
सैन किया कि, इसको परमसुख देवो, यह दु
नहीं क्योंकि इसको अपने स्वरूपमें अहंप्रत्यय

नहीं। यह वृत्तांत होते नेत्र खुले, देखा तो न धर्मराय है, न यम है न यमलोक है, मैं अपनी शय्यापर आप स्थित हूँ।

हे मैत्रेय! आत्मनिष्ठाका महान माहात्म्य है, जो यमलोकमें भी सत्, चित्, आनंद आत्मा मैं हूँ, इतने कहनेसे दुःखसे छूटा, जो साक्षात् सम्यक् अपरोक्ष अपने स्वरूपका बोध होवे तो क्या बात है? तू सम्यक् आत्माको जाननेवत् जान।

बहुरि हे मैत्रेय! ऋषभदेवने कहा हे निदाघ! जैसे तुझको स्वप्न आया और अनेक प्रकारका प्रत्यक्ष वृत्तांत देखा, पर जब जागा तब भ्रम जाना। तैसे ही जबतक तू अपने स्वरूपके अज्ञानरूपी निद्रामें सोया है, तबतक अनेकप्रकारका बंध मोक्षादि जगत् तुझको भासता है, जब सम्यक् अपरोक्ष बोधरूपी जाग्रत् तुझको होगी, तब जानेगा कि, यह जगत् भ्रममात्र है। निदाघने कहा योग करूँ तो स्वरूपमें जाग्रत् होऊँ। ऋषभदेवने कहा तेरी बुद्धि हँसने योग्य है. मैं और कहता हूँ तू और समझता है। तो कैसे अहंकारसे छूटे। हे मूर्ख! योगनिद्रा-हूँ, मैं; अहंकारको कहते हैं। हे राजन्! यह ज्ञानरूपी खड्ग ले कि, मैं देह नहीं, आत्मा हूँ। अहंकाररूपी फाँस जीवके गलेमें पडी है, तिसको काट, अर्थात् "जीवत्व, ईश्वरत्व, ब्रह्मत्व, प्रपंचत्व, तिसमें बंध मोक्षादि मानना केवल मनका मनन है, मैं चैतन्य मन वाणीसे अगोचर हूँ" यही फाँसका काटना है। इस फाँसके काटनेसे काल-से अभय होवेगा, नहीं तो काल तुझे दुःख देवेगा। हे राजन्! शुद्ध-रूप विचार सत्का तब हाथ आवे जब ताली वैराग्यकी होय और वैराग्य यही है कि, अस्ति भाति प्रियरूप आत्मा है अन्य कुछ नहीं, न होगा न हुआ है। इस निश्चयका नाम वैराग्य है।

ज्ञानी (तत्ववेत्ता) का पहँचान।

निदाघने कहा जिनके ज्ञाननेत्र खुले हैं, तिनकी क्या पहँचान है? ऋषभदेवने कहा जबलग तेरे नेत्र न खुले, तबलग न जान सकेगा।

जैसे, सोया पुरुष जागे विना जाग्रत्पुरुषको नहीं जानता। देह अभिमान सम्यक् मिटा है और आत्माको सम्यक् जा- ना है, तिनको गृह वन तुल्य है । जो प्रारब्धकर प्राप्त हो शोकसे रहित तिसी पर प्रसन्न रहते हैं । ग्रहण त्यागकी करना वास्तव नहीं; व्यवहारमें ग्रहण योगको ग्रहण करते हैं त्यागने त्यागते हैं । हँसनेके स्थानमें हँसते हैं, रोनेके स्थानमें रोते हैं यह कि, जैसा देशकाल होवे, तिसके अनुसारही चेष्टा करे अपने सुखस्वरूप आत्मासे पृथक् जगत्को जानते नहीं।

अहंकारके त्यागका उपाय।

निदाघने कहा अहंकारके त्यागका उपाय अतीत होना मैं अतीत होता हूँ। ऋषभदेवने कहा गृहस्थ त्याग कर अतीत अहंकार नाश नहीं होता; उलटा वृद्धिको पाता है, यह सर्व व सिद्धहै। कोई विरला निरअहंकारी होता है प्रयोजन भी अहं- कारके ही त्यागनेका है, स्थूलका नहीं क्योंकि सूक्ष्म अहंकार सेही आवागमन मिटताहै। इससे तू सूक्ष्म अहंकार त्याग सर्वत्यागी होवे । कई अहंकारके त्यागनेवास्ते योगाभ्यास पर त्यागा नहीं जाता, उलटा बढजाता है क्योंकि उन्होंने रके त्यागनेका मार्ग नहीं जाना ।

लौकिक गुरुका उपदेश।

कदाचित् लौकिकगुरुसे अहंकारके त्यागनेका प्रश्न करता कहताहै तीर्थकरना, व्रत नेम करना,तिससे तिस्के मन विषे उलटा दृढ होताहै, जब दृढ अहंकार हुआ तब बुद्धि क्षीण, जब बुद्धि क्षीण हुई तो आवागमनको प्राप्त होताहै. स्वरूपज्ञानसे दूर जाय अंधेकूपमें पडताहै, तिसको परमे- से तो निकसे, अन्यथा नहीं निकलसक्ता ।

। भजन दोप्रकारका है–निष्काम और सकाम ।

हे राजन्! दो प्रकारका भजन है। एक निष्काम और दूसरा सकाम । सकामसे स्वर्गादि सुख पाता है परन्तु निजस्वरूपसे अप्राप्त रहता है । निष्कामसे अंतःकरणकी शुद्धिसे ज्ञानद्वारा मोक्षरूप आत्माको सम्यक् अपरोक्ष जानता है । आप सहित सर्वको ब्रह्मरूप जानना; यही परमभजन है ।

। सूक्ष्म अहंकारसे कैसे छूटे ?

निदाघने कहा हे गुरो ! सूक्ष्मअहंकारसे कैसे छूटूँ ? ऋषभदेवने कहा तेरी क्या शक्ति है कि, सूक्ष्म अहंकारसे निकसे । मरीचि आदि लेकर सर्व ऋषि चाहना सूक्ष्मअहंकारके त्यागनेकी राखते हैं परन्तु किसी एककाही पूर्वके महान् पुण्यप्रतापसे सूक्ष्म अहंकार नाश होताहै । सूक्ष्म अहंकार अथाह समुद्र है तिसका तरना अतिकठिन है । जिसको सूक्ष्म अहंकार तिसका भ्रांतिरूप जन्ममरण भी दूर नहीं होता ? सूक्ष्म अहंकार तपादिकोंसे दूर नहीं होता परन्तु सम्यक् विचारसे दूर होता है ।

निदाघने कहा "जब सर्व अस्ति भाति प्रियब्रह्मरूप आत्मा है तो सूक्ष्म तथा स्थूल अहंकार कहांहै ?" मधुरता,शीतलता,द्रवतासे फेन बुद्बुदे तरंग क्या जुदे हैं ? नहीं। ऋषभदेवने कहा जीव आवागमनमें बंध है तू कैसे जीवको ब्रह्म कहता है ? निदाघने कहा हे गुरो! जगत् सहित जो तुम्हारा हमारा कथन चिंतन है, सो सर्व रज्जु सर्पवत् मिथ्या है, तिससे जो रहित है तिसको जीव ईश्वर ब्रह्म क्या कहें ? अवाच पद है ।ऋषभदेवने कहा आपको अवाच पद जानना यहभी सूक्ष्म अहंकार है ।

। अष्टावक्र ।

तिससमय अष्टावक्र आये और कहा हे राजन् ! मनको वशकर जो अहंकार तेरा नष्ट होवे । राजाने कहा जब सर्वरूप आत्मा है तो

अहंकार और मन कहां है ? कौन है जो मनको वश करे तब
कहा हे अष्टावक्र ! तू कौन है ? कहा मैं ब्रह्महूँ । ऋषभदेव है ?
ब्रह्म एक है कि, अनेक ? अष्टावक्रने कहा तेरी बुद्धि हँसने है ?
जो ब्रह्म है तो एक अनेक क्या है ? तूभी कह मैं पूर्णब्रह्म
षभदेवने कहा जबतक कामादि पांचोंका त्याग न करे
सुख नहीं पाता । अष्टावक्रने कहा जब तूही चैतन्यहै तो
पांच क्या ? ऋषभदेवने कहा रूप तेरा क्या है ? कहा जाग्र
सुषुप्तिसे परे तुरीया मेरा रूपहै । तिनकी अपेक्षासे तुरीया है मैं
तुरीयाते भी अतीत हूँ, मुझमें गिनती नहीं । दत्तने कहा मैं
देशकाल वस्तुसे अतीत हूँ । अष्टावक्रने कहा देशकाल वस्तु
है ? दत्तने कहा स्वप्नवत् देशकाल वस्तु मुझ चैतन्यमें
प्रतीत होते भी स्वप्न द्रष्टावत्, मैं चैतन्य अद्वितीय हूँ ।
प्रपंचका मुझ चैतन्य अधिष्ठानके साथ क्या संबंध हैजो मैं
कल्पित तादात्म्य संबंध है। मैं पूर्ण हूँ । अष्टावक्रने कहा जहां
कहना है; तहां द्वैत है, जहां पूर्ण है, तहां अपूर्ण भी है । तेरा क
योग्य है । जब सर्वात्मा ही है पूर्ण अपूर्ण अतीत भी प्रत्यक्आ
दत्तने कहा निरहंकार होना भी अहंकार है । कहो निरहंकार
अष्टावक्रने कहा ऋषभदेवसे पूछ जो अपने शिष्यको ऐसा
है कि, स्वतःसिद्ध प्रथम प्राप्त आत्मास्वरूको भी जान नहीं
दत्तने कहा हे ऋषभदेव ! मैं तेरा शिष्य होता हूँ उपदेश
ऋषभदेवने कहा हे दत्त ! चौबीस गुरुसे तुझको निश्चय न हु
मुझसे कैसे होगा ? दत्तने कहा मैं चैतन्य आपही गुरु हूँ
शिष्य हूँ, कहे तो शिष्यसहित तुझे भस्म करूं । ऋषभदेवने
सूक्ष्म अहंकार नाश हुआ तब आपसे आप भस्महोगा । पर

तब नाश होय जब जाने सर्व शिव है तो स्थूल सूक्ष्म अहंकार कहां है ? दत्तने कहा जब सर्व शिव है तो कैसे जाना जावेगा कि, सर्व शिव है ? तथा अहंकार नाश हुआ वा नहीं क्योंकि सर्व शिव है और अहंकार नाश हुआ है; इस चिंतनके चिंतन करनेवालेको तथा चिंतनीयको शिव होनेसे। इसी हेतु अवाचपद है। अष्टावक्रने कहा मन वाणीका वाच्य भी आत्माही है और मन वाणीका अवाच भी आत्मा ही है; जैसे स्वप्नद्रष्टा मन वाणीका वाच्य स्वप्नभी आप है और अवाच्य भी आप है, इससे अद्वैत है।

। योग ।

वसिष्ठने कहा मुक्त हुआ चाहे सो योग करै। अष्टावक्रने कहा सत् कहो योग कौन करै ? सत् और असत्के योगका योग नहीं क्योंकि आत्मासे भिन्न सर्व असत् है और आत्मा सत् है, सो कैसे योग करनेके योग्य होवे ? तमप्रकाशके समान दोनोंका संबंध नहीं। वसिष्ठने कहा तुम बालक हो, योग किया नहीं, इससे तुम्हारा मन शुद्ध हुआ नहीं। अष्टावक्रने कहा विछोहा हो तो मिलाप करना, मिलापका मिलाप क्या करना है ? उसका तो सदा योगही है। आत्मामें विकार रूप संसार कदाचित् भी है नहीं। इससे संसारका सदा वियोग भी है। कहो आगेही स्वतःसिद्ध योग वियोगको मैं अब नवीन क्या करूं ? जो मन वाणी शरीरके कर्त्तव्यसे सिद्ध होता है सो अनित्य है; सो अनित्य देहरूप संसार भी नित्य प्राप्त है और नित्य ब्रह्मरूप आत्मा भी नित्य प्राप्त है। वा दुःखकी निवृत्ति सुखकी प्राप्ति वास्ते योग करना है, सो सुखरूप आत्मा नित्य प्राप्त है और संसाररूप दुःखकी निवृत्तिभी नित्य प्राप्त है। इससे कल्पित दुःखकी निवृत्तिरूप भी आत्माही है, सो आत्मा अपना स्वरूप है, स्वरूपकी प्राप्तिवास्ते

योगका कुछ काम नहीं। सो कहो दोनोंमें किसकी दृत्त यत्न करना? इस प्रकार योग निष्प्रयोजन है,तुम पद्मादिरूप योग लिये शिष्योंको उपदेश करते हो और प्राणोंका रोकहो हो। मैं कहता हूँ, अपनी रुचिके अनुसार आसन करे यह लंबा होयकर सोय रहे वा बैठा रहे वा चले वा खडा रहे भी सुख नहीं आने जाने देवे रोके नहीं, मनको भी करे? पर मन वाणी सहित मन वाणीके गोचर अगोचरको आत्मा जाने, यह जाननाही योग है, करना कुछ नहीं। है आगे सिद्ध है।

खेचरी मुद्राद्वारा योगी कैसा अमृत पीना

जो कहते हैं लंबिका को छेदनकर बढाके योगी जब करता है तब अमीरस पीता है; हे साधो! सो अमीरस जब योगी प्राणोंको खैंचकर दशवें द्वारमें रोकता है, तब शरीर समान उष्णरूप होजाता है, तिस उष्णतासे शीशमें जो रुधिर है, जो वर्फकी समान जमा रहता है, सो प्राणोंके उष्णतासे पूर्वोक्त रुधिर मज्जा आदि नीचे गिरता है, तिस अमृत जानकर पीता है। इससे अज्ञानी है क्योंकि अंतर ब्रह्मही है, सोई हुआ अथाहसमुद्र, तिसको त्यागकर निश्चय करता है, इसीसे अज्ञानी है। वसिष्ठने कहा तूने भ्रष्ट किया है? दत्तने कहा मैं चैतन्य नामरूप संसारसे अतीत हूँ। योगीको योग्य है कि, सोवे नहीं तथा वचन सन करे, प्राणोंके मार्गको देखता रहै इत्यादि अनेक रहै पर यह नहीं जानता कि, निर्विकार शिवात्मामें विकार आत्मघात है। पंचतत्वही रज्जु सर्पवत् मिथ्या है, एक नका क्या चलता है? कपिलने कहा जो ईश्वरको आत्मा जाने सो योग करै, जिसने सर्व ईश्वर आत्मा जाना है सो

दत्तने कहा वचन और तूष्णीं दोनों मेरे स्वरूपमें नहीं, और मैंही सर्व रूप भी हूँ इससे दोनों सम हैं। अष्टावक्रने कहा न कहता हूँ न तूष्णीं होता हूँ और आपही कहता भी हूँ आपही तूष्णीं भी होता हूँ। सारांश यह कि, द्रष्टा दर्शन दृश्यादि त्रिपुटी भी मैं चैतन्यही हूँ और त्रिपुटी रहित भी मैंही हूँ; स्वप्नद्रष्टावत्। किसी पदमें भी बंधमान नहीं हूँ।

। नारद ।

तिस समय नारद, बाँसुरी विषे नारायण नारायण गाते हुये आये। सबने कहा तूष्णीं हो। नारदने कहा जहां संत इकट्ठे होते हैं, तहां आत्मनिरूपण करते हैं, तिससे मुमुक्षुओंको परमार्थ प्राप्त होता है, तूष्णींसे क्या सिद्ध है? दत्तने कहा स्वतःही नारायण है, तो कहनेसे क्या लाभ है? नारायणको तूने भुलाया है, नारायणका और तेरा वियोग होगया है; तू नारायणको ढूँढता फिर, हमारे स्वरूपमें भुलावना चिन्तना संयोग वियोग दोनों नहीं। नारदने कहा वैकुंठमें भी इस सभाकी चर्चा हुई थी, सो संतोंके दर्शनवास्ते विष्णु भी आते हैं। दत्तने कहा असत् मत कह, तेरे वचनसे लोग हँसेंगे क्योंकि व्यापक विष्णु चैतन्य आत्मा विषे आवना जावना कहां है? हम विष्णुके मिलनेकी इच्छा नहीं रखते क्योंकि विष्णु हमारा आत्मा है, हम विष्णुके आत्मा हैं! अपने आत्माके मिलने जुदाहोनेकी इच्छा कोई नहीं करता।

। विष्णु ।

तिस समय विष्णुने आकर कहा, जिसने मुझ व्यापक चैतन्य विष्णुको व्यापक जाना है सो अचिन्त मेरा रूप है, तिसविषे और मेरे विषे कुछ भेद नहीं। दत्तने कहा तुझको जाने विना प्रथम क्या तेरा रूप नहीं? क्या घटाकाशको महाकाश जाने विना प्रथम घटाकाश क्या महाकाश नहीं? हे नारद! परमेश्वर आप कहता है सर्व विष्णु है;

तू आपको तिससे भिन्न नारद दास जानता है। जब सर्व तब नारद कहां है? नारदने कहा जब विष्णुही है तो विष्णुही है; दासस्वामी भी विष्णुही है।

जडभरत।

जड़भरतने आकर कहा सर्व जड़भरत है। विष्णुने कहा भरत न विष्णु एक मैं चैतन्य अद्वैत हूँ। पर कहो जडभरत अर्थ क्या है? कहा कि, जड नाम अफ़ुर चैतन्यका है आनन्द पूर्णका है, तकारका सत् अर्थ है इससे सत्; चित् जडभरतका अर्थ है।

जडभरत और एक योगीका सम्वाद।

जडभरतने कहा हे सभा! एक समय मैं विचरता हुआ गया तहां एक योगीको देखा। मैंने नमस्कार करके प्रश्न हे योगी तेरा स्नान क्या है? योगीने कहा निरहंकाररूपी स्नानकर, जीवत्वरूपी मैलको धोयाहै। मैंने कहा भस्म तेरी उसने कहा अपने नित्य सुख चिद्रूप आत्मासे पृथक् प्रतीति छको, निजस्वरूपके सम्यक् ज्ञानरूपी अग्निसे जलाकर, गाई है। मैंने कहा आसन तेरा कौन है? कहा सर्व मायासे पर्यंत, दृश्यजगत्की उत्पत्ति, स्थिति, संहारका आसन नाम मैं चैतन्य हूँ, मुझ चैतन्यका आधार कोई नहीं, इसीसे स्वयं जैसे फेन बुद्बुदे तरंगादिकोंकी, उत्पत्ति स्थिति संहारका, जल है; जैसे स्वर्णका आसन भूषण है, वा तरंगादिकों का आसन इत्यादि अनेक दृष्टांत हैं वा सर्व कार्य वर्गमें कारण स्थित सर्व कार्य कारण नामरूपप्रपंच मेरा आसनहै, वा अचल स्थिति आसन है। मैंने कहा आना जाना तेरा कहांसे हुआ है? आकाशके समान पूर्ण हूँ, मुझ चैतन्यमें आना जाना नहीं; जैसे

का भूषणोंमें आना जाना नहीं; जैसे रज्जुका सर्पादिकोंमें आना जाना नहीं। मैंने कहा प्राण अपानका इकट्ठा करना क्या है? उसने कहा एकजीव एक ईश्वर दोनोंको एक जाना है; जैसे घटाकाश और महाकाश एक है, यही प्राण अपानका इकट्ठा करना है। मैंने कहा इडा पिंगला सुषुम्नाका कैसे अभ्यास किया है? कहा इडा जीव, पिंगला ईश्वर, सुषुम्ना ब्रह्म यह मुझ चैतन्यसे प्रकाश रखते हैं, मैं स्वयंप्रकाश हूँ। मैंने कहा धारणाकहो? कहा सर्व मैं हूँ। मैंने कहा सोहंका अर्थ क्या है? कहा ब्रह्मासे लेकर चींटीपर्यंत अंतर बाहर पूर्ण हूँ। मैंने पूछा कि, नासिकादृष्टि क्या है? कहा मायाकर कल्पित प्रपंचकी उत्पत्तिसे पूर्व, जो मैं चैतन्य अवाचपद हूँ, सो अबभी वही हूँ। वा नाश नाम अभावका है, सो भाव पदार्थोंकी तथा मनकी कल्पनाके प्रथम निर्विकार स्थित हूँ, यही नासादृष्टि मेरी है। मैंने पूछा कि, त्रिपुटी क्या है? कहा सत्त्व, रज तम इस त्रिपुटीका साक्षी चैतन्य मैं हूँ। मैंने कहा योगीका शरीर कभी गिरता नहीं, यह क्या जानना? कहा प्रकृति पुरुषके संयोगकर जगतकी उत्पत्तिकरनेवाला जो चैतन्य योगी है, सो अशरीर होनेसे गिरता नहीं; वा जैसे देहीका यह देह शरीर है; तैसे पूर्वोक्त मुझ चैतन्य योगीका माया शरीर है; सो माया अपने देहादिक कार्यकी अपेक्षासे अगिड है इससे योगीका शरीर अगिड कहा है। वा शरीर नाम स्वरूपका है, सो पूर्वोक्त चैतन्य योगीका स्वरूप अगिड है, वा पंचभूतरूप देहसे अतीत हूँ। मैंने कहा मैं तेरा शिष्य होता हूँ। कहा आगेही सर्व दृश्य मुझ द्रष्टा गुरुका सेवक है, अब क्या शिष्य होगा? पुनः मैंने कहा चौका किसका किया है? कहा चतुष्टय अंतःकरणका चौका किया है, नाम मायामात्र जाना है। मैंने कहा चूल्हा रोटी करनेका तेरा कौन है? कहा अहं त्वं वा जीव ईश दोनों ईंटा बनाकर "मैं ब्रह्मात्मा हूँ" यही रोटी करता हूँ। सारांश यह कि, जीवभाव तथा ईशभाव त्यागके

अवाचपदमें स्थिति की है। मैंने कहा अन्न तेरा क्या है। कहा
विज्ञान दोनों मेरे अन्न हैं। पूछा खाना तेरा क्या है? कहा
मैंने कहा ईंधन तेरा क्या है? कहा सर्व भोगोंकी अचाहना
है। मैंने कहा भगवानको भोग क्या लगाता है? कहा देह
प्रत्यक् आत्मा भगवानको, भोग लगाकर स्व स्वरूप हुआ हूं
यह कि, मैं देहादि संघात नहीं, किंतु मैं प्रत्यक्आत्मा हूं।
सोना तेरा क्या है? कहा सर्व दृश्यमान रूप मेरा है, जैसे
सर्व स्वप्न सृष्टिमें शयन कर रहा है, नाम व्याप रहा है।
तू मेरा गुरु है? कहा मैंने गुरु शिष्य भावको त्यागा है।
दुःखको मुझ चैतन्यमें मत चितव।

उसने पूछा तेरा नाम क्या है? मैंने कहा जडभरत।
मेरे साथ तेरा संग नहीं होगा क्योंकि जड मृतकको
चैतन्य जीवता हूँ; तू उसके संग रह जो जडभावको न त्यागे।
यह कि, जो आपको देहादिक जडसंघात माने, यथा यो
चाहिये। जड चैतन्यका क्या संग है? जब तू अपने जडभावको
मैं अपने चैतन्यपनेको त्यागूँ तब एकता हो, अन्यथा नहीं।

हे सभा! अमृतरूप तिसका वचन सुनकर मेरा जो जड
नेका अभिमान था सो निवृत्त हुआ।

। वामदेव।

पराशरने कहा हे मैत्रेय! इतनेमें वामदेव आया और कहा
भाति प्रियरूप नारायण आत्माही है। हे मित्रो! नारायणसे
तुमने निश्चय किया है, तिसका त्याग करो! दत्तने कहा नारा
रूप क्या है? कहा अंतर साक्षी रूपकर जो मनादिकोंको
करता है और जो मायाकर एकसे अनेक हुआ है, पर वास्तवमें

है, इंद्रजालीवत् । दत्तने कहा मुझे चाहना एककी भी नहीं अनेकको क्या करूँगा ? कपिलने कहा जो सर्व तूहींहै तो एक अनेक भी तूही है।

दुर्वासा ।

पुनः दुर्वासा आया पर अहंकाररूपी अग्निमें जलता था। दुर्वासाने कहा सर्व भजन गोविंदका करो, नहीं तो सर्वको भस्म करूँगा । जानते तुम नहीं हो ? मैं रुद्र हूँ ? दत्तने कहा रुद्र रुदनको कहते हैं इससे रुदनकर ! दुर्वासाने कहा हे दुष्ट ! मैंने सुना है कि, तूने सर्व संसारको भ्रष्टकिया है ? पहले तुझे भस्म करता हूँ । दत्तने कहा घटके आदि माटी, अंत माटी, मध्य माटी, अपने फूटनेमें घटको क्या भय है ? जैसे तरंगके आदिभी जल है मध्यभी जल और अंतभी जल है तो तरंगके निज परिच्छिन्न स्वरूपके फूटनेमें क्या भय है ? तैसेही इस पंचभूतरूपी देहके आदिमें भी चैतन्य आत्मा है, अंतमेंभी चैतन्य आत्मा है और मध्यमें भी चैतन्य आत्मा है; शरीरके भस्म होनेसे क्या भय है ? मैंने तुझ सहित सर्व नामरूप प्रपंचको ऐसा भस्म किया कि, वह भस्मभी नहीं मिलती; जैसे स्वर्ण तथा जलादि सम्यक् दृष्टिवान पुरुषने भूषणोंको तथा फेन बुद्बुदे तरंगादिकोंको भस्म किया है; नाम अत्यंताभाव जानता है; तैसेही अस्ति भाति प्रियरूप आत्मासे पृथक्, नामरूप प्रपंचका, सम्यक् अपरोक्ष बोधकर ऐसा भस्म किया है; मानो तिसका अत्यंताभाव जाना है, यह निश्चय जिसको है सोई नामरूपसे भ्रष्ट है।दुर्वासाने कहा तुम सभी शिष्य मेरे होवो, नहीं तो शाप दूँगा । विष्णुने कहा सर्व उपाधियोंका मूल दत्त है, तिसीको शापदे । दुर्वासाने कहा हे मित्रो ! तुम कर्म करो भ्रष्ट मत होवो । दत्तने कहा हम अकर्महैं, कर्म कैसे करें । कर्म देह मनादि संघातके हैं, सो स्वतःसिद्ध कर्म संघातसे होताहैं करनेसे नहीं । दुर्वासाने कहा हे विष्णु ! कर्मोंकर जगत्का ठाटहै, जो तुझे यह

जगत्का ठाट रखना है, तो कर्मोंकी प्रधानता राख स्वप्नप्रपंचका किन कर्मोंका ठाट है, निद्रारूप अविद्या ठाटहै। जहां अविद्या है तहाँ कर्म आपसे आप है करनेसे नहीं, परन्तु कर्मकांड, उपासनाकांड, ज्ञानकांड, काल, अवस्था, भेदसे स्वस्व फलको सम्यक् देते हैं। जगत्के व्यवहारका बाधा करनेवाला नहीं किन्तु कर्मादि सम्यक् स्वरूप बोधन करताहै। ज्ञानि कर्म कर्ताभी अकर्ता अज्ञानी कर्म अकर्ताभी कर्ता है, इससे सर्वको अपना स्व जो शांत होवे। दत्तने कहा कर्मरूप जगत् मुझ चैतन्यसे उत्प और मुझमेंही लीन होता है, पर मैं चैतन्य ज्योंका त्यों नि स्वप्नद्रष्टावत्। दुर्वासाने कहा सर्वको भस्मकरे विना न जाऊँ कहा जिन्होंने आपा अहंकार प्रथम भस्म कियाहै सोई भस्म कर सक्ताहै, अन्य नहीं। जो तुझसे भय राखता होवे भस्म कर। मैं भयनहीं राखता हूँ दूसरा मुझ चैतन्यसे भिन्न लेकर सर्व जगत् रज्जुसर्पवत् मिथ्या प्रतीतिमात्र है, कल्पि अधिष्ठानको कैसे भस्म करैंगे? उलटा अधिष्ठानके अज्ञान ष्ठानमें कल्पितपदार्थ भस्म नाम निवृत्त होजातेहैं। इससे होनेका फिक्र कर, नहीं तो भस्म होजावेगा; तुझको वचने यही है जान मैं ब्रह्मस्वरूप आत्माहूँ यही कथन चिंतन कर त्मासे आपको भिन्न मानेगा तो क्षणमात्रमें भस्म होजावेगा मिथ्या होजावेगा। दुर्वासाने कहा हे जडभरत! तूने नाश करके, बहुरि साथ क्यों रखताहै? जड़भरतने कहा पूर्ण होकर खोटको संग रखता है। हे दुर्वासा! जो मैं जड दृश्य वर्गको संगनाम स्फुर्ण नहीं करूँ तो इसकी होवे? क्योंकि, जडको तो जड स्फुर्ण नहीं करता, दूसरा दृश्यका उपादान कारण जो माया सो भी जड है; मुझ चैतन्य

पदमें माया विना वचन बिलास नहीं होता इससे वचन विलास करने वास्ते मायाको संग रखता हूँ, स्वतः नहीं। दुर्वासाने कहा वो समा में नहीं पावता जो तुम्हारी सभामें आया हूँ क्योंकि मार्ग तुम्हारा भ्रष्ट है। दत्तने कहा ठीक कहा तूने जन्ममरणरूप संसारमार्ग हमारा भ्रष्टनाम नष्ट भया है और स्वरूप सम्यक् अपरोक्ष जाननेवत् जाना है। तुझ अज्ञानीका जन्ममरणसंसार नष्ट नहीं हुआ इससे तू अभ्रष्ट है।

। मीमांसा ।

इतनेमें मीमांसा आया, दुर्वासा प्रसन्न हुआ और कहा हे मीमांसा! तू आगे सन्मुखहो, मैं सहायता करूंगा। मीमांसाने कहा कर्मविना कार्य सिद्ध नहीं होता। दत्तने कहा कार्य कारणसे रहित मैं चैतन्य आत्मा स्वतःसिद्ध स्वयंप्रकाश हूँ मुझको कर्मोंकी अपेक्षा नहीं; जैसे सूर्य और स्वप्रद्रष्टा, अपने कार्य नाम प्रकाशमें, जगत्‌रूप कर्मकी अपेक्षा नहीं राखते। जगत् कोटिमें भी कहो तो कर्तासे कर्म सिद्ध होता है, कर्मसे करता सिद्ध नहीं होता, यह सर्वको प्रसिद्ध है; जैसे नेत्ररूप करतासे नील पीतादि रूप कार्यकी सिद्धि होती है, रूपसे नेत्र सिद्ध नहीं होते। हे मीमांसा! मन वाणी शरीरसे कर्म होते हैं मुझ चैतन्यमें मन वाणी शरीरादिकही नहीं तो कर्म कहां है?

। कर्मकी आवश्यकता कहाँतकहै ?

मीमांसाने कहा तुमहीं कहो शरीर होते कर्मोंसे छूटना होगा? कदापि नहीं। इससे स्वरूप प्राप्तिवास्ते कर्म करो। दत्तने कहा अकर्म रूप आत्माके बोधसे कर्मोंसे छूटता है, शरीर होतेही। इससे अकर्म रूप आत्माकी प्राप्तिवास्ते कर्म है जब स्वरूप जाना तो कर्मसे क्या प्रयोजन है। मीमांसाने कहा हे दत्त! बीज और वृक्षमें क्या भेद है? दत्तने कहा यहां यह दृष्टांत नहीं लेना, साध्यकी प्राप्ति हुये साधनोंकी

कुछ अपेक्षा नहीं; जैसे भोजनकी सिद्ध हुये तिसी कालमें साधनोंकी अपेक्षा नहीं है। हे मीमांसा ! किसी पुरुषको स्थानमें जाना है और तीन मंजिलोंसे आगे देवस्थान है मंजिल चलकर दूसरी मंजिलको पहुँचता है, तो प्रथम मंजिल व्यसे रहित होता है, जब तीसरी मंजिलको पहुँचता है, मंजिलके कर्तव्यसे छूट जाता है; तैसेही जब चतुर्थ मंजिल देवस्थानको पहुँचता है तबतक कृत्य होताहैं परंतु तीन मंजि करेविना कृतकृत्य नहीं होता, तब पिछले सर्व मार्गके पूर्वको कर्तव्यसे कृतकृत्य होता है तिससे आगे कर्तव्य नहीं। पुनः मार्गोंका तथा मार्गोंके सुख दुःखका तथा मार्गोंमें स्थित अरमणीक पदार्थोंका स्मरण तो होता है परंतु यत्न नहीं होता कर्म उपासना वृत्ति ज्ञानरूपी तीन मंजिलोंसे परे ब्रह्मरूप है; तिसकी प्राप्तिवत् प्राप्तिसे एक कर्म क्या तीनों कांड नि हैं; पूर्वोक्त दृष्टांतवत् । तैसे स्वयं स्वरूप आत्मा देवस्थान है प्राप्तिमें कर्मकांड, उपासना, ज्ञानकांड, तीन मंजिले हैं। जब कर्म कर अंतःकरणकी शुद्धिरूपी पहिली मंजिलमें पहुँचा, तो निष्कर्तव्य हुआ, फलकी प्राप्ति होनेसे। तैसेही सगुण वा निर्गु सना करनेसे अंतःकरण निश्चलतारूप दूसरी मंजिल पहुँचता तिससे निष्कर्तव्य होता है। तैसेही सम्यक् ज्ञानकर अज्ञान त्तिरूप तीसरी मंजिल पहुँचता है, तब तिसके यत्नसे रहि है यह नहीं कि, पीछे लौटकर फिर यत्न करता है किन्तु नहीं क्योंकि, तत्तत् प्रयत्नके फल प्राप्त होते हैं। तिससे प दुःखकी हानि और परम आनंदकी प्राप्ति रूप मोक्ष रूप दे को प्राप्त होता है। यह व्यवस्था सब विद्वानोंके अनुभव इससे स्वरूप प्राप्ति पश्चात तीनों कांड निष्फल हैं।

कहा कर्मोंसे जगत् होता है तथा उत्तम सुखरूप लोकोंकी प्राप्ति होती है। कपिलने कहा कर्मसहित जगत्की चैतन्य आत्मासे (स्वप्नद्रष्टासे स्वप्नवत्) उत्पत्ति होती है; दूसरा जिसको लोकोंमें जानेकी इच्छाहो सो कर्म करो, जिसको इच्छा नहीं सो मतकरो। परन्तु कर्म कर्ता कौन है ? यह विचार मुमुक्षुको अवश्य कर्तव्य है। मीमांसाने कहा हे साधो ! कायिक, वाचिक, मानसिक तीन प्रकारके कर्म हैं। आत्मानात्माका विचार मानसी कर्म है। विचारना न विचारना यह भी मानसी कर्म है। जो कुछ कथन करोगे वा न करोगे, सो वाणीका कर्म है। जो कथन चिंतन करोगे वा न करोगे, सो मानसी कर्म है। खान पानादिक शयन जन्म मरणादि चेष्टा करोगे वा न करोगे, सो शारीरक कर्म है। कहो किसकालमें अकर्म हुआ। सारांश यह कि, यह देहही कर्मरूप है, कर्मसे कर्म अतीत कैसे होता है ? दत्तने कहा जो शरीररूप होवेगा सो कर्मरूपभी होवेगा, शरीरसेही रहित अशरीरी आत्मा, पूर्वोक्त तीन प्रकारके कर्मोंका साक्षी कर्मरूप कैसे होवेगा ? जैसे देही देहरूप नहीं होता; तैसे कर्मरूप संसारसे, मैं प्रत्यक् आत्मा कर्मका प्रकाशक भिन्न हूँ। कर्ताके अधीन कर्म है इससे जड है। प्रसिद्ध कर्त्ता, कर्म, भिन्न भिन्न होते हैं, एकरूप नहीं। इसीसे कर्मोंका सार कर्ता है कर्ता कर्म करो वा न करो। हे मीमांसा ! तू चैतन्य सर्वका कर्त्ता होकर कर्मरूप क्यों होता है ? मीमांसाने कहा कर्म विना चंडाल होता है। ऋषभदेवने कहा चंडाल आत्मासे कब भिन्न है जो कर्मके त्यागसे चंडाल होता है, तो मैं भी चंडाल हूँ। चंडाल नाम ब्रह्मरूप आत्माका है क्योंकि कर्मरहित आत्माही है, अन्य नहीं। इससे आत्मा चंडाल हुआ। मीमांसाने कहा इन्होंने संसारको भ्रष्ट किया है। दत्तने कहा ठीक कहा तूने; अपने स्वरूपसे भिन्नको मिथ्या जाना है। हे मीमांसा ! जो स्वरूपसे अप्राप्त है वही भ्रष्ट है, पर

कहो कर्म स्वप्रकाश है कि, परप्रकाश है ? मीमांसाने कहा कथन चिंतन मन वाणीका कर्म है । जडभरतने कहा "... वाणी का कर्म है" यह कथन चिंतन अंतर जिसने जाना, सो स्वप्रकाश अक्रिय है, कर्मरूप नहीं ।

पराशरने कहा हे मैत्रेय ! मीमांसाका प्रयोजन यही था पालना कर्मोंका करै क्योंकि देहाभिमान स्थूल अहंकारसे न होते, सूक्ष्मसे होते हैं, स्थूल शरीरसे भिन्न आत्माको मानता है क्योंकि शरीररहित हुआ ही यह जीव कर्मोंका फल दिकोंमें जायकर भोगता है, इन शरीर सहित नहीं । परन्तु असंग, अक्रिय, नित्य, मुक्त इत्यादि विशेषणों युक्त, नहीं जानता, इसीसे भावी जन्मको पाता है । कर्मों अत्यंत कठिन है । मैत्रेयने कहा सर्व कर्मोंकी आत्मामें पालना मीमांसा अनुसार बनती है परन्तु आत्मा विषे कर संतुष्ट आत्माचारी क्या करे ? पराशरने कहा हे मैत्रेय ! निश्चय जाय तो निश्चय नहीं कपट है । शरीर नाश होय पर निश्चय न त्यागे । इसी बातपर एक कथा सुन ।

। एक राजपुत्रकी कथा ।

(जिसको गर्भमेंही आत्मज्ञान हुआ था.)

कर्मभूमि भरतखंड विषे एक राजा था उसकी स्त्री गर्भवती जब दश मास बीते तब पूर्व अनेक जन्मोंके पुण्यके प्रताप सम्यक् प्रतिबंधकके अभावसे तथा पूर्वजन्मोंमें किये जो श्रवण निदिध्यासन ज्ञानके साधन वा अनेक जन्म संस्कारोंके पूर्वकिये सगुण वा निर्गुण अनेक प्रकारकी उपासनाके बलसे हुआ है सम्यक् अपरोक्ष ज्ञान जिस बालकको, सो

अध्ययनके संस्कारकी प्रगटतासे गर्भमेंही वेद उच्चारण करनेलगा। तिसकी अत्यंत धर्मात्मा माताने, सूक्ष्मदृष्टिसे वेदध्वनी सुनकर प्रश्न किया कि, हे पुत्र! तू कौन है? पुत्रनेकहा मैं सत् चित् आनंद आत्मा हूँ? माताने कहा तू पिताके शुक्रसे उत्पन्न हुआहै। पुत्रने कहा हे माता जो पिता माताके शुक्रसे उत्पन्न हुआ है, सो यह जड शरीर है? मैं शरीर नहीं, केवल चैतन्य मात्र अरूप हूँ अज, अक्रिय, अविनाशी आत्मा हूँ. भूत, भविष्य, वर्तमानमें एकसा पूर्ण हूँ। माता पिताके शुक्रसे कैसे होऊँ। माताने कहा मुझसे अपकर्म कुछ नहीं हुआ, तू पिताके शुक्रसे क्यों मुकरताहै? पुत्रने कहा मैं शुक्रसे मूलही नहीं क्योंकि यह शरीर काष्ठ-की पुतरीके समान नाम रूपात्मक जड है और मैं चैतन्य नामरूपसे रहित हूँ। हे माता! जो नाम रूप शरीरसे रहित होवे उसको कैसे कहिये कि अमुकेका पुत्र है? तेरी दृष्टि शरीरपर है, पर इसको स्वप्न तथा मृगतृष्णाके जलवत् जान। माताने कहा पिताके शुक्रसे मुकरता है, तो शास्त्रसे भ्रष्ट होवेगा। पुत्रने कहा सत् कहा तूने जो नाम रूप स्वरूप नहीं राखा सो शास्त्र जगत्से भ्रष्ट है। हे माता! शास्त्र तिसको दंड देता है, जिसने आपको शरीर माना है। जिसने इस मलीन शरीरका अभिमान सम्यक् त्यागके, अपने आत्मस्वरूपको जाना है, तिसपर शास्त्रकी विधी नहीं। माताने कहा हे पुत्र! तू कौन? देवता कि, पिशाच कि, मनुष्यादिक वा कोई. और है? पुत्रने कहा हे माता! पूर्वोक्त शब्द और शब्दोंके अर्थसे रहित हूँ। सर्वका प्रकाशक हूँ और सर्वरूपभी मैं चैतन्यही हूँ, स्वप्नद्रष्टावत्। माताने कहा जो तू ऐसा था मेरे उदरमें क्यों आया? पुत्रने कहा हे माता! तू विचारके नेत्रोंसे अंध है। क्या आदि में चैतन्य तेरे उदरमें न था? जो अब आया हूँ। मैं चैतन्य आकाशके समान सर्व व्यापक हूँ, मुझमें आना जाना नहीं। सत् चित् आनंद आत्मा मेरा स्वरूप है

मुझको आत्मदेव कहते हैं। जन्म मरणका कारण जो दे पूर्वक कर्मोंका सेवन है; तिससे अतीत हूँ। मेरा नमस्कार मु माताने कहा योगकर जो मलिनतासे छूटे। पुत्रने कहा यो चैतन्यमें वियोग है। जो मुझ चैतन्यमें मलीनता होवे तो दूरकरने वास्ते योगादि करूँ; पर मुझमें मलीनता है नहीं योगसे क्या प्रयोजन है? जैसे आकाशमें मलीनताहो तो य जो नहीं तो कुछ नहीं। मैं चैतन्य आत्मा नित्यमुक्त हूँ। आच्छादन किया है। अपने नित्य मुक्त, नित्यप्राप्त, आ को पानेवास्ते योग ध्यानादिक हैं सो भ्रम है। सत् चि आत्मरूप मेरा स्वतः प्रकाशमान है, करना कुछ नहीं, भ्रमी है। हे माता! मुझ स्वरूप असंग चैतन्यका किसी व योगनाम जुडना नहीं और कोई वस्तु मुझ चैतन्यके स नहीं; मैं आपसे आप असंगरूप हूँ। किससे जुडूं मुझसे सर्वसे अयत्नहीं जुडभी रहा हूँ, अजुडभी रहा हूँ। सर्व मुझ ही जुडरहे हैं, यत्न नहीं; जैसे स्वरूपसेही असंग आकाश से जुडे, नाम संबंध करे वा न करे। कौन वस्तु है जो और न जुडे किंतु कोई नहीं। सर्व वस्तुमें जुडभी रहा है, रहा है। सर्व वस्तु तिससेभी जुडरही हैं; जैसे स्वप्नद्रष्टा पदार्थोंसे अयत्न जुडभी रहा है, अजुडभी रहा है। कल्पित पदार्थ स्वप्नद्रष्टासे अयत्नही संबंध पारहे हैं, यत्नसे नहीं। मा कर्मों विना सुख नहीं। पुत्रने कहा हे माता! जिसके आदि दुःख है, मध्यमें सुख कैसे होगा? हे माता! यह सर्व संसार कर्मरूप है, अनादि कालका तुझको प्रा चला आता है, आजतक इस संसाररूप कर्मसे तुझ न हुआ तो आगे कैसे सुख होगा? किंतु नहीं।

उलटा जन्म मरणादि दुःख है। इससे तू आपको अकर्मरूप आत्मा जान। माता तूष्णीं हुई। पुत्रने कहा तूष्णीं मतहो, जो तुझको निश्चय हो सो कह और सुन। हे माता! यह कोटानकोट ब्रह्मांड मुझ चैतन्यसे प्रगट पडे होते हैं, पुनः मुझमें जलतरंगवत् लीन होजातेहैं। मैं ज्योंका त्यों एक रस निर्विकार हूँ, सोई चैतन्य तेरा स्वरूप है। माताने कहा अंतरसे बाहर आ, संतके दर्शनसे कल्याण होता है। पुत्रने कहा मुझ व्यापक चैतन्यमें अंतर बाहर आना जाना नहीं, यह सर्व दर्शन मेरा है मैं चैतन्य सर्वका दर्शन नाम अधिष्ठान हूँ। विना सत् विचारके अज्ञाननाश नहीं होता। सत् विचार सत्संगसे होता है। सत्संग निरहंकारसे होती है। नहीं तो सब काम अकार्थ जान। इससे सूक्ष्म स्थूल कारणका अहंकार मनसे त्याग। पीछे जो शेष रहै, सो तेरा निर्विकल्प स्वरूप है। माताने कहा मेरा शरीर स्त्रीका है, मैं कुछ वेद पुराण पढ़ी नहीं; न मैं सत्संग किया है। न कोई मुझसे विशेष साधन होता है बहु कुटुंबी गृहस्थ होनेसे। इससे हे पुत्र! ऐसा कुछ उपदेश कर जो कृतार्थ होऊँ। पुत्रने कहा हे माता! मुझमें पुत्रबुद्धि त्याग, जो कहूँ सो सत् जान। हे माता! अपने आत्मस्वरूप बोधमें स्त्री और पुरुषकी अपेक्षा नहीं। किंतु यथार्थ ब्रह्मवेत्ता वक्ता चाहिये और सम्यक् मुमुक्षु चाहिये। प्रतिबंधका अभावभी चाहिये, तो अवश्यमेव आत्माबोध होता है क्योंकि ब्रह्मासे लेकर चिंटी पर्यंत ब्रह्मात्मा सर्वका अपना आप है। जो सम्यक् अपरोक्ष जाननेके समान आत्माको जाने सोई रूप होताहै, क्या स्त्री? क्या पुरुष? इससे हे माता! 'हौं मैं,' अहंकार भ्रम त्याग, शेष अवाङ्मनसगोचर स्वरूप तेरा है। हे माता! जो मन वाणीके कथन चिंतनमें आता है, सो वाणी मन सहित सर्व तुझ चैतन्य द्रष्टाकी दृश्य है; जैसे

स्वप्नमें जो कुछ प्रतीत होता है, सो सर्व स्वप्न चैतन्य आत्मारूं
है। इससे तू आपको द्रष्टास्वरूप जान। देह मनादिकरूं
रूप संघात आपका स्वरूप मत जान क्योंकि दृश्य द्रष्टा न
होता, द्रष्टा दृश्य नहीं होता यह नियम है। हे माता! दु
देहादिकोंविषे भ्रमसे आत्माध्यासकी निवृत्ति वास्ते और
आत्माकी भ्रमसे प्राप्ति वास्ते, अनेक उपाय शास्त्रोंमें कहें
सत्संगद्वारा द्रष्टा दृश्यका विवेचनही, सुखेन सम्यक् अ
आत्मबोधका कारण है, अन्य नहीं क्योंकि, द्रष्टा दृश्य दोही
हैं। द्रष्टा अपना स्वरूप है, जो जो दृश्य है सो मायामात्र
है। माताने कहा हे पुत्र! द्रष्टा दृश्य भाव द्वैतमें है और मैं
हूँ, जब अस्ति भाति प्रियरूप सर्व मैंही हूँ, तो द्रष्टा दृश्य
कहां है? पुत्रने कहा हे माता! जब सर्व तू ही है, तो द्रष्टा दृश्य
भी तू ही है।

तिसी समय जैसे सूर्य पूर्वदिशासे उदय होता है, तैसे
उदरते बालक बाहर निकसा। सो सुनकर राजा आया और
तो रानीको पुत्र जन्मका हर्ष किंचित् भी नहीं और न शोक
एकसी स्थित है। सो देख आश्चर्यवान् हुआ और कहा हे
तूने कौन समतारूप अमृत पानाकिया है कि, सुख दुःख किं
है। रानीने कहा हे राजन्! मैं चैतन्य आप अमृत स्व
मुझ सत् चैतन्य अमृतसे भिन्न सर्व असत् जड दुःखरूप
राजाने कहा तू इस देहसे भिन्न है, तो पुत्र कौन है? मैं
रानीने कहा न तू, न मैं, न पुत्र, एक सत् चित् आनंद साक्षी
मैं हूँ। जब सर्व मैं चैतन्य आत्मा हूँ, तो मैं पुत्रादि सर्व जगत्
राजाने कहा यह विचार तुझे किससे प्राप्त हुआ है रानीने कहा
और विचार करनेयोग्य, विचारकर्ता इत्यादि त्रिपुटियां
सर्व मायामात्र हैं, मैं चैतन्य (स्वप्नद्रष्टावत्) आत्मा सर्वसे

सर्वका प्रकाशक, आप स्वयं प्रकाश हूँ। इससे मुझ चैतन्य द्रष्टाको विचार पूर्वोक्त दृश्यसे कैसे प्राप्त होवेगा। हे राजन् ! असली विचारें तो स्वप्नद्रष्टा ही स्वप्नदृष्टिरूप होता है; तैसे अस्ति भाति प्रियरूप में चैतन्य आत्माही सर्व रूप हूँ। राजाने कहा हे पुत्र ! तू धन्य है कि, तेरे संगसे रानी और मैं अपने स्वरूपको प्राप्त हुये हैं। पुत्रने कहा हे पिता ! तू स्वरूपसे आगे कब भिन्न था,जो अब पायाहै। तू आपसे आप है। राजाने कहा तृष्णाने पिशाचकी समान मनको पकडा है, जबतक यह नाश न होय, आत्मसुख कैसे प्राप्त होय। पुत्रने कहा तृष्णाका क्या रूप है ? राजाने कहा अप्राप्त भोगोंकी इच्छा, प्राप्तके नाशके अभावकी इच्छा। पुत्रने कहा सो इच्छा किसमें उठती है राजाने कहा अंतःकरणमें। पुत्रने कहा वचन तेरा हाँसी योग्य है, जो इच्छा अंतःकरणमें है, तो तुझे क्या पहुँचता है ? जो नाश करें। तू चैतन्य इच्छासे रहित इच्छाका साक्षी है। इससे तू इच्छाके त्यागका त्यागकर। राजाने कहा राज्य छोडके अतीत होता हूँ। पुत्रने कहा हे राजन् ! अतीत हुयेभी, पुनः सत्संगद्वारा, आत्माका सम्यक् अपरोक्ष बोध हुये विना, शांति न होगी। इससे आत्मबोधकी प्राप्ति सुखका हेतु है, कोई राज्य छोड वनमें जाना सुखका हेतु नहीं।

चलो ऋषभदेवके आश्रममें संत इकट्ठे हुये हैं,तहां आत्मनिरूपण रूप ब्रह्मयज्ञ होता है। राजा, रानी और पुत्र तीनो तहां पहुँचे। सर्व संतोंको नमस्कार किया। उस समय मीमांसा कहताथा कि,सर्व कर्मरूप है। दत्तने कहा ठीक यह सर्व जगत् कर्मरूप है, परन्तु कर्मका कर्त्ता कर्मसे पृथक् मानना चाहिये। बालकने कहा हे मीमांसा ! कर्म किस्से होता है और किस्में लीन होता है मीमांसाने कहा कर्म किसीसे नहीं स्वप्रकाश है। बालक हँसा कहा हे बुद्धिखोये! इतनी धूमधाम काहेको तूने डाली है। स्वप्रकाश पूर्ण है कि, ऊर्ण ?

मीमांसाने कहा पूर्ण। बालकने कहा पूर्ण विषे कर्तव्य नहीं, वे कहां है? मीमांसा तूष्णीं हुआ।

पिताने कहा हे पुत्र! तू सबसे उच्च हुआ, पुत्रने कहा ऐसे कहं अग्निविषे जला दे, ऊंच नीचादिक सर्वरूप मेरा है किस्से ऊंच किस्से नीच। पिताने कहा हे बालक! तुझे पूर्ण ब्रह्म देखता हूँ। कने कहा, जो मैं ब्रह्म हूँ तो ब्रह्मका द्रष्टा कोई है नहीं, स्वयं है। कैसे जाना है, मैं पूर्णब्रह्म हूँ? दत्तने कहा नाम तेरा क्या है? कहा मैं अनाम हूँ। दत्तने कहा अपना स्वरूप कह। बालकने रसना नहीं क्या कहूँ? दत्तने कहा तूष्णीं हो। बालकने कहा विचार कर एते वचन जो मैंने कहा है, क्या रसनासे कहा है? इंद्रियोंकी क्या ताकत है कि, मुझ चैतन्यकी ताकत विना करें। दत्तने कहा जिसने स्वरूप अपना जाना है तिसको सुख बालकने कहा मेरे स्वरूपमें सुख दुःख दोनो नहीं मुझको कुछ हानि नहीं,तूष्णींसे लाभ नहीं। पर निर्वाण वही है जिसमें णभी निर्वाण है। दत्तने कहा तेरा स्थान कौन है? बालकने कहा शको समान सर्वमें पूर्ण हूँ, यह भी द्वैत है। जब सर्व मैं चैतन्य अस्ति भाति प्रियरूप आत्माहूँ तो पूर्ण कहां मैंहीहूँ? हे दत्त! तू को त्याग,जो परम पद पावे। दत्तने कहा मुझमें अहंकार है क्या त्यागूँ? सुखको सब चाहते हैं और दुःखको नहीं चाहते वह धन्य हैं, जो सुख दुःखकी प्राप्ति विषे, आपको सुख दुःख संग जानते हैं। हे बालक! आत्मा स्वतः प्रकाशरूप है, नहीं होता। बालकने कहा जब ऐसा है, तब आपको पापी मानता है? दत्तने कहा पुण्यवान् होनेकी इच्छा सब पर धन्य वह है जो आपको पापी मानते हैं। सर्व सेर कहाते धन्य वही है जो पाव कहाता है। परन्तु इस पंच भूतक

पापरूप अहं करनेसे पापी होता है। निरहंकार पुण्यरूप है। वा सर्व जगत्को महाप्रलयमें पान नाम अपनी मायारूप देहमें लीनकरे, निश्चय करके, सो सबलब्रह्म पापी है। वा निश्चय करके सुषुप्तिमें जो अपनी अविद्यारूप देहमें सर्वको लीन करे सो पापी है। अविद्या उप-हित चैतन्य साक्षी है, उपाधिरहित शुद्ध चैतन्य पुण्यवान् है।

बालकने कहा स्वरूपके पावनेका उपाय कहो दत्तने कहा स्वतः सिद्ध सम आत्माकी प्राप्तिविषे उपाय क्या कहूँ ? निदाघने कहा समता असमता करना मुझ चैतन्यमें है नहीं यह मनका धर्म है।

पराशरने कहा हे मैत्रेय ! सब तूष्णीं हुये नाम अफुर स्वरूपमें स्थित हुये। फिर कुछ काल पीछे उत्थान होकर कहने लगे, जो कोई बासना न त्यागेसे बंध है। बालकने कहा वासना न त्यागे तो बंध किसको होता है ? और त्यागेसे मुक्ति किसकी होती है ? दत्तने कहा कि, मनही वासनाको ग्रहण करता है और मनही त्यागता है। इससे मनहीको बंध मोक्ष होता है, मनही वासना ग्रहण करो वा त्यागो, आत्मा दोनों अवस्थाका साक्षी है। इससे वासना ग्रहण, त्याग, जन्म, बंध, मोक्ष भी आत्मामें नहीं। पर, भ्रमसे आपमें बंध मोक्षकी कल्पना करता है। दत्तने कहा वासनासेही जीव है, नहीं तो शिव है। बालकने कहा वासना त्यागे शिव होता है, तो शिव होना वासनाके आधीन हुआ, स्वतःसिद्ध न हुआ ? शिव और वासनाका संबंध कुछ नहीं, वासना अंतःकरणमें है, आत्मा अंतःकरणसे अतीत है। हे दत्त ! कहो वासना त्यागे आत्मा बडा होता है, न त्यागे क्या छोटा होता है ? जडभरतने कहा विना वासना त्यागे मन शुद्ध नहीं होता। बालकने कहा जिसमें मन न होय सो कहो क्या करे ? जड-भरतने कहा तूने जाना है कि, मुझमें मन नहीं, यहीं मन है। इस जाननेके त्यागका त्यागकर ? बालकने कहा आत्माका जानना न

जानना मनका धर्म है, इस मनके व्यवहारके द्रष्टा मुझ चैतन्य
जानने न जाननेमें हानि लाभ नहीं । जडभरतने कहा अज्ञान
निशाके समान है, ज्ञान सूर्यके समान है इतनाही भेद है। बालक
कहा मैं आकाश चैतन्य दोनोंसे परे हूँ, वा दोनोंका आधार
राजाने कहा जो तूने जांना है, तो तुझको सुख है, न औरको,
नेसे क्या लाभ है ? बालकने कहा हे पिता ! सम्यक् अपरोक्ष
ज्ञानियोंके वचनसेही मुमुक्षुको बोध होता है, विना कहे बोध
होता । इससे विद्वानपुरुषोंका कहना श्रेष्ठ है न तूष्णीं ? जडभरत
कहा हे बालक ! तू कहांसे आया है ? कहां जावेगा ? बालकने
मैं चैतन्य देशकाल वस्तुसे अतीत हूँ आना जाना मुझमें
शरीरादि संघातमें है । जडभरतने कहा तू कौन है ? बालकने
तू क्या जाने ? नाम रूप विषे तूने दृढ दृष्टि की है कि, मैं जड
हूं। इस दृष्टिको त्यागे तब जाने । जडभरतने कहा जिसको
विचार है कि, मैं मन देहादिक संघात नहीं किंतु मैं ब्रह्म हूँ, सो
हो भावे चांडाल हो मेरा गुरु है। हे बालक। जो आपही स्व
सिद्ध है तो सत्संगसे क्या लाभ ? बालकने कहा इससे अधिक
क्या होगा ? कि, भ्रमको भ्रम जाना, स्वतःसिद्धको स्वतःसिद्ध
नहीं तो भ्रमको अभ्रम और अभ्रमको भ्रमरूप जानता है।

तिसी समय हंसारूढ ब्रह्मा आया । विष्णु देखकर हँसा और
कहा हे ब्रह्मा ! देख तेरी सृष्टिको इन्होंने उखाडा है । ब्रह्माने
मनुष्य शरीरका फल यही है कि, अपने स्वरूपको सम्यक् जाने
विष्णुने कहा तेरे प्रारब्धादि कर्मोंकोभी नहीं मानते । ब्रह्माने
प्रथम मनने प्रारब्धादि कर्म मानेथे, अब मन नहीं मानता, तो केवल
मनका मनन हुआ । चेष्टा मन देहादिक संघातकी जैसे आगे होती
तैसे अब होती हैं। आत्मा आदि अंत, मध्य, मन, देहादिक संघात

चेष्टाका साक्षी है। विष्णुने कहा इस बालकके माथेपर तूने क्या लिखा है? ब्रह्माने कहा यह जगत् सहित तू मैं बालक सर्व स्वप्नवत् आकाशरूप है, आधार विना आकाशमें कैसे लिखना होता है। जो लिखा है तो यही लिखा है, प्रत्यक् आत्मा मन देहादिक संघातसे भिन्न है, संघातरूप नहीं। बालकने कहा जब सर्वात्मा है तो संघात क्या? तिसते भिन्न अभिन्न क्या? ब्रह्माने कहा प्रथम नेति नेतिकर, स्थूल सूक्ष्म कारण समष्टि व्यष्टि शरीरोंको निषेधकर, प्रत्यक् आत्माको, तिनके निषेधकी अवधिभूत तथा तिनके आदि अंत मध्य साक्षीरूपकर, बोधन जिज्ञासुको करना। जब सम्यक् जाने पीछे सर्व अस्ति भाति प्रियरूप ब्रह्मात्मा है, यह विधिरूप उपदेश करना; जैसे प्रथम तरंगादिकोंसे भिन्न जलको बोधन करके, पीछे मधुरता द्रवता शीतलता रूप सर्व तरंगादिक जलही है।

मरीचिने कहा हे ब्रह्मा! ब्रह्मा नाम तेरे किस अंगका है? ब्रह्माने कहा सर्व अंग मेरे हैं, मैं चैतन्य, अंगी हूँ क्योंकि; सर्व अंगोंका मैं चैतन्य आत्मस्वरूप हूँ। मरीचिने कहा चाहता हूँ कि, मनको वश करूँ, संध्यासमय चंचल हो जाता है, मनवशका उपाय कहो। ब्रह्माने कहा मन तेरा है; मनके वशका उपाय क्या कहूँ? पर कहो मनका रूप क्या है? मरीचिने कहा मनका रूप नहीं देखा। ब्रह्माने कहा जब तूने मनका रूप नहीं देखा; तो वश कैसे करेगा? पर हे मरीचि! अपने सत् चित् आनंदरूप आत्मासे पृथक् जो कुछ मनादिक प्रतीत होते हैं, सो मृगतृष्णाके जलवत् जान। पुनः संकल्प विकल्प रूप मनके प्रतीत होते भी तुझ चैतन्य अधिष्ठानको खेद न होवेगा। तात्पर्य यह कि, अपने सम्यक् अपरोक्ष आत्मस्वरूपको जाननाही मनके वशका उपाय है। वा मनादिक सर्व दृश्यजातिको अस्ति भाति प्रियरूप ब्रह्मात्मा सम्यक् अपरोक्ष जानना, परम मन वशका उपाय

है। वा मन देहादिक संघात रूप ब्रह्मांडको अपनी दृश्य जान और आपको मनादिकोंका द्रष्टा चैतन्य जानना। दृश्यका द्रष्टाको नहीं पहुँचता, यह बात ठीक जाननी, यह पूर्वसे भी वश करनेका उत्कृष्ट उपाय है। हे मरीचि! योग भी मन करनेका उपाय है, पर जबलग योग है, तबलग मन वश है। के पूर्व उत्तर संकल्प विकल्प मनका स्वभाव, वैसेका वैसा रहता है; जैसे वानर सर्व अंगोंके बंधनेसे चेष्टा नहीं करता, खुला तो पूर्ववत् स्वभाव होता है। मरीचिने कहा मैं अपने स्वरू को नहीं जानता, जो जानता तो मनवशका उपाय न पूछता ब्रह्माने कहा उपाय मनवशका यही जान कि, यह पंचतत्व संघात, स्थूल सूक्ष्म कार्य भी मैं नहीं और इनका कारण शरी अज्ञान भी मैं नहीं, इनका साक्षीभूत मैं चैतन्य आत्मा हूँ। अब रूप तेरा क्या है? मरीचिने कहा नाम रूप स्वरूप मेरा, नहीं रूप स्वरूपसे अरूप हूँ। ब्रह्माने कहा बाहरसे मत कह अंतर से जान जो तुझको सुख होवे। देहाभिमान ही अपने स्वरू ज्ञानमें प्रतिबंधक है। मरीचिने कहा हे ब्रह्मा! यह संघात तो अपने स्वरूपका ज्ञान है, जो यह नहीं होय है तो कौन जा "मैं आत्मा हूँ" ब्रह्माने कहा जब शरीर गिरताहै तब सभी अं वैसेही होते हैं, आत्माकी शरीरके अधीन स्थिति होवे तो उसव क्यों नहीं हलता चलता। मरीचिने कहा ध्यानके बलसे अंगोंके अंतर बाहर देखा कि, यह शरीर अपने अंगों सहित मली जड दुःखरूप है। मैं शरीरकी तथा शरीरके अंगोंकी मलीनता त जडता देखनेवाला शुद्ध चैतन्य शरीरसे भिन्न हूँ, जो मैं चैतन्य होऊँ तो शरीरकी मलीनता जडता कैसे अनुभव होवे? मरीचिने क हे ब्रह्मा! मैं शरीर कबहूं नहीं। पर कहो मैं कौन हूँ।

ब्रह्माने कहा जिसने सब अंग शरीरके तथा शरीरको तथा, मनादिकोंको देखा नाम जाना वही तेरा रूप है। मरीचि स्वरूप विषे लीन हुआ।

पराशरने कहा हे मैत्रेय ! संतोंका यह स्वभाव है, जिस मार्गद्वारा जिज्ञासू स्वरूपको पहुँचे तिसी मार्गसे पहुँचादेना। तिसी समय एक राक्षस आया और कहा सबको खाता हूँ और आप हूँ सो आप हूँ। सारांश यह कि, सर्व नामरूप प्रपंचको अपने आत्मस्वरूप अधिष्ठानमें कल्पित जानता हूँ; नाम अत्यंताभाव जानता हूँ। पुनः कल्पितका अत्यंताभाव भी आत्मस्वरूप अधिष्ठान जानता हूँ। दत्तने कहा जब तूने सर्वको नहीं खाया तब कौन है ? जब खायगा तब कौन होयगा। राक्षसने कहा तूही कह स्वप्नद्रष्टाने निद्राकर अपनेमें कल्पित स्वप्नसृष्टिको लीन किया वा सत्य जाना तो क्या होता है ? विचार कर असत् कल्पित जाने वा उदय करे तो क्या रूप होता है ? दत्तने कहा एकसाहै। राक्षसने कहा हे बुद्धिखोये ! तद्वत् मैं चैतन्य आत्मा एकरस हूँ, पर नहीं जानता था कि; कोई मेरे वचनका श्रोता है तुझ सहित बालकको खाऊँगा और आप होऊँगा। बालकने कहा सर्व अंग तेरे हैं किसको खाता है। जो अपने अंगोंको खावे तो कौन तुझको वर्जित करेगा। राक्षसने कहा यही खाता हूँ, न तू, न मैं, न दत्त, न यह जगत्, केवल मैं चैतन्य आत्मा हूँ। बालकने कहा राक्षस तुझको क्यों कहते हैं ? राक्षसने कहा; जैसे लकडी अग्निके संबंधसे राख होती है, पुनः राख लकडीका काम नहीं देती; तैसे नामरूप सर्व संसार लकडीको विचाररूप अग्निसे राख नाम मिथ्या जाना है, पुनः मिथ्या सम्यक् जाना संसार जन्म मरणका कारण नहीं होता। पर कहो हे बालक ! तेरा नाम क्या है ? बालकने कहा नाम मेरा सुराट् नाम स्वप्रकाश स्वरूप है। राक्षसने कहा कौन ठौर तूने प्रकाश किया है ?

बालकने कहा आपही प्रकाशक हूँ, आपही प्रकाश्य हूँ और आ प्रकाशने योग्य हूँ मुझमें द्वैत नहीं। राक्षसने कहा मैं कौन बालकने कहा मैं हूँ। तिसी समय कल्याण स्वरूप शिव आये कहा हे राक्षस ! तुझे खाता हूँ ? राक्षसने कहा मैं राक्षस नहीं चै रूप शिव हूँ अपनेको आप मार वा न मार। बहुरि निदाघकी सुखकर शिवने कहा हे निदाघ ! तुझे त्रिशूलसे मारूँगा। निदा कहा त्रिगुणात्मक रूप कार्य कारण आपा अहंकार सहित संसार ज्ञानाग्निसे भस्म कर नाम मिथ्या जानकर, त्रिगुणातीत आप हु हूँ। शिवने कहा बाहरसे मत कह। निदाघने कहा अंतर्यामी हो देख अंतर बाहर निदाघ नहीं तूही है तो, निदाघका क्यों नाम है ? शिवने कहा निदाघ भस्म हुआ तो पीछे अवाच्यपद है। हे नि दाघ! इस निश्चयका शरीरनाशपर्यंत त्याग न करियो आत्माको स अपरोक्ष जाननेसे, काल शास्त्र सहित हम तीनों देवतादिकके भ रहित होता है। शिवने कहा हे विष्णो ! आप कौन हो ? विष्णुने क तूही है, तो किसको पूछता है। शिवने कहा जो तू रूप मेरा है विष्णुपनेका अहंकार त्यागेगा तो मुझ चैतन्यसे अभिन्न होवेगा विष्णुने कहा आगे भिन्न होऊँ तो अब अभिन्न भी होऊँ। पर स्व विषे भिन्न अभिन्न दोनों नहीं जानता था। जो तू पूर्ण है तब तुझ मन देकर शिव हुआ। पर देखा तो ऊर्ण है क्योंकि, ऊर्णमेंही मिल भिन्न होता है। भेद पूर्णमें नहीं। शिवने कहा यह पूर्ण ऊर्णादि क चिन्तन केवल मन वाणीका मनन कथन है; मैं चैतन्य मन वाणी अगोचर हूँ। विष्णुने कहा जो तू मन वाणीसे अतीत है, तो मुझ संदेहवान् कैसे देखा ? शिवने कहा तुझ सहित सर्व दृश्य मुझ चैतन्य कर प्रकाशमान है; तुझको देखा नाम प्रकाशा तो क्या हानि है राक्षसने कहा न विष्णु, न शिव, न जगत्, न राक्षस, निरूप

अवाच्य पद हूँ। यह सब कहनमात्र है। विष्णुने कहा शीश तेरा अभी चक्रसे काटता हूँ क्योंकि तू अभिमानी है। राक्षसने कहा मैंने देहाभिमान रूप शीश अपना आत्मविचाररूपी हाथसे काटा है और अशरीर हुआ हूँ बहुरि काटनेसे क्या भय है ? हे विष्णु ! तेरा देहाभिमानरूप शीश कटा है वा नहीं ? जो कटा है तो मेरा शीश कैसे काटेगा ? मेरा तूने शीश विना शीश कैसे जाना ? जो कहे नहीं कटा ? तोभी मुझ अशीशका शीश कैसे काटेगा ? वा देह अभिमान सहित तेरे लाखों यत्नोंसेभी अभिमानरहित मेरा शरीर नहीं कटेगा; जैसे सोया पुरुष जाग्रत् पुरुषके शीशादिक नहीं काटसक्ता। वा स्वप्न नर स्वप्नद्रष्टाका किंचिन्मात्र भी अपकार नहीं करसक्ता। हे विष्णु! जो तू कहै तेरा देहाभिमान रूपी शीश नहीं गिरा, तो मैं हाजिर हूँ शीश मेरा काट ! विष्णुने कहा सर्व मैं हूँ, तूने आपको राक्षस माना है, तिसको त्यागकर, यही शीश काटना है; जैसे तरंगभाव त्यागे शेष जल है। राक्षसने कहा जो तरंगभाव नहीं त्यागे तो भी जल है। विष्णुने कहा जब जलही है, तो जलका आपको तरंग मानना यही भूल है। राक्षसने कहा भूल अभूलादि मनका धर्म है, मुझ आत्मा, भूल अभूलके साक्षीकी भूल नहीं। पर कहो मन कैसे जीताजावे ? विष्णुने कहा आत्मबोध विना मन नहीं जीता जाता और मन जीते बिना आत्मबोध नहीं होता। इससे मनजीतनेका और आत्मबोधका यत्न एक कालमें ही करो अर्थात् आत्मा अनात्माका सम्यक् सत्संग, सच्छास्त्रद्वारा विचार करो, दोनों सिद्ध होंगे; जैसे प्रातःकाल ज्यों ज्यों सूर्य उदय होता है, त्यों त्यों हीं एक कालमेंही अँधेरा निवृत्त और प्रकाश उदय होता जाता है। राक्षसने कहा तूने हमारे कुलको क्यों नाश किया है ? विष्णुने कहा मैं किसीको नाश नहीं करता, किंतु आप अपने शुभाशुभ कर्तव्योंके अधीन, जीव सुख दुःख पाते हैं।

जलजंतुओंकी कथा।

(जो अपनीही भाषामें आत्मनिरूपण करते हैं.)

पुनः विष्णुने कहा हे सभा ! एक कथा श्रवण करो, जिसके श्रवणसे हम लोगोंका अभिमान दूर होजावे। मच्छ अवतारने जंतुओंकी बोलीमेंही जलजंतुओंको ज्ञान उपदेश किया था। तिन्होंने अपनी बोलीमें आत्मानिरूपण किया था सो मैंने अ मीरूपसे जाना है सोई तुम सुनो ?

मच्छी।

एक मच्छीने अन्य मच्छियोंसे कहा, फांस कालका हमें दुःख नहीं दे सक्ता, जो तृष्णा प्रारब्धसे अधिककी न करें ईश्वरने हमारे प्रारब्ध जलमें सवालादिक ही किया है, तिसको कर मांस आटा खानेके लोभसे मृत्यु होती है। इसीसे बंध है तृष्णाही शरीरधारीको काल है। तृष्णा देहाभिमानसे होती देहाभिमान अपने स्वरूपके अज्ञानसे होता है। सो अज्ञान स्व ज्ञानसे नाश होता है। कहो ज्ञान कैसे होवे ? अन्य मछलीने देह और देहधारीके विवेचनसे ज्ञान होता है।

मगर।

मगरने कहा देहधारी जीव है। मछलीने कहा जीवका रूप है ? कृष्ण कि, श्वेत ? मगरने कहा रूप नहीं देखा। मछलीने कहा नहीं देखा तो नाम कैसे राखा ? मगरने कहा सुनकर मछलीने कहा हे बुद्धिखोये ! जब सुनकर आपको तूने जीव नि किया, तो जीवका सत् चित आनंद स्वरूप है, यहभी शास्त्रसे होगा वा आगे सुनेगा, तो आपको सत् चित् आनंद न माना मानाा इसमें कारण क्या ? मगरने कहा सत् चित् आनंद और दोनों मन वाणीके कथन चिंतन मात्र हैं इसमें क्या विशेषता है

कथन चिंतनकी पहँचान करनेवाला मेरा स्वरूप अवाच्यपद है। इसी निश्चयसे, देहाभिमानरूपी फाँस गलेमें पडी है सो काटी जावेगी। अन्य मच्छीने कहा इस शरीरसे आपको भिन्न कैसें जाने? क्योंकि चिरकालसे बंध है। बडी मच्छीने कहा पुष्पके तोडनेमें ढील है, परन्तु परमेश्वररूप आत्माके पावनेमें ढील नहीं। मूल शरीरका अहंकार है, जब अहंकार नाश हुआ तो आपसे आप है। मगरने कहा अहंकार आपको कहते हैं, क्योंकि मैं हूँ। जब आपा गया तो जीव किसको मिला और शरीरसे भिन्न किसने जाना? आपको त्यागकर दूसरेको शिरपर धरना क्या प्रयोजन है?

इतनेमें वधिकने जाल डाला। मछलीने कहा हे मगर! शरीरका लेनेवाला आया है, कहो अब क्या करें? देहाभिमान त्यागकर भगवानकी शरण होवें। मगरने कहा यम शिरपर खडा है, तू शरण चिंतन करती है। पर कहो भगवान् पूर्ण है, जब पूर्ण है तो आपही भगवान् है, जब आपही है तो किसकी शरण जावें और वधिक कहां है? इतना वचन कहकर सब स्वरूपमें लीन हुये। किसीविद्यानिमित्त कर वधिक तिन जलजंतुओंकी बोली जानता था; सो वधिकने तिनके वचनको सुनकर, जाल पृथिवीपर गेर दिया और मगरसे प्रश्न किया कि, तेरे वचन मुझको अमृतसमान लगे हैं तेरे घातका मैंने त्याग किया, कुछ वचन कहो?। मगरने कहा हे वधिक! तू किसको जालसे पकडता है। शरीर कि, आत्माको?। शरीर तुम्हारा हमारा, मायाके कार्य पंचतत्त्वोंका, दृश्य मात्र एक सरीखा है। आत्मा भी तुम्हारा हमारा संघातका साक्षी एकरूप है। हे वधिक! जो उत्पत्तिवान् वस्तु है, सो उसको अवश्य कालरूपी वधिक नाश करता है और जो वस्तु नाश होगी पुनः तिसकी उत्पत्ति भी होगी। इससे यह अर्थ अपरिहार होनेसे शरीरके नाशकी क्या चिंता है? आत्मा अवि-

नाशी है। यह भी अपरिहार अर्थ है। इससे दोनों प्रकारसे मा...
हे वधिक! इस संघातरूपी समुद्रमें, आत्मा विचाररूपी जा...
अपने मनरूपी मच्छीको पकड, जो शांतिवान होवे। वधिकने...
मनका रूप कहो? मगरने कहा मनका रूप संकल्प विकल्प है...
विकल्पका अनुभव करनेवाला, तू चैतन्य असंग है विचारकर...
इस शरीरविषे वधिक नाम किसका है? यह शरीर पंचभूतोंका...
माण अन्नका विकारहै, आत्मा शरीरसे रहित इसका सा...
बीचमें व्यर्थ तूने आपको वधिक माना है, इस वधिकपनेके अहं...
त्यागका त्यागकर, पीछे अवाचपद है। यह वचन सुनकर व...
दुष्ट स्वभावको त्याग दिया और परमार्थको पहुँचा।

मेढ़क।

(ओंकारका वर्णन.)

पुनः मेढ़क आया और कहा मैं निशिदिन ओंकार शब्द क...
इसके भजनसे जो चाहूँ सो प्राप्त होता है। इससे तभी सुख चाहे तो...
कारको रटन कर। मगर मच्छने कहा मैंने आगेही इस जाल...
यत्नसे काटा है, अब मुझको पुनः जालमें मत डाल क्योंकि मुझ...
निष्कर्तव्यविषे कर्तव्यका आरोपण बुद्धिकी हीनता है। अ...
ओंकारको नहीं जाना। पर कहो ओंकार किसको कहते हैं? अर्थ...
क्या है? मेढ़कने कहा ओंकारसे सर्वजगत्की उत्पत्ति होती है...
विष्णु, शिव, ओंकारकी तीनमात्रासे क्रमसे उत्पन्न हुये हैं। तैसे...
कार उकार मकार मात्रासे स्थूल सूक्ष्म कारणजगत् हुआ है।...
यह कि, सत्त्व, रज, तम, देवता विषय इंद्रियादि त्रिपुटी ती...
रूप ही हैं। मगरने कहा हे बुद्धिखोये! अर्ध मात्रारूप तुरीय...
अद्वितीयको त्यागकर, त्रिपुटीरूप अपनी दृश्यविषे क्यों ...
मेढ़कने कहा यहभी ओंकार है। मगरने कहा जब मैं ...

मन वाणीको सत्ता देता हूँ, तब मन वाणी ओंकारका जप चिंतन करतेहैं, नहीं तो नहीं। इससे मुझ चैतन्यसे ही ओंकार प्रकाश रखते हैं, क्योंकि शब्द जडरूप है और जो जड है सो अनित्य है। जो ओंकार जड न होता तो मुझ चैतन्यकी दृश्य न होता। मेढकने कहा द्रष्टा तू दर्शन अंतःकरणकी वृत्तियां और दृश्य ओंकारहै। तैसे ही द्वैत अद्वैत एक तूही है। इससे यह सब ओंकार ही हुआ। मगरने कहा ऐसा कुछ कहो जिसमें ओंकार न होवे। मच्छीने कहा यह सर्व त्रिपुटीरूप ओंकार है। ओंकार प्रकृति रूपहै। प्रकृति ही परिणामकर शरीर रूप हुई है। मैं चैतन्य इस शरीरसे मुक्त हूँ। इससे कैसे ओंकारका रूप हुआ? किंतु ओंकारसे भिन्न हूँ।

। जोंक ।

पुनः जोंकने आकर कहा भिन्न और अभिन्न तथा भिन्नाभिन्न, तीनों मेरेमें नहीं। प्रकृति, ओंकार, तथा शरीर मुझ चैतन्यसे सिद्ध होते हैं, तिनमें मैं तीनोंकालोंविषे एकसा हूँ। ओंकार कहनमात्र है। चैतन्यसे पृथक् ओंकार चार पदोंवाला है। आत्मामें एक कहना भी नहीं बनता तो चार कैसे कहेंगे? मेढ़क तूष्णीं हुआ। मच्छीने कहा हे जोंक! तू सदा रुधिरपान करता है, तुझसे संवाद करने योग्य नहीं। जोंकने कहा सत् चित् आनंदरूप शुद्ध आत्माबिना जो कुछ त्वंपद तत्पद असिपदादिक प्रतीत होते हैं सोई हुआ रुधिर, विचार करनारूप पानकरता हूँ, नाम स्वप्नवत् मिथ्या जानता हूँ जो तूने कहा तुझसे संवाद करने योग्य नहीं, तो मैं आपविना कुछ और नहीं देखा, संवाद किससे करूँ? कौन करे?

। कछुआ ।

कछुआने कहा जौलौं सर्व ओरसे पद इंद्रियोंका संकोचन न करे, स्वरूपका पाना कठिन है। मच्छीने कहा सर्वोपरि आत्मस्वरूप

पूर्ण है, कहो किस ओरसे इंद्रियोंको संकोचे ? जो नेत्रको संको अंधा होय, कानको रोके तो बहरा होय, इत्यादि अन्य इं भी जानलेना। हे कछुआ ! जब सर्व अस्ति भाति प्रियरूप आ है तो षट् ओर कहां है?कछुआ हँसा और कहा कि, जब सर्व आ है तो षट् ओरभी आत्माही है। विष्णुने कहा हे सभा ! इस तिन जल जंतुओंकी चर्चा हुई थी, सो मैंने तुम्हारे आगे नि करदिया।

इति पक्षपातरहित श्रीअनुभवप्रकाशस्य चतुर्थ सर्ग समाप्त॥ ४॥

अथ पञ्चम सर्ग ५.

पक्षपातरहित विवेचन।

पराशरने कहा हे मैत्रेय! ऐसेही एक और कथा सुन। एक विषे भारतवर्षमें विद्वान् पक्षपातरहित धर्मात्मा जगत् हि स्त्री पुरुष मिलके आत्मविचार करते थे और मैं भी वहीं था।

अंतरदृष्टि।

अन्तरदृष्टि बोली हे निर्मलदृष्टिवाली सभा! असत् जड दुः कल्पित नाम रूप बाहर दृश्यकी दृष्टिसे, दृश्यांतर सच्चिदानं बुद्धि आदिकोंको प्रकाशक, आत्माका सम्यक् अपरोक्ष नहीं जैसे पुरुषको कल्पित सर्प दंड मालादि बहिर्पदार्थोंकी दृष्टिसे रज्जुका अपरोक्षज्ञान नहीं होता। विचारे तो रज्जु ज्ञान सर्पादिकोंका ज्ञान होता है। इससे बहिर्नामरूप दृष्टि त्यागके मनादि दृश्यके साक्षीको निजात्मरूप जानो।

शांति।

शांति बोली मुझ, शांतरूप आस्ति भाति प्रियस्वरूप पदमें बाहरका विभाग नहीं; जैसे भौतिकप्रपंचमें मायाका वा भूत

का अंतर बाहरका विभाग नहीं । तथा भूषणोंमें सुवर्णका अंतर बाहर विभाग नहीं। जो विभागवान परिच्छिन्न वस्तु होती है सो अनित्य जड दुःखरूप होती है। इससे अस्ति भाति प्रियरूप सर्वात्मा शांतरूप द्रष्टाको जो जाने तो शांत होवे ।

वैराग्य ।

तिस समय वैराग्य मनुष्य मूर्तिधारकर आय बोला हे साधो ! वैराग्य बिना सुख नहीं.वैराग्य यही है कि—शांति, अशांति, अंतर, बाहर, वृत्ति आदि नामरूप प्रपंचकी निजात्मसत्तासे पृथक् सत्ताका अत्यंताभाव अनुभव होना । जैसे पृथिवीआदि भूतोंकी सत्तासे भिन्न शरीरकी सत्ताका अत्यंताभाव है । वा वैराग्य नाम त्यागका है, वैराग्य वानूका नाम वैरागी त्यागीका है, वा विशेषकर रागका नाम बिराग है और विशेषकर रागवानकानाम रागी गृही है। सो दोनों प्रकारसेही वैराग्यका अर्थ आत्मामेंही घटता है,अन्य दृश्यपदार्थमें घटता नहीं. क्योंकि मन वाणी सहित मनवाणीके, विषय दृश्य प्रपंचके, अत्यंताभाववाला निजात्माही वैराग्यवान् है, अन्य नहीं । तथा अस्तित्व स्फुरणत्व प्रियत्व आत्माने, अत्यंत असत् जड दुःखरूप, नामरूप अनात्मा दृश्य प्रपंचके साथ ऐसा राग किया है कि, दृश्य नाम रूपको सच्चिदानंद सरीखा अपना रूप कर दिखाया है; जैसे जलको दूध अपना रूप कर दिखाता है । इससे दूध और आत्मा परमरागी है । तथा जैसे आकाशचारी भूत भौतिक प्रपंच साक्षात्कार आकाशका तिरस्कार करे, तोभी विनाबुलाये मानके सर्वके व्यवहारका निर्वाहक आकाश अवकाशदेनारूप परमप्रीति करता है परन्तु सर्व माहिं रहते भी अति अलिप्तहोके परमत्यागी है । तैसे यह सुख दुःखके अस्ति भाति प्रियरूप साक्षी आत्माका जड नामरूप. सर्वजगत् तिरस्कार करे,

तो भी बिनाबुलाये मानके आत्मा सर्वको चैतन्यता देके स्व
सरीखा करता है । इससे सर्वका अतिप्रियतम है । मनादि संघा
तके माहिं अलिप्त होनेसे परमवैरागी नाम त्यागी भीहै । वा
अशांति अंतर बाहर काम क्रोधादि वृत्तियोंके भावाभावको निजस
धिमात्रसेही सिद्धकरता है और इन गुणोंते उल्लंघित बर्तता है
आत्मा गृही और संन्यासी है। इससे पूर्वोक्त वैराग्यवान् आत्मा
म्हारा हमारा तथा ब्रह्मासे लेकर चींटीतक सर्व जगत्का निजस्वरू

। क्रोध ।

पुनः क्रोध अभिमानी देवता मनुष्यमूर्ति धारकर सभामें
बोला हे प्रियवरो ! गुरुके उपदेशसे प्रथम यह वृत्तिरूप क्रोधका
आत्मा अक्रोधी है । कारण कि, असत् जड दुःखरूप, ना
देहादि म्लेच्छ, सच्चिदानंद शुद्ध आत्माको निजरूपवत् निज
देखता है तो भी आत्मा क्रोध नहीं करता.उलटा सत्तास्फूर्ति दे
इससे अक्रोधीहै । गुरुउपदेश पीछे देहादि नाम रूप जगत्का अ
ताभाव जानना रूप हिंसा कर देता है, इससे यह आत्मा अति क्रो
वा जाग्रत् स्वरूपको, ब्रह्मांडको, सुषुप्तिमें लयरूप हिंसा करता है
क्रोधी है और जाग्रत् स्वप्नमें पुनः सुषुप्तिमें लीन हुये जाग्रतको
करता है, इससे अक्रोधी है । वा गुरूपदेशसे देहाभिमानरूप क्रो
नाशरूप हिंसा करता है इससे क्रोधी है । आत्मा पूर्ण होनेसे क्रो
भी स्थित है; जैसे सर्व देहोंका देही आत्मा है; तैसे क्रोधरूप देहोंका
देही आत्मा है, इससे क्रोधरूप देहवाला आत्मा क्रोधी है । वा आ
अद्वितीय होनेसे स्वतःही द्वैतका हिंसन नाम अत्यंताभाव है, इससे
आत्मा अतिक्रोधी है।वृत्तिरूप क्रोधमें आरूढ हुआ आत्माही, वि
विना, प्रिय लगनेवाले बुरे कामोंसेभी क्रोध करके निवृत्त होता है, इ
आत्मा अतिक्रोधी है । वृत्तिरूप क्रोध, क्रोधी आत्माको हिंसन

करता है। हे साधो! वृत्तिरूप क्रोध तो निज इष्टके साधक, सत् संभाषणादि, जो सद्गुण, तिनके शत्रु, मिथ्या भाषणादि असुरोंके नाश वास्ते है, तथा शरीरकी रक्षावास्ते है कोई परस्पर लड़ाई भिड़ाई वास्ते नहीं। सत्तापूर्वक क्रोध व्यवहार परमार्थका साधक है और असत्यतापूर्वक रूप वृत्तिरूप क्रोधही अनर्थक है, यही त्याज्य है। परन्तु पूर्वोक्त रीतिसे अतिक्रोधी आत्मा तो अपना स्वरूप है, सो न ग्राह्य त्याज्य है; देहवत् अपना रूप होनेसे।

लोभ।

पुनः लोभ अभिमानी देवता मनुष्यव्यक्ति धारकर आया और कहा हे निर्लोभ! पक्षपात रहित सभा! आभास अंतःकरणरूप जीवका अतिशय शब्दादि विषयोंका लोभ अनर्थका कारण है वही त्याज्य है। सत्तापूर्वक शरीरका निर्वाहक लोभ त्याज्य नहीं। निजात्मा तो परमलोभी है. अर्थ यह है कि, सर्व अत्तानाम भोक्ता है। ब्रह्मासे लेके चींटीके शरीरतक सर्बमें एक सरीखा स्थित हुआ २ सर्व शब्दादि विषयोंका रसिक नाम अनुभवकरता नाम भोक्ता है। इसीसे यह ब्रह्मात्मा मनका साक्षी आत्मा अति लोभी, सर्वका भोक्ता हुवा भी वास्तवसे (अवाङ्मनसगोचर होनेसे अति) लोभी है। हे मित्रगणो! स्थूलशरीररूप स्थूल भूतोंसे परे नाम सूक्ष्म भूमि आदि सूक्ष्म भूत रूप इंद्रिय मनादि सूक्ष्म सृष्टि है। तिससे परे नाम सूक्ष्म व्यष्टि अहंकार और समष्टि अहंकार रूप; महत्तत्त्व है। तिससे परे नाम सूक्ष्म सर्व नाम रूप जगत्का उपादान कारण रूप प्रकृति माया अज्ञान है। तिससे परे प्रकृति अज्ञान और अज्ञानका कार्य पचीस प्रकृतिरूप; प्रत्यक्षादि प्रमाणोंका विषयभूत यह संघात और मनादि सूक्ष्म सृष्टिका साक्षी आत्माही है। यही सर्वकी काष्ठा अवधिरूप है। सुषुप्तिमें अज्ञानका ज्ञान होनेसे। इससे

परे और कोई पद नहीं, जो माने सो अनुभव, वेद शास्त्र संमत बाहर है । तात्पर्य यह है कि, तिसका मानना प्रमाणशून्य वंध्या वत् अप्रमाण है । इससे इस अलोभी आत्माको त्रिगुणातीत जा भ्रम सिद्ध जो बंध मोक्षके कर्तव्य तिससे निष्कर्तव्य हो ।

मिथ्या दृष्टि ।

पुनः मिथ्या दृष्टि आके कहने लगी । हे धर्मात्माहो ! नाम वर्णाश्रमी, देहवान्, सुखी दुःखी हूँ तथा कर्मकांडी उपासक, ज्ञा अज्ञानी, बंध, मोक्षवान् हूँ, तथा त्यागी गृही हूँ, परिच्छिन्न जीव तुच्छ मरण जनम धर्मा हूँ । खाता, पीता, सोता, लेता देता गमनाग करता हूँ; देखता, सुनता, स्पर्शकरता, सूंघता, संकल्प विकल्पादिवान् इत्यादि माया तत्कार्यरूप आपको जानना, यह सर्व मिथ्यादृष्टि और पूर्वोक्त माया तत्कार्य धर्म धर्मी रूप, अनात्म किसी दृश्य पदा अपना स्वरूप नहीं जानना, किन्तु अपने मनादियोंके साक्षी आ को सम्यक् सच्चिदानंदरूप मानना यही, सत् दृष्टि है, अन्य मिथ्यादृष्टि है । इस सत् दृष्टिसेही मिथ्यादृष्टि नाश होती है ।

अहंकार ।

पुनः अहंकारने आकर कहा हे सज्जनो ! अहंकार कहीं न क करनाही होगा, देह आदि संघातमें अहंकार अनंत जन्मोंका कारण और सच्चित् प्रियरूप आत्मामें अहंकार मोक्षका कारण है । दोनों में जो आपको अच्छा लगे, तिसमें अहंकार करो ।

नारायणी ।

नारायणी बोली हे संतो ! यह शरीर मल नरक सम्यक् विचारे दोनोंमें किंचित् भेद नहीं सम है परन्तु बाहरके मलको अपनेसे अति भिन्न जानता है और अति ग्लानि करता है; तैसे इस शरीरको

मलसे आपको भिन्न जानता नहीं। देखो यह शरीर तो निज भिन्न माता पिताका मल है, अपना नहीं और लोकमें प्रसिद्ध है, अपने मलसे ग्लानि कम हुआ करती है और दूसरेके मलसे ग्लानि अधिक हुआ करती है। यह आश्चर्य देखो यह शरीररूप दूसरेके मलमें ग्लानि नहीं और अपने मलमें ग्लानि है। चाहिये दोनों मलोंको ग्लानिपूर्वक आपसे अतिभिन्न मानना वा अभिन्न मानना। एक मलको आपसे भिन्न और एक मलको अपने आत्मासे अभिन्न मानना, यह हिसाव बाहर बात है क्योंकि दोनों मल तुल्य हैं। हे पक्षपातरहित! अकृत्रिम प्रीति करने वालो मित्रवरो! यह सुख दुःखका प्रकाशक ब्रह्मात्मा तो स्वतःही मायातत्कार्य मलसे रहित है, मलसे भिन्न जानो, चाहे न जानो।

। लक्ष्मी ।

पुनः लक्ष्मीने आय कहा; हृदयरूप आकाशके, चंद्रमारूप, प्रिय, मोद प्रमोदादि, वृत्तियोंका साक्षी यह आत्माही ब्रह्म, जीव, ईश्वर, खुदा, गाड, परमात्मा घटपटादि सर्व शब्दोंका लक्ष्य है, वाच्य किसी शब्दका नहीं क्योंकि अवाङ्मनसगोचर है। वाच्य लक्ष्यभी समान बुद्धिवाले मुमुक्षुओंके ज्ञान दिये हैं, वास्तवसे अस्तित्व स्फुरणत्व प्रियत्व रूप सर्वात्माही, तुम्हारा हमारा तथा ब्रह्मासे लेके चींटी तक सर्वका अनुभवस्वरूप आत्मा है।

। मन ।

पुनः मन मनुष्य विग्रह धारकर सभामें आय बोला हे सद्वक्ताओ! वायुसे भी मैं अत्यंत चंचल हूँ, जैसे वायुकी चंचलतासे आकाश निर्विकार है और वायु है भी आकाशके माँहि; तैसेही मैं अनेक प्रकारोंका संकल्प विकल्प तथा कभी वहिर्वृत्ति जाग्रत, कभी अंतरवृत्ति स्वप्न, अफूर्वृत्तिसे सुषुप्तिरूप चंचलता करता हूँ। कभी सात्विकी, कभी राजसी, कभी तामसी वृत्ति, अपनी करता हूँ। कभी मैं धर्माधर्म,

बंध मोक्ष, लज्जा, धैर्य्य, सुख, दुःख, काम, क्रोध, लोभ, अहंकारादि तथा ज्ञान, अज्ञान, शांत, दांत, वैराग्य, त्याग, संकल्प धारता हूँ, यह सर्व नाम रूप जगत्की, उत्पत्ति स्थिति मेरेही संकल्प हैं। हे साधो! समष्टि व्यष्टि संकल्प स्वरूपसे एकही जानना; जैसे राजाका संकल्प और राजाके नौकरका एकरूपही है, संकल्पस्वरूपमें भेद नहीं। यह जगत् गारामही नहीं बनाया, व्यष्टि वा समष्टि संकल्पसेही हुआ है; स्वप्न जगत् हे मित्रगणों! न कोई दुःखरूप पदार्थ है, न कोई सुखरूप है, रूप पदार्थमें दुःख और दुःखरूप पदार्थमें सुखरूपता, दृढ चिंतन करता हूँ वैसेही आगे भासता है। इससे संकल्प जगत्का रूप है, अन्य नहीं। जो अन्यरूप होता तो सुषुप्ति अज्ञानमें लीन होनेपर भी भासता, परन्तु सो भासता नहीं। संकल्पसे अन्य नहीं। हे सज्जनवरो! ब्रह्मा विष्णु रुद्र रूप होकर महानुभाव हुआ हूँ, चींटी आदिहोके तुच्छ हुआ हूँ, यह मेराही है। हे साधो! चक्षु आदि अध्यात्म, रूपादि विषय और सूर्यादि देवता अधिदेव हैं। शांतात्मा ब्रह्मा विष्णु शिवसे लेके चींटीतक, इतना त्रिपुटी रूप जगत् मुझ मनकाही जानो। जिनको तुम ईश्वर मानते हो सो तो त्रिपुटी रूप जगत् है। मुझ मनमें सच्चिदानंद साक्षी आत्माका प्रतिबिंब जीव करता भोक्ता है, बिंध नहीं। पूर्वोक्त जीव भी जगतकोटि मेरा है। हे साधो! जीवभाव, ईश्वरभाव, ब्रह्मभाव, जीवेश्वरका भेद भाव, सगुण निर्गुण भाव, दैवी आसुरी भाव, इत्यादि न्यून कल्पना मेरी है। इस कल्पनासे यह आत्मा रहित पूर्ण है; जैसे ब्रह्म लोकादि पवित्र स्थानोंमें तथा उसमें रहनेवाले विष्णु शरीरों में तथा मलीनादि स्थानोंमें, तिनमें रहनेवाले जीवों

सरीखा निर्विकार सबको अवकाश समही देता है। तैसे मुझ मनका सच्चिदानंद साक्षी आत्मा, वैकुंठादि स्थानोंमें स्थित, विष्णु आदि शरीरोंमें, तथा नरकादि स्थानोंमें स्थित, जीवोंमें एक सरीखा पवित्र निर्विकार असंग हुआ, सर्वको समही सत्ता स्फूर्ति प्रदान करताहै। मेरे पूर्वोक्त अनेक प्रकारोंके कटाक्षोंसे हर्ष शोक नहीं मानता, समही रहता है। हे अधिकारी जनो! जो तुम अविवेकसे इस मनके साक्षी आत्मासे सच्चिदानंद रूप, पृथक् ईश्वरको मानोगे तो मुझ जगत् कोटीमेंही रहोगे क्योंकी, सचिदानंदसे भिन्न मेराही स्वरूप है, आगे आप मालिक हो।

पार्वती।

(स्त्री पुरुषके गुण दोष वर्णन.)

पार्वती बोलीं हे सम्यक् पक्षपात रहित सज्जनों! शास्त्रोंमें जहां कहां कवि लोगोंने स्त्रीका निषेध किया है परन्तु पक्षपात रहित विचार देखैं तो यद्यपि स्त्रीमें दशगुणा अधिक काम लिखा है, तथापि स्त्रीसे पुरुष अधिक कामातुर होता है, यह प्रत्यक्ष देखनेमें आता है और स्त्री धैर्यवती देखनेमें आती है,कारण कि,पुरुषकी इंद्रियमें वायु भरके खडी होजाती है, स्त्रीकी नहीं होती, इसीसे स्त्री कामसे व्याकुल नहीं होती। देखो पुरुषही स्त्रीकी प्राप्ति वास्ते, द्रव्य दूती आदि अनेक उपाय विशेषकर करता देखनेमें आता है, स्त्री नहीं। स्त्रीसे अधिक पुरुषमें कामातुरता देखो, पुरुष तो पांच २ विवाह करता है,वृद्धहोके भी एक पुरुष अनेक स्त्रीसे शादी करता है परन्तु स्त्री बाल विधवा भी वृद्ध अवस्था तक कामातुर नहीं होती। पुरुषही छल, बल,द्रव्य, कपट, मंत्र, वशीकरण औषधी आदि करता है। तात्पर्य यह कि, पुरुषही अनेक रीतिका लोभादि देके, बालविधवा स्त्रीसे भोगेच्छा करते हैं, स्त्री कैसी भी कामातुर हुई हुई पूर्वोक्त उपाय आदि बहुत

कम करती हैं । स्त्रीको काम विषयमें भी पुरुषसे लज्जा जियादा देखनेमें आती है इत्यादि । अनेक रीतिसे पुरुषमें कामातुरता और अकामातुरतादि विषम भाव देखनेमें आता है । विस्तार भयसे लिखते नहीं । इससे पुरुषही निज स्त्रीको तथा परस्त्रीको परमदुःखका कारण है । पलोसापलासी करके निज स्त्रीको गर्भाधान करता है, सो बिचारी दशमास बालक पेटमें रखके अनेक दुःख पाती है। बालकके जन्म मरणका, पालनका सगाई विवाहका, संततिके अभावका, निर्धनताका, पापी लुच्चादि होनेका संततीकी संतति न होनेका, संततिके विवाह होने न होनेका तथा रोगादिकोंका इत्यादि दुःखोंकर युक्त हुई स्त्रीके इस उत्तम दुर्लभ मनुष्य जन्मके व्यर्थ चले जानेमें पुरुषही कारण हुआ । तैसेही उत्तम परस्त्रियोंको भी यह पुरुष द्रव्यादि देकर, तिनके जातिमतको बिगाडके, अपने सहित दुःखके परमभागी होजाता है । इससे अतिशयकर पुरुषही निन्दनीय है। यद्यपि स्त्री पुरुषके संयोग बिना जगत्‌का खाता उठजाता है, तथापि मुमुक्षु स्त्रियोंके लिये पुरुष, कालानाग, वा घोरा है। इससे भद्र उत्तम स्त्रियोंको पुरुषकी लिखी हुई मूर्ति वा काष्ठकी मूर्तिका दर्शन भी नहीं करना । बरन् स्वनिवास स्थानमें भी उत्तम स्त्रियोंकी लेखकर्के मूर्तियोंका दर्शन कदाचित् स्वप्नमें भी नहीं करना । बल्कि राधाकृष्णादि आपसमें हास विलास करनेवाली मूर्तियोंकाभी निज निवासस्थानमें लेख नहीं करना कारण कि, उनके दर्शनसे कामाग्नि प्रज्वलित हृदयमें उत्पन्न होती है । और आश्चर्य देखो पुरुष तो अनेक स्त्रियोंको विवाह करता है तो भी पामर स्वभावसे लाज नहीं पाता, और स्त्री जो बालविधवा होजाती है यदि पुरुष तिसको नहीं बिगाडे, तो ब्रह्मचर्य तिसका पूर्ण होजाता है । परन्तु येन केन उपायसे पुरुष स्त्रीका ब्रह्मचर्य भंग करदेता है, बल्कि निज लडकेकी विधवा

सधवा बहूसे वा पिताने दूसरी शादी मौसीसे तथा भगिनीसे भी दुष्ट पुरुष मिलजाते हैं, इसमें पुरुषकाही अपराध है, स्त्रीका नहीं। कारण कि, पहले पुरुषकाही चित्त निजसंबंधी स्त्रियोंसे बिगडता है, पीछे लिहाजलोभादि निमित्तोंसे विचारी स्त्रीभी बिगड जाती है। पुरुष तो शास्त्रसंस्कार द्वारा धर्माधर्मको भी जानता है परन्तु विशेषकर स्त्री जानती नहीं। इससे भी पुरुषही बेईमान है, स्त्रीके धर्म अर्थ काम मोक्षका बिगाडनेवाला है। स्त्रीमें पुरुषसे लज्जा अधिक है, क्योंकि पहले पुरुषको विषयकी बात कदाचित् भी नहीं कहेगी; कामातुर हुआ पुरुषही अनेक ढंग रचता है। स्त्री तो साधु ब्राह्मणका, ईश्वर उत्तम बुद्धि करके; दर्शन करने जाती है परन्तु मूर्ख शठ तिनमें भोग बुद्धि करते हैं और अनेक प्रकारकी बातचीत कर तिनका मन भी विषय लंपट कर देते हैं। इससे पुरुषकोही धिक्कार है।

हे मेरी प्यारी सज्जनिया हो! यह पुरुष तुम्हारे दुःखका हेतु है, भ्रमसे तुमने सुखका हेतु माना है; इससे स्वप्नमें भी पुरुष की इच्छा मत करो। देखो पुरुष कामातुर हुआ साठ सत्तर वर्षका भी पुनः स्त्रीभोगकी इच्छा कर विवाह करता है। इससे ऐसे कामातुर अजितेंद्रिय असंतोषी पुरुषकी इच्छा मतकरो।

हे विधवा भगिनीयां हो! विधवा स्त्रीतो संन्यासीके तुल्य है; जैसे संन्यासी जितेंद्रिय ब्रह्मचर्यरूप अष्टप्रकार स्त्रीके मैथुनसे रहित हुआ; निज शीलसहित निर्विघ्न आयु व्यतीत करते हैं, ज्ञान बिना उत्तमान् उत्तम ब्रह्मलोकादि उत्तम गति पाते हैं। तैसेही विधवा स्त्रीको भी ब्रह्मचर्यरूप अष्टप्रकारका, नियम धारण करना। अर्थात्—

। अष्टप्रकारका मैथुन ।

१—पुरुषके विषयसंबंधकी बातोंको भी न श्रवण करना २—पुरुष की प्रीतिका स्मरण भी न करना ३-पुरुषके विषयसंबंधका गीत भी न

गाना ४—पुरुषकी प्राप्तिका चिंतन भी नहीं करना, ५—पुरुषके एकांत बात भी नहीं करना, ६—पुरुषकी प्राप्तिका विषयमें दृढसंकल्प नहीं करना, ७—उसके लिये प्रयत्न भी नहीं करना, ८—अष्टम पुरुषके साथ निज अंग नहीं लगाना। इस अष्टप्रकार मैथुनसे (बिधवा स्त्री) रहित हुई, उत्तम नाम सम्यक् संन्यासी तुल्य गतिको पाती है। इससे हे मेरी प्राणांतप्रिय विधवा स्त्रियां सर्व प्रकारसे निर्दयी कपटी दुःखदायी आदि दूषणयुक्त पुरुषका नाममात्र भी सुनके ग्लानि करनी, जिससे इस दुःखस्वरूप पुरुषके व्यवहारसे मन हटजावे और आगे सुख होवे। विचार है जो पतिमें सुख होता तो पतिवालियां स्त्री दुःखी न होतीं और गृह पुत्रादिकोंमें सुख होता तो धनी गृही पुत्रवती दुःखी न होतीं। प्रियदर्शन बिधवा स्त्रियो! जो तुम अपने जातिमतमें रहोगी तो तुम्हारा तेज, बल योगिराजवत् बढेगा, उभय लोक जीत लोगी। यह वैधव्य नहीं मानो, विचारो तो उत्तम गतिका साधन है। विचाररूपी नेत्र खोल देखो, कहां तो यह तुम्हारी अवस्था कि, शरीर वस्त्र आत्मा पवित्र रहना, दुःखदाई संसारके व्यवहारोंसे निवृत्ति रहना, केवल अन्न वस्त्रसेही संतोष होजाना, संतानकी उत्पत्ति आदि पीडा से छूट जाना इत्यादि सुखरूप और कहाँ पशुधर्मादि संसारमें मरण तक लिप्त रहना, सधवाकी अवस्था? दिन रात्रिका भेद है। जन्म मरण छुटनेका साधन वैधव्यरूपी चिंतामणिको त्यागके जन्मम[illegible] रूप संसार काँचमणीरूप गढेमें गिरना है। इससे हे मेरी सखियां इस अमूल्य उत्तम वैधव्यको निर्लज्ज कूकरोंवत् पशुधर्ममें मत खोओ पशुधर्म तथा पुत्रादि सामग्री तो तुमको अनंत योनियोंमें पीछे हुए हैं आगे होवेंगे। परन्तु यह स्त्रीका वैधव्य जन्म, निर्विघ्न वीतना दुर्लभ है; नहीं तो रंडीपना है। हे प्राणप्रिय विधवास्त्रियो! तुम

माता सासु, सुसरे, जेठ, जिठानी, देवर, दिवरानी, आदि जिनस्थानोंमें विषयकी वातें करें, जिनस्थानोंमें तुमको निजशयन बैठनेका स्थान भी नहीं करना कारण कि, देख सुनके विषयोंके संस्कार मनमें पैदा होते हैं। हे शीलवंत स्त्रियो ! यह पशु धर्मतो तथा बाल बच्चे आदि संसार तो, हर योनियोंमें मिल सक्ता है। इसमें क्या बडाई है ! यह मोक्षद्वार मनुष्य तन मिलना दुर्लभ है। यही काल है, काम क्रोधादि शत्रुओंको जीतनेका और यही कालहै हार होनेका है। मन जीते सब जगत् जीता, मन हारे जगहारा। पशुधर्मादि विषयमें जो तुमको आनंद आता है सो इन विषयोंमें नहीं; जैसे अस्थि चाभनेमें जो कूकरको रस आता है सो रस अस्थिमें नहीं; जैसे जहाँ २ मधुरता चनकादियोंमें मालूम होती है, तहाँ २ शक्कर की है; तैसे जहाँ २ विषय इंद्रियके संबंधसे आनंद भान होता है, तहाँ २ आत्मा आनंद है; सो बुद्धिके प्रकाशक आत्मा तुम अस्तित्वमात्र हो।

इसीपर एक कथा है। एक कालमें नारद अभिमानकर पूर्ण हुआ चला जाता था। एक जंगलमें पशु आपसमें निज बोलीमें आत्मनिरूपण करते थे। नारद सुनकर स्थित होगया।

। श्वान ।

इतनेमें भैरवका वाहन श्वान बोला—हे प्रियगणो ! मुझको यह मनुष्य नीच कहते हैं परन्तु विचारकर देखे तो, यह देहाभिमानी कुत्तेसे भी अति नीच हैं; कारण कि, कुत्ता निमकहलाल है, अल्पनिद्रावाला है, संतोषी है, मान अपमानमें सम रहता है, समय अनुसार स्त्रीभोग करता है, निज मालिकको भूलता नहीं, निज मालिकसे द्रोह नहीं करता, इत्यदि अनेक गुण कूकरोंमें हैं। परन्तु देहाभिमानी पुरुषोंमें तिससे विपरीत गुण हैं इसीसे वे अतिनीच हैं। हे साधो ! नीच उच्च व्यवहार, सद्गुण असद्गुणों निष्ठ है, देह, जाति, आत्मा,

निष्ठ नहीं। इससे तुम आपमें पशुत्वधर्म मानके निजमें नीच मत करो। किंतु अतिकामी, क्रोधी, लोभी, अहंकारी, द्रोही, विश्वासघाती, दंभी, कपटी, अन्यायकारी, अधीर्जी, परस्पर मित्रोंमें विरोधकर्त्ता, मातृ, पितृ, गुरु, बडे भ्रातृ, अभक्त, झूठा अभिमानी और निर्दोषमें दोषारोपी इत्यादि अनेक अवगुण विशिष्ट है सोई बही नीच और पशुत्वधर्मवाला कूकर शूकर है। देह अभिमान रहित सच्चिदानंद मनादि दृश्यके द्रष्टा आत्मनिष्ठावान् तुम श्रेष्ठ और पशु नहीं।

देवीका वाहन-सिंह।

तिस समय देवीका वाहन सिंहने आकर कहा हे अंतर्यामि स्व आत्मा सम्यक् अपरोक्ष ज्ञानवान सज्जनो! अज्ञान तम पशुओंको अपने अस्ति भाति प्रियरूप आत्मासे पृथक् विचाररूप पंजे कर, पूर्वोक्त पशुओंको अत्यंताभाव वा मिथ्यत्व निश्चयरूप हनन करके और अद्वैत निश्चयरूप सोई सिंह है।

गजेन्द्र और ग्राह।

पुनः गजेन्द्र आकर बोला हे सत्यवक्ताओ! श्रोतादि इन्द्रिय हस्तिनियोंका यह जीव इन्द्र है; सो इस संसाररूप वनमें निजपत्नि क्रीडाकर उन्मत्त हो और अति काम क्रोध लोभरूपी तृषा व्याकुल हुआ, अति देहाभिमान रूपी तालाबविषे, अतिस्नेहरूप पीनेलगा, तहां महामोह रूप, पुत्र, लोक, धन, ईक्षणा निज ताप अज्ञानरूप ग्राहके द्वारा भ्रांतिहोजानाही पकडलेना है। अर्थ कि, मैं जन्म मरण सुख दुःख बंध मोक्ष धर्मवाला हूं, ऐसे स्वस्वरूप न जानके मानताहै। पुनः श्रद्धा भक्ति सहित ईश्वरके आगे सबे कर्म उपासना रूप प्रार्थनासे शुद्ध अचल उपदेशयोग्य मन

पुनः विष्णुरूप ब्रह्मनिष्ठगुरुसे " तत्त्वमस्यादि " महावाक्योंका तत् त्वं पद शोधनद्वारा, अखंड अर्थ प्रत्यक् आत्माके अनुभवरूप चक्रसे, वासनारूप तंतु सहित, अज्ञान तत्कार्यरूप ग्राहको, मारके निज शिष्यके जन्म मरण बंध मोक्षादि सुख दुःखरूप बंधन दूर किया। सो मैं जीवन्मुक्त होकर विचरता विचरता तुम्हारी सभामें स्थित हूँ। यही गजेंद्रके प्रकरणका तात्पर्य है।

शीतलादेवीका वाहन गर्दभ।

पुनः शीतलादेवी कर बोधित देवीके वाहन गर्दभने आकर कहा। हे साधो ! श्रद्धा गुरुभक्ति सेवापूर्वक, श्रवण मनन निदिध्यासन, तथा तत् त्वं पदार्थके शोधनसे, उत्पन्न संस्कार विशिष्ट शीतलादेवी रूप बुद्धि, तिस बुद्धिरूप शीतलाकी ब्रह्माकार वृत्तिरूप वाहन, मैं गर्दभ हूँ। यह बहिर पशु गर्दभ तो देहाभिमानी अज्ञानी पुरुषोंकी उपमा बोधन करता है। इससे जो दुराचार, अन्याय, अजितेंद्रियता, परद्रोह, अनम्रता, अशांति, सदुपदेश, श्रवणकी विस्मृति, असारग्राही आदि अवगुण विशिष्टही गर्दभ है। सत्संभाषणादि धर्मानुष्ठानपूर्वक, श्रवण मनन निदिध्यासनसे "मनादियोंका साक्षी मैं सच्चिदानंद आत्मा हूँ" इससे दृढ़ निश्चयवान् पुरुषही ब्रह्मरूप देव है, अन्य सर्व गर्दभ पशु हैं।

वाराह भगवान्।

पुनः वाराह भगवान् संबंधि शूकर सभामें आकर बोला। हे सर्वमें आत्म उपमादर्शक सभा ! सु नाम श्रेष्ठ कल्याणका है, कर नाम करनेका है, कल्याणको जो करे सो सुकर कहिये। वैराग्यादि दैवीगुणोंमें भी पुरुषको कल्याण कारितारूप सुकरता घटता है परन्तु परमकल्याण तो निजसम्यक् अपरोक्ष बोधद्वारा सच्चिदानंद आत्माही करताहै। इससे सच्चिदानंद आत्माका नाम सुकरहै। इसहेतु मुझपूर्वोक्त

शूकरको निज मनादि दृश्यका साक्षी चिंतनकरो। मनतो कं कोई चिंतन करेगाही; एक कालमें दो चिंतन नाम संकल्प होंगे नहीं, क्रमसेही होवेंगे । "मैं सच्चिदानंद आत्मा हूँ" इस चिंत नामही ब्रह्माकार वृत्ति है अन्य अनात्माकार वृत्तिको त्या अनात्माकार वृत्ति करो। वस्तुसे ब्रह्माकार और अनात्माकार वृ योंके प्रकाशक ,तुम आत्माको दोनोंवृत्तियां सम हैं। हे सा सम्यक् जाननाही कर्तव्य है और कुछ करना नहीं।

हयग्रीव ।

इतनेमें हयग्रीव भगवानकर उपदेशित अश्वने आयकर अ सम्यक् दर्शियो! न स्वंजानाति इति अश्व अर्थ यह कि, जो अपने रूपको सम्यक् नहीं जानता है, सोई अश्व अर्थात् घोडा है। इ अज्ञानीरूप, बंध मोक्ष ज्ञान;अज्ञान तथा देहाभिमान,जन्म मरण द्वेष, सुख दुःखादिरूप, पुरुषोंके अधीन होके खेद पाता है। नि निज स्वरूपको जाननेसेही अश्वपना निवृत्तहोके देवभाव होता है

गणेशका वाहन मूषा ।

पुनः गणेशका वाहन मूषाने आकर कहा हे धर्मज्ञ पुरुषो! त मस्यादि महावाक्योंसे उत्पन्न हुई, ब्रह्मात्म अखंडाकार वृत्तिरूप, मू सो चक्षु मनादि इंद्रियरूप गणोंका स्वामी सच्चिदानंद आत्मारूप श पूर्वोक्त निजवाहन वृत्तिरूप मूषेमें आरूढ होके, माया तत्कार्य दृश्यको अत्यंताभाव निश्चयरूप छेदता है। इससे मुमुक्षुजन सत्संभाषणादिधर्मानुष्ठान पूर्वक,ब्रह्मविद्याके, गुरुमुखसे श्रवण म निदिध्यासन द्वारा, "अहंब्रह्मास्मि" वृत्तिरूप मूषाकी उत्पत्ति लियेही, सर्व कर्म और उपासनाकांडके अनुष्ठानका फल है। कोई वैकुंठादि लोकोंकी प्राप्ति, कर्म उपासनाके सेवनका फल नहीं हे साधो! गणेशका मूषा वाहन है, इस कथाका पूर्वोक्त प्रका

ही तात्पर्य है, अन्यथा मानोगे तो शास्त्रको अनुभव विरुद्ध कथन करनेसे निष्फलता होवेगी।

नन्दीगण ।

(शिव तथा शिवके वाहन नन्दीका भावार्थ.)

तिसीसभामें मनुष्य आकृति धारके नंदीगणने आकर कहा। हे मित्रवरो! पंचभूतोंकी सात्विकी सांझीअंशरूप गौसे, मुझ अंतःकरण बैल नंदीगणकी उत्पत्ति है, सो मैं शिवका वाहन हूँ अर्थ यह है कि, अंतःकरण उपाहित चैतन्यही; चक्षुआदि इंद्रिय देवनका देव नाम प्रकाशक है, सोई शिव नाम कल्याणरूप है और अंतःकरण रूप हिमाचलकी बेटी " तत्त्वमस्यादि" महावाक्योंसे उत्पन्न होनेवाली "अहंब्रह्मास्मि" यह ब्रह्मविद्यारूप वृत्ति गौरी अर्द्धांगी है। तात्पर्य यह है कि, सम्यक् तत्त्ववेत्ताकी सर्व चेष्टामें ब्रह्माकार वृत्ति बनी रहती है, सो ब्रह्मवेत्ताका नामही शिव है, अज्ञानी लोग अशिववत् अशिवहैं।

हिङ्गलाज ।

तैसे " हिन् हिंसायां" जो मन वाणी शरीर कर, सर्व सुख दुःखादि अवस्थामें, सर्व जीवोंविषे, आत्म उपमा दर्शनरूप साधनसे, परप्राणीको पीडनरूप हिंसासे लज्जायमान हो; सोही हिंगलाज है। इस पूर्वोक्त हिंगलाजके स्पर्शनरूप धारणते अवश्य कल्याण होगा।

पुष्कर ।

तैसेही मनुष्यशरीर पुष्कररूप तीर्थमें, मन मुमुक्षुरूप जीव ब्रह्माने, चक्षु आदि इंद्रियरूप देवतान सहित विष्णुरूप आत्मानात्माका सम्यक् विवेकरूप यज्ञ किया। तिसमें जीवरूप ब्रह्माकी अनादि की प्रवृत्तिरूप बुद्धि सरस्वती किसीके निमित्तसे क्रोध होयके निज पति पास बुलाई भी नहीं आई। अर्थ यह कि, वैराग्यवान् विवेकी अशास्त्री प्रवृत्तिको प्रियनहीं लगता। इसीसे जीवरूप ब्रह्माने पूर्वोक्त

यज्ञकी सहायक निवृत्तिरूप प्रिय गायत्री स्त्रीको अंगीकार कि पश्चात् निर्विघ्न विवेकरूप यज्ञ पूर्ण हुआ।

रामेश्वर ।

तैसेही मुमुक्षुओंने निज शरीरमेंही त्वं पदके वाच्यार्थ अं राम जानना और त्वं पदके लक्ष्य अर्थको कूटस्थ मन साक्षी ई जानना, सोई जीवका रामेश्वरस्वरूप है ।

ज्वालामुखी ।

तैसे; ज्वाला एव मुखी—ज्वालामुखी। ज्वाला नाम प्रकाशस्व पही है प्रधान जिसका; ऐसी जो प्रत्यक् आत्मसत्ता बुद्धि साक्षी सोही मुमुक्षुको ज्वालामुखी जाननी।

हरिद्वार ।

तैसेही ब्रह्मात्म एकत्व ज्ञान द्वाराही सच्चिदानंद निजस्वरूप ह प्राप्त होता है, इससे ज्ञानका नाम हरिद्वार है ।

नर्मदा ।

तैसे वेदरूप नर्मदाके किनारे अर्थात् वेदका सारभूत अकार, उ मकार, अर्ध मात्रा, ये चार मात्रारूप ओंकारको जानना। अकारादिवाचक मात्रोंका वाच्य ध्याता, ध्यान, ध्येय, जाग्रत, स्व सुषुप्ति, स्थूल, सूक्ष्म, कारण शरीर और समष्टि अभिमानी वि अभिन्न विश्वादि जीव इत्यादि, अनेक त्रिपुटीरूप वैदिक लौकि वाच्य जगत् है। जाग्रत् आदि अनेक त्रिपुटीके प्रकाशक वा अर्ध मात्राका वाच्य तुरीय प्रत्यक् आत्मा है। इतनाही व्य परमार्थका स्वरूप है। सो वाच्यवाचकभावसे सर्व ओंकारस्व है। इससे मुमुक्षुको पूर्वोक्त ओंकारकी यात्रा करनी अर्थात् नि शरीरमेंही विवेचन सम्यक् करना, जिससे मरणरहित दर्शनका फल है

। भागीरथी ।

तैसेही मुमुक्षुरूप भगीरथके अष्टांगयोग तथा आत्मानात्माका सम्यक् विवेकरूप सांख्ययोग, यत्नरूप तपस्या द्वारा अंतःकरणरूप हिमालसये, ब्रह्माकार वृत्तिरूप ज्ञानस्वरूप गंगा उत्पन्न होती है पुनः ब्रह्मरूप समुद्रमें एकरूप हो जाती है। मनोनाश, वासना, क्षय वा उपरति, वैराग्य ज्ञानरूपी गंगासे जब मिलती है, तब जीवन्मुक्तिरूप त्रिवेणी हो जाती है। पर्वोक्त ज्ञानरूप गंगामें जो स्नान करता है पुनः जन्मको नहीं प्राप्त होता।

। बद्रीकेदार ।

तैसेही इस मनुष्य शरीर वा अंतःकरण रूप उत्तराखंडमें, अस्तित्व,स्फुरणत्व, प्रियत्व, रूप सुख दुःखादि, मन सहित मनके धर्मोंका जो अनुभवकर्ता है सोही, केदार और बद्रीनाथ है। इत्यादि बहिर कथाओंका अर्थ अंतर अध्यात्ममें निजबुद्धिसे जोड लेना।

। संसारके अभावका उपाय ।

इससे,सत्, संतोष, ब्रह्मचर्य, अहिंसा, शांति, दांति, वैराग्य, आदि तीर्थोंमें स्नान करके; पुनः गुरुद्वारा वेदांत, श्रवण, मनन;निदिध्यासन पूर्वक, ब्रह्मात्मा निजस्वरूपका सम्यक् अपरोक्ष,जिस दिन यह मुमुक्षु, करेगा; किसी दिन भ्रमरूप जन्म, मरणरूप संसार निवृत्त होगा, अन्य संसाररूप जन्म मरणके दूर करनेका कोई उपाय नहीं। चाहे सर्व विद्वान् शास्त्रोंमें खोज देखो। आगे जो इच्छा हो सो करो।

। उष्ट्र ।

(गौरीके शापसे सनत्कुमारके उष्ट्र होनेका आशय.

गौरीके शापसे सनत्कुमार (उष्ट्रकी) संततिमें उष्ट्र ज्ञानवान् हुये थे तिनमेंसे एक उष्ट्रने आयकर कहा हे नीतिज्ञ सभा! उ इति

वितर्के—ष्ट्र नाम टरनेका है, अर्थ यह कि, माया तत्कार्यसे ... म्यक् आत्मानात्माके विचारसे निज स्वरूपसेही असंग रहे, ... नाम उष्ट्र है । जैसे आकाशस्वरूपहीसे भूत भौतिक प्रपंचसे ... रहता है । सो उष्ट्रनाम पूर्वोक्त रीतिसे सच्चिदानंद आत्माका है ... स्वप्नमें उष्ट्रादि रूप स्वप्नद्रष्टाही होता है; तैसे सर्वरूप आत्मा ... होनेसे भी उष्ट्र आत्माही है । जैसे उष्ट्र सकंटक और निष्कंटक ... को खाता है, तैसे मैं द्वैत अद्वैत द्वंद्वरूप संसार वृक्षोंको निजा... अत्यंताभाव वा मिथ्यत्व निश्चय सम्यक् ज्ञान रूप भक्षण करता ... हे साधो ! हीरे मोती आदि नगोंसे जडित पलँगमें तथा ... शयन किया तो क्या हुआ ? न किया तो क्या हुआ ? राज... भोगी तथा देव ऐश्वर्य भोगा तो क्या हुआ ? न भोगा तो ... हुआ ? तैसे निर्द्धनी हुआ तो क्या हुआ । जो सधनी हुआ ... क्या हुआ ? कारण कि, गुजर सबकी तुल्य है; जिमि गुजरी ... गुजरी, चार दिना गुजरान जिमि कीनी तिमि कीनी ॥ सर्व ... मिथ्या है, कोई पदार्थ सत् नहीं । इसीसे इनके ग्रहण त्यागमें ... नहीं होती । वैकुंठादिकोंमें भी इस वर्तमान जगत्वत्ही ... है; न्यूनाधिक कुछ नहीं । इससे शांतिरूप एक आत्माही है अन्य ...

शृगाल ।

पुनः शृगाल आकर सभामें बोला हे नीतिज्ञ सभा ! शृक् ... मालाका है, अल नाम पूर्णका है । जो इस नाम रूप अनंत ... रूप मणियोंमें तागेवत् पूर्ण होवें, उसीका नाम शृगाल है । ... तकी मालावत् आपही मणि और तागारूप होवे तिसका नाम शृगाल ... सो मैं सच्चिदानंद शृगाल तुम्हारे मनादिका, अपरोक्ष, ... सदा साक्षीरूप, कर हाजिर हुजूर हूं जब मुझ निजात्माको जानोगे तो भ्रमसिद्ध बंध मोक्षादि जगत्से छूटोगे ।

वानर ।

पुनः वानरने आकर कहा; हे साधो ! शास्त्रमें मन और वानर की उपमा तुल्य कही है, परंतु मन भूतोंका कार्य्य होनेसे जड है. और मैं तो इस वानर शरीरका तथा मनका प्रकाशकहूँ; इससे समता नहीं । तैसेही नर नाम पुरुषका है, पुरुष नाम पूर्णात्माका है । वा विकल्प नाम वेदानुकूल तर्कसे, दृश्य द्रष्टाका सम्यक् विवेक कर, भूमाको निजस्वरूपको संशय रहित अपरोक्ष जानता है, सोई वानर है । वा पूर्वोक्त वानरसे भिन्न सर्व दृश्यरूप माया स्त्री है इससे भिन्न मुझ भूमाको अपना आप जानेबिना सुख तुमको नहीं होगा । आगे आप मालिक हो !

पराशरने कहा हे मैत्रेय ! इसप्रकार सर्व सभा परस्पर नमस्कार करके आप अपने २ वांछित स्थानको गई ।

इति श्रीपक्षपातरहित अनुभवप्रकाशस्य पंचमः सर्गः समाप्तः ॥ ५ ॥

अथ षष्ठ सर्ग ६.

पराशरने कहा हे मैत्रेय ! तूभी आत्मदर्शी हो । मैत्रेयने कहा देखना दूसरेका होता है, मैं स्वयं आत्मा आत्माको कैसे देखूँ ? जो जो देखनेमें, सुननेमें, सूँघनेमें, स्पर्शमें, रसलेनेमें, वाक् उच्चारणमें, मनके चिंतनमें ग्रहण त्यागमें,इत्यादि मनकर वाणी शरीरकर जानाजाता है सो सो दृश्य जड अनित्य होता है । इससे सर्वके द्रष्टा मुझ आत्माका अन्य द्रष्टा नहीं । पराशरने कहा हे मैत्रेय ! अवाङ्मनसगोचर, सर्वाधिष्ठान, जगविध्वंसप्रकाशक, अवेद्यत्व, सदा अपरोक्ष, साक्षी, सच्चिद्धन, विशुद्धानंद, ब्रह्मात्मा; अपने स्वरूपको, सम्यक् अपरोक्ष हस्तामलकवत् (जाननेवत्) जाननेका नाम आत्मदर्शन है।

आत्मदर्शीकी कथा ।

(आत्मदर्शी और वासुकरणका आत्मतत्त्व निर्णय.)

इसी पर एक कथा सुन । एक आत्मदर्शीनाम मुमुक्षुने गुरुसे किया कि, हे गुरो ! तुम्हारी कृपासे देवताओंको भोग प्राप्त है मुझको भी प्राप्त है क्योंकि षट् विषय और षट् विषयोंके ग्रहण नेवाले षट् इन्द्रिय तथा इन्द्रिय विषयके संयोग वियोगजन्य दुःखका अनुभव, भोग और भोगोंके साधन त्रिषय इन्द्रिय, लेकर चींटी तक समही हैं, न्यूनाधिक नहीं, विचारे विना न्यूना भासती हैं । सम्यक् विचारे नहीं तो न्यूनाधिकता देखकर हैं । अधिककी प्राप्तिकी इच्छा होती है, न्यूनमें अहंकृति होती सर्व प्रकार सम वस्तुमें दोनों नहीं । इसी विचारसे शांति मनमें है, अन्यथा नहीं । मैंने सर्व कर्तव्य जगत्के स्वभाव जाना है । जो दृश्यमान है, सो असत् भ्रम समझा है नहीं जानता कि, मैं कौन हूँ ? कहांसे आया हूँ ? शरीर कहां जाऊँगा ? मूल मेरा क्या है ? जो मैं आत्मा होऊँ तो विषे क्यों आऊँ ? कारण मेरा उत्पत्तिका क्या है ? वासुकर्णने हे पुत्र ! मूल तेरा वह है जिससे जगत् प्रकाशमान हुआ है । न कहींसे आया है, न कहीं जायगा, आकाशके समान पूर्ण स्थित है । आवागमनका तुझ विषे मार्ग नहीं । उत्पत्ति नाश धर्म शरीरका है और शरीर शुभाशुभ कर्मोंसे होते हैं । कर्म चाहना होते हैं । चाहना अज्ञानसे होती है । अज्ञान अपने स्वरूपके पहँचाननेसे होते हैं । औरको अपनेसे भिन्न स्थापकर और मुक्ति सहायक मानकर (ईश्वर मेरी मुक्ती करेगा) आपको अर्थी और दाता जाननाही अज्ञान है, नहीं तो वेद कहते हैं "मैं एकही ईश्वर रूप हूँ" जैसे स्वप्नद्रष्टा एकही अनेकरूप होता है । इससे यह ज्योतिरूप ईश्वरही है; जैसे सूर्यकी किरणें सूर्यस्वरूप हैं ।

सर्वरूप ईश्वरही पूर्ण हुआ तो आपको तिससे भिन्न शरीर वा जीव मानना केवल अज्ञान है।

सब एकही है।

एकको भला और एकको बुरा ईश्वररूप आत्माविषे कैसे गनिये। मूल विषे मनुष्य पशु स्थावर जंगमादि विचारवानको सम है; भेद नहीं। व्यवहारक जो लघु दीर्घ नीच ऊंचादि भेद भासता है, सो फल कर्मोंका है और अपने मूलके अज्ञानसे भासता है; जैसे वृक्षके शाखा पत्र फल फूलका जो भेद भासता है, सो मूलके अज्ञानसे भासता है; जैसे स्वप्न पदार्थोंका जो भेद भासता है, सो स्वप्नद्रष्टाके अज्ञानसे भासताहै, स्वप्नद्रष्टाके दृष्टिसे नहीं।

नरक जानेका मार्ग और मुक्तिका उपाय।

हे पुत्र ! इंद्रियोंका असज्जन रीतिसे पालना, जीवको नरक लेजाता है; जौलौं संग संतोंका न हो त्याग नहीं होता। अपने स्वरूपका पहँचानना जो मुक्ति है, सत्संगसे प्राप्त होती है। हे पुत्र ! जो कुछ मन वाणीसे नामरूप कथन चिंतन होता है, सो केवल आभासमात्र जान। जो असत् हो उससे प्रीति मूल अज्ञान है।

आत्मा कैसा है ?

आत्मदर्शीने कहा हे प्रभो ! सर्व स्वभाव पंच इंद्रियों संयुक्त, यह पंचभूतरूप शरीरसहित सर्व नामरूप जगत् मृगतृष्णाके जलके तरंग के समान है, मूल इन सर्वका चैतन्य आत्मा है, सो आत्मा कैसा है ? वासुकरणने कहा—पाप पुण्यसे पवित्र, सर्व वस्तुविषे स्थित भी आलिप्त, कर्मोंविषे बंध नहीं होता, मरण जीवन और बंध मोक्षसे अतीत है। तत्त्वोंसे आदिलेके सर्व वस्तु तिस आत्माको नाश नहीं कर सकते हैं। तात्पर्य यह कि, नामरूप जगत् असत् है और आत्मा सत् है। दोनोंका स्वभाव अन्यथा नहीं होता।

उत्पत्ति और नाशवान् पदार्थ आत्मासे भिन्न मिथ्या

तब हे गुरो ! उत्पत्ति होकर जो विनशता है पुनः कर्मोंमें बंध हैं सो कौन है ? व्यासकर्णने कहा हे पुत्र ! स्वप्नप्रपंच विषे; जैसे उ विनाश; कोई कर्मोंमें, कोई मुक्त कोई सुखी, कोई दुःखी, होता है अनेक प्रकारकी जो प्रतीति होती है, सो केवल निद्रारूप अ कर है, वास्तवसे स्वप्नद्रष्टामें नहीं तैसेही। अपने स्वरूप अधि अज्ञानसे विषमता भासती है, वास्तवसे नहीं।

नाम और नामी ?

आत्मदर्शीने कहा नारायणादि नाम भी नाशरूप होवेंगे वा न व्यासकर्णने कहा नाम शब्दमात्र है आकाशका गुण है, इससे न परंतु नामी नाशी नहीं क्योंकि नामरूपका तथा तिनके नाश (आत्मा) स्वरूप है। हे पुत्र ! नामरूप जगत्की. बुद्धिसे है रूपका अधिष्ठान आत्मा बुद्धि नहीं होता।

आत्मप्राप्तिके हेतु गुरुशिष्य कैसा चाहिये !

पर इस भेदके पावने निमित्त गुरु पूर्ण और शिष्य श्रद्धा चाहिये और संतोंके संगसे अचेत न होवे तो पावे।

स्वरूप क्या है ?

हे पुत्र ! यह सर्व स्तुति चैतन्य आत्माकीहै और स्तुतिसे अ भीहै, उपजने विनशनेका इस बुद्धि आदिकोंके साक्षी आत्मामें नहीं और न कभी इसको किसीने देखा है, स्वयंप्रकाश होनेसे; जैसे पुरुष स्वप्नद्रष्टाको कभी भी स्वप्न नर नहीं देखसक्ते। इस चैत भिन्न कौन है जो देखे। पुरुषको विचार करना चाहिये कि, इस संघातकी चेष्टा कौन करता है ? जिस चैतन्य कर यह संघात करता है वही मेरा रूप है। नामरूप व्यवहार जगत्का है, जो विचारें तो, नामरूप भी आत्मरूप है भिन्न नहीं क्योंकि

नामरूप जगत्की निवृत्ति अधिष्ठान आत्मरूप है। हे पुत्र! तुझे जो आत्मदर्शी कहते हैं सो कौनसे अंगको कहते हैं? क्योंकि सर्व अंग आप अपने नाम रखते हैं पुनः तिनका भी सूक्ष्म विचार करें तो निकसता भी कुछ नहीं; जैसे केलेके पत्ते निकासते जावो तो, शून्यही शेष रहता है। इससे नामरूप केवल कहने मात्र है।

पुरुष नित्य है।

हे पुत्र! उत्पत्ति नाश शरीरका धर्म है, क्षुधा तृषा प्राणोंका धर्म है, हर्ष शोकादि मनका धर्म है; जैसे पुराने वस्त्र उतारके पुरुष नवीन ग्रहण करता है, पर पुरुष नित्य है वस्त्र अनित्य है; तैसे देह अनित्य है और देही नित्य है।

पूर्ण और पवित्र कब होता है?

आत्मा देहाभिमान त्यागके पूर्ण होता है; जैसे बूँद वा नदियां अपना नामरूप अहं त्यागके समुद्ररूप होती हैं। जब शरीर त्यागता है पीछे भला बुरा रह जाता है। हे पुत्र! जैसे नदीसे थोडा जल निकास कर अपवित्र ठौर डाला, तब कोई तिसको अंगीकार नहीं करते और अपवित्र कहते हैं; जब पुनः नदीसे मिला, पवित्र होता है, अपवित्र उसका नाम नहीं रहता। तैसे सत् चित् आनंद आत्मा रूप समुद्रके अज्ञानसे, आपको भिन्न मानकर, अल्प जीव जानना और अपवित्र शरीरको अपना आप परिच्छिन्न मानना यही अपवित्रता है।

स्वरूपसे कबतक भिन्न रहता है।

जबलग असत् जड दुःखरूप शरीरादिकोंमें अहंकृति है, तब लग अपने स्वरूप समुद्रसे भिन्न रहता है। जब शरीरादिकोंमें सम्यक् विचारसे अहंकृति न रही और आत्मस्वरूप सम्यक् अपरोक्ष जाना; तब पूर्ववत् सत चित आनंदरूप आत्मारूप समुद्र होता है।

व्यवहारोंविषे असमता है सम कैसे कहैं ?

आत्मदर्शीने कहा हे गुरो ! तुम्हारे वचनसे मैं आपको पूर्णा त्मा जानता हूँ, पर शुभाशुभ शरीरके स्वभाव मुझे प्राप्त होवेंहैं विषे सम कैसे होऊँ ? मैं देखता हूँ कि, शुभविषे प्रसन्न अशुभ अप्रसन्न होता हूँ, जो मैं पूर्ण आत्मा हूँ तो न होना चाहिये। सकरणने कहा हे पुत्र ! तू आपही कहता है, मैं देखता हूँ, शुभा विषे हर्ष शोकी होता हूँ, इससे यह सिद्ध हुआ, तू हर्ष शोकको नेवाला है, हर्ष शोक किसी औरको होता है, तुझको नहीं। हर्ष शोकादिक मनादिक संघातके धर्म हैं; इससे इनकी वासना त्यागविषे दृढ हो ।

अपने विचारेविना सुख नहीं ।

ब्रह्मा विष्णु शिवादिक तुझे उपदेश करें और आप देहादि वासना न त्यागे, तो स्वरूपकी पहँचानरूप मुक्ति कठिन है। जितनी शुभ कर्म करनेविषे तथा विद्या पढनेविषे अवधि (आ बितावे । जिसकी जगत (असत्) से प्रीति है, विषयोंसे अ नहीं, उसको दोनों लोककी अप्राप्ति होती है, जो चाहनासे है, सोई मुक्त है ।

हे पुत्र ! सर्व श्रवण मनन निदिध्यासनादि साधन मनकी शुद्धि वास्ते हैं, जब मन वश हुआ मानो त्रिलोकीका राज्य मिला। किसी अन्यने बंधन नहीं किया; तुझ चैतन्यने आपही देहाभिमान कर आपको आप बंधन किया है । जब तू आप सम्यक् देहाभिमान त्यागे मुक्त हुआ हुआ मुक्त होवेगा ।

स्वरूपकी प्राप्ति अति सुगम और अति कठिन है।

अपने स्वरूपका बोध सत्संगसे होता है, ज्ञान, विज्ञानस्वरूप तक है, आगे नहीं इससे आपको नित्यसुख चिद्रूप जान जो कर्मों

शरीरके बंधनसे छूटे। स्वरूप जाने विना अति कठिन भी है और जानेपर अति सुगम भी है।

किसको कठिन है ?।

जिसने इंद्रिय मन नहीं जीता और देहविषे अहंकारपूर्वक वासना नहीं त्यागी, तिसको कठिन है।

किसीको सुगम है ?।

जिसने पूर्वोक्त मन इंद्रिय जीतपूर्वक सर्व वासना त्यागी है तिसको सुगम है।

बुद्धिवानको सैनही बहुत है, मूर्ख सारी आयु सत्संगमें वितावे तो भी कोराका कोरा रहजाता है; जैसे गंगामें पत्थर कोरेके कोरे रहजाते हैं। इससे इस शरीरसहित जगत्को स्वप्नवत् मिथ्या जान और आपको शरीर मनादि संघातका द्रष्टा जान जो, कालके भयसे छूटे।

आत्मदर्शीने कहा संसारको मैंने असार जाना है, पर कहो मैं कौन हूँ ? व्यासकरणने कहा तू संसारके असार जाननेवालेका अनुभव करनेवाला है, तेरा अनुभव करनेवाला कोई नहीं। यह जगत् तरंग तुझ चैतन्य समुद्रसे हुआ है, तुझहीविषे लीन होता है; पर तू चैतन्य एकरस है। जगद्रूप कर्मसे अतीत है। जो दृश्यमान है तिन सबका तू जीवनरूप है; जैसे तरंगादिकोंका समुद्र जीवन-रूप है। पर तूने आपको भुलाकर शरीर माना है; इसीसे तू अनेक भ्रमोंमें बध्यमान हुआ है। मुक्तरूप तू मुक्तिको भ्रमकर चाहता है। अपनी पहँचान कर, जब तू आपको सम्यक् जानेगा तो, बंधकी निवृत्ति और मोक्षकी प्राप्तिकी इच्छा न करेगा, उलटा बंध मुक्तको भ्रमरूप जानेगा।

साधन कबतक है ।

हे पुत्र ! तीर्थ, यात्रा, जप, तप, नियम, योग, यज्ञ, व्रत, पू साधन तबतक हैं, जबतक साध्यरूप ब्रह्मात्माका सम्यक् ज्ञ नहीं हुआ, जब हुआ तो साधनोंसे क्या प्रयोजन है ? जैसे कियां तब लग गुडियोंसे खेलती हैं जब लग पति नहीं मिल पति मिला तो गुडियोंसे खेलनेका क्या प्रयोजन है ? कुछ न

ईश्वरकी प्राप्तिका उपाय ।

जो सत् चित् आनंदरूप ईश्वरकी प्राप्तिवास्ते अपने स्व पहँचानका उपाय सत्संग सहित सच्छास्त्रके विचारको त्या अन्य साधनमें प्रवृत्ति करते हैं, तो वे जैसे कोई गंगाके किनारे कर गंगाजलको त्यागकर और जल पीवे और स्नान करे, समान है । इससे आपको पहँचान और असत् कर्मोंका त्याग

सब स्वप्नवत् है ।

आत्मदर्शीने कहा हे पिता ! मैंने जगत्को मृगतृष्णाके ज जाना है उसमें मन नहीं बांधता । शरीरको मिथ्या जानकर पालनेकी इच्छाभी नहीं करता । षट् इंद्रियोंको ठग जानकर उ चाहना पीछे भी नहीं दौरता । चाहनासे अचाह होकर अपने रूपको पहँचानना परमार्थ है यह निश्चय किया है । जबतक आ सम्यक् नहीं जाना तबतक हर्ष शोकादिरूप द्वैतमें बंध है, आपको कैसे पहँचानूँ ? कौन वस्तु है जिससे आत्माका निश्चय वह कौन भजन है जिससे उसको प्राप्त होऊँ ? मैंने सुना है रूप नहीं राखत अरूपको कैसे देखिये ? ठौर उसकी कौन है संसार क्षणविषे उत्पत्ति विनाश होनेवाला है, इससे कैसे छू व्यासकरण हँसा और कहा हे पुत्र ! हर्ष, शोक, बंध, मोक्ष, धर्म धर्म, राजा, रय्यत, चंद्र, सूर्यादि, अनेकप्रकारके, स्वप्नमें निद्राकर, आ भासते हैं, पर जब जागा तब तिनकी रेखाभी नहीं मिलती। तैसे जगत्भी जबलग अज्ञान है, तबलग अनेक भाँतिके प्रतीत होते हैं।

सम्यक् अपने स्वरूपकी पहँचान करेगा तो नानारूप भासतेभी एक रूप जानेगा । तुझ मनादिकोंके साक्षी चैतन्य विना और दूसरा कौन चैतन्य है ? जो तुझको जाने क्योंकी, ज्ञानरूप तूही चैतन्य है अन्य नहीं ।

जीव कैसे ईश्वर होता है ?

आत्मदर्शीने कहा हे पिता ! मैंने जाना है कि, मन इंद्रियोंके वश सहित स्वरूपका पावना सत्संगसे है। पर यह पराधीन तुच्छ अल्प-बुद्धि जीव कैसे ईश्वर होता है ? व्यासकर्णने कहा ईश्वरका स्वरूप क्या है ? आत्मदर्शीने कहा सत् चित् आनंदरूप, ईश्वरका है। संतने कहा सोई सत् चित् आनंदरूपता इस बुद्धि आदिकोंके साक्षी आत्मामें घटे तो, तद्रूपता हुई वा नहीं।जैसे दाहकता उष्णता प्रकाशकता महान अग्निमें है, सोई चिनगारेमें है । महानता तुच्छता अग्निमें नहीं काष्ठमें है। जहां काष्ठ बहुत हैं वहाँ अग्निमहान प्रतीति होती है, जहाँ काष्ठ थोड़ा है वहां अग्निकी तुच्छता प्रतीत होती है। इसी रीतिसे समुद्रजलका और बूंदजलका तथा महाकाश घटाकाशादिकोंका भी दृष्टांत अपनी बुद्धिसे विचारलेना ।

स्वरूपप्राप्तिमें किसका अधिकार है ?

· हे आत्मदर्शी ! सारग्राहीको तो इस बातमें विरोध नहीं पड़ता, विवादीका इस विषयमें अधिकारही नहीं क्योंकि यह धन सरलबुद्धि-वालोंका है अन्यका नहीं ।

आत्मा सच्चिदानंदरूप कैसे है ?

आत्मदर्शीने कहा यह प्रत्यक्र आत्मा सत् चित् आनंदरूप कैसे है ? गुरुने कहा तीनों कालोंविषे तथा जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति तथा सत्व रज तम, जड आदि परस्पर भावाभाव होते भी यह प्रत्यक्र आत्मा अबाध्य है; इसीसे सत् है। तथा मनादिक सर्व संघातके सर्व व्यवहारको

स्वयंरूपताकर जानताहै इसीसे चैतन्य है । परम प्रेमका अ
होनेसे आनंदरूप है। हे पुत्र! ईश्वर व्यापक है, राजाके समान कि
देशमें सभा लगाकर बैठा नहीं। सर्वके हृदयमें ईश्वर साक्षीरूप
स्थित है, अन्य रीतिसे नहीं। यह वेद महात्मा पुकारते हैं। कि
तिसे भी सत चित् आनंदरूप आत्मासे पृथक् ईश्वरका स्वरूप
नहीं होसक्ता । जो भिन्न सिद्ध करोगे तो असत् जड़ दुःखरूप
होगा क्योंकि, देश काल वस्तु भेदवान् पदार्थ अनित्य होता है।

सबका जाननेवाला सबसे भिन्न है ?

हे पुत्र! यह विचार भी रहने दे परन्तु जिसको तू जानता है
वह वस्तु सत् हो,वा असत् पर तिसको जाननेवाला तू तिससे भि
इससे तू आपको मनादिकोंका साक्षी द्रष्टा जान, चाहे तू ईश्वर
है, वा अनीश्वर रूप है ।

पण्डित अपण्डित कौन है ? बंध मोक्ष कैसे होता है ?

हे पुत्र! आपको बुद्धिमान् जानके विषयोंमें लीन होता है, स्व
का विचार नहीं करता पर यह नहीं जानता चारों वेद षट् अंगों
पढ़े और आत्मस्वरूप नहीं जाने तो अपंडित है। जो एक अ
पढना नहीं जानता पर गुरु आदिकी कृपासे अपने स्वरूपको सम
अपरोक्ष जाना है। तो वह पंडित है ।

शास्त्रके तीन काण्ड ।

हे साधो! शास्त्ररूपी सडकोंमें यह पाटी लिखरक्खी है कि
कर्मकांड अंतःकरणकी शुद्धि पर है और अनेक प्रकारकी उपा
सगुण वा निर्गुण मनकी निश्चलताके अर्थ है तथा ज्ञानकांड अ
रूप आवरणकी निवृत्तिपर है। बंध मोक्षादि जगत् भ्रममात्र है
ब्रह्मात्मा त्रिकालाबाध्यस्वरूप है, यही सर्व शास्त्रोंका तात्पर्य है

देहाभिमानही मूढताका सूचक है कि, अपने समुद्ररूप स्वरूपको भूलकर तरंग जानना, जैसे लिखारी कलमको कानमें रखके अन्य स्थानमें ढूँढे तो कैसे मिले, जब सुधि आवे तबही पावे। तैसे आपको बिसारकर औरसे मुक्त चाहता है, यह नहीं जानता कि, मैं आप मुक्तरूप हूँ। इससे जिनके ज्ञाननेत्र खुले हैं और शरीरादिकोंके अहंकारसे अनहंकार हुये हैं सो आपको शुद्ध जानते हैं। अपने संकल्पसे अनेक प्रकारकी देहोंविषे तू आता है; तेरी चाहेबिना तुझको कोईभी देहविषे नहीं लाता; जैसे पक्षीको कोई भी दूसरा जालविषे बंधन नहीं करता, लोभसे आपही बन्ध होता है।

श्रेष्ठशास्त्र कौन है?

हे पिता! शास्त्रों मध्ये कौन शास्त्र श्रेष्ठ है? (उत्तर) हे पुत्र! जिस शास्त्र कर, अपने ब्रह्मात्मा स्वरूपका, सम्यक् धर्मपूर्वक शम दमादि सहित, सम्यक् अपरोक्ष बोध होवे सोई शास्त्र श्रेष्ठ है. चाहे संस्कृत हो, चाहे भाषा हो, चाहे फारसी हो, चाहे बंगाली हो, चाहे अंगरेजी हो, चाहे अरबी हो, चाहे गीत हो, चाहे इतिहास कथा हो; वही परमविद्या है। सर्वशास्त्रोंका परंपरा वा साक्षातसे अपने सत् चित् आनंद रूप आत्माके बोधमें तात्पर्य है अन्य में नहीं. और शास्त्रोंमें धर्म अर्थ काम मोक्षके प्रतिपादक वाक्य मिले हुये हैं; वेदांत शास्त्रविषे केवल मोक्ष उपाय कथन किया है।

राजा सत्यव्रतकी कथा।

इसीपर एक कथा सुन हे पुत्र! पूर्व एक सत्यव्रत राजा हुआ है, तिसने विष्णुकी आज्ञासे अनेक अश्वमेधयज्ञ कियेथे। नित्याप्रति ब्राह्मणोंको भोजन देता था; सुवर्णके पात्र देता था प्रातःकाल रोज अनेक गौ दूध देनेवाली शास्त्रविधिपूर्वक दान देता था; अनेक अश्व रत्न जडित और अनेक हस्ती इत्यादि अनंत

सामग्री अर्थियोंको देता था । कभी भी कठोर वचन मुखसे कहता था, सत्यवादी वेद—आज्ञाकारी सर्वगुणसम्पन्न राजा था।

ब्रह्माने पूर्वकालमें एक यज्ञ किया, तिस यज्ञमें ऋषीश्वर मु देवतादि और सर्व पृथिवीके राजा तथा महादेव आये थे। सत्यव्रतभी तिस यज्ञमें था। उसीने महादेवसे प्रश्न किया है कीनाथ ! मेरे मनमें एक संशय है, आप अनुग्रह करके दूर करो महादेव ! तीस सहस्र वर्ष आयु मेरी बीती है और बीससहस्र व पिताको शांत हुये हुये हैं, मैं उसकी ठौर राज्यसिंहासनपर बैठकर करताहूं। शास्त्र आज्ञानुसार राज्य किया है, तप दानादिक यथा किया है, पर अबतक मेरे मनको शांति नहीं हुई । जहां मन चा है तहां जाता है, चाहनासे अचाह नहीं होता। हे भक्तवत्सल जानना चाहता हूँ कि, मैं कौन हूँ ? महादेवने सुनकर ब्रह्मा इंद्रादि देवतोंकी ओर देखा । सब राजाके उत्तर देनेके विचार किसीने उत्तर नहीं दिया । यह लीला ब्रह्मा देखकर हँसा और हे राजन् ! तू धन्य है । तूने जो पूछा है सो देवता ऋषीश्वर मुनी सभी इस आत्मज्ञानकी प्राप्तिकी इच्छा करते हैं पर नहीं जा किसीएक अधिकारीकोही प्राप्त होता है, सर्वको नहीं। मैं आत्मज्ञानको चारों वेदोंमें गुह्य छिपा हुआ देखा है और शास्त्रमें वेदोंमेंसे लेकर इकट्ठा कर जमा किया है उसको उप बोलते हैं।

ब्रह्मतत्त्वको विशेष प्रगट करनेसे क्या होता है?

ब्रह्मात्मज्ञानके प्रतिपादक शास्त्र अतिप्रगट करनेसे संसा मूल उखड जाता है, बंध, मुक्त, तप, दान, पाप, पुण्य, नरक, गुरु, शिष्य, दास, स्वामी भावादिक मर्यादा उठ जाती है, क ज्ञानके अधिकारी धर्मात्मा पुरुष विरलेही हैं। अनधिकारी आ

ज्ञानके प्रतिपादक वाक्य सुनके विषयोंमें उलटा संशक्तीको प्राप्त होते हैं और पूर्वोक्त संसारतारक मर्यादाको कपोलकल्पित ज्ञानकर उठा देते हैं। इससे गुप्त रखने योग्य है। परन्तु यह त्रिनेत्री महादेव ज्ञानके समुद्र हैं, अतिकृपालु हैं; इसीसे तेरे प्रश्नका उत्तर देवेंगे। दयाके समुद्र भोलानाथ महादेव कहने लगे हे ऋषीश्वरो! मुनीश्वरो! सत्यव्रतके प्रश्नका उत्तर कहता हूँ।

। महादेवजी सत्यव्रतप्रति आत्मनिरूपण करतेहैं।

(आत्म संसारसे भिन्न है संसार मनोमात्र है.)

ईश्वरने कहा हे राजन्! मन वाणीका गोचर जो यह नाम रूपात्मक संसार है सो केवल मनोमात्र है- क्योंकि जब मन सुषुप्ति मूर्छाके समय अपने उपादानकारणमें लीन होता है, तब संसारकी गंध भी नहीं प्रतीत होती। जो संसार मनोमात्र न होता तो सुषुप्तिमें मनके लीन हुये संसार (पुरुषका) भासता, पर भासता नहीं। इससे जाना जाता है संसार मनोमात्र है, अन्य इसका स्वरूप नहीं। तूने जो आपको सत्यव्रत माना है, सो शरीरके अंगोंके भिन्न भिन्न नाम हैं, उसमेंसे कौनसी वस्तुका नाम सत्यव्रत तूने माना है; जैसे विचारसे यह शरीर असत् है; तैसे ही जगत्को जान।

। आत्मा सबका ज्ञाता सबसे भिन्न है।

तू सत चित् आनंदरूप आत्मा, जाग्रत्में मनको फुरणारूप, संसारके सद्भावको और सुषुप्तिमें मनके अफुरणारूप संसारके असद्भावको, अनुभव करनेवाला अनहुआ असंसारका द्रष्टा पुरुष है। जो तू संसाररूप होता तो मनादिकसंसारके भावाभावको कैसे जानता। जो जिसको जानता है सो तिससे भिन्न होता है; जैसे स्वप्नद्रष्टा स्वप्न प्रपंचके भावाभावको अनुभव करनेवाला स्वप्नप्रपंचसे भिन्न है। ब्रह्मासे लेकर चींटी पर्यंत सबके हृदयमें ईश्वर साक्षीरूप कर सम

व्यापक है और इस मन बुद्धि देहादिक संघातको, तथा संघ फुरने आदि धर्मोंको, संघातके धर्मोंके न्यूनाधिक भावाभावको व्यवधान रहित, एक रस जो जानता है, सोई तेरा स्वरूप है। देश देशांतरकी अंतरकल्पना मनमें होती है, पुनः लीन होजा तिन दोनों प्रकारकी कल्पनाओंको जो जानता है सो तू है। क्रोधादिक कार्यसहित सत्व, रज, तम, गुणोंकी अंतरप्रवृत्ति त्तिका जिसकर अनुभव होता है सो निर्विकार साक्षी आत्मा स्वरूप है। तूही आत्मा जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति आदि प्रपंचका द्र आगे तुझ चैतन्य आत्माका द्रष्टा कोई नहीं। तू चैतन्य स्वयं स्वरूप है। यह जो घट पट दृष्टि आते हैं सो स्वभाव पंचभूत दृश्य शरीरादिकोंके हैं; तुझ द्रष्टा चैतन्यके नहीं- जैसे अनेक स्वप्नकी स्वप्नद्रष्टामें स्पर्श करती नहीं; जैसे अनेक रूपता इन्द्रजा लकी हैं; इन्द्रजालीको स्पर्श करती नहीं। तैसे कार्य कारण रहित तू चैतन्य अद्वैत आत्मा है, बंध मोक्षादि कल्पना केवल म मनन है तेरा नहीं- क्योंकि जब मन आपको बंध, अज्ञानी, दुःखी, जन्म मरणवान् मानता है, तब भी तू चैतन्य आत्मा व्यवहारका साक्षी रहता है। जब विचारद्वारा अज्ञानकी निवृ आपको मोक्षरूप, सत् चित् आनंदरूप, आत्मा मानता है, त तू साक्षी रहता है। तद्वत् और व्यवहार भी जान लेना।

बंध मोक्षादि मनकी कल्पना है।

इससे बंध मोक्षादि मनकी कल्पना है, वास्तवसे नहीं। जो व्यवहारिक वस्तु होती है सो अविचारसे तो उत्पन्न नहीं होती विचारनेसे निवृत्ति नहीं होती; जैसे घटपटादिक पदार्थ हैं, जिनक विचार और विचारसे उत्पत्ति नाश नहीं होता। सारांश यह कि अज्ञानसे जो उत्पत्ति नाशवान् वस्तु होती है सो भ्रममात्र होती है

निद्रा दोषकर स्वप्नद्रष्टाके अज्ञानसे तथा निद्राकी निवृत्तिरूप स्वप्न-द्रष्टाके जाग्रत्रूप ज्ञानसे, स्वप्न प्रपंचका उत्पत्ति नाश होता है. इस से मिथ्या है। स्वप्नद्रष्टाकी यह रीति नहीं। जिस अधिष्ठान वस्तुके अविचार और विचारसे बंधमोक्षादि प्रपंच भान होता है, तथा उसकी निवृत्ति होती है. सो वस्तु सत् है। हे राजन्! बंध मोक्ष मनका फुर्णे अफुर्णेसे प्रथम तू चैतन्य स्वतःसिद्ध है। मध्यमें बंध मोक्षादि मनके फुरणेका साक्षी है। बंध मोक्षके अभाव माननेका अवधिरूप अधिष्ठान है। इसप्रकार सर्व पदार्थ परस्पर भावाभावरूप हैं तथा परस्पर व्यभि-चारी हैं. तू चैतन्य साक्षी आत्मा सर्वमें पूर्ण भी है, तथा तुझ चैतन्य करही सर्व देह मनादिक जड पदार्थोंकी चेष्टा होती है। देहादिक अपनी प्रतीति कालमेंही हैं, अन्यकालमें नहीं। तू चैतन्य सर्वकालमें एकरस निर्विकार मनवाणीसे अगोचर है और सर्व मन वाणीका गोचर प्रपंच तुझ चैतन्यकी दृश्य है, तू एक ही द्रष्टा सूर्यवत् प्रकाशमान है।

न्यूनाधिक प्रतीति क्यों होती है?

तुझ चैतन्य बिना और कुछ नहीं, तू नामरूप स्थावर जंगमरूप जगत्से अतीत है, कर्मजालसे रहित है। न्यूनाधिक जो प्रतीत होता है सो स्वभाव मायाका है, मूढोंकी दृष्टिमें है। आत्म विद्वान् पुरुषोंकी दृष्टिमें नहीं। जैसे सुवर्ण माटी जलादि स्वरूपके अज्ञात पुरुषोंको तरंग भूषण घटादिकोंमें अनेकता भान होती है, जल माटी सुव-र्णके सम्यक् विद्वान् पुरुषोंको नहीं। हे राजन्! उत्पत्ति नाशादिक षड्विकार देहके हैं, तुझ चैतन्य आत्माके नहीं। तू हर्ष शोकादिक मनके धर्मोंसे रहित नित्य मुक्त है, आवागमनका तुझमें मार्ग नहीं।

जप तप और दानादिकोंका फल।

हे राजन्! जप, दान, तप, यज्ञादिकोंका फल यही है कि, अपने स्वरूपको जाने। कर्म, शरीर मनादि संघातकरता है, मान आप-

लेता है, जिससे फल तिन कर्मोंका अनेक देहों में सुख दुःख भोगता है। जितने मूर्ख कर्म अधिक करते हैं, उतनाहीं अहंकार तिनको अ... होता है; इसीसे आत्मस्वरूपको पाते नहीं। सर्वपदोंके चाहसे ... चाह होवे, चाहना अपने स्वरूपके पहचाननेकी करे। निजस्व... के अपरोक्ष हुये ब्रह्मकी जिज्ञासा भी न रहेगी; कंतकरेणुवत्।

सर्व दुखोंका मूल क्या है ? उससे छूटना कैसे होता है

हे राजन्! सर्व दुःखोंका मूल अहंकार पूर्वक देहादिकोंकी चा... है और सुखोंका मूल आपकी पहँचान है अर्थात् आपको सर्व मना... कोंका द्रष्टा जानना, मनादिकोंको दृश्य मिथ्या जानना। शरी... संघातकी, जैसे अज्ञात कालमें चेष्टा होती है तैसे ज्ञातकालमें ... है केवल दृष्टिभेद है। वा आपसहित सर्व अस्ति भाति प्रियरूप ... त्माही है, यह निश्चयही परम निर्विकल्प अवस्था है। एक ... अद्वितीय बिना और कछु नहीं, जब ऐसे जाना तब आप होता है ... कर्मोंके फलका दाता होता है, राजावत्। जो देखे सुने सूंघे स्पर्श ... लेवे, सो आपही कर्त्ता भोक्ताहोता है। कर्त्ता भोक्तापनेसे अतीत ... आपही होता है, जानता है मुझ चैतन्य साक्षीको न किसीने उपजाया ... और न मैं किसीसे उत्पन्न हुआहूँ न मैं इस शरीरविषे कर्मोंसे आया हूँ ... क्योंकि मैं व्यापक आत्मा शरीरकी उत्पत्तिसे प्रथम स्थित हूँ। ... घटकी उत्पत्तिसे प्रथमही आकाश स्थित है। इस विचारके निश्च... से शरीररूप संसारमें रहता भी पद्म कमलवत् संसारकी मलीन... रूप बंधनसे मुक्त रहता है। यह आप ऊपर अपनी दया है।

कर्म और उसमें अहंकारका फल।

कर्म देहादिकोंसे स्वभाविक पड़े होते हैं, तिनमें अहंकार क... आपको नरकमें गेरना है। जो अहंकार नहीं करते! तो क्या उनका निर्वाह नहीं होता हो ? किंतु होता है।

नाम जपनेका फल।

जो नारायणादि नामोंको जपते हैं, वे अंतःकरणकी शुद्धीको पाते हैं, परन्तु आत्मसुखसे अप्राप्त होते हैं। क्योंकि मुझ नारायणविषे और अपनेविषे भेद समझते हैं; इसीसे दीन रहते हैं। जब अपने आत्माको मेरारूप और मुझ नारायणको अपना रूप जाने तो कर्म-जाल संसारसे मुक्त होवे. जैसे घटाकाशको महाकाशरूप और महाकाशको घटाकाशरूपता निहसंगता बनसक्ती है. जैसे मृगकी नाभिमें कस्तूरी है, तिसको न जानके तिसकी प्राप्तिवास्ते वन वनमें ढूँढता फिरता है। तैसे तू चैतन्य आत्मा नित्य मुक्तस्वरूप है, भ्रमकर आपको न जानके मुक्तकी आशा औरोंसे करता है। अनेक कर्म उपासनादिका भ्रमसे क्लेश सहता है।

गुरुशास्त्रादिकी सत्ता।

ऐसा भ्रम करता है कि, गुरु शास्त्र ईश्वर मेरी मुक्ति करेगा तो होगी यह नहीं जानता कि, मुझ नित्यमुक्त चैतन्य साक्षी आत्माकी स्वप्नवत् गुरु शास्त्र ईश्वरादि सर्व संसार कल्पना है; मैं नहीं कल्पूं तो कहां है ?

सर्वभोक्ता और सर्व कर्ता।

आपको शरीर मानके आप बंधनमें पडा है और भोगोंकी चाहना करता है। यह नहीं जानता कि, मैं चैतन्यही सर्व जड-पदार्थोंमें स्थित हुआ २ सर्वका भोक्ता हूं ! तथा सर्वका कर्त्ता हूँ ! वास्तवसे मैं चैतन्य मायाकर कर्त्ता भोक्ता हुआ २ भी वास्तवसे अकर्ता अभोक्ता हूँ।

बंधनसे मुक्तहोनेंका मुख्य कर्तव्य।

इससे हे राजन् ! देहाभिमानके त्यागका त्याग कर, देख जो शेष है सो तेरा स्वरूप है। जो जो मन वाणीका कथन चिंतन है,

तिस तिस कथन चिंतनका तू साक्षी हुआ २ तिस तिस क चिंतनसे अतीत है। आपको जीव मानकर मनकी तथा शरी चाहनाविषे बँधाहुआ है और मूल अपना बिसारा है। सुखरू आप है और अन्यसे सुख चाहता है, कैसे प्राप्त हो ? जब तू अं सम्यक् स्वरूपको जाने तब सब भ्रममात्र बन्धनोंसे मुक्त होवे। अ आपको बीचसे उठादेवे कि, मैं नहीं सर्व भगवत् ही है. कर्त्ता भो सुख दुःख, बंध मोक्षादि सर्व ईश्वरही है। इस निश्चयसे भी सर्व नोंसे मुक्त होवेगा। करनेकी अकरनेकी इच्छासे छूटकर, सदा वत्की इच्छामें रहे। आपको शुभाशुभमें तप्त न करे, जो शुभाशु कर्म करे सर्व भगवत्को अर्पण करे और आपको बीचमें भूलक न ल्यावे, ऐसा दृढ निश्चय करे कि, जो इच्छा भगवत्की होगी होगा अन्यथा नहीं तो इससे मुक्त होगा। हे राजन् ! ज्ञान, वा वा कर्म किसी एक निश्चय पर दृढता राखे। ऐसा न करे कि, आपको जीव, बंध मोक्षवान्, मानके यह चिंता करे कि, हम ईश्वरका करेंगे तो बंधनसे छूटेंगे। कभी आपको सर्व कर्मोंसे बंध मोक्षादि सांसारिक धर्मोंसे मुक्त मानना यह कैसे है ? जैसे नदी पार हुआ चाहे और दो नौकापर पग राखे तो वह डूबेगाही इससे एकही निश्चय करना चाहिये।

स्वर्ग नरक पापपुण्यादिकी प्राप्ति क्यों होतीहै?

सत्यव्रतने कहा हे गुरो ! जो सर्वात्माही है तो पाप पुण्य स्व नरकादिकोंको क्यों प्राप्त होता है ? महादेवने कहा हे राजन् ! निश्च शय तू सर्वात्माही है, आवागमन, मलीनता, शुद्धता, बंध मोक्ष संसारधर्मोंसे मुक्त स्वतःसिद्ध है, कोई यत्नसे नहीं। न तुझ चैत साक्षी आत्माका नाश है, न जन्म है, न आना है, न जाना है क्या तू देशकाल वस्तुके परिच्छेदसे रहित, पूर्ण सदानिर्भय स्थित है

आपको भुलाकर जीव माना है, इसीसे पुण्य पापादिकोंके, भ्रमसे बंधनमें पडा है, वास्तवसे नहीं। भ्रमहीसे अनेक शरीरोंमें अभिमानपूर्वक सुख दुःख पाता है। कल्पित बंध मोक्षको सत्यमानकर मूल अपना बिसारा है। हे राजन्! जैसे सुवर्ण भूषणोंमें व्यापक है, पर विचारकरेसे भूषण कहना मात्र है यथार्थ सुवर्णही है. तैसे अस्ति भाति प्रियरूप तूही आत्मा अद्वैत है, नामरूप सर्व जगत् कहना मात्र है। वा आपको ऐसे जान जैसे इक्षुविषे मधुर रस, दूधविषे घृत, पृथिवी और जलविषे तथा तिनके कार्योंविषे अग्नि व्यापक है; जैसे—पृथिवी, आप, तेज, वायु महाभूतोंविषे तथा तिनके कार्योंविषे आकाश व्यापक है; तैसे तू आकाशके समान सर्वका द्रष्टा सर्वमें सत् चित् आनंदरूपसे व्यापक है. क्योंकि जहां तू चैतन्य नहीं, तहां किसी पदार्थकी स्फूर्ति नहीं। जो तू है तोही सर्व भान होते हैं। आपको शरीरादिक मानना भ्रमसे है। शरीररूप जगत् कैसा है? नेत्रके खोलने मीचनेसे उत्पत्ति नाश होता है। सारांश यह कि, मनके फुरणे अफुरणेसे उत्पत्ति नाश होता है। बुद्धिवान् वही है जो शरीर सहित जगत्को मिथ्यास्वप्न इन्द्रजालवत् जाने और आपको सत्यरूप आत्मा जाने।

सबका जीवन (सार) क्या है?

हे राजन्! यह बुद्धिआदिकोंका साक्षी आत्मा सर्व जगत्का जीवनरूप है क्योंकि असत् जड दुःखरूप इस शरीरसहित संसारको अपने स्वरूपसे सत् चित् आनंदरूप करता है, जैसे तरंगादिकोंको जल मधुरता, शीतलता, द्रवतारूप करता है। जैसे चणकादिक पदार्थोंको गुड मधुर करता है। तैसेही आत्माका बल नियंत्रता निर्मलता सर्व वस्तुपर है, जब सर्व ब्रह्मात्माही है तो अपने सत् चित्

१—जो जानहु जगजीवना, तो जानहु यह जीव। पानी चाहहु आपना, तो पानी माँग न पीव।

आनंद साक्षी आत्मासे परमेश्वरको भिन्न मानना और आपको मानना अखंडको खंडन करना है । दूसरा सत् चित् आनंद आत्मासे भिन्न परमात्माको माने तो परमात्मा असत् जड रूप अनात्मा सिद्ध होगा और परमेश्वर इसपर अत्यंत कोप क्योंकि अखण्ड ईश्वरको इसने असत् जड दुःखरूप अ जाना है । इससे इस ज्ञानसे इसका अनिष्ट होगा. क्योंकि मनकर किसीका बुरा चिंतन वा कथन करता है तो जानकर तिसपर महान रंज होता है । तैसेही अंतर्यामी परमा पूर्वोक्त प्रकारसे, असत् जड दुःखरूप अनात्मा चिंतन क क्यों न कोप करेगा ? अपनी हानि समुझके । हे राजन् ! बुद्धिमान् है ! जो घटाकाशको महाकाशसे भिन्न माने तथा तरं भूषणोंको तथा घटादिकोंको, जल, सुवर्ण, मृत्तिकासे भिन्न हे राजन् ! तू मनादिकोंका साक्षी आत्मा है, तुझको कभी मृत्यु नहीं । सदा जैसेका तैसा समान है । यह मन वाणीका दृष्टिमान संसारभी तूही है क्योंकि तुझहीसे प्रगट होता तुझहीमें लीन होता है और तुझहीमें स्थित है । इसप्र तेरा रूपही जल तरंगवत् है । अस्ति भाति प्रियरूप तुझ आत्मा और कुछ नहीं । सम्यक् विचार देख अपनी बुद्धिसे और इन ज्ञानोंसे पूछ देख । मैं सत् कहता हूँ कि, असत् । हे राजन् ! सिद्धांत तो यही है और सर्व विद्वानोंका अपने स्वरूपके विषय अनुभव है, आगे जो तेरी इच्छा हो सो कर । जैसे पंचभूतोंका कार्य पटादि सर्व पंचभूतरूप हैं, तैसे यह नामरूप प्रपंच अ भाति प्रियरूप तूही आत्मा है । जब तूने सम्यक् आ जाना, सर्व जगतको, प्रकाश अपना जानेगा. जैसे घटने अपना स्वरूप पंचभूतरूप जाना, तो सर्व जगतके पदार्थोंको अ स्वरूपही जानता है कि, मैंही सर्वरूप हूँ, ऐसेही तू जानेगा । हे राज

जिसने चाहना बंध मुक्तिकी मनसे दूर की है, जगत्से निराश हुआहै, आपको सम्यक् अपरोक्ष जाना है सो ब्रह्मादि शरीर त्रितय संयुक्त संसार रूप पुतरी घडी घडीमें अनेक खेल खेले है,तिसका आपको द्रष्टा मानताहै। करने अकरने, सुख दुःख, बंध मोक्षादि संसार सर्व धर्मोंमें लिप्त नहीं होता, जैसे सूर्य सर्व जगत्का व्यवहार सिद्धकरता हुआभी अलिप्त रहता है। हे राजन्! जो तूने मन वाणीकर माना है, सो तेरा स्वरूप नहीं, तू इस माननेसे भिन्न है। शरीर-प्रारब्धको सौंप,सूर्यरूप आपकी जगत् किरणा जान, ब्रह्मात्म अपने स्वरूप समुद्रके जगत् तरंग जान। यह जो तूने भ्रम बुद्धिमें की है कि,मुक्ति मेरी और कोई करेगा,तिस भ्रमको त्यागकर। नित्य मुक्त, नित्य शुद्ध, अक्रिय, अविनाशी, सर्वमें आकाशवत् व्यापक आपको जान। अपने अहंकारसे तू आप बंध है और अपने ज्ञान पहँचाननेसे आप मुक्त है। इतनाही बंध मुक्तका स्वरूप है। अपने स्वरूपका सम्यक् अपरोक्ष जाननाही, बंधकी निवृत्ति, मोक्षकी प्राप्तिका उपाय है, अन्य नहीं। जो सच्चे बंध मोक्ष होते तो स्वरूपके पहँचानेसे दूर न होते, सम्यक् स्वरूप विज्ञानी पुरुष आपको बंधमोक्षसे रहित मानते हैं। इसीसे मिथ्या है। इस आत्मासे भिन्न जो इसकी मुक्ति करेगा सो आपही अनात्मा हुआ बंध है, मुक्त कैसे करेगा?।

व्यवहार विचार।

हे राजन्! देहाभिमान साथही,कर्म धर्म भक्ति उपासना संसार है जब देहाभिमान त्यागा मुक्त हुआ। अहंकारका नाम बंध है,अहंकार मुक्तसे मुक्तहै। ईश्वरकी प्राप्ति और मुक्तिका पावना,अपना पछानना है। परमेश्वर और अपने बीच भेद देखेगा तो दुःखसे न छूटेगा। सर्वको आपसहित सर्वब्रह्मरूप आत्मा जान, वढ घट नीच ऊंच स्वरूपसे नहीं।

देख ! व्यवहारमें जिस वर्णाश्रममें स्थित है, तिसीके अनुसार बेटी बेटी लेनदेनादि व्यवहार करे कोई व्यवहारको एकमेक करनेसे एकता नहीं होती। किंतु ज्ञानदृष्टिसे सर्वप्रकार एकता है; जैसे सर्व पदार्थोंमें गुण दोष जुदे जुदे हैं, जिस स्थानमें घट चाहिये तिस स्थानमें पट नहीं चाहिये, जिस स्थानमें पट चाहिये तिस स्थानमें घट नहीं चाहिये, इत्यादि सर्व पदार्थोंमें जान लेना। परंतु पंचभूतरूपता करके सर्व पदार्थ सम हैं; जैसे अनेक औषधियोंके अनेकगुण जुदे जुदे हैं, अनेकही पुरुषोंको रोग होते हैं; यह नहीं कि, एक रोगपर सर्व औषधि चलें, परंतु जल सर्वमें एक है। हे राजन्! अंतर काम क्रोधादिकोंका तथा बाहिर शब्द; स्पर्श, रूप, रस गंधादिकोंका, साथी ज्ञान स्वरूप तूही आत्मा है। इस सर्व पदार्थोंके न्यूनाधिक व्यवहारके परिणाम करनेवाले ज्ञानसे पृथक् कोई इस शरीरमें ईश्वर प्रतीत होता नहीं। ईश्वरको पूर्णहोनेसे, इस शरीरमें भी ईश्वरका स्वरूप मानना पड़ेगाही और कोई ज्ञानसे भिन्न ईश्वरका स्वरूप सिद्ध होता नहीं, जो भिन्न होगा तो जड अज्ञानरूप सिद्ध होगा। इससे अज्ञानसे लेकर देहतक, अंतर बाहर सर्व पदार्थोंका परिणाम करनेवाला अंतर्ज्ञान स्वरूप कोई वस्तु है, तिसीको ईश्वर कहो, चाहे आत्मा कहो, चाहे खुदा कहो, चाहे कोई और नाम राखो, चाहे ब्रह्म कहो। हे राजन्! जो तू और कुछ नहीं जानता तो यह निश्चय कर कि, अंतर अज्ञान, देहतक मनादिकोंके व्यवहारकी न्यूनाधिक भावाभावको, परिणाम करता है, सो वस्तु संसार तथा संसारके धर्मोंसे रहित है, सोई सम्यक् स्वरूप मेरा है। इसमें संशय नहीं- चाहे संसार वस्तु सत् हो, चाहे असत हो; चाहे जीव शिवका भेद हो, चाहे अभेद हो। हे राजन्! मुक्ति जो तू चाहता है, यही तुझमें बंधनका कारण है, क्योंकि तू आप मुक्तरूप है और

मुक्तकी इच्छा करता है। हे राजन् ! मनका संकल्प विकल्प स्वभाव है, कभी आपमें बंधका संकल्प कर लेता है, कभी मुक्तिका संकल्प कर लेता है, तू दोनों संकल्पोंका द्रष्टा है इससे बंध मोक्ष कुछ वस्तु नहीं; केवल मनका फुरणा है। मनका तो बंध मोक्ष भ्रममात्र माननेका अभ्यास चला आता है इससे तू सर्वबंध मोक्षादि चाहनासे अचाह हो मनके पीछे मत पड। देह वासनासहित बंध मोक्षादि वासना त्याग। इनसे विपरीत वासनाका प्रथम अभ्यास ग्रहण कर, पीछे तिनके भी त्यागका त्याग कर क्योंकि जैसे मनका अभ्यास दृढ होता है, तैसेही आगे भासता है।

मुमुक्षुओंको क्या अभ्यास करना चाहिये।

[अहं ग्रह उपासना (अभेद भक्ति) का वर्णन]

इससे पूर्वके विपरीत यह अभ्यास कर कि, मैं नित्यमुक्त सत् चित् आनंद आत्मा हूँ, सर्व मनादिकोंका साक्षी हूँ, बंध मोक्षादि सर्व संसारके धर्मोंसे अतीत हूँ, स्वभावसेही निर्विकार निर्विकल्प हूँ, आकाशके समान असंग पूर्ण हूँ। भ्रम मात्र बंध मोक्षकी निवृत्ति प्राप्ति वास्ते, मुझ चैतन्यको किंचित् मात्र भी कर्तव्य नहीं। इस मन वाणीके गोचर संसारसे अगोचर हूँ इत्यादि अनेक विशेषण अपने आत्मस्वरूपका चिन्तन कर। यही देहादि वासनासे विपरीत वासना है। इस पूर्वोक्त दृढ निरंतर अभ्याससे वही रूप होवेगा, क्योंकि विपरीत स्वरूप भी (भृंगीकी न्याई) अभ्यासके बलसे उलटकर तद्रूप होता है, तू तो पूर्वही वही रूप है। तेरे तद्रूप होनेमें क्या आश्चर्य है? इसीका नाम अहंग्रहउपासना भी हैं, इसीको अभेद भक्ति भी कहते हैं। हे राजन् ! चाहना बंध मुक्तकी कभी भी न करियो, क्योंकि बंध मुक्त तेरे अज्ञानसे हुये हैं। अपनेमें कल्पित बंध मोक्षादि पदार्थोंके पीछे मत फिरियो, यह भ्रमियोंका व्यवहार है। तुझ चैतन्यसे ऊंच कोई

पद है नहीं, जिसके वास्ते यत्नकरे और तेरी मुक्ति करे ऐसा नहीं। तू आपको आप बंध जानता है, नहीं तो वेदांतशास्त्रके अ सार विचार देख! तू चैतन्य निर्बंध नित्यमुक्तरूप है, सर्व जग प्रभु प्रकाशक है। ऐसा होकर भी आशा अपने ऊपर भलाई औरोंसे राखे सो अविद्या है। नहीं तो असत् जड दुःखरूप अ पदार्थ तुझ करही सत् चित् आनंदरूप आत्मा प्रतीत होतेहैं। तेरीही सर्वपर भलाई है, तुझपर कोई भलाई नहीं कर सक्ता।

राजा महादेवके ज्ञानरूप अमृत वचनको धारके अज्ञान त मृत्युसे रहित हुआ। सर्व लोग महादेवके यथार्थ वचन सुनकर स्व पमें लीन हुये और सभाके लोग आप अपने वांछित स्थानको गये।

व्याकरणने कहा हे आत्मदर्शी! जिस निश्चय का उपदेश म वने राजा सत्यव्रतको किया है और राजा जिससे अपने स्वरू लीन हुआ है; तू भी तिसी निश्चयको धारण कर। हे आत्मदर्शी जो पुरुष बुद्धिके श्रवणसों पूर्वोक्त वचन सुनेगा, निश्चय स्वरू पानेवत् पावेगा और बंध मोक्षादि संसारभयसे रहित होवेगा।

पूजनीय देव कौन है?

मैत्रेयने कहा हे पराशर! देव (पूजने योग्य) कौन है! पूज तिसका कैसे होता है? पराशरने कहा हे मैत्रेय! हस्त पादादिसं ब्रह्मा, विष्णु, शिवादिक भी देव नहीं। सूर्य, चन्द्रमा, वायु, अ पृथिवी, इंद्र, यम, कुबेरादिक भी देव नहीं। न तू, न मैं देव हूं। ब्राह्मणादि, न वर्ण, न आश्रम, न मन इंद्रिय देहादिक देव हैं; कि सर्वके हृदयविषे वर्तमान कालका ज्ञाता; अकृत, अनादि, स चित, सुखरूप, अस्तित्व मात्र देव है। हे मैत्रेय! अहं यह दो अ जबलग कथन चिन्तन नहीं करे, तबलग भविष्यत् अहंपना है अकार कथन चिन्तनके आरंभ करतेही, अकार भूतमें गया

हकार भविष्यत्में है, मध्यके कालमें अहं कथन चिन्तन नहीं है, सो काल निर्विकल्प है । इसीप्रकार सर्व पदार्थ भविष्यत्क भूत काल होते चले जाते हैं,यही इनमें मिथ्यत्व है।परन्तु पूर्वोक्तरीतिसे वर्तमानकाल निर्विकल्प है,तिस निर्विकल्प वर्तमानकालका ज्ञाता अति निर्विकल्प निर्विकार है सोई देव है, सोई अपना स्वरूप है । हे मैत्रेय! भूत भविष्यत् काल तथा भूत भविष्यत् कालमें होनेवाले पदार्थ, सर्व वर्तमान कालके ज्ञाता देवसेही सिद्ध होते हैं। परन्तु अपने स्वरूपके सुखेन बोधवास्ते तथा अपने स्वरूपके निर्विकल्पताके बोधवास्ते, वर्तमान कालका ज्ञाता कहा है । द्रष्टा दृश्यके मिलाप विषे जो आनंदरूप अनुभव है सो देव है । तथा अंतर द्रष्टा, दर्शन दृश्यके मिलाप वियोगको तथा द्रष्टा दर्शन दृश्यको तथा द्रष्टा दर्शन दृश्यके न्यूनाधिक भावाभावको जो पहँचान करता है और आप पहँचान करना रूप अभिमानसे रहित है, आपही पहँचान नाम ज्ञानस्वरूप है । मनादिकोंसे जो पहँचान किया जाता नहीं, उलटा मनादिकोंके न्यूनाधिक भावाभावका पहँचान करता है सोई स्वयंप्रकाश सबका अपना आप स्वरूप देव है । इष्ट अनिष्टके संयोगवियोगसे जो आनंद उदय होता है, जिसकर विषय आनंदका अनुभव होता है और आप आनंदरूप है, सोई देव है । जो द्रष्टा, दर्शन; दृश्य, इस त्रिपुटीके उदयहोनेसे प्रथम त्रिपुटीका प्रकाश है, तथा त्रिपुटीकी जो समाप्तिको प्रकाशता है, आप सर्वको प्रकाशता हुआ भी निर्विकल्प है, स्वप्न द्रष्टावत्, सोई देव है । अंतर सत् असत् नाम भावाभाव पदार्थ जिसकर सिद्ध होते हैं, तथा जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति तथा तिनमें वर्तनेवाले मनादि जगत् जिसकर सिद्ध होते हैं, जो आप किसी मनादिकोंसे सिद्ध नहीं होता, सोई सबका अपना आप स्वरूप देव है । यह सकारवस्तु है, यह निराकार वस्तु है, यह वस्तु जाननेमें आती

है, यह नहीं; यह त्यागकरने योग्य है, यह नहीं इत्यादि अंतः
कर मनके मननका ब्यौरा पडता है, सोई देव है। हे मैत्रेय!
मनादिकोंका साक्षी है, सो देव है । हृदयदेशसे प्राणवायु
नाशिकासे द्वादशअंगुल बाहर जाता है, तिसको प्राण कहते हैं
सूर्य अग्नि कहते हैं । तैसेही सो वायु वहांसे लौटकर हृदयदेशको
होता है तिसको अपानचन्द्रमा बोलते हैं । जब प्राणने अपने प्रा
णभावको त्यागा, पुनः अपान हुआ नहीं, तिस देशकालको परि
माण करनेवाला है, सोई देव है । तथा प्राणोंकी समाप्तिको
अपानके अनुदयको संधिमें निर्विकल्प स्थित हुआ हुआ तिन संधि
विषे स्थित पदार्थोंको जानता है सोई देव है । तथा प्राण अपान
तिनके न्यूनाधिक भावको, जो जानता हैं सोई देव है । तैसे बाहर
उठकर अपानवायुने अपने अपानभावको त्यागा और जबलग प्राण
उदय हुये नहीं, तिस देशकालको तथा तिन देशकालमें होनेवाले
अपानादि पदार्थोंको, संधिमें स्थित निर्विकार निर्विकल्परूप जो
प्रकाश करता है. सोई देव है । तैसेही जब हृदयसे प्राणउदय होते
तिन देशकालसहित प्राणोंके उदयको, तिनके गमनके आरंभको
तिनके गमनको जो अनुभव करता है सोई देव है । तथा
सहित प्राणोंका मध्य, कंठादि देशकालको तथा प्राणोंसहित प्राणों
नासाग्रांतदेशकालको जो जानता नाम परिमाण करता है सोई
है । तैसे अपानके उदयको तथा अपान गमनारंभको जो जानता
सोई देव है । तथा अपान गमनके मध्यदेशकालको तथा अपानके
हृदयमें अंत समाप्ति देशकालको, असंग होकर जो प्रकाशकरता
सोई देव है । जाग्रत्‌के उदयको तथा स्वप्नके अनुदयको जो जानता
है सोई देव है । तथा स्वप्न जाग्रत्‌के अनुदयको सुषुप्तिके उदयको
जानता है सोई देव है। तथा सुषुप्तिके अनुदयको तथा जाग्रत् स्वप्न

उदयको जो जानता है सोई देव है। तथा शुभसंकल्पके उदयको तथा अशुभसंकल्पके अनुदयको जो जानता है सोई देव है। तथा शुभसंकल्पके अनुदयको तथा अशुभ संकल्पके उदयको जो जानता है सोई देव है। तथा शुभ अशुभ संकल्पके उदय अनुदय देश-कालको जो संधिमें स्थित हुआ जानता है सोई देव है। सो यही देव ब्रह्मासे लेकर चींटीपर्यंत सर्वका अपना आप स्वरूप है, इसीसे जाननेसे बंध मोक्षके भ्रमसे छूटता है।

किस प्रकारकी पूजासे देव मिलता है?

इस पूर्वोक्त देवको सम्यक् अपरोक्ष जाननाही देवकी पूजा है। इस बुद्धि आदिकोंके साक्षी देवको जो सम्यक् अपना आप नहीं जानता सो साकारोंकी पूजा करे, सो बालकक्रीडावत् है। पूज्य पूजक पूजा इस त्रिपुटीका इसी देवसे प्रकाश होता है, त्रिपुटी इस देवसे कछुभी भिन्न नहीं, स्वप्न द्रष्टावत्।

हे मैत्रेय! इस देव किसी साधन द्वारा नहीं मिलता क्योंकि अपना आप स्वरूप है। अपने स्वरूपको अवाङ्मनसगोचर जाननाही इस देवका पूजन है। हे मैत्रेय! मनके संकल्प करके रचित जो देव है, सो देव नहीं। सर्व संकल्पसे रहित और सर्व संकल्पोंके साक्षी देवको सम्यक् निज स्वरूप जाननाही देवके आगे पूजा है। देशकाल वस्तु भेद रहित पूर्ण जाननाही पुष्प है। शब्दादि ग्राह्य जड़ विषय और श्रोत्रादिक ग्राहिक जड इंद्रियोंके, संयोग वियोगविषे जो अनुभव सत् रूप है, तिसको अपना आप स्वरूप जाननाही इस देवकी पूजा है। ऐसा पदार्थ कोई नहीं जो इस मनादिकोंके प्रकाशक देवमें असत् न होवे और ऐसा भी पदार्थ कोई नहीं जो इस आत्मदेव कर सत् न होवे। तात्पर्य यह कि, इस अस्ति भाति प्रियरूपदेवसे, भिन्न सब नामरूप असत् हैं और मिले हुये सत् हैं। उसीसे यह सर्व है, वही सर्वरूप है,

सर्वसे अतीत भी है, सर्वके मध्यमें नित्य स्थित हुआ हुआ संसारी चेष्टाका कारण है, उसका कारण कोई भी नहीं (स्वप्न द्रष्टावत्)। संसार रूप नटनीको माया विशिष्ट स्फुरणरूप चैतन्य प्रेरता है, तेरा स्वरूप देव निर्विकार निर्विकल्प साक्षीवत् स्थित है।

देव पूजाविधि।

हे मैत्रेय! तिस देवका तीन कांडोंकी रीतिसे पूजन है। इस शुद्ध रूप मनादिकोंके साक्षी देवके सम्यक् दर्शन वास्ते और अंतःकरण रूप आदर्शकी मलीनताके दूर करने वास्ते, देव अर्पण, निष्काम कर्मकी श्रद्धा, शमदमादि साधनपूर्वक अनुष्ठानरूप पूजा है। दूसरा पूजन यह है कि, अंतःकरणकी चंचलताके दूर करने वास्ते चित्तादिकोंके पहँचान करनेवाले देवका ध्यान करना रूप उपासनाही पूजा है। वा अपने सहित सर्व जगत्‌को सत् चित् आनंद हरिरूप जानना नाम भावना करना यह दूसरी अहंग्रह उपासना ध्यानरूप पूजा है। वा सम्यक् अवाङ्मनसगोचर करके निरंतर ज्ञानरूपदेवका सत् संभाषणादि साधनपूर्वक, ध्यानरूप देवकी पूजा है। पूर्वोक्त ध्यानका विषय देव, सम्यक् मैं चैतन्य हूँ, ऐसा भया ज्ञान, तिस सम्यक् ज्ञान करके देवकी पूजा होती है सारांश यह कि, यही पुष्प हैं। हे मैत्रेय ! अवाङ्मनसगोचर करके वा अनेक भाति प्रिय रूप करके निज स्वरूप बुद्धिमें जब जाना ज्ञानहै। जब तक दृढ निश्चय नहीं हुआ तब तक गुरुवाक्से वारंवार अहंकार करके निरंतर भावना करनाही अहंग्रह उपासना है। सर्वका कर्ता भी अकर्ता है; सर्व विषे, सर्व प्रकार, सर्वदा काल, सर्व असंग, सर्वका प्रकाशक, सर्वरूप स्वप्नद्रष्टावत् अद्भुतरूप, चैतन्य देव अपना आप साक्षीभूत सम्यक् जानना। मन वाणी शरीरके न्यूनाधिक व्यवहारमें अन्यथाभाव कदापि न होना। तात्पर्य यह कि, संघातमें अध्यासंन होनाही देवकी पूजा है। अंतर ज्ञानस्वरूप देव

बाहिर धूपदीपादिकों करके क्लेश रूप पूजन नहीं होता, किन्तु क्लेश विनाही संघातके कर्त्तव्यमें अपनेको अकर्ता साक्षी माननाही ईश्वर देवकी परमपूजा है। हे मैत्रेय ! अपना अहं परिच्छिन्न भाव त्याग करनेसेही, पूर्णभावको प्राप्त होता है, पूर्ण होनेवास्ते यत्न नहीं क्योंकि, आगेही यह आत्मा पूर्ण है, भ्रांति कर अपूर्ण था; जैसे घटाकाशने जबी परिच्छिन्न अहंकार त्यागा तबी पूर्ण महाकाश हुआ।

हे मैत्रेय ! शास्त्ररीति अनुसार जो कुछ आन प्राप्त होवै, सो हेयोपादेय बुद्धिरहित होकर निजदेवको भोग लगाना, आप तिस भोगका भी साक्षीभूत रहना यही पूजन है। यथाप्राप्त समभावरूप जलविषे स्नान कर सर्व नाम रूपात्मक दृश्यका सम्यक् द्रष्टा रहना, दृश्यरूप कदाचित् भी न होना, यही देवका पूजन है। इन अविद्यक स्वप्न पदार्थोंमें हेय उपादेय बुद्धि न करनीही देवका पूजन है। मृत्यु आवे तो देवपूजन है। जीवन हो तो देवपूजन है। दारिद्र हो वा राज्य हो पर कायिक वाचिक मानसिक नाना प्रकारको अहं अभिमान रहित चेष्टा करनाही देवपूजा है। नष्ट हुआ सो हुआ, प्राप्त हुआ सो हुआ, अहं त्वं रहित सर्व जगत्को आत्मवत् आत्मा जानना सोई देवपूजा है। अंतर असंग निर्विकार निर्विकल्प बंध मोक्ष रूप सुख दुःखसे रहित स्वभावसेही मैं निष्कर्तव्य हूँ, मुझको बंध मोक्षकी प्राप्ति हानि वास्ते किंचित् मात्रभी कर्त्तव्य नहीं,इस निश्चयका नाम देवपूजन है।

जो भरूटकी सली (तृण) वा बालूका कणका यह चिंतन करे कि, यह भूत भौतिक दृश्यमान जगत् सर्व मैं ही हूँ, तो यह चिंतन तिसका ठीकही है क्योंकि, सली पंचभूत रूप है और जगत् भी पंच भूतरूप है। तैसे मैं अस्ति भाति प्रिय रूप आत्माही सर्वरूप हूँ, यह निश्चयही देवका पूजन है। हे मैत्रेय! जैसे सुईके नाकेका आकाश यह चिंतन करे कि, मैं महाकाशरूप हुआ २ अनंत ब्रह्मांडोंको

अवकाश देता हूँ, समुद्रमें स्थित हुआ २ समुद्रको अवकाश हूँ, तथा घटमें स्थित हुआ २ मनभर अन्नको अवकाश तात्पर्य्य यह कि, सर्व जगत्‌में स्थित हुआ भी तिनके निर्लेप हूँ, तो यह चिंतन तिसका ठीकही है। तैसे बुद्धि आदि साक्षी, मैं चैतन्य आत्मा, सर्व जगत्का निर्वाहक हूँ, यह विद्वानका ठीकही है, इस दृढनिश्चयका नामही देवपूजन है। इस अनिश्चयमें भी अपने आत्मस्वरूपको सम जानना देवपूजन हो तो मनको है, शोक हो तो मनको है, मोक्ष हो वा न हो तो है, बंध है वा नहीं तो मनको है, जन्म मरणादि विकार संघात की हैं; ज्ञान अज्ञानादि मनके धर्म हैं; इनके साक्षी न्यके पूर्वोक्त व्यवहार एकभी नहीं, इस निश्चयका नाम पूजन है। वाणी, प्रणवका चिंतन कथन करे वा न करे; वा लौकिक कथन चिंतन करे वा न करे पर मुझ चैतन्य साक्षी आत्माकी त्मात्रभी हानि लाभ नहीं, इस दृढनिश्चयका नाम पूजन है। दृश्यके साथ मिला हुआ न देखना, सोई देवका पूजन है। करणके धर्म सत्व, रज, तम, गुणोंकी प्रवृत्ति निवृत्तिका आपको साक्षी सम जानना, हर्ष शोकका न होनाही देवका पूजन है।

मनका धर्म हर्ष शोक होते भी; अपने आत्मस्वरूपमें हर्ष न मानना, यही दृढ निश्चयही देव आगे पुष्प हैं। नाम भूषणोंविषे अस्ति भाति प्रियरूप आत्माको सुवर्णरूप जानना देवका पूजन है। निर्विकल्प होना, सविकल्प होना, फुरणा आदि सर्व मनके धर्म हैं, मुझ साक्षीको धर्म नहीं, यह निश्चय आगे पुष्प हैं।

भजन कैसे करना चाहिये ?

हे मैत्रेय ! मैं सत् चित् आनंद स्वरूप द्रष्टा हूँ, असत् जड़ रूप दृश्य मैं नहीं, यही निरंतर भजन कर क्योंकि यह भजन

करेगा तो,इससे भिन्न कोई न कोई भजन करेगाही। बिना भजन किये मनमाने नहीं और यह भी वेदोक्त भजन है। इससे यही भजन कर वा अस्ति भाति प्रियरूप मैं आत्माही सर्वरूप हूँ,यह भजन करे। वा मैं चैतन्य अवाङ्मनसगोचर हूँ, वाङ्मनसगोचर संघातरूप प्रपंच मैं नहीं, यही निरंतर भजन कर। जो मन वाणीके गोचर देवका पूजन करते हैं, सो वाङ्मनसगोचर अनित्यही फलको पाते हैं; परंतु कुछ न करनेसे यह करना भी अच्छा है क्योंकि परंपरा करके यह भी अवाङ्मनसगोचर परमदेवके पूजन करनेका साधन है।

अधोगति प्राप्त होनेका हेतु।

जो दोनों पूजनोंसे रहित है और निज देहसहित स्त्री पुत्रादिकों काही पूजन करता है, तात्पर्य यह कि, शिश्नोदरपरायण है सो, अधोगतिको प्राप्त होता है।

इससे तू देहरूप दिवालेमें निर्विकार साक्षी आत्मदेवको अपना स्वरूप जाना, जो जन्म मरण फाँससे छूटे।

हे मैत्रेय! सर्व शुभाशुभ संघातकी चेष्टा तुझ आत्मदेवके आगे पुष्प है, सर्व ब्रह्मांडोंमें तूही सच्चिदानंद देव है; जैसे–सर्व स्वप्न सृष्टिमें एक स्वप्नद्रष्टाही देव है। तुझ चैतन्यकी पूजासे सर्वकी पूजा होजाती है,तुझ चैतन्यको भोग लगानेसे सर्वको भोग लग जाता है,तुझ चैतन्यकी प्राप्तिसे सर्वकी प्राप्ति होजाती है। हे मैत्रेय! कारणकी प्राप्तिसे सर्व कार्यकी बलात्कारसे प्राप्ति होजाती है।

हे मैत्रेय! जों सच्चिदानंद निज प्रत्यक्र आत्माको देव नहीं माने तो माया और मायाका कार्यरूप (नाम रूप) इस संघात सहित प्रपंच में, प्रत्यक्र विचार कर, कह कौन देव है? सत् चित् आनंदरूप निज

देवसे भिन्न, असत् जड दुःख अप्रकाशरूप माया; तथा मा कार्य्य इस संघातसहित सर्व नामरूप प्रपंच तो, देवशब्द का पक्षपातरहित सम्यक् विचारसे बन नहीं सक्ता । हे मैत्रेय ! द तथा स्फटिकमणिमें अनेक पर्वतादिकोंके प्रतिबिंब पडते हैं, परं प्रतिबिंबनसे दर्पण तथा स्फटिकमणिकी हानि नहीं होती; तैसेही जाग्रतादिक जगतोंके प्रतिबिंब मुझ चैतन्यरूप आदर्शमें प तथा मिटजाते हैं, परंतु मुझ चैतन्यके हानि लाभ कुछ नहीं हो दृढनिश्चयही परमदेवका पूजन है । हे मैत्रेय ! यह आत्मदेव, अपना आप स्वरूप होनेसे, किंचित्मात्र भी स्मरण करनेसे बिना, सबको शीघ्रही हाजिर हजूर प्राप्त होता है; इससे ऐसे कृपा काही सब पुरुषोंको श्रद्धापूर्वक अवश्यमेव पूजन करना आपसहित सर्वको अस्ति भाति प्रियरूप देवकोही योग्य है ।

ज्ञान प्राप्त होनेपर शिष्यानुभव वर्णन।

पराशरने कहा हे मैत्रेय ! तू अपना अनुभव कह ! तुझको निश्चय है ? मैत्रेयने कहा श्रोत्रादिक इंद्रिय अध्यात्म, तथा चक्षु दिक इंद्रियोंके सूर्यादिक देवता अधिदेव, तथा तिन चक्षु आदिक यों के रूपादिक विषयरूप अधिभूत यह संघात है; सो मैं नहीं मायारूप पंचभूतोंसे इस संघातकी उत्पत्ति है, इसीसे जड है क्षणभंगुर है, अनित्य है । ये आप अपने कार्यमें प्रवृत्ति निवृत्ति हुये भी, आपको, परको, अपने कार्य्यको तथा अपने प्रकाशक जानते नहीं, इसीसे जड, हैं । एकरस नहीं रहते इसीसे अनित्य देशकाल वस्तु भेदवाले हैं इसीसे दुःखरूप हैं । अन्यकी सहा विना, जो सत् चित् आनंदरूप प्रत्यक् आत्मा, पूर्वोक्त त्रिपुटी प्रकाशनाम अनुभव करनेवाला है, सोई स्वयंप्रकाश हमारा स्व

हैं; जैसे दीपक कर घटपटादिक पदार्थ भासते हैं; तैसे अंतर मुझ चैतन्य अनुभवकरही, सुख दुःखादिक सर्वपदार्थ भासते हैं; जो मैं इन को नहीं प्रकाशता हूँ तो इन सुख दुःखादिकोंका व्यौरा कैसे होताहै? क्योंकि मुझ नित्य चिद्रूप आत्मासे भिन्न मनादिक जड व्यवहारक, जाग्रत्, सत्, घट, पटादि, तथा प्रतिभासक, असत् स्वप्न रज्जु सर्पादि भावाभाव पदार्थोंको म चैतन्य तुल्यही प्रकाशता हूँ, मुझको पक्षपात नहीं जैसे इंद्रजाल कर रचित जलसंयुक्त असत् घटविषे तथा साक्षात् सत् घटविषे सूर्यका प्रतिबिंब समही पडता है, न्यूनाधिक भाव नहीं। तथा; जैसे सूर्य मृगतृष्णाके जलको तथा गंगादिजलको समही प्रकाशता है; तैसे मैं चिद्घन देव, जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति तुरीया समाधि आदि, सब पदार्थोंको समही अनुभव करता हूँ। जैसे स्वप्नके सत् असत् पदार्थोंको स्वप्नद्रष्टाही प्रकाश करता है, विषय इंद्रियके संयोग वियोगविषे, संघात विषे, अहंकारपूर्वक, जैसे पूर्व मैं सुख दुःख पाताथा, तपायमान होता था तथा हर्ष शोक करता था भ्रमकर, सो अब मेरे शांत होगये हैं क्योंकि भ्रमरूप संघात विषे अज्ञानपूर्वक अहंकारका अभाव है। अब मैं चैतन्य मनके फुरनेरूप विक्षेपसे तथा मनके अफुर्णे रूप समाधिसे असंग हूँ। यह मैं नहीं, यह पर है, यह अपर है, यह मेरा है, यह नहीं; यह मेरा शत्रु है, यह मेरा मित्र है, यह उदासीन है, इस प्रकार मुझ अस्ति भाति प्रियरूप सर्वात्मामें भ्रमरूप मनकी कल्पना थी, सो अब शांत होगई है। यह दृश्य आदि अंत मध्य एक रस नहीं, इसीसे मिथ्या है। मैं चैतन्य आदि अंत मध्य एकरस हूँ, इसीसे सत् हूँ। पाने योग्य पद मैंने पाया है। अब मैं जीवताही मृतक हुआहूँ। मृतक हुआही जीवता हूँ। अब मैं स्वराज हुआ हूँ। सम शांत सुखरूप, मैं पूर्वभी था अब भी मैं हूँ परन्तु मध्यमें भ्रांतिकर औरका और जानता था, सो भ्रांति मेरी दूर हुई है। पूर्ववत् शोभायमान हुआ हूँ। अब मैं अस्ति भाति प्रियरूप आत्मा,

किस नाम रूप पदार्थकी इच्छा करूं ? अप्राप्त वस्तुकी इच्छा है, मैं आगेही सर्वमें प्राप्त हूँ वा मुझको सर्व प्राप्त है। हेयोपादेय सीसे मैं रहित हुआ हूँ, इसीसे मैं अमृतरूप हूं। जो हेयोपादेय सहित है सो, जीवताही मृतक है। बुलायें खैंचे बिना मैं सर्वको होता हूँ, सर्व व्यवहार राजसी, तामसी, सात्विकी, इस संघातसे हुआ भी, अकरता निर्लेप हूं। सर्व संघातकी (मैं चैतन्यही) करता हूँ; जैसे वायु सर्व वृक्षोंकी चेष्टा कराता है। जैसे मुट्ठीमें नहीं आता तथा दीपककी प्रभा बाँधनेमें नहीं आती; कालकाभी आत्मा कालकर नष्ट नहीं होता; उलटा कालकी लीनता मुझ चैतन्यसेही होती है। जो जावे सो जावे और जो सो आवे; न मुझको सुखकी इच्छा है, न दुःखकी इच्छा है अज्ञानपूर्वक देहमें अहंकाररूप पिशाच था सो सम्यक् आत्मबोध मंत्रकर शांत होगया है। तथा तिस अहंकारके कर्तृत्व भोक्तृत्व कार्यभी शांत हुये हैं, अब मैं चैतन्य सर्वकर्ताभी अकर्ता हूँ (स्वप्न वत्)। आत्मा अल्प बुलानेसेभी प्रत्यक्ष होता है क्योंकि अपना है; जैसे अपना शरीर भंगादि निमित्तसे भूल जावे, पुनः स्मरण तो चिरकाल बांधवके मिलनेकी समान, जैसे अपना शरीर अल्प बुलानेमें प्रगट होता है; तैसेही मैं बुद्धि आदिकोंका आत्मा, सर्व नामरूप, देह मनादि पदार्थोंविषे, व्यापकहूं; जैसे विषे तीक्ष्णता व्यापक होती है; जैसे चंद्रमाविषे तथा बर्फविषे शीतलता व्यापक होती है। जो पानाथा, जो जानना था; जो देखना था, जहां पहुँचनाथा, जो जो बंध मोक्ष वास्ते कर्तव्य जिसका अंत करना था, जिसवास्ते कर्म उपासना तथा श्रवण निदिध्यासन समाधि आदि करने थे, जिस भ्रमकी निवृत्ति करनी

जिस जन्म मरणरूपी भयको दूर कर निर्भय होना था, जिससे मनुष्य शरीरकी सफलता करनीथी, जो कुछ भोगोंकी सीमाको भोगता था, सो सर्व हो चुका है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, जो होने थे, सो सर्व हो चुके हैं। अब हम सर्व कामोंसे निपट कर, पांवपसार कर निश्चिंत सोवेंगे। मुझ चैतन्यको समाधि असमाधि सम है; जैसे स्वप्नद्रष्टाको स्वप्न-नरोंकी समाधि असमाधि सम है।

कामधेनु और कल्पतरु।

पुनः मैत्रेयने कहा हे गुरु! कल्पतरु तथा कामधेनु गौ स्वर्गमें सुनाजाता है, जो स्वर्ग में कल्पतरु तथा कामधेनु गौ होवें तो, पुण्योंकी न्यूनाधिकके अनुसार सुखोंकी तारतम्यता होती है और सर्व जीव स्वभाविकही अधिक सुखकी इच्छा करते हैं; इससे न्यून सुखवाले देवता इंद्रादिकोंके ऐश्वर्यकी कल्पतरुके नीचे इच्छा करेंगे। इंद्र ब्रह्माके ऐश्वर्य्यकी इच्छा करेगा। तिनका संकल्प भी सिद्ध होना चाहिये। जो सिद्ध न होगा तो कल्पतरुका महत्व जो शास्त्रोंने कथन किया है, सो असंगत होगा। यह बात विद्वानोंके अनुभवमें भी जच नहीं सकती क्योंकि तिनका संकल्प सिद्ध होगा तो, कर्मोंकी व्यवस्था बिगड जावेगी। जो कहो कल्पतरुके पास कोई देवतादि जाने नहीं पाता तो, कल्पतरु निकम्माही हुआ। पराशरने कहा हे मैत्रेय! कल्पतरु नाम है शुद्ध मनका। शुद्ध मनमें जो इच्छा होती है सोई पुरुषको पूर्ण होती है, सिद्ध योगीवत्। वा सम्यक् अपने स्वरूपका अपरोक्षबोधही कल्पतरु और कामधेनु गौ है; जिसकी प्राप्तिसे सर्व कामनाकी पूर्णता, वा सर्व कामनाकी कल्पतरु सहित सर्व जगतकी निवृत्तिताका फल पुरुषको प्राप्त होता है। वा सम्यक् संतोष विचारपूर्वक स्वधर्मानुष्ठानरूप तपही कल्पतरु है, अन्य नहीं। वा कल्पतरुके फल और फूल अन्य वृक्षोंसे अति मधुर सुगंधिवान् होवेंगे,

तथा तिसकी आकृति अन्य वृक्षोंसे सुंदर होगी, यही तिसमें विलक्षणता है, अन्य नहीं। कामधेनु गौ अन्य गौसे सुंदर स्वभाववाली, सुंदर आकृतिवाली, दूधको अधिक देनेवाली होगी ।

मोक्षप्राप्तिका प्रधान साधन क्या है ?

मैत्रेयने कहा दुःखरूप संसारबंधकी निवृत्ति और परम सुखरूप मोक्षकी प्राप्तिका प्रधान साधन कौन है ? पराशरने कहा हे मैत्रेय ! सम्यक् अपरोक्ष, सत् चित् आनंद स्वरूप, निरावरण, शम दमादिक साधन पूर्वक, निजात्मबोधही प्रधान साधन है, अन्य शमादिक साधन नहीं । शम दम समाधि प्राणायामादि तथा कर्म उपासनादि अनेक साधन निजात्मबोधकी उत्पत्ति वास्ते हैं; जैसे अंधकारमें चिन्तामणि पड़ी होवे, तो मणिकी प्राप्तिवास्ते और अपने भयादि कार्य सहित अंधकारकी निवृत्ति वास्ते, केवल दीपकका चसानाही आवश्यक है, अन्य जपतपादि साधन नहीं । परंतु दीपकके चसानेके अनेक साधन हैं; जैसे काष्ठादि भोजनकी सिद्धि वास्ते अनेक साधन हैं भी, परन्तु प्रधान अग्निही साधन है । हे मैत्रेय ! जैसे सूर्य्य बादलों कर पुरुषोंको ढका प्रतीत होता है और किसी रीतिसे बादलोंके दूर होनेसे सूर्य स्वयंप्रकाश कर पुरुषको स्फुरण होता है; तैसे अज्ञानरूपी बादल दूर होनेसे, आत्मा स्वयंज्योति रूप कर तुझको प्रतीत होवेगा । हे मैत्रेय ! जैसे प्रतिबिंबको, घट जल संबंधी, निज विक्षेपोंके दूर करनेवास्ते और निर्विकार निज भावकी प्राप्तिवास्ते, निज बिम्बस्वरूपका सम्यक् जाननाही प्रधान साधन है, अन्य नहीं । जैसे वायु करके विक्षेपवान् जो तरंग है, तिसके विक्षेपकी तथा गमनागमनरूप जन्म मरणकी निवृत्ति और अगाध समुद्रकी प्राप्तिका प्रधान साधन; मधुरता शीतलता द्रवतारूप, निज जल स्वरूपका सम्यक् जानना है। वा जैसे स्वप्ननरोंको स्वप्नक्लेशरूप जन्म मरणादि दुःखोंकी निवृत्ति

वास्ते; तथा सुखकी प्राप्तिवास्ते; निजस्वरूप स्वप्नद्रष्टाका सम्यक् जाननाही प्रधान साधन है;अन्य नहीं । हे मैत्रेय ! सत् चित् आनंद स्वरूप निजात्माको अज्ञान कर असत् जड दुःखरूप मानता है और ज्ञानकर अज्ञान तत्कार्यकी निवृत्ति नाम मिथ्यात्व वा अभाव निश्चय होतेही कतकरेणुवत् पीछे ज्ञानकी निवृत्ति नाम मिथ्यात्व वा अभाव निश्चय होता है । हे मैत्रेय ! सच्चिदानंदरूप आत्मासे जो कुछ पृथक् प्रतीत होता है, सो जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति मरण समाधि आदि सर्व प्रपंच स्वप्न भ्रांतिरूप है । स्वस्वरूप अज्ञानकालमेंही भ्रांतिके विषय जाग्रतादि पदार्थ सत्यवत् नाम जाग्रत्वत् भान होते हैं,सम्यक् अपरोक्ष अस्ति भाति प्रियरूप निजात्माका बोधरूप जाग्रत्के हुये नाम रूप स्वप्न प्रपंच अत्यंत असत् हो जावेगा ।हे मैत्रेय ! स्वप्न प्रपंच प्रतीति होते भी स्वप्नद्रष्टा निर्विकार है।जैसे स्वर्णमें नामरूप भूषण प्रतीत होते भी, केवल कहनामात्र है । तैसे अस्ति भाति प्रियरूप आत्मामें नाम रूप जगत् प्रतीत होता भी कहनामात्र है ।

। काशी विश्वेश्वर ।

हे मैत्रेय ! इस संघात कायारूप काशीमें तू प्रत्यक् चैतन्य (इस देहरूप काशीका प्रकाशक) विश्वेश्वर बंध मोक्षसे रहित काशी प्रकाशक है ।

। कृष्ण ।

(गोकुल, मथुरा, वृन्दावन, द्वारिका रासक्रीडा आदि ।)

इस क्षेत्रज्ञरूप द्वारकाका प्रकाशक तू साक्षी चैतन्य क्षेत्ररूप कृष्ण है । हे मैत्रेय ! गोकुल, मथुरा, वृंदावन, और द्वारकावत्, जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति;तुरीय,तुझ क्षेत्रज्ञरूप कृष्णकी क्रीडाके स्थान हैं । तुरीयरूप वृंदावनमें " सर्वमिदंमहंचवासुदेवः " इसप्रकार सर्व वृत्तियांरूपी गोपी, आप अपने सांसारिक शब्दादि विषयरूप पति-

योंको तथा विषयजन्य पुत्ररूपी सुखोंको, त्यागकर, तुम, क्षेत्रज्ञरूप कृष्णकोही आश्रयण करती हैं । वा विषय इंद्रियोंके संबंधरूप पतियोंको और विषयजन्य सुखरूपी पुत्रोंको त्यागकर वा विषय इंद्रिय संबंधरूप पतिसे तथा अंतःकरण अविद्यारूप मातासे उत्पन्न हुई जो वृत्तियां, तिनमें जो सत् चित् आनंदरूप क्षेत्रज्ञ कृष्णका प्रतिबिंब रूप आभास है, सोई हुये पति, तिनको तथा विषय वा विषयजन्य सुख सोई हुये पुत्र, तिनको त्यागके नाम मिथ्या जानके, तुझ क्षेत्रज्ञ कृष्णको प्राप्त होती हैं; नाम "सर्वमिदमहं च ब्रह्मैव" इस प्रकार सर्व तुझ क्षेत्रज्ञ ब्रह्मकोही विषय करती हैं । तू क्षेत्रज्ञ कृष्ण, तिन सर्व वृत्तियां रूप गोपियोंको प्रकाशता है; यही रासक्रीडा है ।

। आत्मा और संघात भिन्न २ हैं कि, एकरूप ?

हे मैत्रेय ! इस पंचकोशरूप, अनित्य जड दुःखरूप स्वभाव वाले, संघातसे अविवेकीको; नित्य सुख चिद्रूप आत्मा भिन्न प्रतीति होता नहीं, परन्तु विवेकी भिन्न जानता है; जैसे बालक तुषसहित तंदुलोंको; इक्षु रसको, दूध घृतको, जल दूधको, लवण जलको, देह देहीको, प्रकाश प्रकाशकको, आत्मानात्मादिक पदार्थोंको, एक रूप जानता है । परंतु विवेकी बुद्धिमान् भिन्न भिन्न स्वभाववाले पदार्थोंको; एकरूप प्रतीत होते हुये भी, एक रूप नहीं मानता । इससे तू हे मैत्रेय ! बुद्धिमान् हो, मूर्ख मत हो । जैसे लालादि पुष्पोंके संबंधसे स्फटिकमणि लालादि रूप प्रतीति होती हुई भी विवेकी लालादि रंग रहित केवल शुद्ध स्फटिकमणि जानता है और अविवेकी लालादि रंगों सहित जानता है । जैसे लालादि रंग रूप वस्त्र भासता भी है, परन्तु विवेकी वास्तवसे शुद्ध वस्त्रमें लालादि रंग आगंतुक देखता है सत् नहीं । जैसे, जल लवणादि अनेकरूप भान होता भी, वास्तवसे विवेकीकी दृष्टिसे

शुद्ध शुक्लरूप है। तैसे पंचकोशरूप, तीन शरीररूप, आत्मा प्रतीति होता भी है, परन्तु विवेकी वास्तवसे अपने आत्मस्वरूपको असंग, निर्विकार, निर्विकल्प, स्वभावसेही जन्मादि विकार रहित जानता है। अविवेकी ऐसे नहीं जानता, इसीसे जन्मता मरता है। हे मैत्रेय ! आत्मा, भिन्न भिन्न जो प्रतीत होता है सो उपाधिसे प्रतीत होता है, वास्तवसे आकाशवत् नहीं।

आत्मा यदि व्यापक है तो सर्वत्र प्रतीत क्यों नहीं होता?

हे मैत्रेय! अस्ति भाति प्रियरूप आत्मा सर्वत्र व्यापक है भी, परन्तु जहां स्पष्ट अंतःकरण होता है तहांही सत् चित् आनंद साक्षी विशेषरूप करके भान होता है, तहांही इस जड संघातकी चेष्टा होती हैं; जैसे उष्णता; प्रकाशकता, दाहकता, सूर्य्यरूपता, सर्वत्र व्यापक है भी, परन्तु जहां दर्पणादि स्वच्छपदार्थ होते हैं, तहां सर्व लोगोंको प्रसिद्ध एक आभास, दूसरा समान (तेज) द्विगुण प्रकाश होता है। हे मैत्रेय! जैसे राजाका हुक्म अपनी सर्व प्रजाके ऊपर होता है, तथा राजा प्रजाके भिन्नही होता है; तैसेही देह इंद्रिय मनादि जड़ प्रजाको, यह साक्षी आत्माही, अपनी महिमामें स्थित हुआ हुआ, निज सत्ता स्फूर्ति देकरही, चेष्टा करता है। तथा आत्मा देह इंद्रिय मनादि प्रजासे भिन्न है, तथा देह इंद्रिय मनादि प्रजाके कर्तव्यों से अकर्तव्य है; जैसे चन्द्रमा बादलोंके चलनेसे चलता बालकोंको प्रतीत होता है, परन्तु विवेकीकी दृष्टिसे चन्द्रमा अचल है। हे मैत्रेय ! यावन्मात्र मन वाणीका गोचर नाम रूप प्रपंच है तथा सुख दुःख है सो सर्व मनोमात्रहै क्योंकि जब मन सुषुप्तिमें लीन होता है; तब सर्व नाम रूप प्रपंचकी लेशभी नहीं मिलती, जो प्रपंच मनोमात्र न होता तो, सुषुप्तिमें प्रतीत होता सो प्रतीत होता नहीं। इससे मनोमात्र

ही कल्पना है। आत्मातो सर्वदा एकरस सुषुप्तिमें भी है, परन्तु सुख दुःखरूप प्रपंच नहीं। इससे यह सिद्ध हुआ कि, आत्मा सुख दुःख रूप प्रपंचसे रहित निर्विकार है।

हे मैत्रेय ! नामरूपसंसारको दधिरूप जानो, मनको मंथारूप जानो; ब्रह्माकारवृत्तिको रज्जुरूप जानो और सत् चित् आनंद निजरूप प्रत्यक् आत्माको घृतरूप जानो। इस प्रकार अभ्यास करते २ तुझको अपना स्वरूप साक्षात्कार होगा। पुनः नाम रूप प्रपंचरूप छाँछमें तू प्रत्यक् चैतन्यरूप माखन पडाभी, कदाचित् भी एकरूप न होवेगा। हे मैत्रेय ! जैसे भीतीमें वा खंभेमें वा अन्यत्र कहीं वस्त्रादिकोंमें चित्रेलेकी लिखीं जो अनेक प्रकारकी मूर्त्तियां, वशेश हैं सो यद्यपि मूर्खोंको मूर्तिही सन्मुख दीखती हैं, थंभ भीति वस्त्रादि आधार सन्मुख नहीं दीखता, परन्तु विचारें तो आधार दर्शन पूर्वकही सर्व मूर्तियोंका दर्शन है। जो आधारको अदृश्य माने और मूर्त्तियोंको प्रत्यक्ष माने तो, दृष्टिविरोध है तथा विद्वानोंके अनुभवसे विरुद्ध है। तैसेही यह नाम रूप भूत भौतिक कारण कार्य्य रूप प्रपंच, वा अंडज, जरायुज, स्वेदज, उद्भिज्ज रूप मूर्तियांही, मनरूप चित्रेलेकी, अनंत चिद् सुखरूप आत्मारूप आधारमेंही लिखी प्रत्यक्ष दीखती हैं परन्तु नित्य सुख चिद्रूप मूर्तियोंके आधार परमेश्वरको अविवेकी दूर मानते हैं, यह नहीं जानते कि, आधार दर्शन पूर्वकही इस नामरूप मूर्तियोंकी प्रतीति होती है, अन्यथा नहीं। तात्पर्य यह कि, पहले आधार होताहै पीछे मूर्तियां लिखीजाती हैं। यह नहीं कि; आधारको परोक्षमाने और मूर्तियोंको अपरोक्ष माने, यह मूर्खोंकि दृष्टि है। इससे आधारही अपरोक्ष है मूर्तियां नहीं। जो मूर्तियोंकी अपरोक्ष प्रतीति होती है सो; आधार दर्शनपूर्वकही प्रतीति होती है। इससे आत्मारूप आधार सर्वसे पहलेही सिद्ध है।

अध्यात्मक सिद्धोंकी कथा।

हे मैत्रेय ! इसीपर एक कथा सुन ! एक समय मैं वनविषे विचरता था। तिस वनविषे एक महान अद्भुत बँगला था। तिसमें बहुत तपस्वी सिद्ध बैठेथे और आपसमें सिद्धाइयोंकी बातें करते थे। जो पूछें सिद्ध कौनथे ? सो पंच ज्ञानेंद्रिय, पंचकर्मेंद्रिय, पंचप्राण, चतुष्टय अंतःकरण, पंच महाभूत तथा तीन सत्व, रज, तम गुण, देशकालादि, अनेक प्रकारके भिन्न भिन्न स्वभावोंवाले सिद्ध बैठेथे। मैंने पूछा हे मित्रो! तुम क्या करतेहो ? उन्होंने कहा कि; इहां तप करके, अपने अनंत, चित् सत रूप, आत्मस्वरूपको सिद्ध किया है वा करते हैं वा करेंगे। तिन्होंके मध्यमें प्रथम मैंने ज्ञानेंद्रियोंको कहा कि, हे ज्ञानेंद्रियो! तपस्वी! सिद्धो! तुम शब्द स्पर्श रूप रस गंधके, अपरोक्ष सिद्ध करनेके साधन हो, तुम साधनद्वारा, आत्माही शब्दादिकोंको सिद्ध करता है; जैसे मंदिर बाहिर धरे पदार्थोंको, मंदिर भीतर सचक्षु पुरुषही बारीद्वारा अपरोक्ष सिद्ध करता है, बारियां नहीं। इससे साक्षात् शब्दादिकभी अपरोक्ष नहीं हो सक्ते तो आत्माको कैसे अपरोक्ष करोगे ? भला जो तुम किसी रीतिसे अपरोक्ष सिद्ध करते हो, तो भी शब्दादिकोंकोही अपरोक्ष सिद्ध करते हो, शब्दादिकोंसे रहित जो अवाङ्मनसगोचर आत्मा है, तिसको तुम कोटि जन्मोंमें; कोटि तरहके तपसे भी सर्वथा नहीं जानोगे क्योंकि, जो आत्मा शब्दादिरूप होवे तो तुम जानो, अन्यथा कैसे जानोगे ?

तैसेही मैंने कहा हे कर्मेंद्रियो सिद्धो ! तुम तो प्रसिद्धही वाक् उच्चारण, ग्रहण त्याग गमनागमन, मल मूत्रका त्याग, मात्रही व्यवहार सिद्ध कर सक्ते हो; अन्य नहीं, यह बात प्रसिद्ध है। इससे तुम्हारा कहना भी निष्फल है कि, हम आत्माको अपरोक्ष करते हैं।

प्राण।

तैसेही मैंने प्राणोंको कहा हे प्राण! अपना, समान, उदान, व्यान सिद्धो! तुमभी जड़ वायु हो,श्वासोच्छ्वासादिक ही प्रसिद्ध क्रिया करते हो, अन्य नहीं। जो आत्मा श्वासोच्छ्वासादिक क्रियारूप होवे तो, तुम आत्माको ग्रहण करो; अन्यथा नहीं।

अंतःकरण।

तैसेही मैंने चतुष्टय अंतःकरणसे पूछा है, हे, मन, बुद्धि, चित्त अहंकार तपस्वी सिद्धो! तुम भी संकल्प विकल्प, निश्चर्य अनिश्चय, चिंतन अचिंतन, अहंपण तथा न अहंपण, केवल इनहीको सिद्ध करसके हो; पूर्वोक्त संकल्पादिकोंसे रहित जो नित्य सुख चिद्रूप प्रत्यक् आत्मा है; तिसको तुम कैसे सिद्ध करसक्ते हो? जो आत्मा संकल्पादिरूप होवे तो तुमसे ग्रहण होवे; सो आत्मा संकल्पादिकोंसे रहित है इससे तुम कोटिजन्मोंमें तपस्या करनेसे भी, आत्माको न सिद्ध कर सकोगे। उलटा तुम अपने धर्मोंसहित मनादि आत्मा करकेही सिद्ध होते हो। तुम जड आपको तथा परको भी नहीं जानसक्ते तो, अन्यको कैसे सिद्ध करोगे? इससे तुम संकल्पादिकोंकेही सिद्ध कर्ता हो अन्यके नहीं। इससे तुम निष्फलही अहंकार करते हो कि, हम आत्मा जानते हैं। हां, तुम आत्माके साक्षात् करनेके साधन परंपरासे हो, यह बात तो ठीक है। आत्मा तुम्हारी उत्पत्तिसे पहले, सुषुप्तिमें स्वतः सिद्ध है, तथा तुम्हारे सुषुप्तिमें लीन हुये पीछे स्वतःसिद्ध है। वर्तमानमें तुम्हारे साक्षी हुये आत्माको तुम नहीं जानते तो, सुषुप्ति आदिकोंमें कैसे जानोगे? हे मनादिको सिद्धो! जैसे सूर्यही नेत्रोंमें स्थित होकर अपने आपको देखता है, तथा अन्य पदार्थोंको भी प्रकाशता है। नेत्र निमित्तकर जो नेत्रोंको सूर्य्यके देखनेकी ताकत होवे तो, अंधकारमें भी किसी पदार्थको प्रकाशे परन्तु नहीं प्रका-

शता है। तैसे आत्माही तुम मनादिकोंविषे स्थित होकर तुमकोभी तथा अन्य सर्व पदार्थोंको प्रकाशता है तथा तुमसे बिनाभी सुषुप्तिमें, समाधिमें, स्वयंप्रकाशरूपताकरके समाधि सुषुप्तिमें होनेवाले पदार्थोंको प्रकाशता है।

त्रिगुण।

तैसेही मैंने सत्वादि गुणोंको कहा हे सत्वादि गुणो! तुम्हारी प्रवृत्ति निवृत्ति मनको हर्ष शोक करती है। सर्वके द्रष्टा आत्माको तुम्हारा कुछ भी असर नहीं पहुँचता। सत्वगुण होनेसे चित्तविपे, शमदमादि तथा जाग्रत् अवस्थाकी प्रवृत्ति होती है। रजोगुणके होनेसे भोगादिकोंकी तथा स्वप्नअवस्थाकी कामना करके चित्त चंचल होता है। तमोगुणके होनेसे क्रोधादिक पापकर्म करके तथा सुषुप्ति अवस्थासे चित्त स्तब्धभावको प्राप्त होता है। इत्यादि कामही तुम गुण सिद्ध करसक्ते हो, अन्य नहीं। आत्मा पूर्वोक्त इन गुणोंसे परे है। इससे तुम्हारा कहना निष्फल है कि, हम आत्माको अपरोक्ष सिद्ध करते हैं।

पंचभूत।

तैसेही मैंने कहा हे पंचभूतो! तुमभी मायाके कार्य्य हो, असत् जड दुःखरूप हो. शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध गुणोंवाले हो तथा कार्यकारणरूप हो। इससे मायासे परें, तथा कार्य्य कारण भावसे रहित निर्गुण प्रत्यक् आत्माको कैसे अपरोक्ष सिद्ध करसक्ते हो? नहीं करसक्ते हो।

अज्ञान।

तैसेही मैंने अज्ञान सिद्धको कहा—हे अवर्ण, विक्षेप, शक्तिवाले अज्ञान सिद्ध! ज्ञान रूप प्रकाशसे विलक्षण अज्ञानरूप अंधकार होता है। प्रकाश स्वरूप आत्माके तुम सन्मुखही नहीं होसक्ते तो

आत्माका दर्शन कैसे करोगे? उलटा तुम ज्ञान अज्ञान दोनों भाई आत्मा करकेही अपरोक्ष सिद्ध होते हो। जो तुम दोनों आत्माको तथा पदार्थोंको, निरावरण सर्व अपने कार्य, मनकी तरफसे करसक्तेहो, स्वयंप्रकाश आत्माकी तरफसे नहीं करसक्ते हो। जैसे बादल मनुष्योंकी तर्फसे सूर्यको आच्छादन निरावरण करसक्ते हैं सूर्यकी तर्फसे नहीं। इससे तुम्हारा वृथा अभिमान है कि; हम आत्माको अपरोक्ष सिद्ध करते हैं।

शब्दादिगुण।

तैसेही मैंने शब्दादिक गुणोंको कहा हे भूतोंके पुत्ररूप शब्दादिक गुणों! जब तुम्हारे आप अपने आकाशादि पंचभूतरूप पिता, तथा पंचभूतोंका अज्ञानरूप परपिता; तुम्हारा पितामह, आत्माको नहीं अपरोक्ष करसक्ता तो तुम कैसे करोगे, किंतु नहीं करोगे। इससे यह जगत् मूर्तियां भी, अपरोक्ष सर्वके अनुभवासिद्ध है और इनका आधार अधिष्ठानरूप चित् सुख नित्य आत्मा भी अपरोक्षही मानना चाहिये।

हे मैत्रेय! अनित्य जड दुःखरूप जो जाग्रत, स्वप्न; समाधि, सुषुप्ति आदि, कार्य कारण भाव, नाम रूप चित्ररूप दृश्य प्रपंचमें क्या स्थित होना है? जिसमें यह भासमान चित्र है तिसीमें स्थित हो, जो निर्भय होवे, अन्यथा नहीं। धन्य वही हैं जो शरीरकर, मनकर, वाणीकर, व्यवहार करते भी विचारसे इस दृश्यरूप जगत्को साक्षीके समान देखते हैं। हे मैत्रेय! जैसे भारवाही बैलादिक पशुओंको, नफे टोटेका हर्ष शोक नहीं होता, चाहे चन्दन कस्तूरी सुवर्णादिक उत्तम पदार्थ लादो, चाहे मलीन पदार्थ लादो। तिसके अभिमानी पुरुष स्त्रियोंको नफे टोटेका हर्ष शोक होता है। अभिमान रहितको हर्ष शोक नहीं। तैसे मन इंद्रियादिक पशु शुभ कृत्यकरें अथवा

अशुभकृत्य करें, वे अभिमान नहीं करते तब तू चित् सुख, नित्य, असंग अक्रिय, आकाशके समान आत्मा अभिमान क्यों करता है ? अभिमान करनेसे दुःख होगा। हे मैत्रेय ! जैसे नगरमें कुम्हारके गधोंकी उत्पत्ति नाशमें कुम्हारकोही सुख दुःख होता है (अभिमानी होनेसे) स्वमहिमा स्थित राजाको नहीं। जो राजा हर्ष शोक करेगा तो मूर्ख बाजेगा। तैसेही इस देहरूप नगरमें, इंद्रियरूपी गदहोंके जन्म मृत्युरूपी, इष्ट अनिष्टकी प्राप्ति निवृत्तिमें, मनरूपी कुम्हारही हर्ष शोकवाला है। तू सम्यक् विचार देख ! तू चैतन्य राजा, स्वमहिमामें स्थित, हर्ष शोकका भागी कहां है ? जबर्दस्ती करें तो तेरी इच्छा है।

इति पक्षपातरहित अनुभवप्रकाशका षष्ठसर्ग समाप्त ॥ ६ ॥

अथ सप्तम सर्ग ७.

जगदुत्पत्तिप्रकरणवर्णनम्।

मैत्रेयने कहा हे भगवन् ! अमायिक निरावयव आत्मासे यह जगत् कैसे उत्पन्न होता है ? कोई प्रत्यक्ष दृष्टांत कहिये ? पराशरने कहा हे मैत्रेय ! जैसे आकाश निरावयव पूर्णसे वायु उत्पन्न होती है, जानी नहीं जाती कि, किस रीतिसे उत्पन्न हुई है। पुनः तिसीमें लीन होजाती है और स्वप्नद्रष्टाका दृष्टांत अनुभवसिद्ध है। मैत्रेयने कहा मुझको शिष्यकरो। पराशरने कहा शिष्य नाम सेवा करनेवालेका है सो इंद्रिय मनादि मेरी सेवा करते हैं इसीसे मेरे शिष्य हैं। मैत्रेयने कहा मुझको उपदेश करो। पराशरने कहा उपदेष्टा, उपदेश और उपदेश करने योग्य त्रिपुटी मुझमें है नहीं क्योंकि मैं उनका साक्षी हूँ।

परन्तु उपदेश यही है कि, जान आप सहित सर्व हरि है । उपदेश तो बीथियोंके तृणभी सारग्राहीको कर रहे हैं, संतनने तो उपदेशका गिर मिटही ले रक्खी है । संत बिना उपदेश किसीको लगता भी नहीं क्योंकि संत निष्काम होनेसे सर्व बातोंका सार निकालके यथार्थ उपदेश करते हैं । इसी पर एक कथा सुन ।

स्थूल समष्टि अभिमानी वैराट् भगवान्‌ने व्यष्टि अभिमानी विश्व नाम जीवको उपदेश दिया है । वा प्रतिबिंबी रूप जीवको बिंबरूप ईश्वर ने उपदेश दिया है । तिस स्थानमें संतोंने आप अपना पक्षपात रहित संभाषण भी किया है ।

विश्वात्मा और विराटात्माका सम्वाद ।

विश्वने कहा हे भगवन् ! तुम्हारे हजारों शीश हस्त पादादि अवयव शास्त्रमें कहे हैं परंतु यह मनुष्यव्यक्ति तुम्हारी हमारी एक सरीखी है, इसके तो हजारों हस्त पादादि अवयव बनसक्ते नहीं । जो तुमको आकाशवत् निरावयवपूर्ण मानै, तौभी अवयव बनसक्ते नहीं और जो स्थूल ब्रह्मांडरूप तुम अपना शरीर कहो तो, शीश आपका आकाश, पाद पाताल, अग्नि मुख, दशो दिशा भुजा, इत्यादि तुम्हारे अवयवोंका शास्त्र वर्णन करते हैं सो तो भावना मात्र चित्तके ठहराने वास्ते प्रतीक उपासना है कोई विचारे तो अवयव मालूम नहीं होते । जो मानै तो अग्नि पातालादियोंसे प्रजाकी उत्पत्ति हमको नहीं प्रतीत होती । सर्व वैराट् रूप वैश्वानरने कहा हे विश्व ! जैसे तुम इस देहके देही हो, तैसे मैं ब्रह्मांडरूप देहकी देही हूँ । अनंत जीवोंका समुदायरूपही ब्रह्मांड है । जो तुम्हारे अनंत व्यष्टि जीवोंके हस्त पादादि अवयव हैं सोई सर्व मेरे अवयव हैं. जैसे एक वृक्षके अवयवों सहित अवयवीका, वृक्षाकाश अभिमानीके जो अवयव हैं सोई सर्व वनाकाश अभिमानीके अवयव हैं ।

जैसे स्वप्नमें जो व्यष्टि स्वप्ननरोंके हस्त पादादि अवयव हैं सोई सर्व अवयव समष्टि वैराट् स्वप्नद्रष्टाके हैं, अन्य कोई व्यवस्था है नहीं।

वर्णाश्रम और वेदादिकी उत्पत्ति।

जैसे स्वप्नमें चार वर्णाश्रम तथा वेद पदार्थ प्रतीत होते हैं, परन्तु विना हुये पदार्थका ज्ञान होता नहीं, क्योंकि पदार्थ अपने ज्ञानमें निमित्तकारण होते हैं। जाग्रत्के वर्णाश्रम तथा वेद स्वप्नमें हैं नहीं, क्योंकि जो जाग्रत्में देश काल वस्तु है सो स्वप्नमें तिससे देश काल वस्तु विलक्षणहै। इससे स्वप्नमें किसी रीतिसे, सत् वा मिथ्या, नवीन वर्णाश्रम, वेदकी उत्पात्ति होती है सो तुम विचार देखो। स्वप्नके वैराट् स्वप्नद्रष्टाके किस अवयवसे किस वर्णाश्रम और वेदकी उत्पत्ति माने सो, तुमहीं पक्षपातरहित विचारकर कहो? यह सर्वके अनुभवकी बात है, क्योंकि जो स्वप्नमें स्वप्ननरोंके मुख हस्त ऊरू पादादि अवयव हैं, सोई अवयव स्वप्न वैराट् स्वप्नद्रष्टाके हैं।

यदि हिंदूसमाजके सर्व शास्त्र अनुकूल, वर्णाश्रमकी उत्पात्ति माने भी तो "ब्राह्मणोस्य मुखमासीत्" ब्राह्मण इसका मुख है, नाम प्रधान है। पंचमीके अभाव होनेसे उत्पात्ति नहीं बनती। तैसेही राजन्यादि पदोंका अर्थ भी जानलेना। जैसे स्वप्नमें वर्णाश्रम तथा वेदादि पदार्थोंकी उत्पात्ति माने तो स्वप्ननरोंकी देहमें मुखादि अवयवोंसे ही वर्णाश्रमकी उत्पात्ति माननी होवेगी. परन्तु स्वप्नद्रष्टा निरवयव है तिसको मुखादि अवयव बनते नहीं। और भी शब्दादि लेन देनादि क्रिया गुण विना और किसी वर्णाश्रमकी तो उत्पात्ति मुखादि अवयवों से देखनेमें आती नहीं। दृष्टकल्पनाके अनुकूलही अदृष्टकल्पना की जाती है, अन्यथा नहीं की जाती। शास्त्रमें भी समष्टि व्यष्टिकी, सर्वप्रकारसे व्यवस्था तुल्य कही है। जो पिंडे सोई ब्रह्मंडे, जो खोजे सो पावे। इससे व्यष्टिके दृष्टांतसे समष्टि वैराट्में, दार्ष्टांत जोड़लेना।

वर्णाश्रम क्यों और किसने स्थापित किया ?

इसवास्ते पक्षपातरहित धर्मात्मा, सत्यवक्ता पुरुषोंने बेटी पंगत लेन देनरूपी व्यवहारकी, सुखवूर्वक सिद्धिके लिये, तथा संकरवर्ण-की निवृत्तिके लिये, तथा धर्मके न्यूनाधिककी उत्कर्षता और अधर्म-की न्यूनाधिककी अपकर्षताके लिये; तत् तत् धर्माधर्मसंबंधी पुरुषों-की सात्विकी, राजसी, तामसी, स्वभावोंके अनुसार, उत्तम, मध्यम, निकृष्ट, अधम, चारप्रकारकी संज्ञा ईश्वरने, वा पूर्वोक्त सज्जन पुरुषोंने बाँधी है।

ब्राह्मणादि वर्णोंकी उत्पत्ति मुखादि अवयवोंसे किसप्रकार है ?

हां! मनके चिन्तनपूर्वक और मुखको शब्दउच्चारणपूर्वकही उत्तमा-दि संज्ञा कल्पना कीजाती है, इससे मुखादि अवयवोंसे वर्णाश्रमकी उत्पत्ति कही है। नहीं तो और किसी भी समाजके शास्त्रोंमें; ईश्वरके मुखादि अवयवोंसे वर्णाश्रमरूप जगत्की उत्पत्ति कहीं नहीं। हां! ईश्वरकी इच्छासे जगत्की उत्पत्ति बनती है और सर्व शास्त्रोंमें कही भी है, सो इच्छा अन्तःकरणमें है, मुखमें नहीं, वा इच्छा मायामें है। इससे सर्व सम्मत सिद्धांतही ठीक होता है। ईश्वरके मुखादि अवयवों से वर्णाश्रमरूप जगत्की उत्पत्ति सर्व सम्मत सिद्धांत नहीं, किन्तु आप अपने घरके सिद्धांत स्थापन करते हैं। किसको सत् कहें किसको असत् कहें।

समाज अनुसारी शास्त्रमध्ये अनादिपक्ष माननेवालोंमें तो वर्णा-श्रमरूप जगत्की उत्पत्ति ईश्वरसे वा जीवसे बनतीही नहीं। सादिमें बनती है। सो भी मुखादि अवयव देहमेंही बनते हैं, देहीमें बनते नहीं देहीको निरवयव होनेसे। तैसे ईश्वर देहीकी, यह कार्य्य कारण रूप; माया देह है सो मायाके सत्व, रज, तमादि, मुखादि अवयववत्; अवयव हैं-सो, मायाके सत्वादि गुणरूप, मुखादि अवयवोंकी प्रधानता, अप्रधा-

नतासे, तत् तत् संबंधी पुरुषोंकी भी, प्रधानता अप्रधानता संज्ञा कीगई है। सो अदृष्ट वा संगतिके प्रतापसे, सात्विकीसे तामसी राजसी होता है, तामसीसे राजसी सात्विकी होता है। मायारूप उपाधिके धर्म माया उपहत ईश्वरमें वर्तते हैं; इससे ईश्वरके मुखादि अवयवोंसे वर्णाश्रम रूप जगत्की उत्पत्ति कही है। अन्यथा कहोगे तो निरवयव पूर्ण आकाशवत् ईश्वरके कौन मुखादि अवयव है? किन्तु कोई नहीं। जैसे निरावयवपूर्ण आकाशके किस अवयवसे वायु उत्पन्न होती है? तद्वत्ही ईश्वर भी निरावयवपूर्ण सर्वशास्त्रोंमें लिखा है, तिसके मुखादि अवयव बनते नहीं।

सर्व देशोंमें भिन्न २ व्यवहारोंकी कल्पना किसने की है? परस्पर भेद क्यों दीखता है?

जो ईश्वरको सगुण मानो वा निर्गुण मानो तो पूर्व कही व्यवस्थाही ठीक मालूम देती है, आगे ईश्वर जाने क्या तदबीर है परन्तु उत्तमादि व्यवहार, देशकाल वस्तुओंमें देखनेमें आता है। क्या जाने यह उत्तमादि व्यवहार ईश्वरने स्थापन किया है वा जीवोंने किया है, वा अनादि है, वा सादि है। परन्तु यह भी देखनेमें आता है कि, देशकाल वस्तुओंमें; उत्तमादि व्यवहार तत् तत् देशनिवासी पुरुषोंने किया है, वा आप अपने सामाजिकपुरुषोंने सर्व देशकाल वस्तुओंमें उत्तमादि व्यवहार स्थापन किया है। क्योंकि जिन देशकाल वस्तुमें हमारे सामाजिक पुरुषोंने उत्तमादि व्यवहार किया है सो अन्य सामाजिक पुरुषोंने नहीं किया; जो अन्य सामाजिक पुरुषोंने जिन २ देशकाल वस्तुओंमें उत्तमादि व्यवहार स्थापन किया है सो, हमारे सामाजिक पुरुषोंने नहीं किया इसी रीतिसे सर्वमें जान लेना। इस रीतिसे सर्व देशकाल वस्तुओंमें उत्तमादि व्यवहार जीवोंने मनके चिन्तन पूर्वक वाणीसे बांधा है।

सम और साधारण नियम ।

परंतु सत् संभाषणादियोंकी न्यूनाधिक प्रयुक्त, उत्तमादि व्यवहार सर्वदेशमें सर्व समाजोंमें सम है।

चार वर्ण ।

इसी रीतिसे तो सर्व वर्णाश्रमोंकी उत्पत्ति मुखसेही बन सक्ती है इन उत्तमादि पुरुषोंकेही पर्यायशब्द ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र संज्ञा हैं ।

चार आश्रम ।

इनहीं पुरुषोंमें हिंदुओंके समाजमें प्रथम विद्या पढ़नेतक ब्रह्मचर्य रखनेसे ब्रह्मचारी संज्ञा, पुनः गृहस्थ करनेसे गृहस्थी संज्ञा; वनमें तप करनेसे वानप्रस्थसंज्ञा और सर्वको त्याग करनेसे संन्यस्तसंज्ञा बांधी है ।

चारवर्णाश्रम सर्व देशोंमें हैं।

यह चार वर्णाश्रमोंकी संज्ञा, सर्व देशों विलायतोंमें, आप अपने समाजमें, मुसलमान और अंग्रेजादि, अच्छे पुरुषोंने, निज निज देश भाषाके अनुसार कल्पना की हुई है केवल नामांतरका भेद है, स्वरूपसे भेद नहीं।

उत्तम कैसे होता है ?

आप अपने समाजमें, बेटी पंगती खान पानादि, व्यवहार भिन्न भिन्न करनेसे वा एकमेक करनेसे तो उत्तमादि संज्ञा पुरुषोंको प्राप्त नहीं होती किंतु उत्तमादि संज्ञा तो गुणोंसे प्रयुक्त है। जातिसमाजके अनुसार उत्तमादि संज्ञा नहीं प्राप्त होती किंतु धर्म अधर्मकी उत्कर्षता अपकर्षताके अधीन है ।

नीच कौन है ?

यह नहीं कि, ब्राह्मणसे क्षत्रिय नीच है, क्षत्रियसे वैश्य नीच है, वैश्यसे शूद्र नीच है, बरन् नीच कर्म करनेसे नीच कहाता है, ऊंच कर्तव्य करनेसे ऊंच कहाता है। भले बुरे कर्तव्यके अधीनसे ऊंच नीच होजाता है; नीच ऊंच होजाता है। यह प्रकरण शास्त्रोंमें भी लिखा है और प्रत्यक्ष देखनेमें भी आता है।

भिन्न २ जाति आदि संज्ञा बांधनेसे क्या लाभ है?

सर्वपुरुष एक कामको नहीं करसक्ते और सर्वकामोंको एक पुरुष भी नहीं करसक्ता। अनेकही काम हैं, अनेकही पुरुष हैं। इसवास्ते जुदे २ कामोंके अनुसारी पुरुषोंकी, जुदी जुदी संज्ञा बांधे बिना व्यवहार सुखपूर्वक सिद्ध होता नहीं।

ब्राह्मण कौन है ?

इसवास्ते शास्त्र अध्ययनपूर्वक तथा शास्त्रोक्त कामोंके अनुष्ठान पूर्वक, पक्षपातरहित और मर्यादा बाहर लोभरहित, उपदेशक पुरुषोंकी ब्राह्मणसंज्ञा की गई है क्योंकि पक्षपातरहित उपदेशक पुरुषोंविना प्रजाके कल्याणकी उन्नति नहीं होती।

क्षत्रिय किसे कहते हैं ?

वैसेही पक्षपातरहित धर्मपूर्वक युद्धमें उत्साही तथा अदालती प्रजापालक पुरुषोंकी क्षत्रियसंज्ञा की है. क्योंकि ऐसे शूरोंमें बिना प्रजाका कल्याण होता नहीं, प्रजाको चौरादि लूटलेवें।

वैश्यनाम किनका है ?

व्यापार कर धनसंग्रह करनेकी जिन पुरुषोंकी बुद्धि है, तिनकी वैश्यसंज्ञा की गई है। इन विना भी प्रजाका कल्याण नहीं होता. क्योंकि अन्य देशकी वस्तुओंको इस देशमें, इस देशकी वस्तुओंको अन्य देशमें, लेजाने बिना प्रजा सुखी नहीं होती।

शूद्र किसको कहते हैं ?

तैसेही काष्ठ, लोह, कपडे, दर्जी, धोबी, नाई, सोनी, आदि जो पूर्वोक्त तीन बुद्धिरहित जो पुरुष हैं; तिनकी शूद्रसंज्ञा की गई है। इन बिना भी प्रजाका कल्याण नहीं होता क्योंकि मकानादियों बिना प्रजाको सुख कैसे होगा ? किंतु नहीं होगा ।

नीच कैसे होता है ?

इन मध्ये जो नीच कामोंको करेगा सो नीच होगा अन्यथा नहीं. जीवोंके जीवनवास्ते काम अनंत हैं, धर्मपूर्वक तिन कामोंको करनेसे नीच नहीं होता । जो जाति वा समाज नीच हो तो जज्जके बेटेको जज्जी अधिकार लायकी बिना मिलना चाहिये, पंडितके बेटेको पढे बिना पांडित्यताका अधिकार नहीं मिलता । इसप्रकार कर्मही प्रधान है । इसीवास्ते " स्व स्व कर्मण्यभिरता सांसिद्धिं लभ्यते नरः " आप अपने धर्मपूर्वक नाम सचावटपूर्वक व्यवहार करते अंतःकरणकी शुद्धि सर्व जीवोंकी होती है यदि इनमें कोई नीच होता तो तिसके चित्तकी शुद्धि नहीं होनी चाहिये ।

वर्णाश्रम विभाग प्रजाकी उन्नतिका कारण है।

इससे कर्त्तव्योंके अधीनही उत्तमादि व्यवहार रखनेसे प्रजाकी उन्नति तथा कल्याण होता है, क्योंकि नीचकर्म करनेसे नीचपद मिलनेका भय होता है, ऊँच कर्मी करनेसे ऊँचपद मिलनेकी । इस संकेतसे सर्व जीव सर्व विद्यामें प्रसन्नशील रहते हैं, आलसी नहीं होते । आलसही बुद्धिकी क्षीणताका कारण है, आलससेही सर्वकाम बिगड़ते हैं ।

परशुराम ।

इतनेमें परशुराम आकर बोले हे सत्सभा!इन अधिकारी पुरुषोंको, कामादि क्षत्रिय नाम शूरोंने (इक्कीस २१ को चारबार गननेसे चौरासी ८४ होता है, सो चौरासीलक्ष योनियोंसे इन कामादिकोंने अस्मदादि जीवोंको) जीता था सो, अब माया तत्कार्यसे परे अर्थात्

तिस माया तत्कार्य मनादिकोंका सच्चिदानंदस्वरूपसे जो साक्षी है सोई मेरा स्वरूप राम है। इस दृढ निश्चयवान मुमुक्षु वा आत्मज्ञानी रूप परशुरामने अब कामादिक्षत्रिय नाम शूरोंको (चौरासीलक्ष योनियोंमें जो शत्रु थे तिनका) निक्षत्रायण किया अर्थात् जीता है। वा पूर्वोक्त लक्षणयुक्त जो मुमुक्षु परशुरामको ब्रह्मवेत्ता गुरुके इक्कीसवार अन्वय व्यतिरेक करके जातीय, विजातीय, स्वगत भेद रहित वा देशकाल वस्तु भेदरहित जो सच्चिदानंद ब्रह्म एक है, सोई बुद्धि आदियोंका ईशनाम नियामक तू चैतन्य सत् सुखरूप है। पश्चात् नववार उपदेशसे मुमुक्षु निक्षत्रायण नाम अज्ञान तत्कार्यका अत्यंताभाव वा मिथ्यत्व निश्चय करता है, यही अंतर परशुरामके निक्षत्रायणका अर्थ है।

। राम ।

(रामकथाका यथार्थ अध्यात्मिक आशय.)

पुनः दशरथके पुत्र राम आयकर सभामें बोले कि, हे पक्षपातरहित सभा! रामनाम है, सर्व नाम रूप वाङ्मनसहित दृश्यमें अवाङ्मनसगोचर जो अस्ति भाति प्रियरूप आत्मा रम रहा है नाम पूर्ण होरहा है, तिसका तिस अवेद्यत्व सदा अपरोक्ष मनादिकोंके साक्षी रामको जो अपना स्वरूप संशयरहित जानता है, सोई योगी ज्ञानी है। सो अज्ञानरूपी समुद्रको, ज्ञानरूपी सेतु बनाके, अज्ञान तत्कार्य जो काम क्रोधादि राक्षस, तिनको स्वरूपसे पृथक् सत्ताका अत्यंताभाव वा मिथ्यत्व निश्चयरूप धनुषसे, मारकरके, निष्कर्तव्यता बुद्धिरूप सीतासहित, प्रारब्धरूपी पुष्पकविमानपर बैठकर, इस संघातरूप अयोध्यामें जीवन्मुक्तिरूपी सिंहासनपर स्थित होते हैं, सोई पुरुष राम जानना पुनः रामने कहा।

। ईश्वर भावनामें है ।

हे जगत हितचिंतक सद्सभा ! सर्व स्त्रीमात्रमें प्रकृतिरूप सीताको भावना करे और सर्वपुरुषमात्रमें सच्चिदानंद आत्मा ब्रह्मराम भावना करे, वा आपसहित सर्व स्थावर जंगम, स्थूल सूक्ष्म, .मूर्तामूर्ती, नाम रूप, जड चेतन सर्व सृष्टिमें केवल सच्चिदानंद हरि भावना करे तो सर्वदर्शन हरिकाही सर्व देशमें सर्वकालमें सर्व वस्तुमें इनको होता रहेगा क्योंकि परोक्ष वा अपरोक्ष, जड वा चैतन्य हस्त पादादि अवयवों सहित, वैकुंठादि देशनिवासी वा ईह्यक (इस) लोक निवासी, ब्रह्मा विष्णु शिव राम कृष्ण नरसिंहादि मूर्तियोंमें, वा अन्य मूर्तियोंमें, ईश्वर भाव वा देवभाव, तुम्हारी भावनामेंही सिद्ध है। नहीं तो तिनमें निज ईश्वर भावकी स्फुर्ति नहीं कि, हममें ईश्वरभाव करो वा न करो। संघात और संघातके सर्व धर्म, सर्व सामग्री; दृश्यमान प्राणीमात्रमें समही है तथा अंतर्यामी मनादिकोंके साक्षी आत्मा भी सर्व संघातोंमें समहीं है (घटादिकोंमें आकाशवत्) इससे माया तत्कार्यविषे, जिस किसी व्यक्तीमें, ईश्वरभाव कल्पना है, सो पुरुषकी भावनाके अधीन ईश्वरता है, व्यक्तीके स्वरूपसे नहीं । सो मायामें वा मायाके कार्य पंचभूत व्यक्तियोंमध्ये, किसीमें भी ईश्वरताका अंगीकार है तो शास्त्र, प्रमाणसे केवल पुरुषकी भावनाके अधीन ईश्वरता है और कोई नियामक है नहीं. क्योंकि निर्गुण निराकार ईश्वर, ध्यान कर्त्ताका निजात्मा है सो ध्यानमें आता नहीं, जो ध्यानमें आता है सो माया वा मायाका कोई न कोई कार्यही होता है। इसवास्ते एक मूर्तिमें भी ईश्वरता, शास्त्रप्रमाणसे, भावनाके अधीन है और सर्व सृष्टिमें भी ईश्वरता शास्त्रप्रमाणसे भावनाके अधीन है। जो एक मूर्त्तिमें शास्त्रप्रमाणसे ईश्वरभावसे पवित्रता मनकी होगी तो सर्व सृष्टिमें शास्त्रप्रमाणसे ईश्वरभावसे, पवित्रता क्यों न होगी? किंतु तिससे भी अधिक होगी।

जैसे तुमको धातु पाषाणादि एक मूर्तिमें, ईश्वरभाव करके, मन्दिरमें दर्शन करनेसे पवित्रता होती है,तथा तिसकालमें तुम कोई भी असत् संभाषणादि तथा काम क्रोध दंभ कपट द्रोहादि पाप कर्म नहीं करते। तैसे जब तुम स्थावर जंगमोंके देहरूपी मांदिरोंमें, शास्त्रप्रमाणसे, ईश्वरभाव करोगे तो एक तो तुमको पवित्रताकी अत्यंत उत्पत्ति होगी, दूसरा मन वाणी शरीरसे किसीसे भी तुम द्रोहादि तथा अनिष्ट संपादनादि न करोगे क्योंकि जो द्रोहादि तुम किसीसे करोगे तो तुम्हारा सांगोपांग सर्वमें ईश्वरभावही नहीं सिद्धहोगा। जो किसी एक दृढभावनामें गोलमाल करोगे तो सर्व भावनामें गोलमाल होगा क्योंकि सर्व भावना शास्त्रप्रमाण होनेसे तथा अंतःकरणके धर्मरूप होनेसे समही है। एक भावनी मानना एक न माननी यह सिद्धांत घरके हैं। भावनाके दृढ अदृढका भेद है; स्वरूपसे नहीं। जो आगे इच्छा हो सोई करो। यह पक्षपातरहित रामके वचन सुनके सर्व सभाके लोग श्लाघा करने लगे।

कृष्ण कौन है ?

इतनेमें कृष्ण आकर बोले हे सर्वमें आत्मोपमादर्शी अधिकारी जनो! अज्ञान तत्कार्य मनादि, यह संघात समष्टि व्यष्टि क्षेत्र है,इस क्षेत्रके न्यूनाधिक भावाभावको तथा इसके धर्मोंको जो चैतन्य जानता है, तिसका नाम क्षेत्रज्ञ है। सो क्षेत्रज्ञही तुम्हारा हमारा तथा सर्व जगत्का स्वरूप है। इस क्षेत्रज्ञको अपना आप स्वरूप जाननेसे सर्व अत्यंत दुःखोंकी निवृत्ति होती है। इस क्षेत्रज्ञका और कोई क्षेत्रज्ञ है नहीं; इसीसे स्वयंप्रकाश स्वरूप है। हे साधो! जैसे कपडेकी गिरनी में एक अंजनसे आगे हजारों कलें जुदे जुदे कामकी चलती हैं, तैसे एक क्षेत्रज्ञरूप अंजनकरके देहरूपगिरनीमें इंद्रिय प्राण मनादि जुदी जुदी आप अपने कामकी कला चलती हैं। हे सम्यक्दर्शी जनो!

यह स्वयंप्रकाश क्षेत्रज्ञही, ब्रह्मा विष्णु शिवादिकोंका, तथा तुम्हारा हमारा सर्व जगत्का स्वरूप है। इसीके जाननेसे मोक्ष होती है।

नरसिंहावतार।

एतनेमें नरसिंह आयकर बोले हे सत्संभाषणादि दिव्यगुणवान् सज्जनलोगो ! अज्ञानरूप जीव हिरण्यकशिपुको जानो। विषयबुद्धि तिसकी स्त्री जानो। मोक्षरूप आत्म दृढनिश्चयरूप प्रह्लाद जानो। काम क्रोध लोभ, वा सत्वादि तीनगुण; वा जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति; वा स्थूल सूक्ष्म कारण; वा कायिक वाचिक मानसिक; भिन्न भिन्न क्रिया वा पृथिवी, आप, तेज; अध्यात्म, आधिदैविक आधिभौतिक; वा द्रष्टा दर्शन दृश्यादि; त्रिपुटीरूप त्रिलोकीका राजा जीवरूप हिरण्यकशिपु हुआ अर्थात् इनका अभिमानी हुआ। विषय इंद्रियके संबंधजन्य सुखको यज्ञ कहते हैं "यज्ञंवै विष्णुः" पूर्ण वस्तुका नाम यज्ञ है, भूमामेंही पूर्ण वस्तु सुखरूप है, इसवास्ते सुखको यज्ञकहा है। तिस यज्ञको करते, जीवरूप हिरण्यकशिपु, देहरूप स्वर्गमें, सुख दुःखके अनुभवरूप भोगको भोगनेलगा अर्थात् तिनके धर्मोंमें तादात्म अध्यास किया। निश्चयरूप प्रह्लाद, सत्संगके प्रतापसे;विष्णु व्यापक चैतन्य जो जीवरूप प्रतिबिंबका स्वरूप बिंब है,तिसका भजन करता था नाम अपना स्वरूप जानता था।परंतु सगुण भक्तिकी उत्कर्षता दिखलानेवास्ते सगुणमूर्त्तिका निश्चय किया। तात्पर्य यह कि, अंतःकरण रूप जलादिकोंमें,आत्मारूप सूर्यका प्रतिबिंब पडता है,तिसका आगे, दिवालरूपी इंद्रियादिकोंमें भी पडता है; सो सर्व प्रतिबिंबादिकोंका स्वरूप चैतन्य आत्मारूप बिंब सूर्यही है। इससे प्रतिबिंब जीव (हिरण्यकशिपु) रूप विद्वान् अपने बिंबस्वरूप आत्मसूर्यको, अपरोक्ष जानता है। देहाध्यासरूप निश्चयको प्रह्लादके पढानेवाला पंडित जानना। मोक्ष निश्चय (प्रह्लादरूप मुमुक्षु) जीव (हिरण्यक-

शिपु) रूप राजासे वा प्रारब्धसे वा कुसंगसे हुआ जो देहमें पीडारूप दंड तिससे (मोक्ष निश्चयरूप प्रह्लाद) न चलायमान हुआ। तथा इंद्रियरूप दैत्योंके, शब्दादि विषयरूप लोभ देनेसे भी, चलायमान न हुआ। तात्पर्य यह कि, गुरु शास्त्र स्वअनुभवसे हुआ यथार्थ निश्चयको; मुमुक्षु जन अनेक भयानक रोचक वाक्य सुनके भी त्यागते नहीं। वही मुमुक्षुताका दृढ़निश्चयरूप प्रह्लादके प्रतापसे, अंतःकरण रूपी थंभेसे, नृसिंहरूप बोध, उत्पन्न हुआ।

नाद और विन्दसे दो प्रकारकी सृष्टि।

तात्पर्य यह कि, वीर्य और नादसे दो प्रकारकी सृष्टि होती है। माता पिताके सकाशसे वीर्यसृष्टि होती है और गुरुके सकाशसे नादी सृष्टि होती है. क्योंकि प्रथम अज्ञान कालमें मैं वर्णी आश्रमी हूँ, मल मूत्रका शरीररूप भी मैं हूँ, मैं सुखी दुःखीरूप हूँ, मैं कर्ता भोक्ता जन्म मरणमान हूँ, मैं गमनागमनवान हूँ, बंध मोक्षवान् हूँ, क्षुधा पिपासावान् हूँ इत्यादि देहाध्यासको लिये निश्चय होता है। जो निश्चय अंतर दृढ़ होता है सोई पुरुषका शरीर नाम स्वरूप होता है, अंतःभी वहीरूप होता है। कदाचित् पूर्वसंचित पुण्योंके वशसे सद्गुरुके उपदेशके सकाशसे पुनः यह निश्चय होता है कि, यह अज्ञान तत्कार्य असत् जड दुःखरूप जो समष्टि व्यष्टि संघात रूप स्थूल सूक्ष्म कारण देह है, सो देहरूप संघात अपने धर्मों सहित मैं नहीं और यह मेरा नहीं। यह पंचभूतरूप है, वा मायारूप है और मैं इनका साक्षी घट द्रष्टाके समान सत् चित् आनंदरूप अवाङ्मनसगोचर आत्मा हूँ। यह पूर्वदेहरूप निश्चयको नाश करता है तिससे विलक्षण उत्तर कालमें आत्मरूप निश्चय शरीर उत्पन्न होता है। वही तिसकी गति होती है। सो आत्मनिश्चय नृसिंहरूप बोधने जगत् सहित जीवत्वरूप हिरण्यकशिपुको मारा नाम मिथ्यत्व निश्चय वा

अत्यंत अभाव निश्चय किया । किंचित् काल पीछे नृसिंहरूप बोध आप भी शांत हो जावेगा, जैसे अग्नि काष्ठादि तृणोंको जलाके आप ही शांत होजाती है ।

नरसिंह शब्दका अर्थ ।

तात्पर्य यह कि, नरनाम देह बुद्धि त्यागके, सिंहनाम आत्मा नात्मा विचारसे, आत्मबुद्धि होनी यही नृसिंह शब्दका अर्थ है। इंद्रियरूप देवता बोधरूप नृसिंहकी स्तुति करते हैं । हे देवात्म ! तुझ चैतन्य सत् सुख साक्षीकी सत्ता स्फूर्ति करके ही, हम जड मन इंद्रियादि संघातकी चेष्टा होती है। हम वाङ्मनसंगोचर दृश्यकी, तुझ अवाङ्मनसगोचर द्रष्टासेही सिद्धी होती है । हम असत् जड दुःख रूप भी, तुझ सत् चित आनंदसेही सत् चित् सुख सरीखे होरहे हैं इत्यादि । इससे हे नर बुद्धिरहित आत्मरूपसिंह बुद्धिवान् अधिकारी जनों ! तुम भी जीवत्वरूप हिरण्यकशिपुको मारके, बुद्ध्यादिकोंके साक्षी, नृसिंह आत्माको अपना आप स्वरूप जानो । तिससे पृथक् सर्वको अनित्य जानो ।

काम क्रोधादि ।

इतनेमें काम क्रोध लोभ मोह अहंकारादि मनुष्यमूर्ति धारकर तिस सभामें आये और कहने लगे। हे प्रजा ! हमारा सज्जन लोगोंकी रीतिसे अनुष्ठान करता, कदाचित् भी, राजादि दंडका अधिकारी नहीं देखनेमें आता, उलटा धर्मात्मा बाजता है । अधर्म रीतिसे हमारा अनुष्ठान करता ही राजादि दंड पाता देखा है, अन्य नहीं। दृष्ट कल्पनाके अनुसारही अदृष्ट कल्पना की जाती है. क्योंकि पक्षपातरहित न्यायकारी पुरुषोंका संकेतरूप कायदा, जैसे इस भारतवर्ष में है, तैसेही अन्य देशोंमें भी है। तैसेही उम्मेद है कि, परलोकमें भी होगा। जो अन्यथा है तो अन्याय है, न्याय नहीं। जो

शास्त्रोंमें हमारा त्याग लिखा है तो दुःखदायक अधिक अंशकाही त्याग लिखा है, सामान्यका नहीं। सामान्यसे हमारा त्याग हो ही नहीं सक्ता. क्योंकि ज्ञान,इच्छा और यत्नपूर्वक ही सर्व जीवोंके प्रवृत्ति निवृत्तिरूप, संघातका व्यवहार होता है। शरीर होते कामादि कैसे त्यागे जावेंगे ? शरीरके कारण होनेसे। जो इससे अन्यथा मानोगे तो संसार खाता ही उठ जावेगा क्योंकि समूह अंतःकरणकी वृत्तियाँ रूप इच्छाका नाम काम है, तिन कामरूप इच्छाओंके मध्यमें, स्त्रीके भोगनेकी इच्छाका नाम भी काम है, सो स्त्रीसंभोग काम गृहस्थ विमुख संन्यासीको नहीं चाहिये, गृहस्थीको तो मना नहीं। अधर्मसे भोग मना है, जो धर्मसे स्त्री संभोग मना हो तो आप लोगोंका दर्शन कहांसे होगा ? हां अधिक निज स्त्रीसे भोग करनेसे और तो कोई दोष है नहीं, परंतु शरीरके नाताकती, वीर्यक्षीण, संततिका संशय और शरीरमें रोग आदि परमदोष हैं। इसवास्ते मर्यादासे अधिकका त्याग है।

क्रोध।

तैसेही पूर्व तथा वर्तमानमें भी किसी हेतुसे वरशाप लोगोंको ज्ञानी लोग भी देते सुनते और देखते हैं। सो क्रोध मोह अर्थात् रागद्वेष बिना हो नहीं सक्ता। यह कायदाही है जो निज अनिष्ट संपादन करनेवालेपर द्वेषरूप क्रोध करना ही पड़ता है। कदाचित् सात्विकादि हेतुसे कोई पुरुष द्वेषरूप अनिष्टकरता पुरुष पै क्रोध नहीं भी करता परंतु हमेशःका नियम नहीं। यह अनुभवसिद्ध बात है।

मोह।

तैसे ही मनवाणी शरीरसे वा धनादिसे सेवक पुरुष पर पूर्व तथा अब भी, ज्ञानी भी प्रसन्न होते सुनते देखते हैं, किसी रीतिका राग रूप मोह विना दूसरेपर प्रसन्नता होती नहीं, यह भी अनुभवसिद्ध है।

लोभ ।

तैसेही लोभ अनेक रीतिका है; किसी न किसी निज प्रयोजन रूप लोभको लियेही पुरुषोंकी प्रवृत्ति निवृत्ति रूप अनेक रीतिके व्यवहारमें प्रवृत्त होती हैं। प्रयोजन विना मूढ पुरुषभी निजकार्यमें प्रवृत्त नहीं होता। ऐसा नहीं मानोगे तो संसार खाताही उठ जावेगा इत्यादि।

अहंकार ।

तैसेही अहंकार बिना शरीरकी रक्षा होती नहीं, तथा खान पानादि व्यवहार भी सिद्ध होता नहीं. क्योंकि अहं पूर्वकही त्वं आदि व्यवहार होते हैं और जबलग शरीर है तबलग अहं त्वं व्यवहार होताही रहेगा अन्यथा नहीं होगा। यह बात सर्वको अनुभवसिद्ध है, ग्रंथविस्तार भयसें विशेष लिखा नहीं।

"अतिसर्वत्रवर्जयेत्" इस न्यायसे मर्यादासे अधिक ही कामादियोंका त्याग है। इससे हे अधिकारीजनो! आप अपने वर्णाश्रमके अनुसार, धर्मपूर्वक, लक्षों तरहके, विषय इंद्रिय संबंध जन्य, सुख दुःखका, तथा काम क्रोधादियोंका भोग भोगो नाम अनुभव करो, तुम किंचित्मात्र भी दंडके अधिकारी (इस लोकमें तथा परलोकमें) नहीं होंगे। परंतु सज्जन पक्षपातरहित पुरुषोंके, संकेत (धर्मरूप कायदे) को उल्लंघन करोगे तो इसी लोकमें पकडे जाओगे। आगे जो इच्छा हो सो करो।

वैरागादि दैवी गुण ।

इतनेमें वैरागादि दैवी गुण मनुष्य आकृति धारकर आये और कहने लगे-हे गुरु! शास्त्रमें श्रद्धावान् संतो! वैरागादि गुण भी शरीर रक्षा पूर्वक ही धारण करना चाहिये क्योंकि शरीरकी अरामदारीसे ही सर्व धर्म, अर्थ, काम मोक्ष चारों पदार्थ सिद्ध होतेहैं अन्यथा नहीं। "अतिसर्वत्रवर्जयेत्" । देखो अति यज्ञ दानादि शुभ कर्म करनेसे बलि

पातालको और युधिष्ठिर वनवासको गये हैं। इससे अति कोई बात भी करनी नहीं। जिन जिन कामोंसे, पापरूप दुःख भविष्यत् वा वर्तमान कालमें होवे, तिन तिन कामोंकाही त्याग करना रूप वैराग्य चाहिये क्योंकि सत्वगुणके कार्य, चित्तकी एकाग्रतापूर्वक जो जो मन वाणी शरीरसे लौकिक सुख वा पारलौकिक सुखवास्ते शुभ कार्य करोगे, तो अत्यंत वह कार्य फलवान होवेगा। सो चित्तकी एकाग्रता सत्वगुणके अधीन है क्योंकि एकाग्रता सत्वगुणका कार्य है शास्त्री वा अशास्त्री साधनोंसे अत्यंत पीडित शरीरमें, विशेष सत्वगुण होता नहीं, तमगुण वा तमगुणका कार्य क्रोध आलस्य अहंकारादिही होते हैं क्योंकि यह मनका स्वभाव है, जो जो वस्तु मनके (इंद्रिय द्वारा वा अंतरही) सन्मुख होवे, तिसके आकारही मन होजाता है । सो दुःखपीडित कालमें दुःखही सन्मुख है सुख नहीं; इससे तिस कालमें दुःखाकारही मन होवेगा, सुखाकार नहीं। इसीकारण अत्यंत शरीर पीडितपूर्वक, वैरागादि तपस्या करनी नहीं चाहिये। यह नहीं कि, हम अत्यंत पीडित होकर हरिको याद करेंगे, तवहीं हरि अंगीकार करैगा, जो हम सुखपूर्वक हरिको याद करेंगे तो ईश्वर अंगीकार नहीं करैगा (यह ज्ञाननेत्रहीन मूर्खोंकी दृष्टि है) किंतु सच्चे दिलसे ईश्वर प्रेम चाहता है, शरीरका पीडन अपीडन नहीं चाहता।

। धर्माधर्म ।

(श्रेष्ठ अश्रेष्ठ नीच ऊँच, कुलीन अकुलीन, भले बुरेका विचार.)

इतनेहीमें, दैवी आसुरी गुणरूपी शुभाशुभकर्मोंके पुत्र, धर्माधर्म मनुष्य रूप धारके इसलिये आये और बोले।

। अपना सदाचरणही कल्याणका कारण है कोई धर्म (मजहब) नहीं।

हे धार्मिक सज्जन पुरुषो! हम दोनोंका किसीसेभी पक्षपात नहीं। शुभाशुभ कर्मोंसे हमारी उत्पत्ति है। इसलिये जो कोई हिंदू वा

मुसल्मान वा कोई अन्य जाति, सत्संभाषणादि शुभकर्म अथवा असत् संभाषणादि अशुभ कर्म करैंगे तो तत् तत् जन्म, हम धर्माधर्म, कर्मकर्ताको, पक्षपातरहित, न्यायपूर्वक, सुख दुःखका अनुभव रूप फल भुगावेंगे। इसमें किसी हिंदू मुसल्मानका पक्षपात न होगा।

उत्तमता मध्यमता धन और कुल आदिके अधीन नहीं।

तुम लोग प्रत्यक्ष देखो! झूँठा लुच्चा पुरुष, बडा कुलवान तथा धनवान भी बाजता है तो भी सर्व जगहमें तिरस्कारही पाता है और जो सच्चा ईमानदार गरीब किसी जातिकाभी क्योंनहो परन्तु वह पुरुष सर्व स्थानमें सत्कार ही पाता है, अन्य नहीं। चोरी किसी जाति पंथका करेगा पकडा जावेगा और रीत्यनुसार तिसको सजा मिलेगी। अन्यथा सजा नहीं होगी। जो जाति और भेष प्रयुक्त, शुभाशुभ कर्मोंका, सुख दुःख रूप फल होता तो उत्तमता मध्यमता जातिके अधीन होती है सो ऐसा देखनेमें नहीं आता। इससे उत्तमता मध्यमता कर्मके अधीन है।

नीच कौन है?

देखो हजारों देशोंकी बोलियोंमें, आप अपने शास्त्रके संस्कारोंके अनुसार, ईश्वरका भजन तथा ईश्वरनिमित्त भूँखे प्यासे दुःखी जीवोंको, सर्वमनुष्य अन्न जलादि अर्पण करते हैं सो सर्वका भजन तथा दान ईश्वर अंगीकार करता है। यह नहीं कि, एकका लेता है एकका नहीं। जो विषमदर्शी है सो हमारा भाई बंधु जीव है, ईश्वर नहीं, क्योंकि सर्व सृष्टी ईश्वररूपी पिताके बाल बच्चे हैं? तथा ईश्वर सर्वज्ञ है। इससे जिस जिस समाज और जातिके पुरुषोंका भजन दानादि किया हुआ ईश्वर अंगीकार नहीं करे, तिसको नीच जानना

चाहिये। तथा राजा अपराध बिना जिसको दंडदेवे अर्थात उत्तम जातिसंज्ञक जुलमीको त्यागके, तिसके बदले अन्यको दंड हो तो उनको नीच जानना चाहिये। सो ऐसे देखनेमें आता नहीं।

आप अपने समाज शास्त्रके संकेतसे सर्व संमत, सत्संभाषणादि रूप धर्मपूर्वक,मन वाणी शरीरसे लौकिक वा पारलौकिक कर्म करनेसे सर्वके अंतःकरणकी शुद्धि होती है। "स्वस्व कर्मण्यभिरतासंसिद्धिलं-भ्यतेनरः"। इससे मनशुद्धिपूर्वकही, सगुण वा निर्गुण ईश्वरकी उपासना होती है। निश्चल मनमेंही ज्ञान होता है। ज्ञानसेही मोक्ष होती है। इससे सर्व जीव समही हैं, व्यवहार भिन्न भिन्न हैं। सो व्यवहार एक शरीरमें भी इंद्रियभेदसे भिन्न भिन्न है। तो भिन्न भिन्न शरीरोंमें, भिन्न भिन्न व्यवहार है इसमें कहनाही क्या है? परंतु गुण दोष प्रयुक्त उत्तमता नीचता,श्रेष्ठ अश्रेष्ठ कर्तव्यके अधीन है, शरीर जाति समाजके अधीन नहीं।

उत्तमता संपादन करनेवालेका कर्त्तव्य।

इससे जिसको उत्तमता संपादन करनेकी अभिलाषा हो सो सत्संभाषणादि, शुद्ध धर्मसे निरंतर प्रीतिकरे और असत संभाषणादि अधर्मसे अरति करे।

प्रयागादितीर्थ।

इतनेमें प्रयागादि तीर्थ आये प्रयागने कहा हे महाशयो! तीर्थनाम पवित्रताका है; सो पवित्रता मनको,सत्संभाषणादि पवित्र तीर्थोंमें स्नान अर्थात उनको धारण करनेसे होती है,अन्यथा नहीं।जो पुरुष जाग्रत स्वप्न सुषुप्तिः वा प्रिय, मोद, प्रमोद, सुषुप्ति आरंभमें वृत्तिः वा भूत भविष्य वर्तमान कालः वा इन जाग्रतादियोंमें होनेवाले स्थूल,सूक्ष्म, कारण, शरीरः वा सत्वः रज, तम, वा द्रष्टा, दर्शन, दृश्य, वा ध्यात।

ध्यान, ध्येय, प्रमाता, प्रमाण, प्रमेय,ज्ञाता,ज्ञान,ज्ञेयादि; त्रिपुटी रूप त्रिवेणीमें स्नान करता है अर्थात् "मैं सच्चिदानंद इन जाग्रतादि त्रिपुटी रूप त्रिवेणी दृश्यका साक्षी आत्मा हूँ" ऐसे दृढ निश्चयरूप जलमें जो स्नान करता है सो पवित्रात्मा जीवन्मुक्त हम लोगोंको भी अपनी चरणधूरि कर पवित्र करता है ।

एकादशी आदि व्रत ।

(व्रत और महाव्रत.)

इतनेमें मनुष्य मूर्ति धारकर एकादशी आदि व्रत आकर बोले। हे सर्व जगत्के मित्रो ! एक केवल व्रत है और एक महाव्रत है। महाव्रतोंके अन्तर्भूतही सर्व व्रत आजाते हैं;जैसे नव गनतीके भीतरही सर्व गिनती आजाती है ।

पञ्चमहाव्रत ।

(१ सत्य, २ अस्तेय, ३ अहिंसा, ४ ब्रह्मचर्य, ५ शास्त्र आज्ञा पालन.)

सो देशकाल वस्तु भेदरहित सत्यबोलना १,चोरी (मन, वाणी, शरीरसे) न करना२,मन वाणी शरीरसे परप्राणीको पीडित न करना ३, निज पाखानेमें पेशाब करना नाम ब्रह्मचर्यसे रहना ४,मन वाणी शरीरसे सत्य शास्त्रके विरुद्ध कामोंको न करना ५, यह पंच महाव्रत हैं। तात्पर्य यह कि, तीर्थस्थानमें झूंठ नहीं बोलना,अन्यत्र बोलना, एकादशीके दिन सत्यबोलना अन्यत्र नहीं, साधु महात्माके सन्मुख झूंठ नहीं बोलना, अन्यत्र बोलना, (ऐसेही हिंसा आदियोंमें भी जानलेना) ऐसा नहीं, किन्तु सर्वकालमें सर्वदेशमें सर्ववस्तुमें सत्य संभाषणादि महाव्रत करना चाहिये ।

चार महाव्रत ।

(चारमानसीपाप १ अमित्रता २ अमुदता ३ अकरुणा ४ कुत्सगति हैं और जिनके निवृत्तिकी औषधी ४ महाव्रत १, मैत्री, २, मुदिता ३ करुणा, ४ उपेक्षा हैं)

वा यह महाव्रत करना चाहिये चारही प्रकारके मानसीताप हैं, चारही तिन तापोंके दूर करनेकी मैत्र्यादि औषधी हैं । सारांश यह कि, सर्व

धनादि सामग्रीसे अपने तुल्य जीवोंमें मित्रता करनी, इससे अमित्रताजन्य तापकी निवृत्तिहोगी। तैसे ही अपनेसे अधिक सामग्रीवाले मनुष्योंमें, मुदता करनी, अमुदिताजन्य तापकी हानि होगी। तैसे दुःखी जीवोंमें करुणा करनी, अकरुणाजन्य तापकी हानि होगी। तैसेही कुसंगति जीवोंमें उपेक्षा करनी अर्थात् अनिंदापूर्वक तिनका त्याग करना जिससे कुसंगतिजन्य दुःख न होवे।

नवमहाव्रतोंका फल।

हे अधिकारी जनो! पूर्वोक्त नव महाव्रतोंके अनुष्ठानवाले मनुष्यमात्रको, इसी लोकमें मानसीतापोंकी हानि तथा अभय और सर्वमें सत्कारादि प्रत्यक्ष फल सर्व विद्वानोंको अनुभव है। अंतःकरणकी शुद्धि भी इनहीं व्रतोंसे होती है, परमधर्मभी यही है, महाकर्मभी यही है और यही परममोक्षके साधन हैं। इनहींके अंतर्भूत सर्व पूज्यमानीय कर्म धर्म आचार हैं। इनहींके पालनसे धर्म, अर्थ, काम, मोक्षका अधिकारी होता है। यही सर्व संमत सिद्धांत है।

अन्य पंचमहाव्रत।

दृष्ट कल्पनाके अनुकूलहीं अदृष्ट कल्पना होती है। इससे परलोकमेंभी इनहीका महत्व होगा।

वा यह पंचमहाव्रत जानना। पंच अन्न मायादि शोकोंका, तथा पंच पृथिवी आदि स्थूल सूक्ष्म भूतोंका, तथा पंचज्ञानेन्द्रिय तथा पंचकर्मेंद्रिय, तथा चतुष्टय रूप, मन बुद्धि चित्त अहंकार और इन सर्वके कारण माया, तथा पंचप्राण, तथा पंचशब्दादि विषयादि, ये सब पंचक मुझ सच्चिदानंद आत्माके नहीं और मैं इनका नहीं, किंतु यह माया तत्कार्य भ्रमरूप है, मैं इनके न्यूनाधिक भावाभावका द्रष्टाहूँ (घटद्रष्टाके समान) इस

१ उपरोक्त—१ सत्य, २ अस्तेय, ३ अहिंसा, ४ ब्रह्मचर्य, ५ धर्मपरायणता, ६ मैत्री, ७ मुदिता, ८ करुणा, ९ अपेक्षा—यही नव व्रत हैं।

दृढ निश्चयका नाम पंचमहाव्रत है । इनका अनुष्ठान करनेवाला जीवताही मुक्त होता है ।

सप्त समुद्र ।

इतनेमें मनुष्य मूर्ति धारके सप्त समुद्र आकर बोले—हे साधो ! इस शरीर संघात रूप पृथिवीमें रस, रुधिर, मेद, मांस, अस्थि, मज्जा, वीर्य रूप धातु सप्त समुद्र हैं । वा जीवरूप पृथिवीमें, आवरण, विक्षेप, ज्ञान, अज्ञान, गमनागमन; निरंकुशता, सप्त अवस्था रूप सप्त समुद्र हैं । वा सर्व नामरूप प्रपंच रूप सप्त पदार्थ रूप सप्तम समुद्र हैं । वा भूरादि सप्तव्याहृतियां सप्त समुद्र हैं । वा सप्त स्वर रूप सप्त समुद्र हैं । जैसे आकाश सप्त समुद्रोंमें व्यापकभी असंग तैसे आत्मा सप्तव्याहृति आदि सप्त समुद्रोंमें व्यापक भी असंग है । सो पूर्वोक्त समुद्र मुझ सच्चिदानंद आत्माके नहीं और मैं आत्मा इनका नहीं; मैं इनके सर्व न्यूनाधिक भावाभावका द्रष्टा हूँ (घट द्रष्टाके समान) वा मुझ अस्ति भाति प्रिय आत्माके पूर्वोक्त समुद्र हैं मैं इनका हूँ; जैसे स्वप्नसृष्टि स्वप्नद्रष्टामें कल्पित होनेसे, स्वप्नद्रष्टाकी है । स्वप्नद्रष्टा स्वप्नप्रपंचका स्वरूप होनेसे स्वप्नद्रष्टा स्वप्नसृष्टिका है । यह विचार पूर्वक जो दृढनिश्चय रूप जहाजपर बैठे तो ब्रह्मनेष्ठी ब्रह्मश्रोत्री गुरुनावकसे पूर्वोक्त समुद्रोंते पार नाम बंध मोक्षकी निवृत्ति प्राप्तिवास्ते, निष्कर्तव्यता बुद्धि प्राप्त होगी ।

वीरभद्र ।

(दक्षप्रजापति और जगध्वंस) ।

इतनेमें वीरभद्र आकर कहने लगे—हे सदा सद्विवेचनीय सभा ! प्रपंच कारण कार्य शरीररूप संघात यज्ञशाला है । जीव दक्ष प्रजापति है । चक्षु आदि इंद्रिय ऋत्विज हैं । शब्दादि विषय कुंड हैं । चक्षु आदि इंद्रियोंकी दर्शनादि वृत्तियां शाकल्य आहुतिकी सामग्री है ।

विषय इंद्रिय संबंधजन्य सुख दुःखका अनुभवी जीवरूप अंतःकरण ब्रह्मा है। विवेक और ब्रह्म विद्या महादेव पार्वती हैं। तिनोंसे वीरनाम अज्ञान तत्कार्य निजशत्रुको मिथ्यत्व निश्चय वा अत्यंताभाव निश्चय रूप हनन करनेवाला और दुःखरहित कल्याणस्वरूप वीरभद्ररूप सम्यक् ब्रह्मात्मबोध उत्पन्न होता है। सो पूर्वोक्त कारण कार्य संघात रूप यज्ञशाला सामग्री सहितको ध्वंस करताहै अर्थात् मिथ्यत्व वा अत्यंताभाव निश्चय करता है यही दक्षप्रजापतिके जगध्वंसका आशय है।

। सहस्रबाहु ।

हजारों युद्धादि विद्यारूप भुजा संयुक्त होनेसे सहस्रबाहु कहते हैं। वा हजारों बंधुरूप भुजा होनेसे सहस्रबाहु है। सो सहस्रबाहु आकर कहने लगा हे संतमंडली ! हजारोंही हैं वासना वा इच्छारूप भुजा जिसकी, ऐसा मनरूप अहंकार सहस्रबाहु है। तिसको पर नाम परमात्मा तत्पदका लक्ष्यार्थ, स (शु) नाम सोई मेरा त्वंपदका लक्ष्यार्थ प्रत्यक् आत्मा स्वरूप राम है। इस ब्रह्मात्म एकत्व ज्ञानीरूप निश्चय परशुरामनेही, पूर्वोक्त सहस्रबाहु रूप देह अभिमानको और आसुरी संपदा निज परिवार सहित मारा है नाम जगत्को मिथ्यत्व निश्चय किया है सोई सहस्र बाहु है। कोई मनुष्य सहस्रबाहु नहीं होसक्ता।

। वाराह भगवान् ।

वाराह संज्ञावाले भगवान्का विष्णु अवतार हुआ है, इस वास्ते विष्णु अवतारको वाराह बोलते हैं। सो वाराह भगवान् आये और कहने लगे। हे यथार्थवक्ताओ ! धर्म, अर्थ, काम मोक्षका, जाग्रत् (विद ज्ञाने) जो वेदरूप चार ज्ञान हैं। वा अंडज जरायुज स्वेदज उद्भिज्ज चार खानिका जो जाग्रत् स्वप्नमें चार वेदरूप चार ज्ञान हैं; वा जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति तुरीयाका जाग्रत् स्वप्नमें जो चार वेदरूप चार ज्ञान हैं; वा समष्टि व्यष्टि स्थूल सूक्ष्म कारण

महाकारणके जाग्रत् स्वप्नमें जो चार वेदरूप चारों ज्ञान हैं; वा प्रमाता चेतन, प्रमाण चेतन, प्रमेय चेतन, फल चेतन, यह एकही चेतनकी उपाधि भेदसे, जाग्रत् स्वप्नमें चार वेदरूप चार ज्ञानरूप परमान हैं; इत्यादि सभास अंतःकरण, जीवरूप हिरण्याक्ष, वा शबल ब्रह्मरूप हिरण्याक्ष, सुषुप्ति रूप समुद्रमें, वा अविद्या रूप समुद्रमें, व्यष्टि अहंकार रूप, वा समष्टि अहंकार रूप पृथिवीको, महाप्रलय रूप (माया रूप) समुद्रमें, वा तूला विद्या रूप पृथिवीको अज्ञान रूप समुद्रमें, सुख दुःख रूप भोग देनेवाले कर्म, जाग्रत् स्वप्नमें उपराम निमित्तसे, पूर्वोक्त चार ज्ञान रूप चार वेद सहित, व्यष्टि अहंकाररूप पृथिवीको, पूर्वोक्त सभास अन्तःकरण जीवरूप हिरण्याक्ष लेके प्रवेश करजाता है। पुनः जाग्रत् स्वप्नमें, सुख दुःखके अनुभव रूप भोग देनेवाले, अदृष्ट रूप वाराह, पूर्वोक्त समुद्रोंसे, वेदरूप ज्ञानोंका, तथा पूर्वोक्त पृथिवीका, जाग्रत् स्वप्नमें प्रादुर्भाव नित्य नित्य करता है। वा अविवेक रूप हिरण्याक्ष पूर्वोक्त वेदरूप सम्यक् ज्ञानोंको लेके, अविद्यारूप समुद्रमें प्रवेश करता है। पुनः जीवके पुण्योंके वशसे, विवेकरूप वाराह, अविवेकरूप हिरण्याक्षको मारके, अविद्यारूप समुद्रसे, उधार नाम विचार कर, सम्यक् वेद रूप ज्ञानोंको प्रवर्त करता है यही वाराह औतारका यथार्थ आशयहै।

। शेषनाग ।

इतनेमें शेषनाग आकर कहने लगे। हे साधो ! नाग नाम समष्टि व्यष्टि माया तत्कार्यका है। तिसका नेति नेति इस श्रुतिके वाङ्मनअगोचर माया तत्कार्यको निषेध करनेसे जो अबाधभूत अवाङ्मनसगोचर सच्चिदानंद शेष रहता है सो तिसका नाम शेषनाग है। सो पूर्वोक्त शेषनाग तुम्हारा, हमारा, तथा ब्रह्मासे लेकर चींटी तक सब जीवोंका निजात्म स्वरूप है। वही इस माया तत्कार्य, जगत

रूप नागका आधार है । कोई अस्मदादिमूर्तिमान् इसका आधार नहीं क्योंकि जो जिसका स्वरूप होता है सोई तिसका आधार होता है। जैसे स्वप्नसृष्टिका स्वरूप स्वप्नद्रष्टा है, सोई तिसका आधार है; कोई भी स्वप्न पदार्थ आपसमें आधार आधेय भाव नहीं । जैसे भूषण तरंग सर्प दंडादिकोंका स्वरूप, सुवर्ण, जल, रज्जु आदि स्वरूप हैं; सोई तिनका आधार है, भूषण तरंग सर्पादि आपसमें आधार आधेय भाव नहीं। तैसेई नाम रूप सुझ मूर्ति सहित जगतका, अस्ति भाति प्रियरूप ब्रह्मात्माही स्वरूप है, सोई इसका आधार है नाम रूप पदार्थ आपसमें आधार आधेय भाव नहीं ।

रावण ।

पुनः रावण आकर बोला हे विचारशील सभा ! यह शरीररूप लंका देश है, रजोगुण अविवेक रूप रावण है, । कायदे वाहर सुख दुःखके अनुभव रूप भोग विलासोंमें अनुराग तिसका राज्य है । श्रोत्रज ज्ञान, त्वच ज्ञान, चाक्षुष ज्ञान, रसना ज्ञान, घ्राणज ज्ञान, अनुमिति ज्ञान, शाब्दी ज्ञान, उपमिति ज्ञान, अर्थापत्ति ज्ञान, तथा अभाव ज्ञान १० यही उपाधि भेदसे, असम्यक् वृत्तिरूप ज्ञान, रजोगुण अविवेक रूप रावणके दश १० शिर हैं। नहीं तो अस्मदादियोंके समान मनुष्योंका सम्यक् ज्ञान रूप एकही शीश है । पांच ज्ञानेंद्रिय ५ पांचकर्मेंद्रि ५ पांच प्राण, ५ चतुष्टय अंतःकरण ४ और एक प्रवृत्ति निवृत्ति रूप क्रिया १ यही वीस २० भुजा हैं । मान दंभादि तथा अति कठोरतादि आसुरी गुणरूप राक्षस तिसकी सेना है । तमोगुणरूप कुंभकर्ण और सत्वगुण रूप विभीषण तिसका भाई है, सो रजोगुण अविवेकरूप रावण, विवेकरूप रामकी ब्रह्मविद्या रूप सीता हरणकरता है । सो विवेकरूप राम अमानित्वादि तथा अति कृपालतादि, दैवी गुण रूप, बांदरोंकी सेना सहित, तथा तत् त्वं पदका

जो लक्ष्यार्थ ब्रह्मात्म एकत्व स्वरूप है तिसीमें है मनकी वृत्ति जिसकी तिस लक्ष्मण सहित, नाम नवीन अपरोक्ष ज्ञान संयुक्त, संसाररूप समुद्रमें विचार रूप सेतु बांधके, अविवेक रूप, रावणकी राजधानी अंतःकरणरूपी लंकामें प्राप्त होकर सत्वगुण रूप विभीषणकी सहायतासे, तम गुण रूप कुंभकर्ण सहित, तथा दंभादि आसुरी सेना सहित रजोगुण अविवेक रूप रावणको, विवेक रूप राम हनन करता है। पुनः वाङ्मनस सहित, नाम रूप वाङ्मनसगोचरका, सच्चिदानंद अवाङ्मनसगोचर मैं द्रष्टा आत्माहूं; अपने सहित सर्व वासुदेव है। वा अस्ति भाति प्रियरूप आत्मासे भिन्न, सर्व नाम रूपमें, मिथ्यत्व निश्चय वा अत्यंताभाव निश्चयरूप बुद्धि अर्थात् ब्रह्मविद्या रूप सीताके सहित, प्रारब्ध क्षयतक, शरीररूपी अयोध्यामें, जीवन्मुक्तरूपी तख्तपर, योगी ब्रह्मवित् विराजमान होता है। परन्तु हे प्रियदर्शन! पूर्वोक्त राम रावण सेनासहित, इनकी न्यूनाधिक भावाभाव; जिस साक्षी चैतन्य, सत् सुखरूप आत्मासे सिद्ध होते हैं सोई वस्तु राम, तुम्हारा हमारा तथा सर्व जगत्का स्वरूप है।

। सप्तव्याहृती।

भूः भुवः स्वः महः जनः तपः सत्यम् तात्पर्य यह कि, ब्रह्मलोकादि सप्तव्याहृतियां मनुष्य आकृति धारकर तिस सभामें आयकर कहने लगीं। हे समदर्शियो! जैसे भूर्व्याहृति अर्थात् इस पृथिवी लोकमें, जो जो व्यवहार हैं, सोईसोई सर्व ब्रह्मलोकादि व्याहृतियोंमें व्यवहार हैं; विलक्षण नहीं क्योंकि सबकी भूत भौतिक सामग्री तुल्यही है। जैसे षट्प्रकारका रस तथा षट्प्रकारका कृष्णादिरूप यहां है; तैसे ब्रह्मलोकादियोंमें भी है। जैसे इहां शब्दादि विषय और श्रोत्रादि इंद्रिय संबंधजन्य सुख दुःखका अनुभव; रागद्वेष, ईर्षा निंदादि, खानपानादि, षट्भाव विकार षट् ऊर्मीसंयुक्त शरीर है। तथा अपने अनु-

कूलमें रागपूर्वक प्रवृत्ति, प्रतिकूलमें द्वेषपूर्वक निवृत्ति है; तैसेही वहां है। जैसे इहां दैवी गुणोंकी स्तुति है, आसुरी गुणोंकी निंदा है तथा तिन गुणोंका न्यूनाधिक भाव शरीरोंमें है; तैसे ब्रह्मलोकादियोंमें है। जैसे इहां नदियां समुद्र, तालाब, पर्वत, वनस्पति हैं,तथा गौ बैल जमीन फल हैं, तैसे वहां है। जैसे यहां स्त्रीपुरुषका व्यवहार होता है तथा नाक कानादि अवयव स्त्रीपुरुषोंके जिन जिन स्थानमें यहां शोभा देते हैं, अन्यथा अशोभा है, तैसे ही ब्रह्मलोकादिकोंमें है। जैसे यहां सुख दुःखके जो जो साधन हैं, तैसे वहां हैं। जैसे यहां पंचभूत पृथिवी आदि हैं, तैसे वहां हैं। जैसे यहां १७तत्वका सूक्ष्म शरीर है और स्थूल शरीर अन्नमयादिकोशरूप है, कारण शरीर है, रज तम सत्वगुण है, तथा भूल अभूल हर्ष शोकादि हैं; तैसे वहां हैं। जैसे यहां राजाकी अधीनता तथा कायदा धर्माधर्मका है, तैसे वहां है। जैसे यहां मनादियोंका साक्षी अन्तर्यामी सर्व देहोंमें देही एक आत्मा है, तैसे ब्रह्मलोकादि व्याहृतियों में है। जैसे यहां शास्त्रमें कर्मकांड, उपासना कांड ज्ञानकांड, हैं, तैसे वहां हैं। जैसे यहां ज्ञान अज्ञान है, जल पाषाणादियोंका तीर्थोंमें दर्शन है, तैसे ही वहां भी है। ईश्वर कहीं इस सृष्टिसे पृथक् देखनेमें आता नहीं, हृदयदेशमें मनादियोंके साक्षी विना तैसे ब्रह्मलोकादि व्याहृतियोंमें है। जैसे इहां मनुष्योंके हस्त आदि अवयव है, तैसे ब्रह्मलोकादियोंमें हैं। तात्पर्य यह कि, सर्व प्रकारसे, सर्व ब्रह्मादि लोकोंमें, सर्व व्यवहार इस लोकके सम हैं। जैसे यहां धर्म अर्थ काम मोक्ष और तिनके साधन यहाँ हैं,तैसे वहां हैं। इससे यहां ही ज्ञानसंपादन करना,ब्रह्मलोकादि लोकोंके जानेकी इच्छा नहीं करना क्योंकि अप्राप्त वस्तुकी प्राप्तिवास्ते इच्छा होती है, सो पूर्वोक्त प्रकारसे यहां वहां भेद नहीं। जो यह मिथ्या है तो वह भी मिथ्या है। यह सत् है तो वह भी सत है। इससे मनादियोंका साक्षी

सम ब्रह्मात्माको अपना आप जानो, जो शांति होवें, अन्यथा नहीं होगी। मूल ग्रहणसे शाखाका ग्रहण आपसेही हो जाता है।

। राजा जनक ।

पुनः राजा जनक आये और कहा हे श्रेष्ठ पुरुषो ! जैसा जिस वस्तुका स्वभाव है सो, कोटि उपाय करनेसे भी दूर नहीं होता; जैसे अग्निका स्वभाव शीतल नहीं होता; तैसे बुद्धि आदियोंका सच्चिदानंद द्रष्टा आत्मा, स्वभावसेही माया तत्कार्यमें होनेवाले, बंध मोक्षकी कल्पनासे रहित है और दृश्य बंध मोक्षकी कल्याणसे कदाचित् भी रहित नहीं होसक्ती। इससे दोनों वस्तुका सम्यक् जानना ही कर्तव्य है, करना कुछ नहीं। हे साधो ! विषय इंद्रिय संबंधजन्य सुख दुःखका अनुभव, जैसे अज्ञानकालमें होता है, तैसे ज्ञान कालमें भी होता है, संघातका व्यवहार कुछ अदल बदल नहीं होता, केवल मनका संकल्प पूर्वसे विलक्षण होजाता है। पहले मैं अज्ञानी हूं, पीछे सत्संगसे मैं ज्ञानी हूं, इतना संकल्प मात्रही बंध मोक्ष हुआ और कुछ अन्य नहीं हुआ। परन्तु ज्ञान अज्ञानादि सभास अंतःकरणकी अवस्था हैं, तिन दोनों अवस्थाके अनुभव करनेवालेको निजस्वरूप सम्यक् जानना चाहिये।

। विश्वामित्र ।

पुनः विश्वामित्र आकर बोले। हे तपस्वियो ! इस मनादियोंका साक्षी चैतन्यका ही नाम विश्वामित्र है, क्योंकि इस नामरूप असत जड दुःखरूप विश्वको, अपनी सत्ता स्फूर्तिसे, सत् चित् आनंद सरीखे कर देता है। इससे यह आत्मा सर्व विश्वका मित्र है और असंग होनेसे सर्व विश्वका अमित्र भी है; जैसे आकाश सर्वको अवकाश देता भी, सर्व सृष्टिके व्यवहारोंके गुण दोपसे असंग है। जैसे स्वप्नद्रष्टा स्वप्नसृष्टिको सत्ता स्फूर्ति देनेसे विश्वका मित्र है और स्वप्न सृष्टिके गुण दोपके न भागी होनेसे असंग है; इससे स्वप्न विश्वका अमित्र भी

है। बुद्धि आदियोंका साक्षी आत्मा विश्वके मित्र अमित्र भावसे रहित भी है। अवाङ्मनसगोचर होनेसे और मन वाणी सहित अवाङ्मनसगोचर भी आपही होनेसे सर्व विश्वका मित्र अमित्र भी आपही है।

। आत्मज्ञानके साधनरूप तपस्या ।

(सात्विकी तपस्या.)

हे साधो ! इस समझके समझाने वास्ते, अनेक प्रकारके सत संभाषणादि परमतपस्या है। तथा मैत्रता, करुणा, मुदिता, उपेक्षा सम्यक् धारण करना भी परमतपस्या है। तथा अमानित्वादि अति कृपालुआदिभी परमतप तथा सज्जन लोगोंके कायदे अनुसार चलना भी परमतपस्या है, तथा यथा लाभ सदा सुखी रहना, राग द्वेष न करना, राजयोग भजन करनादि पूर्वोक्त सर्व सात्विकी तपस्या है।

। तामसी राजसी तपस्या ।

निज शरीर पीडित कर तथा अन्यको किसी प्रकार दुःखी कर जो तपस्या होती है सो राजसी तपस्या है।

। सर्वोत्कृष्टतप ।

परंतु ब्रह्मनिष्ठ महात्माकी सम्यक् सत्संग सात्विकी सर्वसे अधिक तप है।

। तपस्या का फल ।

सर्व तपस्याका फल चित्तकी एकाग्रता है, चित्तकी एयाग्रतासे सर्व चित्तादियोंमें अनुगत सच्चिदानंद मनादियोंके साक्षी निजात्म स्वरूपका, स्वयंप्रकाश रूपता करके, अनुभव होता है; जैसे किसी भी साधनसे वायुस्थित होनेसे, जलगत सूर्य भी स्पष्टमान होता है। इससे जिस किसी साधनसे चित्तकी एकाग्रता द्वारा, जिस किसी अधिकारीको, निजात्मस्वरूपका सम्यक्बोध होवै, सोई साधनश्रेष्ठ है। जैसे आंवखानेसे मतलब है चाहे किसी वृक्षसे मिलें। यह लोक प्रथाका दृष्टांत है।

शास्त्रोंकी व्यवस्था।

हे संतो! बंध मोक्ष तो शास्त्रोंमें किंचित् किंचित् कामोंमें मनराखी है। ठाकुरके चरणामृतसे, परिक्रमासे, तुलसी रुद्राक्ष धारणसे, तप्त मुद्रा शरीरको लगानेसे, काष्ठका दंड धारनेसे, मोक्ष लिखी है। गंगाके एक बूंदके पान करनेसे, गंगा यमुनादि तीर्थोंके स्नान तथा दर्शनसे वेल भक्षण करनेसे, काशी मथुरादि पुरियोंमें तीन दिन वा एक दिन भी निवास करनेसे तथा एक बार भी भूलसे वा विलापादि करते हुये राम हरि महादेवादि ईश्वरके नाम उच्चारण मात्रसेही मोक्ष लिखा है। नेति धोती आदि क्रिया करनेसे मोक्षादि फल लिखा है। श्राद्धोंके करनेका फल भी मोक्षही लिखा है। सूर्यादिके दर्शनसे, एकादशी आदि व्रतोंसे, सूर्यादियोंके स्तोत्र पढ़नेसे मोक्ष लिखा है। गोदर्शन, पंचगव्य ग्रहणसे, बडा पुण्य लिखा है। गोदान तो मोक्षका कारणही है। कहांतक लिखें हजारों कामोंमें "पुनर्जन्म न विद्यते" ऐसा फल लिखा है परंतु सो सर्व मरेपीछे होगा प्रत्यक्ष नहीं।

ऐसेही मरे पीछे दुःखरूप बंधके कारण भी अनेक लिखे हैं। पेशाब करनेकी विधि जो लिखी है सो अत्यंत कठिन है; तिससे अन्यथा करनेसे बंधरूप नरक लिखा है सो गृहस्थ विमुख सज्जन साधुओंसे भी, पेशाब विधि कदाचितभी पालन नहीं होता, तो व्यवहारियोंसे कहां होगी, इत्यादि औरभी जान लेना। इससे यह मालूम होता है, नियतही सर्व स्त्रीपुरुष मनुष्ययोनि बंध होवेंगे, छूटनेका कोई उपाय नहीं और मोक्ष कथनवाले शास्त्रको देखे तो, अनायास सर्व मोक्ष होने चाहिये क्योंकि ऐसा स्त्री पुरुष कोई नहीं जो मोक्षके कारण एक वार भी हरिका नाम उच्चारणादि मोक्षदायक कर्म न करे। तथा बंधके कारण मलत्यागादि विधिको उल्लंघन न करे।

सर्व बातें शास्त्रकी हैं; किसको सत् कहैं किसको असत् कहैं। कुछ अकल काम नहीं करती; सत् है तो सर्व सत् हैं; असत् है तो सर्व असत् हैं। इससे न बंध सिद्ध होता है, न मोक्ष सिद्ध होता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि, मोक्षशास्त्र तो शुभकामोंमें प्रवृत्ति बोधक है और बंधबोधकशास्त्र अशुभ पाप कामोंसे निवृत्तिबोधक है। क्योंकि भय लोभ बिना, शुभ अशुभ कामोंमें, प्रवृत्ति निवृत्ति होती नहीं। इसी बातमें बंध मोक्ष कथनवाले शास्त्रोंकी चरितार्थता है अन्यथा मानेंगे तो सर्व प्रकारसे जगदांध प्रसंग आजावेगा। इससे क्या हुआ कि, अशुभ कामोंके निवृत्तिसे और शुभकामोंमें प्रवृत्तिसे अंतःकरणकी शुद्धि होती है। शुद्ध अंतःकरणमेंही, यथार्थ सर्व संमत सिद्धांत शास्त्रका, पक्षपात रहित यथार्थवक्ताके सत्संगसे, यथार्थ अर्थ जानाजाता है, अन्यमें नहीं। तिससे भ्रम निवृत्तिद्वारा यथार्थ अर्थ ग्रहणसे मोक्षरूप सुख शांति प्राप्त होती है।

सुखशांतिका साधन।

मोक्षरूप सुखशांतिका साधन, सर्व शास्त्र संमत सिद्धांत, पूर्वोक्त सत्संग सहित, सत्संभाषणादि नवव्रतादि हैं और देशकाल वस्तु भेदादि दोष रहित, पूर्ण वस्तु, सम ब्रह्मात्म, निजस्वरूप मनादियोंका द्रष्टाही, मोक्ष सुख शांतिरूप है। तिस कारणसे बुद्धि आदियोंके न्यूनाधिक भावाभावके साक्षी ब्रह्मात्मामेंही स्थित होना चाहिये। "मन वाणी सहित, मन वाणीके गोचर का; मैं सच्चिदानंद द्रष्टा हूँ, मैं दृश्य नहीं" इस दृढ निश्चयका नाम ब्रह्मस्थिति है।

द्रौपदी।

हे साधो! संसाररूप इस सभामें मायारूप द्रौपदीका, दुःशासन दुर्योधनादि अनेक वादीरूप सत्तादि, अनेक युक्तियोंरूप हाथोंसे, मायारूप द्रौपदीका स्वरूप नाम शरीरको, निर्णयरूप नग्न करने को परन्तु निर्णयरूप नग्न न हुई। भक्तिमान नाम रूप आनेंवे-

चनी स्वभाव होनेसे तथा परमात्मारूप कृष्णके आश्रयरूप सहायता होनेसे। इससे हे साधो! माया तत्कार्य नाम रूप मनादिकोंको निज दृश्य जानो और अपनेको सच्चिदानंद द्रष्टा जानो। माया तत्कार्य निजधर्मोंसहित दृश्य; तुम द्रष्टा असंगको स्पर्श नहीं करते; आकाशको समान जो तुम सच्चिदानंद द्रष्टा आपको नहीं मानोगे तो द्रष्टा भिन्न माया तत्कार्य दृश्य मध्ये, किसी न किसी पदार्थको अपना स्वरूप मानोगे, तो दृश्य संसार दुःखमयरूपही होवोगे क्योंकि जो मति है, सोई अंत पुरुषकी गति होती है। आगे जो इच्छाहो सोई करो।

अहंकार।

समष्टि व्यष्टि फुरना रूप अहंकार।

इतनेमें अंतःकरण रूप अहंकार मन वा समष्टि वा व्यष्टि फुर्णारूप अहंकारने मनुष्यरूप धरके सभामें आकर कहा-हे संतमंडली! व्यष्टि अविद्यारूप, वा समष्टि अज्ञान प्रकृति माया रूप मेरी माता है और सच्चिदानंद मनादियोंका साक्षी ब्रह्मात्मा मेरा पिता है। जिन दोनों स्त्री पुरुषको शबल ब्रह्म और अविद्या उपहित चैतन्य शास्त्रवेत्ता बोलते हैं। वशिष्ठसे शुद्ध भिन्न होता है,इस शास्त्र प्रक्रियासे;शुद्ध ब्रह्म हमारा पितामह है और यह नामरूप, सुख दुःखादि, बंध मोक्षरूप पंचभूत भौतिक प्रपंच मेरा परिवार है। मैं निज परिवारसहित पिताके पास नहीं रहता। निज माता पासवत् पासही हमेशः मैं रहता हूं। पिताके पास रहनेकी मेरी बहुत मरजी भी है और मैं यत्नभी अनेक करता हूँ,पिताके पास रहनेका, परंतु पिताजी पास मुझको नहीं रखते, वह असंग निर्विकार निर्विकल्प हैं। मेरे माता पिताके माता पिता हैं नहीं और मेरी माताके साथ, मेरा पिता स्पर्श भी नहीं करता। इसीसे परिवारसहित मेरी उत्पत्ति और मरण आश्चर्यरूप है। तथा

मेरे परिवार नाम रूप, सुख, दुःखादि, बंध मोक्षरूप पंचभूत भौतिक रूप जगत्का भी जन्म मरण आश्चर्यरूप है क्योंकि किसी निमित्तसे जब मैं माताकी गोदमें प्रियादि वृत्तिद्वारा बैठता हूं, तब मैं परिवार- सहित मरणवत् मरजाता हूं नाम माताके साथ एकरूपवत् एकरूप होजाता हूँ। पुनः किसी निमित्तसे माताकी गोदसे बाहरवत् बाहर आता हूं तो मैं निज परिवारसहित उत्पात्तिवत् उत्पन्न होता हूं। यह मेरी दिन दिन प्रतिक्रीड़ा समुद्र तरंगवत् है। हे साधो! मेरेसे, तथा मेरे नाम रूप सुख दुःखादि बंध मोक्षरूप प्रपंच, निज परिवारसहित मेरी मातासे, मोहरूप स्नेह प्रीति हमारा पिता करताही नहीं और न अप्रीति करता है, न परिवारसहित मेरीं उत्पत्ति मरणमें हर्ष शोक करता है बरन् एकसा रहता है। तात्पर्य यह कि, पौत्रयों सहित हम मा बेटेके कर्त्तव्योंसे अस्पर्श है; जैसे वायुके चलने न चलनेमें आकाश एकसा है। हमारा पिता मेरी माताको तथा हमारे सर्व परिवारसहित, सब न्यूनाधिक भावाभाव वृत्तांतको जानता है और हम निज पिताका हाल कुछ जानते नहीं, न कहसक्ते हैं। हमारी माता भी नहीं जानः सक्ती कि, मेरापति कौन है? रखता रूप कैसा है? तो हम कैसेजानेंगे; जडहोनेसे। हमारा पिता हमारेमेंही रहता है और हमारा पालना भी करता है, तो भी हम निज पिताको जानसक्ते नहीं। बड़ा आश्चर्य है मेरी माता तो पतिव्रतधर्मवाली है और हमारा पिता सदा ब्रह्मचारी है, इसीसे हमारी उत्पत्ति आश्चर्यरूप है। मुझ पुत्रका परिवारसहित स्वभाव सर्व प्रकारसे मातापर हुआ है, निज पितापर नहीं। परन्तु मूर्ख निजपरिवारसहित मुझको और मेरे पिताको एकरूप जानते हैं इसीसे दुःख पाते हैं। विवेकी नहीं जानते इसीसे सुखपाते हैं। हे महाजनो! मेरे पिता तो असंग हैं परन्तु मेरी माता भी किसीको सुख दुःख नहीं देती, सुषुप्तिमें प्रत्यक्ष देखलीजिये। इससे सर्वके सुख

दुःखका कारण मैंहीं हूं निजपरिवारसहित हम पिताके धनसे जीवन करते हैं; अपनी पूंजी कुछ नहीं रखते। पिताके धनसेही यह संसार-रूप बगीचा हमने खड़ाकिया है, परन्तु पिताको इसका हर्ष शोक नहीं। पिता बिना हम कुछ भी करसक्ते नहीं। जहां हम दशोदिशा जाते हैं पिता हमको आगेही लाधता है; जैसे वायु जहां जावे आकाश आगेही लाधता है हे साधो! जो मेरे पिताको अस्ति भाति प्रिय सर्वरूप जानता है वा मन वाणीसहित वाङ्मनसगोचर नाम रूप बुध्यादि दृश्यके, (अवाङ्मनसगोचर, सर्वाधिष्ठान, जगद्विध्वंस, प्रकाशक, अवेद्यत्व, सदा अपरोक्ष, साक्षी, सच्चिद्घन, विशुद्धानंद, ब्रह्मात्मा) द्रष्टाको निजस्वरूप जानता है सो मेरा बाप है, तिसको माया तत्-कार्य हमलोगोंकी गति (प्राप्ति) नहीं होती।

राजा प्रियव्रत ।

जिसके रथके चक्रसे सात समुद्र बनजाना लोकप्रसिद्ध है।

पुनः राजा प्रियव्रत आकर सभामें कहने लगे—हे प्रियदर्शन सभा! व्रत नाम है नियमका और प्रिय नाम है आनंदका। जो वस्तु नियमसे आनंदस्वरूप होवे, तिसका नाम है प्रियव्रत। सो ऐसा मना-दिकोंका तथा सुखादिकोंका साक्षी, प्रत्यक् ब्रह्मात्मा रथीने, अविद्या-रूप वा मायारूप रथकी, वृत्तिरूप नेमी नाम नियम करनेवालेका, नाम प्रियव्रत है। सो पृथिवी, आप, तेज, वायु, आकाशादि पदार्थोंका नि-यम नाम स्वभाव जो रचागया है, सो कोटि उपायसे भी अन्यथा न होना, इस संकल्प वालेका नाम नेमी है। तिस नेमीवृत्तिसे समुद्र उपलक्ष माया वा अविद्यामें लीन सर्व समुद्रादि जगत्को प्रादुर्भाव किया है; जैसे सुषुप्तिमें लीन जगत् जाग्रत् स्वप्नमें प्रादुर्भाव होता है। जो ऐसे नहीं माने तो अनादि पक्षमें तो उत्पत्ति प्रकारही नहीं बन-सक्ता जो, आदि माने भी तो क्या प्रियव्रत मनुष्य राजासे प्रथम,

मनु आदि राज्योंके वक्त समुद्र नहीं थे; ऐसे नहीं किंतु थे. क्योंकि समुद्रादि जगत्की उत्पत्ति सद्ग्रकरणोंमें, मनुष्यव्यक्ति राजासे होती है, ऐसा नहीं लिखा और योग्यता भी नहीं है। जीवकी अल्प सामग्री होनेसे। इससे प्रत्यक् आत्मा रूप प्रियव्रतको अपना स्वरूप सम्यक् जानो जो अनेक अर्थवादोंसे शांत होवोगे. क्योंकि जो २ चैतन्यके नाम हैं सो सो मनुष्योंके भी नाम हुआ करते हैं। नामकी समता देखकर भ्रम नहीं करना। दृष्टांतः—

जैसे सहस्रबाहु एक पुरुषका नाम था। युद्धादि करनेकी हजारों तिसको विद्या रूप भुजा यादथीं; इससे सहस्रबाहु नाम था नहीं तो एक मनुष्य व्यक्तिमें हजार भुजा बनती नहीं।

पृथुराज।

इतनेमें पृथुराजाने सभामें आकर कहा—हे नीतिज्ञसभा! अशुद्ध मन रूप वेणु राजा है। नीतिको छोड़के अधर्मपूर्वक विषयोंमें प्रवृत्ति, यह इस मनरूप वेणुकी अन्यायकारिता है। असत् संभाषणादियोंसे मौनी और सत् उपदेशको श्रवण करके मनन करनेवाले जो मुनि हैं, तिनके (विचारपूर्वक) जो सम्यक् सत्संगका अभ्यास है सोई है मन रूप वेणुका मथनहै। वा ऋषि नाम है इंद्रियोंका, तिनकी जो स्वस्वविषयमें सज्जन लोगोंकी रीतिसे धर्मपूर्वक प्रीतिका अभ्यास सोई है मथन। तिससे रज तमसे दबा नहींहुआ जो शुद्ध सत्वगुणरूपी वा बोध रूपी पृथुराज प्रादुर्भाव होता है सोई विचाररूपी धनुषसे, अंतःकरण रूपी पृथिवीके, रज तम रूप वा काम क्रोधादिरूप वा नाम रूपादि पर्वतोंको, एक तरफ करता है नाम आत्मनात्माके विचारसे आत्माको त्रिकाल अबाध्य सत् स्वरूप सम्यक् जानता है और अनात्मरूप पर्वतोंको आत्मासे भिन्न मिथ्यत्व निश्चय वा अत्यंताभाव निश्चय जानता है। तिसके उपरांत सर्वदोषोंसे रहित अंतःकरणरूप

पृथिवी, सत्संभाषणादि तथा मैत्रतादि गुणरूप रत्नोंको देती है। तथा सत्व गुणकर युक्त हुई २ अंतःकरणरूप पृथिवीमें धर्म रूप वर्षाकर मुमुक्षुओंके व्यवहारोंमें सचावट रूप अन्न होता है। तिससे मुमुक्षु स्वरूपमें संशय आदि शत्रुओंसे रहित निष्कर्तव्यता रूप तख्तमें बैठके निरतिशय आनंदको अनुभव करता है। इससे जो मुमुक्षु बोधरूप पृथुराजाको, मनरूपी वेणुसे, पूर्वोक्त अभ्यासरूप मथनसे उत्पन्न करेगा सो परमआनंदको प्राप्त होवेगा।

शब्दादि विषय।

पुनः शब्दादि विषय मनुष्य मूर्ति धारकर सभामें आयके बोले-हे पंचपरमेश्वरो! सर्व लोक हमारेमें दोष आरोपण करते हैं कि, यह विषय बंधनके कारण हैं। परंतु पक्षपातरहित होकर यथार्थ विचार देखें तो हम किसीको भी बंधनके कारण नहीं, सर्व अपनेको आपही बंधन करते हैं बंदरवत्। क्योंकि आकाशादि पंचभूतोंके, हम शब्दादि पंचगुणरूप पुत्र हैं, वा हम शब्दादि पंचसूक्ष्म भूत हैं। प्रथम पक्षमें तो पंच ज्ञानेन्द्रिय, पंच कर्मेन्द्रिय, पंचप्राण मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, ये हमारे भ्राता हैं। दूसरेपक्षमें स्थूलपंचभूतों सहित यह हमारे पुत्र पौत्र हैं। सो हम निज भ्रातनसे वा निजपुत्रनसे, स्वाभाविक वा रागद्वेषसे आपसमें व्यवहार कर रहे हैं। अनुकूलता प्रतिकूलता हम शब्दादियोंसे, हमारे भ्राता वा निजपुत्र मनादि वा श्रोत्रादि इंद्रियोंको हर्ष शोक हो वा न हो। तात्पर्य यह कि, हम शब्दादियोंमें अनुकूलता प्रतिकूलता हमारे भ्राता वा पुत्र मनने मानी है, श्रोत्रादि इंद्रियोंने भी नहीं मानी। वा मनसाथ मिलके श्रोत्रादि इंद्रियोंने भी मानी है। सो हमारे पुत्र भ्राता हमारी अनुकूलता प्रतिकूलताकी प्राप्ति निवृत्तिका अनेक यत्न करे वा न करे वा हम उनके उपायको मानें वा न मानें। वा हमारे माता पिता शबल ब्रह्म (अविद्या

अंतःकरण विशिष्ट चेतन) को हम पुत्र पौत्रोंके कर्तव्योंका हर्ष शोक हो वा न हो। वा हम उनका कहा माने वा न माने। इन कामोंका हर्ष शोक हम लोगोंको हो वा न हो। परन्तु पूर्वोक्त हम लोगोंके साक्षी प्रत्यक् आत्मा तीसरेको, हमारे बीच पड़नेमें क्या प्रयोजन है? यह मनादियोंका साक्षी आत्मा अपनी महिमामें रहो और हम अपने घरमें निजसंस्कारोंसे जैसा होगा वैसा भुक्तेंगे। परन्तु हम लोगोंके व्यवहारोंको यह आत्मा निजधर्म मानके, दुःखी सुखी होवे तो इसमें हमारा क्या अपराध है?

आत्माके विहार करनेका स्थान।

इस प्रत्यक् आत्माने हम लोगोंको अपनी क्रीडावास्ते बनाया है; हम सर्व लोक इस आत्माके खेलनेके खिलौने हैं, विरोधी नहीं। अब हमसे दुःख माननेसें क्या मतलब है? अब भी हमको खेलनेके साथ-नहीं जानना चाहिये। मिलके भोजन करे पीछे जाति पूछनी नादानी-का काम है। हम शब्दादि विषयोंसेही इस साक्षी आत्माके रमनेका यह नामरूप संसार चमन शोभ रहा है। जो हम नहीं होवें तो चमनमें, वृक्षोंके समान तो फिर संसार क्या है? हमलोगोहींका तो संसार है।

शब्दादि विषयको कैसे ग्रहण करनेसे सुखी होता है?

श्रोत्रादि इंद्रियोंसे शब्दादिविषय ग्रहण बेशक करो कोई दोष नहीं। परंतु जुल्मसे असज्जन पुरुषोंके समान मत ग्रहण करो। हम इस जीवके आनंदवास्तेही उत्पन्न हुये हैं, दुःखकेलिये नहीं। न्याय-पूर्वक श्रोत्रादि इंद्रियोंसे शब्दादि हम विषयोंको ग्रहण करता पुरुष को राजदंड और अपयश होता नहीं देखा। दृष्ट कल्पनाके अनुसा-रही अदृष्ट कल्पना होती है, अन्यथा नहीं। जिन जिन कामोंसे यहां दंड और अपयश होता है, तिन तिन कामोंसेही परलोकमेंभी दंड और अपयश होता होगा। श्रोत्रादि इंद्रियोंका शब्दादि विषयोंको

ग्रहण करना स्वाभाविक धर्म है धर्मीके होते धर्मका निवारण नहीं होता यह ईश्वरी नियम है। जो स्वाभाविक धर्मका निवारण किसीउपाय से होगा तो जगदांध प्रसंग होजावेगा। पुनः जो हमको बुरा निजबंधन का कारण जानता है तो तिसको शपथ है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंधादि हम विषयोंको मत ग्रहणकरे, हम तिसको निमंत्रण नहीं भेजते। हमारी निंदाभी करता है पुनः हमारा ग्रहणभी करता है, सो बामता सी है। हमारे बिना किसी भी ब्रह्मासे लेकर चींटीतक, ज्ञानीअज्ञानीके व्यवहार सिद्ध होते नहीं। जो अभिमान करे विषय क्या है? सो हम-से रहितहोकर देखलेवे।

हे साधो! हम शब्दादि विषयोंका, किसी भी ज्ञानी अज्ञानीके साथ पक्षपात नहीं। जो श्रोत्रादि इंद्रियोंसे हमारा ग्रहण करेगा तिसको जैसा हमारा स्वरूप है तैसा अनुभव करनाही पडेगा। शब्दादि विषय इसको दुःख नहीं देते, इसके अनाचारकर्मही इसको दुःखदेते हैं। जो शब्दादि विषयोंके साथ श्रोत्रादि इंद्रियोंके संबंधजन्य दुःखोंका जनक पापहोता होवे तो किसीको भी सुख नहीं होनाचाहिये, क्योंकि यह बात अन्यवारण है। जो तीनोंकालोंमें सुषुप्तिविना किसी भी साधन से निवारण न होवे, तिसके भोगनेसे पाप नहीं होता। इन विना शरीरतो रहताही नहीं तो पाप कैसे होगा? किंतु नहीं होगा।

पंचविषयोंसे दुःख क्यों और कब होता है?

स्वस्ववर्णाश्रम अनुसार यथायोग्य धर्मपूर्वक शब्दादि विषयोंमें श्रोत्रादि इंद्रियोंका प्रवृत्तिरूप कायदेको छोडके अकायदेसे वरतेगा तो दुःखोंका जनक पाप होगा, अन्यथा नहीं। हे साधो! यह पुण्य पाप, हर्ष शोक, सुख दुःख बंध मोक्षादिकी पंचायत, माया तत्कार्य में हमलोग असत् जड दुःखरूप, दृश्यकोटिमें वर्त्तनेवालों की है, हम दृश्यका द्रष्टाको, देशकाल वस्तु भेद रहित,

सत, चित् आनंदरूप, प्रत्यक् आत्मा असंगहोनेसे उसको पूर्वोक्त पंचायत नहीं चाहिये अर्थात् कार्यकारणरूप अनात्माके धर्म आत्मा में नहीं मानने चाहिये । आत्मानात्माका सम्यक् दर्शनही कर्त्तव्य है, असम्यक् दर्शनही अज्ञान है शारीरकधर्म ज्ञानी अज्ञानीके तुल्य-हीहै केवल संकल्पका भेद है ।

वामन भगवान् ।

वामनभगवान् आकर बोले हे शांतिदा सभा ! निश्चयकर वा प्रसिद्ध जो अमन वस्तु है तिसका नाम वामन है । सो मनरहित मनादियोंका द्रष्टा प्रत्यक् आत्मा है । कार्यसहित मूलाज्ञारूप, कश्यपकी परंपरासंतति, सत्वगुण; न्यूनाधिक रज तम गुण विषिक तुला ज्ञानरूप, बलिराजा जानना ।" यज्ञंवैविष्णुः " यज्ञनाम विष्णुका है वा "विश्वप्रवेशनेपूर्णे" वा विष्णु नाम पूर्णवस्तुका है । जो पूर्ण वस्तु है सोई आनंदरूप वस्तु है जो आनंदरूप वस्तु है सो सत् ज्ञानस्वरूप वस्तु है । जो सत् ज्ञानरूप वस्तु है सोई आनंदरूप वस्तु है । इससे सो पूर्वोक्त बलिराजा, असत् जड दुःख अनात्मारूप है भी, परंतु कार्याध्यासके बलसे वा चिदात्म अध्यासके बलसे आपको सत् चित् आनंद आत्मा पूर्ण यज्ञप्रतीतिरूप यज्ञ करता है । कैसा है तो बलि ? तीन शरीरादि त्रिक त्रिपुटीरूप त्रिलोकीका ब्रह्मात्म अपरोक्ष ज्ञानवान् पुरुषरूप वैकुंठ देश छोडके राज्य करता है और शुद्ध अंतःकरणरूप स्वर्गमें शुद्ध सत्वगुणरूप मुमुक्षु वा विवेकरूप मुमुक्षु इंद्र विचार करता है कि, पंच ज्ञानेंद्रिय ५ पंच कर्मेंद्रिय ५ पंच प्राण ५ मन बुद्धि २ पंचमहाभूत ५ देश और काल २ ये जो चौवीस भाव कार्य पदार्थ हैं एक अभाव पदार्थ है, सब मिलके पचीस २५ हुये । वा काम क्रोधादि पचीस प्रकृतिरूप पदार्थ जानना । वेदांतोक्त वा सांख्योक्त पचीस२५तत्वरूप पदार्थ जानने इत्यादि और पचीसही

तिनके देवता, पचीसही २५ तिनके विषय, पचीसही २५ तिनकी वृत्ति । ये सर्व मिलके शत पदार्थ असत् जड दुःख अनात्मारूप हैं। इनमें जब क्रमसे सत् चित् आनंद, आत्मबुद्धिरूप पूर्वोक्त अज्ञानरूप बलिराजाका, पूर्वोक्त यज्ञ पूर्ण होजावेगा तो शुद्ध अंतःकरणरूपी स्वर्गमें भी इसीका राज्य होजावेगा । तात्पर्य यह कि, दृढ अध्यास होजावेगा, तब हम तिरोभाव हुये २ जन्मांतरोंको पावेंगे । इसवास्ते पूर्वोक्त अज्ञानरूप बलिराजाका यज्ञभंग करो नाम देहाध्यास छोडके आत्माको सच्चिदानंद सम्यक् निजरूप जानेंगे, तब हम सत्संभाषणादि देवतोंसहित अंतःकरणरूप स्वर्गमें सुखी होवेंगे यह कार्य ब्रह्मनिष्ठ गुरुरूप विष्णुविना अन्यसे होगा नहीं । यह विचारकर मुमुक्षुरूप इंद्र सत्संभाषणादि देवतोंसहित;विष्णुरूपगुरुकेपास,शास्त्ररीतिके अनुसार जाकर प्रार्थनाकर बोलता है-हे भगवन् ! अज्ञानरूप बलिने, सत्संभाषणादि देवतोंसहित, हमको अंतःकरणरूप स्वर्गमेंसे निकासनेकी इच्छाकर, पूर्वोक्त शतयज्ञ पूर्णमें दृढ प्रवृत्ति की है; हमारे रक्षक आपही हो, अन्य कोई नहीं । क्योंकि ब्रह्म श्रोत्री ब्रह्मनिष्ठ गुरुरूप विष्णुही अज्ञानरूप तमको, ज्ञानरूप दीपकसे दूर करसक्ता है, अन्य नहीं । इत्यादि प्रश्न सुनके गुरुरूप विष्णु, ब्रह्मविद्याका मुमुक्षुरूप इंद्रको उपदेश करता है—हे देवतो ! तत्पदका लक्ष अर्थ जो सत् चित् आनंद लक्षणोंवाला मैं ब्रह्मही तुम्हारे अंतःकरण देशमें,त्वंपदका लक्ष्यार्थ, मनादियोंका साक्षीरूप करके स्थित हूं । तत्पद और त्वंपदके वाच्यार्थ अज्ञान तत्कार्यको, असत् जड दुःख अनात्मा जानो । इत्यादि गुरुरूप विष्णुके उपदेशसे इंद्ररूप मुमुक्षुको उत्पन्न हुई जो ब्रह्मात्माको विषय करनेवाली अंतःकरणकी परमारूप वृत्ति और इस वृत्ति आरूढ वृत्तिका साक्षी चैतन्य,दोनों मिले हुयेका नाम बोधरूप वामन अवतार है । जैसे महाकाशका घटाकाश अवतार

होता है। सो बोधरूप वामन तूला अज्ञानरूप बलिके निकट जाके तीन कदमरूप पृथिवीका दान माँगता है, तात्पर्य यह कि, तीन कदमरूप सत्व रज तम त्रिगुणात्मकरूपही अज्ञान तत्कार्य जगत् है और अज्ञान तत्कार्यको असत् जड दुःखरूप सम्यक् जो जानना नाम मिथ्यत्व निश्चय वा अभाव निश्चय जानना है, यही तीन कदमोंका नापना है। मैं सत् चित् आनंद स्वरूप आत्मा अज्ञान तत्कार्य ब्रह्मांडरूप कार्यका साक्षी हूँ, यही ब्रह्मांडका फोडना है. क्योंकि आत्मा अज्ञान तत्कार्य ब्रह्मांडका साक्षी होनेते ब्रह्मांडसे बाहर है। तिसके दृढ निश्चय रूप पादसे जीवनमुक्ति रूपी गंगा उत्पन्न होती है। तिसमें मुमुक्षु स्नानकर पवित्र होते हैं। तात्पर्य यह कि, उपदेशसे सद्गतिरूप पवित्रताको प्राप्त होते हैं।

श्रोत्रादिइन्द्रिय।

इतनेमें श्रोत्र मनादि इन्द्रिय मनुष्य मूर्ति धारकर आय बोले। हे जितेंद्रिय पूर्वक आत्मदर्शियो! शब्दादि विषयोंकोही हम श्रोत्रादि इंद्रिय ग्रहण करसक्ते हैं। शब्दादियोंसे भिन्न शब्दादियोंके साक्षी प्रत्यक् आत्माको हम ग्रहण नहीं करसक्ते, क्योंकि शब्दादि आकाशादि पंचभूतोंके गुण नाम पुत्र हैं और हम श्रोत्रादि इंद्रिय भी पृथिवी आदि भूतोंके कार्य नाम पुत्र हैं। इससे इनका हमाराही आपसमें संबंध है, इसीसेही हमारा इनका हमेशः (सुषुप्ति बिना) संयोग बना रहता है। शब्दादियोंके अनुकूलता प्रतिकूलतादि हमारे भ्राता मनको हर्ष शोक होता है। हम श्रोत्रादि इंद्रियोंको भी होता नहीं। तब हम लोगोंके साक्षी आत्माको कहांसे हर्ष शोक होवेगा। जो आत्मा हमारे धर्मको अपना धर्म मानेगा तो तिसको भ्रांति सिद्ध होगी। हमारा बडाभ्राता, अन्तःकरणरूप मन भी जाति गुण क्रियावान्, संबंधवान्, माया तत्कार्य पदार्थोंकाही, शोभन अशोभन चिंतनपूर्वक हर्ष शोक

करता है। मनादियोंके साक्षी आत्माको तो वृत्तिरूप मनादि चिंतनही नहीं करसक्के, क्योंकि चिंतनका भी आत्मा साक्षी है। जो शब्दादि विषयरूप तथा संकल्पादि वा जाति गुण क्रिया संबंधादि पदार्थरूप आत्मा होवे तो हम लोगोंका विषय आत्मा होवे सो शब्दादि विषयरूप आत्मा है नहीं। इससे हमारा विषयभी आत्मा नहीं। हमलोग तो शब्दादि विषयको विषय करकेही चरितार्थ हैं; उससे आगे हम अंध हैं। विधि पक्ष देखते हैं तो चक्षुआदि इंद्रियोंका,विषय सुवर्ण चीनी मृत्तिका तंतु स्वप्नद्रष्टा जलपंचभूतादि हैं; भूषण खिलौने घट पट स्वप्न पदार्थ तरंग भौक्तिकादि पदार्थ नहीं कल्पितकी सत्ता तथा कार्यकी सत्ता, अधिष्ठानकी सत्तासे तथा उपादान कारणकी सत्तासे भिन्न नहीं होती इससे सर्वनामरूप मांया तत्कार्य,असत् जड दुःखरूप जगतको, सत् चित् आनंदरूप आत्माधिष्ठानविषे कल्पित होनेसे, सर्व प्रकारसे अस्ति भाति प्रियरूप आत्माही श्रोत्र मनादिइंद्रियोंका विषय है। कल्पित नाम रूप पदार्थ हम लोगोंके विषय नहीं और कर्मेन्द्रिय तथा प्राण हमारे भ्रातनमें तो ज्ञानशक्ती है नहीं। केवल वाक्उच्चारण; लेन देन, गमनागमन, मल मूत्रका त्याग एतावन्मात्रही व्यवहार करते हैं और प्राणादि अन्नपानादि व्यवहार करते हैं। इतनीही क्रियामात्र हम चरितार्थ हैं। इससे साक्षीआत्मा अवाङ्मनसगोचर है।

भैरव।

इतनेमें भैरव आकर बोले–हे अभयदायक सभा! जिसके भयसे इंद्र, सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, वायु यमादि चलते हैं नाम आप अपने व्यवहारमें नियमपूर्वक प्रवृत्ति निवृत्ति करते हैं (सूर्य चन्द्रमादि ग्रहणसे चक्षुमनादि इंद्रियोंका भी ग्रहणकरना) सो, ऐसा भैरवब्रह्मात्मा है। सोच देखते हैं तो अभय भय जड पदार्थोंमें नहीं होता और चैतन्यमें

भी भयदेना बनता नहीं; जैसे आकाश चारभूत भौतिक पदार्थोंको अवकाश देता है; तैसे ब्रह्मात्मा सर्व नाम रूप माया तत्कार्य प्रपंचको अभयदान नाम सिद्धकरता है। चैतन्य पूर्वकही जडपदार्थोंके न्यूनाधिक व्यवहारको; जैसे चलानेका संकेत करता है तैसाही चलता है। बुद्धिविना चैतन्यपुरुष भी कुछ नहीं करसक्ता, यह सर्वके अनुभव सिद्ध है। संकेतको तोडना अतोडना तथा भय अभय जड पदार्थ जानतेही नहीं, चैतन्यपुरुषही संकेतको तथा तिसके तोडने न तोडनेको तथा तिनके न्यूनाधिक होने न होनेसे भय अभयको जानता है और चैतन्य भिन्न सर्व जड है।

अनादि पक्षमें तो जगत् करता ईश्वर है नहीं, तिसमें तो ईश्वरके भयसे सूर्य्यादि चलते हैं, यह बात बनती नहीं। जगत्के अवांतर अनेकप्रकारके द्रव्य गुण संयोगसे पुरुषोंकी बनावट बन सक्ती है। सादि पक्षमेंही उत्पत्ति बनेगी परन्तु सादि अनादिका कुछ मालूम पडता नहीं।

सादि अनादि पक्ष।

मनुष्योंके बनाये शास्त्रद्वाराही जगत्को सादि अनादि आदि व्यवहार कहना पडता है। जीवतोंने शास्त्र बनाये हैं, मृतकोंने बनाये नहीं। क्या जाने क्या तदबीर है? प्रत्यक्ष दृष्टांत तो तार रेलादि अनेक जड पदार्थोंको, अनेक प्रकारके प्रजाके व्यवहारकी सिद्धिके लिये चैतन्यपुरुषोंनेही संकेत किये हैं। रेलादि पदार्थोंको भय अभयादि कुछ नहीं। इससे भय शब्दका अर्थ संकेत करना। तात्पर्य यह कि, जिस रीतिका जड पदार्थोंको चैतन्यपुरुषने संकेत बांधा है, वैसेही चलता है, अन्यथा नहीं। सो संकेत चैतन्यपुरुष है, चाहे ईश्वर हो, चाहे जीव हो, चाहे आत्मा हो, चाहे खुदा हो। नामांतर भेद वेशकहों परन्तु चैतन्यपुरुषमें भेद नहीं।

हिमाचल पर्वत ।

पुनः हिमवान् पर्वतोंका कोई मनुष्य राजा था तिसका नाम हिमालय पर्वत था सो आकर बोला । हे एकाग्रचित्तवानसभा ! गुरुका शरीर हिमालय पर्वत है और जिज्ञासुका शरीर तिसकी स्त्री मैना जानो । तिनके परस्पर आत्मानात्मके विचाररूप मैथुनसे, ब्रह्माकार वृत्तिरूप पार्वती होती है और मैत्र्यादि वृत्तियां तिसकी सखियां होती हैं । सो प्रत्यक् अभिन्न ब्रह्मात्मारूप महादेवका तथा पूर्वोक्त पार्वती-का अज्ञान तत्कार्य अनर्थकी निवृत्ति और निरतिशय परम आनंद-की प्राप्तीरूप विवाह करता है नाम " यत्रयत्र मनोयाति तत्रतत्र समाधया " यही अर्थ जिज्ञासुओंको उपादेय है । नहीं तो बाहरकी कथाका मुमुक्षुओंको कुछ उपयोग नहीं । मनुष्योंके व्यवहार जड पर्वतोंसे नहीं होते ।

मच्छ कच्छ ।

तैसेही मच्छ कच्छ संज्ञावाले समुद्रके तीर मनुष्य योनियोंमें विष्णुके अवतार हुये हैं वा तिनके राजोंके भी मच्छ कच्छ नाम थे सो मच्छ कच्छ पूर्वोक्त सभामें बोले कोई जलजंतु मनुष्यवत् बोल नहीं सक्ते ।

ध्रुव ।

पुनः ध्रुव बोला हे साधो! जीवरूप स्वायंभुव मनुके कुलविषे मनरूप उत्तानपाद जानना । तिसकी राजसी तामसी वृत्तिरूप प्रवृत्ति तथा सात्विकी वृत्तिरूप निवृत्ति दो स्त्री हैं । तिस निवृत्तिरूप स्त्रीसे पूर्व पुण्योंके वशसे, सर्व वैरागादि देवी गुणोंसंयुक्त मुमुक्षुतारूप व्यवसाय दृढ़ सात्विकी वृत्तिरूप निश्चय उत्पन्न होता है, सोई ध्रुव जानना । प्रवृत्ति वृत्तिरूप स्त्री, मनरूप उत्तानपाद राजाको; अतिप्रिय होनेसे सदा सन्मुख रहती है, निवृत्ति नहीं यह सर्वके अनुभव सिद्ध है ।

और प्रवृत्ति निवृत्तिका विरोध भी सर्वके अनुभव सिद्ध है। तज्जन्य प्रजाका विरोध भी सर्वके अनुभव सिद्ध है। सो कदाचित् निवृत्तिका पुत्र दृढ सात्विकी निश्चयरूप ध्रुव प्रवृत्तिरूप स्त्रीके सन्मुख होता है, तब प्रवृत्ति अपना तथा निज बालबच्चोंका मुमुक्षुतारूप दृढ सात्विकी निश्चयरूप ध्रुवको अनिष्ट जानके, तिरस्कार करती है। तात्पर्य यह कि, राजसी तामसी प्रवृत्तिमें जो प्रवृत्तपुरुष हैं तिनको वैरागादि सहित मुमुक्षु पुरुषोंका संबंध नहीं बनता, यही तिरस्कार है। कदाचित् जो वैराग्यवान् मुमुक्षुपुरुष किसी अदृष्ट निमित्तसे प्रवृत्ति करते भी हैं तो तिस राजसी व्यवहारमें अवश्यमेव दुःख पाते हैं। परन्तु निज पूर्वपुण्योंके वशसे वा ईश्वर अनुग्रहसे कल्याणकारी पुरुष पुनः निवृत्तिरूप ब्रह्मविद्या स्त्रीकोही प्राप्त होते हैं। सो ब्रह्मविद्यारूप माता मुमुक्षुओंको उपदेश करती है। हे मुमुक्षु जनो! जो तुमको प्रवृत्तिजन्य विषय सुख भोगना है तो प्रवृत्तिके उदर नाम तिसके बीचमेंही रहो और ब्रह्मानंद सम्यक् विचाररूप निवृत्तिरूप स्त्रीमें है, आगे जो इच्छा हो सोई करो। सो पूर्वोक्त ध्रुव रूप मुमुक्षु ब्रह्मविद्यारूप माताके उपदेशसे चित्तकी एकाग्रतारूप तपको करता है नाम चित्तकी वृत्ति और प्राणोंको सर्व ओरसे खींचकर एक अंगुष्ठमें धारण करता है। तब सकाम मनरूप इंद्र, सज्जनोंकी नीतिसे अधिक, शब्दादि विषयोंके ग्रहण करनेवालेको, श्रोत्रादि इंद्रियरूप देवतासहित यह शरीररूप स्वर्गही विषय सुख भोगनेका स्थान है। जब मुमुक्षु चित्तकी एकाग्रतादि तप साधन कर आत्म ज्ञान संपादन करेगा तो पुनः देह धारणका अभाव होगा इससे पूर्वोक्त मन इंद्ररूप कामादि आसुरी संपदा सहित देवतोंके समाजका भी मनुष्य देहरूप स्वर्गमें अभाव होगा। इसवास्ते अपने इष्टकी रक्षाके हेतु पूर्वोक्त मन इंद्रिरूप देवता मुमुक्षुरूप ध्रुवको विघ्न करते हैं।

जो ऐसा नहीं माने तो इंद्रकी शास्त्रमें नियत आयु अबाध लिखी है, तथा इंद्र सर्वज्ञ लिखा है । जो किसीके उग्रतपसे इंद्र निजपदसे गिरेगा तो इंद्रकी नियत आयु कथन करनेवाला शास्त्र व्यर्थ होजावेगा । इससे पूर्वोक्त व्यवस्थाही ठीक है ।

। हनुमान् ।

इतनेमें हनुमान् आयकर बोले हे संतो! षट्वस्तु अनादि पक्षमें जीव ईश्वर दोनों भाई हैं । राम ईश्वर हैं और लक्ष्मण जीवरूप मुमुक्षु हैं । मन इंद्रियरूप इंद्र देवतोंको जीतनेवाला, इंद्रजीतरूप गुरुके ज्ञान रूप शक्ति मारनेसे, मुमुक्षुरूप लक्ष्मणको मूर्छा हुई (आवरण विशिष्ट अज्ञानांशाका नाशही मूर्छा है) तब विक्षेप विशिष्ट अज्ञानांश रूप हनुमानने, शरीररूप पर्वतसे, प्रारब्धरूप सजीवन बूटीसे, तथा रामरूप ईश्वरकी कृपासे, निजस्वरूपसे भिन्न सर्व नामरूप जगत्का मिथ्यत्व वा अभाव निश्चयरूप बाधित जानना अर्थात् संसारकी प्रतीतिपूर्वक जो जीवन्मुक्ति सोई मूर्च्छा खुलनी है ।

"ह इति प्रसिद्धं नू इति वितर्के" करके जो मान्यके योग्य होवे वा माया तत्कार्य में नहीं और यह मेरा नहीं किंतु मैं तिसका द्रष्टा हूँ,इस निश्चयवानका नाम हनुमान् है । सो मन इंद्रियादि जड पदार्थोंकर प्रत्यक्‌ आत्माही चैतन्य होनेसे मान्य देने योग्य है, इससे प्रत्यक्‌ आत्माकोही हनुमान् कहते हैं । इस हेतु हे अधिकारीजनो ! मुझ प्रत्यक्‌ आत्मा हनुमान् कोही अपना आप स्वरूप जानो जो जन्म मरणसे रहित जीवन्मुक्त होकर मेरे समान विचरोगे ।

॥ इति पक्षपातरहित अनुभवप्रकाशका सप्तमसर्ग समाप्त ॥ ७ ॥

अथ अष्टम सर्ग ८.

कारणदेव तथा कार्यदेवके परस्पर सम्वादद्वारा व्यवहार तथा परमार्थ निरूपणम् ।

कारणदेवका पुत्र कार्यदेव, छोटी अवस्थामेंही, गुरुके गृह जाके वेदादि विद्या सर्व पढके, निज गृहमें आकर, माता पिताका, शास्त्ररीति अनुसार,पूजन किया,परंतु नित्य नैमित्यादि कर्म रहित तूष्णीं स्थित होरहा। पिता यह अवस्था पुत्रकी देखकर बोला। हे पुत्र ! कर्मोंकी पालना तू क्यों नहीं करता ? तात्पर्य यह कि, कायिक वाचिक मानसिक कर्मनाम करनेका है,कर्म नहीं करनेसे शरीर नष्ट होवेगा। पुत्रने कहा हे पिता ! वेदमें कहाहै कर्मोंकरही बंधन होता है, इससे मोक्ष प्राप्तिके यत्नवान मुमुक्षु पुरुष कर्म नहीं करते। न कर्मोंकर मोक्ष होती है, न धनकर,न पुत्रकर होती है,केवल कार्य कारण रूप इस संघातरूप अहंकारके त्याग करही मोक्ष होती है। इत्यादि अनेक वाक्य हैं और पुनः यहभी वेदमें कहा है कि,उपनयनसे वा विवाहके उपरांत, जितने तक जीवे अग्निहोत्र कर्म करता हुआही जीवनेकी इच्छा करे। इत्यादि अनेक वेदमें वाक्य देखनेमें आते हैं। इसवास्ते दोनोंके मध्य मुझको क्या कर्तव्य है?तात्पर्य यह कि,कर्म नाम करनेका है, कायिक वाचिक मानसिक कर्म करनेसेही धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष नाम सुखकी प्राप्ति होती है। इस संशयरूप समुद्र विषे मैं डूब रहा हूँ, मुझको पार करो! मैं आपकी शरणागत हूं। पिताने कहा हे पुत्र ! कर्म उपासना ज्ञान तीनोंके प्रतिपादक वेदविषे वाक्य हैं। तात्पर्य यह कि, अंतःकरणकी शुद्धि वास्ते कर्मकांड है, अंतःकरणकी

निश्चलता वास्ते निर्गुण वा सगुण वस्तुकी अनेक प्रकारकी अहंग्रह वा प्रत्यक् ध्यान भक्तिरूप उपासना कांड है और अंतःकरण विषे ब्रह्मात्माके आवरणकी निवृत्ति वास्ते ज्ञानकांड है क्योंकि शुद्ध और निश्चल अंतःकरण विषेही ज्ञान होता है,अन्यथा नहीं।इससे ब्रह्मात्म एकत्व ज्ञानसे प्रथमही कर्म उपासनाके प्रतिपादक वाक्योंका मुमुक्षु को अनुष्ठान कर्तव्य है और ज्ञान उत्तर कालमें कर्मोंका त्याग कर्तव्य है; जैसे छोटे वृक्षकोही जलसिंचनादि व्यवहार है, दृढको नहीं। तथा पक्षी बच्चाके माता पिता, तबलगही बच्चेको सेवन करते हैं, जबलग परवृद्धि नहीं होते; उपरांत सेवन करेंगे तो पर गल जावेंगे। यही तिन वेदवचनोंकी व्यवस्था है इससे हे पुत्र ! तू ब्रह्मात्मा एकत्व ज्ञानके योग्य है ।

ब्रह्मका अनुभव क्या है ।

पुत्रने कहा हे पिता ! ब्रह्मका अनुभव क्या है ? पिताने कहा हे पुत्र ! जो चैतन्य वस्तु अंतर, आप मन बुद्धि आदिकोंसे अज्ञात हुआ २ और अज्ञान तत्कार्य मन बुद्धि आदियोंके अंतर ज्ञाता करके, जो चैतन्यकी स्फूर्ति है, सोई जानना ब्रह्मका अनुभव है। तथा देश देशांतर जो वृत्ति जाती है तथा स्वप्नमें स्वप्नांतर जो मनको होता है। तिनके अनुभव करनेवालेको ब्रह्म निजात्म जाननाही ब्रह्मका अनुभव है ।

मैं ब्रह्मको जानता हूं, यह जो निश्चय है सो अब्रह्म अनात्म मिथ्या निश्चय है क्योंकि जो जाननेमें आता है सो निश्चय दृश्य होता है; जैसे जो सूर्यसे प्रकाशनेमें आता है सो निश्चय प्रकाश्य सूर्यकी दृश्य होती है और सूर्य चैतन्य भिन्न किसी प्रकाश्यरूप दृश्यसे प्रकाशने योग्य नहीं। इससे दृष्टांतविषे सूर्य स्वयंप्रकाश है क्योंकि घटपटादि प्रकाश्यसूर्यको अन्य प्रकाशकके अभाव होनेसे प्रकाशते नहीं। तैसे ब्रह्मरूप आत्मा बुद्धि आदिसे जाननेमें आवेगा तो ब्रह्मात्मा दृश्य हो

जावेगा और बुद्धि स्वयंप्रकाश होवेगी। सो यह अर्थ श्रुति तथा विद्वानोंको अंगीकार नहीं। इससे मैं ब्रह्मरूप आत्माको जानता हूँ, यह निश्चय ठीक नहीं। किंतु ब्रह्मरूप आत्मा तो, जाननेवालेका स्वरूप, स्वयंप्रकाश, सर्व बुद्धि आदियोंका द्रष्टा है, बुद्धि आदियोंसे जाननेमें कैसे आवेगा? किंतु नहीं आवेगा; जैसे स्वप्नद्रष्टा स्वप्ननरोंके मन बुद्धि आदियोंसे नहीं जाना जाता है, उलटा स्वप्ननरोंको जानता है। इसीसे स्वयंप्रकाश है। हे पुत्र! ब्रह्मात्माका स्वरूप केवल शुष्क तर्कों करके ही सम्यक् अपरोक्ष जाननेमें नहीं आता, न बहुत श्रवण करनेसे जाना जाता हैं, न केवल चतुराईसे जाना जाता है, न अभिमानपूर्वक वेदादि विद्याध्ययनसे प्राप्त होता है, किंतु केवल अहंकार रहित, सरल बुद्धिपूर्वक, उत्कट जिज्ञासा सहित, सम्यक् श्रद्धालु आचार्यवानको ही, यह आत्मा सुलभ प्राप्त होता है।

प्रेरक जीव है कि, ब्रह्म?

पुत्रने कहा हे पिता! इस मनादि जड संघातका प्रेरक जीव है कि, ब्रह्मात्मा? पिताने कहा हे पुत्र! इसमें एक दृष्टांत सुनो जिससे तुझको जीव, ईश ब्रह्मस्वरूप तथा प्रेरक प्रेरय भाव जाना जावेगा। जैसे आकाश सूर्यके प्रतिबिंब विना जल नहीं होता है और जल विना प्रतिबिंब नहीं होता है। जल प्रतिबिंब इकट्ठेही होते हैं, जलके ग्रहणसे प्रतिबिंबकाभी ग्रहण होता है। तात्पर्य यह कि, जिस सूर्य वा चक्षु वा आकाशने जलको प्रकाशा है, वा अवकाश दिया है, तथा जिसने सर्व जगत्को प्रकाश अवकाश दिया है सोई, जल सहित प्रतिबिंबको प्रकाशता है, वा अवकाश देता है, यह दृष्ट सिद्ध है। इससे जलको प्रकाश्य योग होनेसे प्रतिबिंब भी अवश्य प्रकाश्य योग्य होवेगा। तैसेही अंतःकरणरूपी जलमें, वा अविद्या अंशमें, ब्रह्मात्मारूप सूर्य वा आकाशका प्रतिबिंबवत् प्रतिबिंब पडता है, दोनों मिले हुयेका

नाम जीव है, और बिंबका नाम ब्रह्म ईश्वर आत्माहै। अंतःकरण वा अविद्या सहित प्रतिबिंब रूप जीवसे भिन्न और कहीं जीवकी सिद्धि होती नहीं और होती हो तो तुमहीं कहो, तुम भी शास्त्रज्ञ निज अनुभव-वाले हो। इससे अंतःकरण सहित प्रतिबिंब जीव है। तात्पर्य यह कि, त्वं पदका वाच्यार्थ है। यही पूर्वोक्त जीवही जल सहित प्रतिबिंबके गमना-दिक समान कर्ता भोक्ता, परलोकमें गमन, पुनः इसलोकमें आगमन, ज्ञान अज्ञान, हर्ष शोक, सुख दुःख, बंध मोक्षादि धर्मोवाला है, बिंब नहीं। जैसे जल जलमें प्रतिबिंबका लक्षरूप जो सूर्यादि बिंब है सो, पूर्वोक्त सर्व सहित प्रतिबिंबके धर्मोंसे रहित हैं। तैसे अंतःकरण सहित प्रति-बिंबरूप जीवका, लक्षरूप जो ब्रह्मात्मा, बिंब स्वरूप साक्षी चैतन्य ईश्वर अंतर बाहिर स्थित है सो, पूर्वोक्त सर्व समान प्रतिबिंब मन का रूप जीवके धर्मोंसे रहित स्वतःही निर्विकार निर्विकल्प है। इससे यह सिद्ध हुआ कि, अंतर वस्तु मन बुद्धि आदियोंसे अज्ञात हुई २ और सर्व बुद्धि आदियोंको जो अंतर प्रकाश करे नाम जाने तिस वस्तुको ब्रह्म कहो, चाहे अल्ला, खुदा, रहिम, ईश्वर, चाहे नारायण, चाहे कृष्ण, चाहे राम, चाहे अंतर्यामी, चाहे गाड, चाहे परमात्मा, कहो। चाहे ईश्वर, चाहे आत्मा, प्रत्यक् कहो, चाहे पुरुष कहो, चाहे सत् चित् आनंद कहो। परंतु पूर्वोक्त लक्षण युक्त बिंबभूत वस्तुही तुम्हारा तथा हमारा सर्व जगत्का निःसंदेह स्वरूप है। यही वस्तु सर्व इंद्रिय प्राण देह मनादि संघा-तका प्रेरक है। अन्य जीव नहीं जीव प्रेरक है क्योंकि पूर्वोक्त रीतिसे जीवत दृश्य होनेसे मिथ्या है। तात्पर्य यह कि, जो अंतःकरण रूप दृश्य की व्यवहारक वा प्रतिभासक सत्ता है, सोई प्रतिबिंबकीभी सत्ता है भिन्न नहीं, अंतःकरणके अनुजाई प्रतिबिंब है क्योंकि बिंब मनके अनुसारी नहीं परन्तु संसारदशामें नाम ब्रह्मातम अज्ञा-

त दशामें, पूर्वोक्त जीव अबाध्य रूप सत् है, इसीसे शास्त्रने जीवको सनातन सत् कहा है, परंतु जीवका परमार्थ लक्ष स्वरूप बिंबभूत ब्रह्मात्मा त्रिकालक सत्स्वरूप अबाध्य है; अन्य जीवादि नहीं। जैसे जल सहित प्रतिबिंब मिथ्या है, बिंब भानुसत् है। हे पुत्र! यह सर्व बुद्धि आदियोंके प्रकाशक प्रेरक ब्रह्मरूप आत्माको श्रुति कथन करती है कि, प्राणोंका प्राण है, चक्षुओंका चक्षु है. श्रोत्रोंका श्रोत्र है, त्वचाका त्वचारूप है, मनका मनरूप है, आकाशका आकाशरूप है, इत्यादि सर्वको जान लेना। तात्पर्य यह कि, सर्व नाम रूप दृश्य वस्तुओंका, अस्ति भाति प्रियरूप आत्मा स्वरूपभूत है; जैसे सर्व नाम रूप तरंगादियोंका मधुरता द्रवता शीतलतारूप जल अपना स्वरूप है; तथा जैसे सर्व स्वप्न पदार्थोंका स्वप्नद्रष्टा स्वरूपभूत है, जैसे भूषणोंका स्वरूप सुवर्ण है; जैसे खिलौनोंका स्वरूप चीनी है, जैसे कल्पित सर्प दंड माला आदियोंका रज्जु अपना स्वरूप है, इत्यादि अनेक दृष्टांत हैं। तैसे नाम रूप प्रपंचका अस्ति भाति प्रिय-रूप मैंही स्वरूप हूं वा कार्य कारण रूप प्रपंच, मन वाणी सहित वाङ्मनसगोचरसें मैं आत्मा अवाङ्मनसगोचर हूं। ऐसे निश्चयवाला पुरुष जीवत अवस्थामेंही अमृतभावको प्राप्त होता है। हे पुत्र! जो चैतन्य मन बुद्धि श्रोत्रादि इंद्रियोंके अंतर, मन श्रोत्रादि इंद्रियोंसे अभिन्न हुयेके समान स्थित हुआ; जो मन बुद्धि प्राण श्रोत्रादि जड़ इंद्रियोंको आप अपने व्यवहारमें (जड़ पुतलीको पुरुषवत्) प्रेर-कर जोडता है, तथा तिनके न्यूनाधिक व्यवहारको जानता है और मन इंद्रियादि जिस (अपने प्रेरक) को नहीं जानते, उलटा मना-दियोंको जो प्रेरता जानता है, नाम सत्तास्फूर्ति प्रदानकरता है। सोई देव मनादि इंद्रियोंसे भिन्न मनादियोंका साक्षी तुम्हारा स्वरूप है। ऐसेही पृथिवी आदि सर्व पदार्थोंमें जोड लेना। हे पुत्र! जैसे घान

काटनेके शस्त्रको पुरुष धान काटने वास्ते प्रेरता है; तैसे यह एक आत्मा मनादि इंद्रियोंको, भिन्न होकर; उनके व्यवहारमें प्रेरता नहीं, किंतु जैसे स्वप्नद्रष्टा स्वप्नइंद्रियादि पदार्थोंमें स्थित हुआ २ निर्विकार होकर प्रेरता है। जैसे आकाश सर्वमें स्थित हुआ २ सर्वको अवकाश देता असंग है, यही तिसका प्रेरणत्व है। तैसे तुम ब्रह्मात्मा नाम रूप मनादि दृश्यविषे स्थित हुये २ तथा मनादि दृश्यके प्रेरक प्रकाशहुये २ भी असंग होनेसे स्वतः निर्विकार निर्विकल्प शांत रूप स्थित हो। यद्यपि मनादि जड प्रेरय और तुम्हारा स्वरूप चैतन्य प्रेरक एक रूप अविवेक दृष्टिसे भासते भी हैं; जैसे काष्ठ और अग्नि, अविवेकसे एक रूप भासते भी हैं, तथा दूध घृत विचारे बिना एकमेक भासते भी हैं परंतु एक नहीं। तथापि विवेक दृष्टिसे प्रेरय प्रेरक, जड चैतन्य, तथा अग्नि और काष्ठ, एक रूप होते नहीं, प्रसिद्ध तंत्र तंत्रीके समान। वा देहविषे देहीके समान वा देहविषे पिशाचवत् वास्तवभिन्नही हैं। तुम आपको मनादियोंका प्रेरक अंतर्यामी ब्रह्मात्मा जानो।

जीव शुभाशुभ कर्मोंका भोक्ता है अथवा नहीं ?

पुत्रने कहा हे पिता ! जब मन इंद्रियादियोंका, उनके शुभाशुभ व्यवहारकी प्रवृत्ति निवृत्तिमें प्रेरक कोई अन्यदेव है तो, इस जीवको शुभाशुभ कर्मोंका फल सुख दुःख न होनाचाहिये।दुःखकी इच्छा न करता हुआ बलात्कार, राजपुरुषके शुभाशुभमें जोडते हुयेके समान दुःखके साधनोंमें पुरुष जुडता है । तैसे ही सुखके साधनोंमें भी जान लेना।हे पुत्र!शुभाशुभ कर्म संघातके प्रसिद्ध धर्म हैं; धर्मसहित इस संघातके द्रष्टा आत्माके नहीं। परंतु भ्रांतिसे निज धर्म मानता है।इसीसे कर्मका फल सुख दुःख भोक्ता है; पर संघातका धर्म निजधर्म नहीं माने तो नहीं भोक्ता । जैसे पुत्रके सुख दुःखसे पिता भ्रम कर सुखी दुःखी होता है, विचारे तो पिताको पुत्रका सुख दुःख नहीं।

आत्मा असङ्ग है।

हे पुत्र! जैसे घटाकाश तथा स्वप्नद्रष्टा घट स्वप्नको अवकाश सत्ता स्फूर्ति देते भी, घट स्वप्नके व्यवहारसे, आकाश स्वप्नद्रष्टा सदा असंग निर्विकार है। वैसेही निजात्मा इस संघातको प्रेरता भी, सदा असंग है। ऐसे जाननाही कर्तव्य है और शारीरक साधन कुछ करना नहीं।

पुनः पिताने कहा हे पुत्र! इस प्रश्नके उत्तरका पूर्वही हम स्वप्न और स्वप्नद्रष्टाके दृष्टांतसे तथा आकाशके दृष्टांतसे, समाधान कह चुकेथे। अर्थात् धान काटनेवाले पुरुषके समान यह चैतन्य आत्मा मनादियोंको नहीं प्रेरता, किन्तु जैसे आकाश सर्व व्यापी होकर सर्वको अवकाश देता भी असंग है। ऐसेही आत्मा सर्वमें सर्वको सत्ता स्फूर्ति देता भी सबसे असंग है। परन्तु स्वप्नद्रष्टाका दृष्टांत अनुभवरूप होनेसे प्रधान है। तैसे यह साक्षी चैतन्य देव तुम्हारा आत्मा सर्व, ध्याता ध्यान धेयादि, त्रिपुटियोंका स्वरूप भूत हुआ २, नाम सर्वको सत्ता स्फूर्ति प्रदान करता हुआ भी असंग है। हे पुत्र! जैसे भूमि अनेक बीज अंकुरोंका आधार है, तथा अंकुरोंमें अनस्यूत है, भूमि विना एक अंकुर भी स्थित नहीं हो सक्ता। सारांश यह कि, जैसे आकाश सर्व अंकुरमें तथा पत्र. फल फूलमें, तथा भूमिमें व्यापक और असंग हुआ २ सर्वको अवकाश देता है; जो आकाश अवकाश नहीं देवे तो सर्वका व्यवहार कैसे होवे। परन्तु अनेक बीजोंमें तथा अंकुरोंमें आप अपने पूर्वसंस्कारके अनुसार, अनेक प्रकारके गुण व्यक्ति फल फूल पत्र सहित भिन्न भिन्न अंकुर निकसते हैं; और आकाश अवकाश सर्वको देनेवाला एकही है। तथा भूमि भी एकही है। यह दृष्टांत समदार्ष्टांतमें जोड लेना। तैसे अस्ति भाति प्रिय रूप आत्मा, सर्व नाम रूपात्मक जगतमें व्यापक आधार अधिष्ठान हुआ २ तथा द्रष्टा प्रकाशक

हुआ २ भी, तिनके व्यवहारोंसे अलिप्त है । कर्तव्य अकर्तव्यके गुण दोषको प्राप्त नहीं होता और असत् जड जगत्का नियामक भी है। तुम्हारे प्रश्नके अनुसार तो औषधियोंके गुण दोष आकाश और भूमिमें होने चाहिये क्योंकि भूमि और आकाश तिनके निर्वाहके कारण हैं । सो ऐसा देखनेमें नहीं आता । जैसे सूर्य्यादिकोंके तेजकर सर्व सृष्टि आप अपने व्यवहारमें बहिर जुडती है परन्तु तेज किसीको अंगुली पकडके नहीं जोडता।इसीसे सूर्य किसीके गुण दोषको नहीं प्राप्त होता, आप संस्कारके आधीन सर्व सृष्टि निजनिज व्यवहारमें जुडती है। तैसेही चैतन्यदेव अन्तरयामी तुम्हारा आत्मा मन बुद्धि आदि सर्वसृष्टिका नियामक हुआ २ भी असंग है । सृष्टिके कर्तव्य अकर्तव्यजन्य गुण दोषको नहीं प्राप्त होता, मनादि सृष्टि आप अपने संस्कारके अनुसार आप अपने संकल्प विकल्पादि व्यवहारमें जुडती है. इससे हे पुत्र ! अन्त मनादि दृश्यका द्रष्टा, विकार रहित, निर्विकल्प, एकरस अक्रिय अन्तर अमृत अभय अजन्मा, सुख दुःख रूप बंध मोक्षसे रहित है। तात्पर्य यह कि, सर्वसंसार और संसारके धर्मोंसे रहित स्वतःसिद्ध, अन्तर कोई वस्तु है ऐसा अनुभव होता है । सोई आकाशवत्, सर्व मनादियोंको सत्ता स्फूर्ति करता हुआ भी असंग है, सोई हमारा तुम्हारा स्वरूप है । यह जाननाही कर्तव्य है करना कुछ नहीं। स्वतःही बनरहा है। हे पुत्र! इस निज आत्मवस्तुको मन वाणी कथन चिन्तन नहीं करसक्ते क्योंकि कथन चिन्तनसे प्रथमही, कथन चिन्तनके भावाभावको प्रकाशता है। जो प्रथम सिद्ध न होवे तो कथन चिन्तनकी उत्पत्ति अनुत्पत्ति कैसे जाननेमें आवेगी। जैसे लडकेकी उत्पत्तिसे प्रथम दाई सिद्ध लडकेकी उत्पत्तिको, तथा उत्पत्तिके स्थानको जानती है । जो दाई प्रथम सिद्ध नहीं होवे तो, लडकेके सर्वव्यवहार जाने कैसे जावें? इत्यादि अंकुरादि अनेक दृष्टांत

है। जैसे अंकुरके प्रथमही पुरुष वा आकाश सिद्ध है। इसीसे स्वतः निजात्मा निर्विकार निर्विकल्प है क्योंकि निर्विकार सविकार, निर्विकल्प सविकल्पादि कथन चिन्तन, वाणी मनमेंही है। जब सुषुप्तिमें मन वाणी लीन होते हैं तो, विकार अविकार निर्विकल्पादि कथन चिन्तन भी नहीं रहते। परन्तु जो वस्तु जाग्रतमें कथन चिन्तनके भावका साक्षी है सोई, वस्तु सुषुप्तिमें तिन जाग्रतादियोंके अभाव कल्पनाका साक्षी है। जो चेतन सुषुप्तिमें निर्विकार है सोई चेतन जाग्रतमें है। वास्तवमें सोई वस्तु निर्विकल्प विर्विकार है, सोई प्रत्यक्ष आत्मा तेरा स्वरूप है, तू चैतन्य आत्माही इस जड संघातकी चेष्टाका कारण है। हे पुत्र! जैसे अचल जड वृक्षोंको चलावनेसे अरूप वायुका अनुमान होता है, वा त्वचा इंद्रियसे अनुमान होता है, यह घटवत वायुकी मूर्ति है। ऐसे वायुका चाक्षुष स्वरूप दिखावनेको कोई भी समर्थ नहीं हुआ। न है न होगा। ऐसेही ब्रह्मात्मा तेरा स्वरूप है, ऐसा है वा तैसा है, इस प्रकार किसी धर्म विशिष्ट हम नहीं कहसक्ते। न उपदेश कर सकते क्योंकि जब यह मन बुद्धि आदियोंका साक्षी, आत्मा, मनादि इंद्रियोंका विषय होवे तो जाति गुण क्रिया संबंधादि विशेषणोंसे तुझको उपदेश करें, सो आत्मा जाति आदि विशेषणों नाम धर्मोंवाला है नहीं, ना कैसे तुझको गोशृंगकी समान आत्मा दिखलानेको समर्थ होवें? किन्तु नहीं दुर्घट समझ है। अवाङ्मनसगोचरको अपरोक्ष अपने हस्तविषे अपरोक्ष फलके समान जाननेवत् जाननाही दुर्घट समझ है। इससे जो अंतर बुद्धि आदि संघात जडका प्रेरक अंतर्यामी है सोई तुम्हारा स्वरूप है। यह प्राण मनादि संघात व्यभिचारी है और तुम्हारा स्वरूप आत्मा व्यभिचारी एक रस है। इसीसे सत् है। जो सत् चित पूर्ण है, सोई आनंद रूप है। इससे सत् चित सुखरूप तुझ

आत्मासे भिन्न, असत् जड दुःख अनात्मा अव्यभिचारीरूप मनादि दृश्यका द्रष्टा तेरा स्वरूप है । सो यह द्रष्टा विदित वस्तुसे न्यारा है नाम वृत्तिरूप ज्ञानके विषय समष्टि व्यष्टि भूत भौतिक मायाके कार्यरूप प्रपंचवस्तुसे न्यारा है।तैसे विदितसे विपरीत अस्पष्ट पूर्वोक्त कार्यका कारण प्रकृति, प्रधान,माया,अज्ञान,अविद्या है सो,वृत्ति,ज्ञानका अविषय होनेते अविदित है । तिस अविदित वस्तुसे भी तेरा स्वरूप न्यारा है क्योंकि विदित अविदितका तू द्रष्टा है । तात्पर्य यह कि, प्रसिद्ध सुषुप्ति, स्वप्न, जाग्रत्में अविदित विदित माया तत्कार्यका तू चैतन्य दृष्टा है । इसीसे तू इनते भिन्न है । हे पुत्र! विदित अविदितपना दृश्यकोटिमेंही है, तिस दृश्यकाही विद्यत अविद्यतसे ग्रहण त्याग होता है; जैसे स्वप्नसृष्टिमेंही विदित अविदितपना तथा ग्रहण त्यागपना है, स्वप्नद्रष्टामें नहीं। तैसे तेरा स्वरूप स्वभाविक ग्रहण त्यागके योग्य नहीं, जैसे अपना शरीर ग्रहण त्यागके योग्य नहीं क्योंकि ग्रहण त्याग करनेवाली वस्तु अपनेसे भिन्न परिच्छिन्न दुःखरूप होती है । तथा दृश्य मिथ्यत्व स्वप्नवत् वस्तु होती है । सो तेरा स्वरूप आत्मा ऐसा नहीं; न सुख दुःखका साधन है, किन्तु ग्रहण त्याग विदित अविदितादि सर्व पदार्थोंका तथा सर्व पदार्थोंको विषय करनेवाली विदित अविदिताकार सर्व वृत्तियोंका साक्षी है । हे पुत्र ! विचार देखिये तो विदित अविदितरूप ग्रहण त्यागादि वस्तु भी, अपने अस्ति भाति प्रियरूप आत्मस्वरूपसे भिन्न नहीं;जैसे सूर्य वा लाल किर्णकी दमकामें हम किसकिर्ण दमकका ग्रहण करें किसको त्यागें और कौन किर्ण दमक विदित है कौन नहीं ? यह सब कहनामात्र है । तात्पर्य यह कि, सर्व नाम रूपात्मक जगत अपना स्वरूप सूर्यकी किर्णा है। दुःख सुख भी किर्ण हैं। समाधि असमाधिभी किर्ण हैं ।मन वाणी शरीर सहित जो संघातकी चेष्टाहै,

सो सब आत्माकी दमका हैं। कोई राजसी किर्ण हैं, कोई तामसी किर्ण हैं, कोई सात्विकी किर्ण हैं, कोई माया रूप किर्ण हैं और कोई आकाशादि किर्ण हैं। ऐसा हुआ २ भी आत्मारूप सूर्य लाल अपनी महिमासे स्थित है; जैसे स्वप्नके पदार्थ विदित अविदित ग्रहण त्यागके योग्य प्रतीति होते भी हैं, परन्तु वास्तवसे स्वप्नद्रष्टासे भिन्न नहीं। जैसे जलसे तरंगादि भिन्न नहीं; तैसे तुझ मनादियोंके साक्षी चैतन्य सूर्य लालकी, यह नाम रूपात्म जगत, किर्णादमका है। ग्रहण त्याग किसका करे, किसका न करे ? सूक्ष्म विचारें तो, अस्थि भाति प्रिय रूप आत्मासे भिन्न, कल्पित नामरूप पदार्थोंमें, वृत्तिरूप ज्ञानकी विदित अविदित रूप विषयता अविषयता है नहीं; किंतु आत्मामेंही है क्योंकि वृत्तिरूप ज्ञानकी विषयता अविषयताका आवरण भंग अभंग मात्र प्रयोजनहै सो, आवरण रूप अज्ञान चैतन्यके आश्रय होवे है; जैसे नीलमा आकाशके आश्रय है; तैसे आत्मासे भिन्न सर्व पदार्थ कल्पित अज्ञान आवरण रूपही हैं। अवर्णरूप अज्ञान अज्ञानके आश्रय होवे नहीं; जैसे अंधकारके आश्रय अंधकार नहीं। जैसे स्वप्न पदार्थोंके आश्रय स्वप्नपदार्थ नहीं, किंतु स्वप्नद्रष्टाके आश्रय हैं। जैसे रज्जुमें कल्पित सर्प दंड मालादि है सो, परस्पर किसीके आश्रय नहीं; किंतु रज्जुकेही आश्रय हैं। जैसे आकाश भिन्न नीलमा किसीके आश्रय नहीं। इससे वृत्ति रूप ज्ञानकी, विदित अविदित रूप, आवरण भंग अभंग रूप विषयता अविषयता, आत्मा रज्जुमेंही है। भूषणों तरंगों, घटों पटोंमें, भौतिक पदार्थों और स्वप्न पदार्थोंमें, जो वृत्ति ज्ञानकी विद्यत अविद्यत रूप विषयता अविषयता भासती है सो, सुवर्ण, जल, मृत्तिकातंतु, पंचभूत; स्वप्नद्रष्टामेंही है, अन्य भूषणादियोंमें नहीं। इसी दृष्टिके लिये ब्रह्मात्म अपरोक्ष विद्वानकी वृत्ति जहां जहां जाती है, तहां तहांही तत्तत् पदार्थ उपहित ब्रह्मात्माकोही विषय करती है।

नामरूप कार्यका विवर्तउपादान, सर्वरूप ब्रह्मात्माहोनेसे, वृत्ति ज्ञान-का विषय परोक्ष अपरोक्ष ब्रह्मात्माही है । इसीवास्ते विद्वानकी स्वतः सिद्ध नित्य समाधि अयत्न सिद्ध है । इत्यादि श्रुति है ।

हे पुत्र ! घट, पट, भूषण, तरंग, शास्त्र, सर्प, रजत, स्थंभ स्थित पुतली, आदि कल्पित पदार्थोंमें वृत्तिरूप ज्ञानकी विषयता अविष-यता प्रतीति होती भी है, परन्तु मृत्तिका तंतु सुवर्ण जल लोहा रज्जुशुक्ति स्थंभादि वृत्ति ज्ञानके विषय हैं, अन्य घटादि नहीं । इससे सर्वभेद रहित, सर्वाधिष्ठान, जगद्विध्वंस प्रकाशक, स्वतः बंध मोक्षरहित, अवेद्यत्व, सदा अपरोक्ष, साक्षी, सच्चिद्घन, विशुद्धानंदको, श्रुति अनुभवद्वारा, जब अपना आपस्वरूप जानोगे, तभी शांतिहोगी, अन्यथा नहीं । हे पुत्र ! काम संकल्प, श्रद्धा, अश्रद्धा, धैर्य, अधैर्य, भय, अभय, लज्जा, अलज्जा, शांति, अशांति, राग और वैराग; बंध मोक्ष, ज्ञान अज्ञान, क्रोध अक्रोध, उदारता अनउदारता, अहंकारता अनअहंकारता, मान अपमानादि, जितने आसुरी दैवी, सद् असद्गु-णरूपी धर्म अधर्म हैं सो, अंतःकरणकी वृत्तिरूप धर्म हैं । सो अंतः-करण अपने वृत्तिरूप धर्मोंसहित, अपने प्रकाशक ज्योति ब्रह्मात्मा-को मनन नहीं कर सक्ता, नाम जानता नहीं क्योंकि आत्माको मनादि प्रकाश्य नियमका प्रकाशक नियामकहोनेसे । प्रकाश्य अपने प्रकाशकको नहीं जानता; सूर्यादि दृष्टांतप्रसिद्ध हैं । उलटा चैतन्य ज्योति आत्मासेही मनादि प्रकाशते हैं इससे जिस वस्तुने अन्तर पूर्वोक्त निश्चयादि वृत्ति रूप धर्म सहित मनको मनन किया है, तिसीको तू ब्रह्मात्मा निजस्वरूप जान । जिस वस्तुको मन मनन करता है सो, तुम्हारा स्वरूप नहीं, वह माया तत्कार्यका रूप है, सो मनसहित तुम्हारी दृश्य है । इसीप्रकार सर्व इं-द्रिय प्राणादिमें तथा अन्य पदार्थोंमें भी जोड लेना, इत्यादि श्रुति है ।

आत्मा जाना जाता है अथवा नहीं ?

हे पुत्र ! ग्रहण त्याग योग्य वस्तुसे विपरीत तू ब्रह्मरूप आत्मा है। इस हमारे उपदेशसे तुझको निज स्वरूपका अनुभव हुआ है वा नहीं सो कह ? पुत्रने कहा हे पिता ! मैं सम्यक् अपने आत्मस्वरूपको जानता हूँ। पिताने कहा हे पुत्र ! "मैं सम्यक् आत्मा जानता हूँ" यह तेरा जानना भ्रांतिरूप है क्योंकि जैसे अग्निसे जलावने योग्य काष्ठादि वस्तु हैं सो काष्ठादि जलानेवाले अग्निके स्वरूप नहीं, किंतु भिन्न हैं और दाहक शक्तिका अग्नि आत्मा होनेसे, अग्निको जलाती नहीं। तैसे जानने योग्य ब्रह्मात्मवस्तु किसीका विषय होवे तो, सम्यक् जाननेको सामर्थ्य होवे। परन्तु ब्रह्मात्मा जाननेवालेका स्वरूप है। जानना त्रिपुटीमें होता है, ब्रह्मात्मा त्रिपुटीका प्रकाशक त्रिपुटीका विषय नहीं। यह सर्व वेदांतका सिद्धांत है। इससे सम्यक् जाननेवालेका ब्रह्मात्मा स्वरूप होनेसे कोईभी जाननेको शक्य नहीं है। जैसे अग्निकी दाहशक्ति अग्निसे पृथक् काष्ठादि वस्तुको जलाती है। परन्तु दाहशक्तिका जो अपना आत्मा अग्निस्वरूप है, तिसको नहीं दाह कर सक्ती। तैसे दाहरूप वृत्तिज्ञानका विषय, काष्ठके समान ज्ञानसे भिन्न ब्रह्मात्मा होवे तो, जानने योग्य होवे, परन्तु दाहशक्तिका आत्मा अग्निके समान जाननेवालेका स्वरूप ब्रह्मात्मा है; इसीसे ब्रह्मात्माका अन्य जाननेवाला कोई नहीं। जैसे स्वप्नद्रष्टाको स्वप्ननर जानने योग्य नहीं, स्वप्ननरोंका स्वप्नद्रष्टा आत्मा है। जैसे किर्णोंका सूर्य आत्मा होनेसे सूर्य किर्णोंसे अज्ञात है; जैसे देहसे देही अज्ञात है क्योंकि स्वप्नद्रष्टासे भिन्न सर्व स्वप्न कल्पित है इसीसे स्वयंप्रकाश है। जो अन्य किसी साधनसे जाना जाता है सो, स्वयंप्रकाश नहीं होता, किंतु परप्रकाश होता है। जो परप्रकाश होता है सो मिथ्या होता है। इससे हे पुत्र ! तू जब ब्रह्मात्माको सम्यक् जा-

नता है तो, तू निश्चयकर परिच्छिन्न असत् जड दुःख दृश्य मिथ्या वस्तुकोही जानता है क्योंकि ब्रह्मात्मा कैसा है, अशब्द, अस्पर्श, अरस, अगंध, अरूप, अचित्, असन, अघ्राण, अन अहंकार, अक्रिय, निर्विकल्प, निर्विकार, गमनागमनादि रहित, अशरीर, अव्रण, शुद्ध, पापरहित, जाति गुण क्रियादि धर्मोंसे रहित अस्तित्वमात्र है, बुद्धिके निश्चयमें नहीं आता, बुद्धिका द्रष्टा होनेसे क्योंकि जाति गुण क्रियासंबंधवान पदार्थोंकोही बुद्धि जानती है; इनसे रहितको नहीं जानती। ऐसे अवाङ्मनसगोचर ब्रह्मात्माको तू कैसे जानता है ? तू आपको बुद्धिरूप मानके आत्माको जानता है, वा आत्मा आपको जानता है; वा आभास आपको मानके आत्माको जानता है। जो आत्मा कहे तो आत्माश्रयादि दोष होवेंगे और चिदाभास सहित निश्चयात्मक वृत्तिरूप बुद्धि, सो आत्माकी दृश्य होनेसे स्वद्रष्टाको जानती नहीं; जो जाने तो आत्मा दृश्य मिथ्या होगा, घटवत् । इससे हे पुत्र ! अवास्तव स्वरूपके जाननेसे कल्याण नहीं होता। पुत्रने कहा हे पिता ! जिस धर्मसे जो निरूपण किया जाता है सोई, तिसका स्वरूप होता है जैसे मनुष्यका मनुष्यत्व धर्मसे निरूपण किया जाता है; सोई तिसका स्वरूप है। तैसे ब्रह्मात्माका पूर्वोक्त सत् चित् आनंदरूप विशेषणोंसे, जो निरूपण किया जाता है सोई, तिसका स्वरूप है । पिताने कहा हे पुत्र ! जितने शब्द हैं, सो सर्व सापेक्षक, सविकल्प, जाति गुण क्रियावान् वस्तुकोही निरूपण करसक्ते हैं । ब्रह्मात्मा जाति आदि गुणोंते रहित निरपेक्ष, निर्विकल्प है । आत्मा सर्व मनादिकल्पनाके आदि सिद्ध है सो कैसे निरूपण किया जावे ? तथापि मुमुक्षुके बोधवास्ते "सत् चित् आनंदरूप जो वस्तु है सोई, ब्रह्मात्मा तुम्हारा स्वरूप है" ऐसा श्रुतिने कहा है सो, सत् चित् आनंदभूत भौतिक कार्य कारण रूप प्रपंचमें, किसीभी मन प्राण श्रोत्र इंद्रियादि अनात्म पदार्थोंमें भी

घटता नहीं तथा आकाशादि भूतोंमें भी घटता नहीं, भौतिकोंमें भी घटता नहीं। तात्पर्य माया तत्कार्य किसी पदार्थमें भी घटता नहीं किंतु बुद्धि आदियोंके साक्षी आत्मामेंही घटता है। इससे सत् चित् आनंदरूप वस्तुही अपना आप आतमा जान। हे पुत्र! यह आत्माका स्वरूप भी, मन प्राण देह इंद्रियादि संघात समष्टि व्यष्टिके असत् जड दुःखरूप उपाधि द्वारा कहा है। वास्तव अवाङ्मनसगोचर अपनी आत्मा है; जैसे वृक्षकी चलनरूप क्रिया करही वायुका रूप जाननेमें आता है, अन्यथा नहीं। तैसे सर्व मनादि जड पदार्थोंका प्रेरक होनेसे आत्मा जाना जाता है; परन्तु वास्तवसे ब्रह्मात्माका स्वरूप जाननेवालेको अज्ञात है और न जाननेवालेको ज्ञात है। तात्पर्य यह कि, वाङ्मनसगोचरकर जाननेवालेको अज्ञात है और अवाङ्मनसगोचरकर जाननेवालेको ज्ञात है।

हे पुत्र! देह प्राण इंद्रिय मन बुद्ध्यादि आनंदमयादिकोष,अध्यात्म उपाधि परिच्छिन्न रूप पदार्थों मध्ये किसीको तू ब्रह्मात्माको स्वरूप जानता है तो तुच्छ जानता है। तैसे चक्षु आदि इंद्रियोंके सूर्यादि आधिदैव परिच्छिन्न रूप पदार्थोंमें किसी एकको तू ब्रह्मात्माका स्वरूप जानता है सो भी तुच्छही जानता है। तैसे भूत भौतिक शब्दादि अधिभूत पदार्थोंमें किसी एकका तू ब्रह्मात्माका स्वरूप जानता है तो, तू अत्यंत तुच्छ जानता है तात्पर्य यह कि,माया तत्कार्य मध्ये किसी भी पदार्थको, तू ब्रह्मात्माका स्वरूप जानेगा तो ब्रह्म,असत् जड दुःख दृश्य मिथ्या सिद्ध होवेगा क्योंकि जो जाननेमें आता है सो ब्रह्मात्मा नहीं, किन्तु ब्रह्मात्मा सर्व मनादियोंको जाननेवाला है। इससे सर्व पूर्वोक्त उपाधि रहित ब्रह्मात्माका स्वरूप जाना जाता नहीं क्योंकि स्वयंप्रकाश है। बुद्धिकी वृत्तिरूप ज्ञानका विषय नहीं। इससे तुमको स्वात्मविचार करना योग्य है। पुत्रने कहा

मैंवत मैं ब्रह्मात्मा, अपने निज स्वरूप स्वभाविक बंध मोक्ष रहित, अवाङ्मनसगोचर सर्वाधिष्ठान जगद्विध्वंस प्रकाश अवेद्यत्व सदा अपरोक्ष साक्षी सच्चिद्घन विशुद्धानंदको सम्यक् निजात्मा जाननेवत् जानता हूँ। कोई विषय विषयी भाव कर नहीं जानता हूँ, किंतु स्वयंप्रकाश भूमामें सर्वका अनुभवी आत्मा विदितसे भिन्न ग्रहण त्यागके योग्य नहीं और सर्व विदित अविदित ग्रहण त्यागरूपभी मैंही हूँ (स्वप्न द्रष्टावत्)। पिताने कहा हे पुत्र ! तू धन्य है ऐसा जाननाही सम्यक् जानना है ।

ज्ञानी अज्ञानीका भेद ।

पुत्रने कहा हे पिता ! विधिपक्षसेभी ब्रह्मात्मा सर्वथा अज्ञातही है क्योंकि सर्वरूप आप होनेसे तथा अन्यके अभावसे भी अज्ञातही हुआ। निषेधी पक्षसे भी अवाङ्मनसगोचर होनेसे भी अज्ञाताही हुआ। तो ज्ञानी अज्ञानीका क्या भेद है ? तिसके जाननेके साधन भी व्यर्थही हुये ? पिताने कहा हे पुत्र! अनेक विधि आप अपने वस्तुओंके स्वरूप हैं, जो जिस वस्तुको जैसा स्वरूप है सो; तैसाही जानता है, सोई सम्यक्दर्शी है। अन्य असम्यक्दर्शी हैं। जैसे प्रकाश्य प्रकाशक दृश्य द्रष्टा, प्रेरय प्रेरक, आत्मा अनात्माके भिन्न अभिन्न ज्ञानियोंको सम्यक् असम्यक्दर्शी कहते हैं। तथा वाङ्मनसगोचर अवाङ्मनसगोचर, ब्रह्मात्माके स्वरूप भिन्न अभिन्न ज्ञानियोंको सम्यक असम्यक्दर्शी ब्रह्मवेत्ता कहते हैं। जैसे आत्मा सत् चित् आनंद रूप वा सत् चित् आनंद आत्माके गुण जाननेवालेको सम्यक असम्यक्दर्शी कहते हैं और सम्यक् ब्रह्मात्मा एकत्व ज्ञानसे सुखरूप मोक्ष और ज्ञान भिन्न अन्य साधनसे सुख रूप मोक्ष जाननेवालेको सम्यक असम्यक्दर्शी विद्वान् कहते हैं। तैसे चाक्षुप आदि ज्ञानोंमें भी जानलेना। इत्यादि अनेक दृष्टांत हैं।

तैसेही जो अवाङ्मनसगोचर ब्रह्मात्माके स्वरूपको जानते हैं सोई आत्मज्ञानी हैं, अन्य अनात्मज्ञानी हैं।

हे पुत्र! शमादिपूर्वक कर्मउपासनाके अनुष्ठानसे, शुद्ध अचल अंतःकरण विषेही गुरुउपदेश द्वारा ऐसा निश्चय होता है, अन्य रीतिसे नहीं। साधन भी कर्मउपासना शमादि सफल है और जो अवाङ्मनसगोचरकर ब्रह्मात्माको जानता है सोई अनात्मदर्शी है। ज्ञानी अज्ञानीके शिरपर कोई शृंग अशृंग नहीं, जो भिन्न भिन्न पहँचान होवे।

हे पुत्र! इष्ट साधनता योग्यता, स्वकृति साध्यता, ज्ञानपूर्वकही ब्रह्मासे आदि लेके चींटी पर्यंत सर्वज्ञानी अज्ञानीकी प्रवृत्ति होती है, इससें विपरीत हेतुओंसे सर्वकी निवृत्ति होती है परन्तु परमा अपरमा ज्ञानका नियम नहीं। कह भेद ज्ञानी अज्ञानीका क्या हुआ!हे पुत्र! सर्व पदार्थोंके सामान्य विशेष ज्ञानमें माया विशिष्ट ईश्वर विना सर्व जीव ज्ञानी भी हैं, तथा अज्ञानी भी हैं। एक पदार्थके ज्ञानमें भी ज्ञानी अज्ञानी जीव कहे जाते हैं; जैसे माणिककी सम्यक् परीक्षावाला माणिकका ज्ञानी कहा जाता है, अन्य नहीं। तैसेही शिल्पविद्यावाला शिल्पज्ञ कहाजाता है और वही मनुष्य धनुषविद्यामें अल्पज्ञ है। धनुषविद्यावाला शिल्पविद्यामें अल्पज्ञ है। इसी रीतिसे सर्व समष्टि व्यष्टि पदार्थोंमें जानलेना। इससे यथार्थ स्वरूप पदार्थोंका सम्यक् असम्यक् जाननाही ज्ञानी अज्ञानीपना है और कोई चिह्न नहीं, केवल दृष्टिका भेद है, सो भी स्वसंवेद है, परसंवेद नहीं।

हे पुत्र! जब यह अधिकारी अपने नित्य ज्ञान अनंत रूप सर्वात्माको सम्यक् अपरोक्ष निजस्वरूप जानता है तब, किस चक्षु आदि साधनोंकर वा चक्षुसादिजन्य ज्ञानोंसे किस रूपादिक पदार्थोंको देखे नाम जाने। किन्तु किसी कर भी नहीं देखता क्योंकि सर्वरूप

आपही है । जैसे पंचभूतोंका कोई कार्य अपने स्वरूपको सम्यक् जानता है तो सर्व नामरूप प्रपंच आप होता है, इदंता कर अपनेसे भिन्न अन्यको नहीं देखता। जैसे तरंग अपने मधुर शीतल द्रवता स्वरूप जलको सम्यक् जानता है तो सर्व जलरूप आप होता है। जैसे स्वप्नद्रष्टा निज विज्ञानसे सर्व स्वप्नपदार्थोंको अपना आपही जानता है सो, सर्वात्मा होता है तो किससे किसको देखे, किन्तु भिन्न नहीं देखता । अन्यथा आपको भिन्न कल्पता है,अन्यको भिन्न जानके ही दुःख पाता है ।

चक्षु आदि इन्द्रिय आत्मा नहीं।

हे पुत्र ! शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध और मैथुनजन्य सुख, अनिष्ट संबंधजन्य दुःख,इष्ट संबंधजन्य सुख और संकल्पनिश्चयादि जिसकर जाने जाते हैं सोई तेरा स्वरूप है । पुत्रने कहा चक्षु मन आदि इंद्रियोंकर रूपादि विषय जाननेमें आते हैं इससे चक्षु आदि इंद्रियेंही आत्मा हुये। पिताने कहा हे पुत्र ! जैसे तीर (बाण) से वा बंदूकसे निशाना बेधा प्रतीति होता भी है, परन्तु जब विचारें तो चैतन्य पुरुष बिना जड परतंत्र तीरादि निशानेको कैसे बेधेंगे किन्तु नहीं बेधेंगे क्योंकि निशाना तीर बंदूक धनुष और हाथ चक्षु मनादि पुरुष प्रयत्न विना कुछ नहीं करसक्ते। तथा न जानसक्ते हैं। पुरुषही सब तीरादियोंके न्यूनाधिक हालको जानता है तथा न्यूनाधिक भाव करसक्ता है। जैसे मंदिरमें दीपक वारियोंद्वारा बाहिर पदार्थोंको प्रकाशता है,वारियाँ नहीं । तैसे दार्ष्टांत जान लेना । तीरादियोंके तुल्य मनादि हैं, लौकिक पुरुषवत् आत्मा है । इससे जड परतंत्र मन इंद्रियादि आत्मा नहीं। जैसे तीरादि पुरुष नहीं । हे पुत्र । जैसे रज्जु सर्पके सम्यक् विवेक समकालमेंही, रज्जुविषे सर्पकी निवृत्ति और अकंपादियोंकी प्राप्ति वास्ते भी अन्य प्रमाण वा अन्य साधनादि खोजने जाना नहीं,

जो खोजता है सो भ्रांतिवान् है। किन्तु ज्ञानसमकालही भय कंपकी निवृत्ति और रज्जुकी प्राप्ति होती है। तैसे प्रत्यक् आत्माके सम्यक् जाननेसेही बंधकी निवृत्ति मोक्षकी प्राप्ति वास्ते अन्य प्रमाण वा अन्य साधन वा अन्य फल खोजने योग्य नहीं, जो खोजे सो भ्रांतिवान् है। हे पुत्र! यद्यपि प्रत्यक्षादि प्रमाणोंकर यह संसार सत्भी भासता है, तथा प्रत्यक्षादियोंके ज्ञानमें साधन भी प्रतीत होते हैं, तथा रूपादि ज्ञेय भी प्रतीति होते हैं तो भी यह त्रिपुटी मिथ्या मायामात्र है। प्रमाता प्रमाण प्रमेयका ज्ञाता द्रष्टा तुम्हारा स्वरूप है। त्रिपुटी तुम्हारा स्वरूप नहीं। जैसे स्वप्नकी प्रमाता प्रमाण प्रमेय त्रिपुटी सद्रूपसे भासती भी है, तथा प्रत्यक्षादि प्रमाण रूपादियोंके साधन भासते भी हैं तो भी, मिथ्या मायामात्र है। स्वप्नके सर्व इंद्रियादि पदार्थ एक द्रष्टा चैतन्य आत्मासेही प्रकाशमान् हैं, तिस द्रष्टा विना कोई भी स्वप्नके इंद्रिय सूर्य घटपटादि पदार्थ आपसमें प्रकाश्य प्रकाशक भाव नहीं। तैसे आत्माही प्रत्यक्षादि प्रमाणोंका तथा सर्व दृश्यका प्रकाशक है। इंद्रिय सूर्यादियोंसे घटपटादि प्रकाशते नहीं; किंतु आत्माही इंद्रिय सूर्यादि पदार्थोंमें स्थित हुआ २ मन इंद्रियादि सहित सर्व पदार्थोंको प्रकाशता है। जैसे पुरुषही मंदिरमें स्थित बारीद्वारा बाहर सर्व पदार्थोंको देखता है, बारियाँ नहीं। जैसे दर्पणमें अनेक प्रतिबिंबोंको पुरुषही प्रकाशता है, दर्पण नहीं। जैसे दूरबीनमें पुरुषही देखता है दूरबीन नहीं। परन्तु दूरबीनादि देखनेका साधन है। हे पुत्र! इस कार्यकारण संघातकी ही, अविवेक दृष्टिसे प्रतीतिकी प्रधानता होनेसे, आत्मा अधिष्ठानकी स्फूर्ति नहीं होती; जैसे रज्जुके अज्ञानसे कल्पित सर्पादियोंकी प्रधानताके प्रतीति होनेसे रज्जु भासती नहीं; तैसे आत्मा सर्पादि और इस संघातके अंतर गूढ छिपा हुआ है। विवेकीको आत्मा रज्जुकीही प्रधानता स्फुट भान होती है, अविवेकीको नहीं।

मायावी (इन्द्रजाली) पुरुषके दृष्टान्तसे आत्माकी असंगता ।

जैसे मायावी इंद्रजालक पुरुष एक तंतु ऊपर आकाशमें फेंकके आप आयुधसहित तंतुपर आरूढ होके, अदृश्य हुआ युद्ध करता है, पुनः खंड खंड होयके आपही नीचे पतन हुआ भी प्रतीत होता है पुनः पूर्ववत् वैसाही उठ खड़ा होता है । परन्तु तिस इंद्रजालकके सम्यक् सत् स्वरूपको जाननेवाले पुरुष, तिस इंद्रजालककी रची माया और मायाके कार्य स्वरूपोंको, प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे अपरोक्ष देखते भी, इंद्रजालककी लीलामात्र मिथ्या मानते हैं। स्वमाया कर आच्छादितभी अमायक परमार्थरूप एक इंद्रजालककोही सत मानते हैं, अन्य सर्व लीला मिथ्या मानते हैं। मूर्ख आश्चर्यमान् हुये २ लीलासहित मायक इंद्रजालकोही सत माने हैं । तैसे नित्य सुख प्रकाश निजात्मारूप माहामायावी इंद्रजालीने, यह नामरूप जाग्रतादि मिथ्या प्रपंचतंतु पसारी है, तंतुपर आरूढ इंद्रजालीके समान, जाग्रतादियोंके अभिमानी समष्टी वैराट् आदियोंसे अभिन्न, विश्व तैजस प्राज्ञादि सभास्व अंतःकरण जीव है; सो अप्रमार्थरूप हैं । तिनोंमेंही युद्ध करना खंड खंड होना पुनः पूर्वरूप होना आदि सर्व व्यवहार हैं। जैसे तंतु आरूढसे भिन्नही, परमार्थरूप मायावी इंद्रजाली, पृथिवीविषे स्थित भी स्वमायासे आच्छादित अदृश्य है, पूर्वोक्त युद्धादि सर्व विकारोंतें रहित स्थित है, बुद्धिमान् जानते हैं अन्य नहीं जानते।

तैसे तुरीय प्रत्यगात्मा, तुम्हारा, सत्स्वरूप, इस कार्य कारण संघातके अंतर स्थित भी, स्वमायारूप वस्त्रसे या हुआ भी, स्वतः निर्विकार है । परन्तु प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे अदृश्यमान् हुआ भी, कोइक श्रद्धा आदि साधनों सहित मुमुक्षु श्रुति अनुभवसे सम्यक् अपरोक्ष करसक्ते हैं, अन्य नहीं । हे पुत्र! व्यष्टि जाग्रतादि उपाधियों से तूही तुरीय आत्मा भी विश्वादि संज्ञाको पाता है । तैसेही समष्टि

उपाधियोंसे तू चैतन्यही वैराटादि संज्ञाको पाता है। उपाधियोंसे रहित तूही शुद्ध ब्रह्म कहाता है। जैसे क्रिया भेदसे एकही मनुष्य अनेक संज्ञा पाता भी सर्वक्रियारहित शुद्ध मनुष्यमात्र है। जैसे एक आकाश घटादि उपाधियोंसे घटाकाशादि संज्ञा पाता है, उपाधियों रहित शुद्ध आकाशमात्र है। हे पुत्र! तुम्हारा स्वरूप सर्व मन बुद्धि आदियोंका अनुभव करनेवाला मनादियोंके अंतर स्थित है, इसीसे मनादियोंसें अदृष्ट है। जैसे सर्व स्वप्नसृष्टिका अनुभव करने वाला स्वप्नद्रष्टा सर्व स्वप्नसृष्टिके अंतर स्थित है, इसीसे स्वप्नसृष्टिसे स्वप्नद्रष्टा अज्ञात अचिन्त्य हुआ भी सर्वका द्रष्टा है।हे पुत्र! तू चैतन्य सर्व धर्माधर्मसे नाम माया तत्कार्यसे रहित है, इसीसे तू शांत है। तुझ द्रष्टाका द्रष्टा कोई नहीं, तू चैतन्य अजाग्रत, अस्वप्न, अनिद्रित है। इसीसे तू जाग्रतादियोंके अभिमानी विश्वादि भी नहीं क्योंकि उनका द्रष्टा है। जैसे काष्ठमें, हस्ती आदि पुतलियोंका, काष्ठ विशेष अधिष्ठान आधार है;काष्ठसे हस्ती आदि भिन्न हैं नहीं; तैसे तू चैतन्य इन नामरूप आकाशादि पुतलियोंका अधिष्ठान है क्योंकि असत जड दुःख दृश्य कल्पितसे तुझ चैतन्यका सत् चित् आनंद स्वभाव जुदा देखनेमें आता है, अधिष्ठानसे विषम सत्ता भ्रमकी कही है। तात्पर्य यह कि, अस्ति भाति प्रिय रूप आत्मासे जो भिन्न भासे सोई भ्रमका रूप है। इससे तू दलील देके विचार; द्रष्टाका स्वभाव और दृश्यका स्वभाव जुदा जुदा है, क्यों एकमेक करता है, सम्यक्दर्शी हो। हे पुत्र! वाङ्मनसगोचर करके जो ज्ञान होता है सो नाम रूप जाति गुण क्रिया संबंधवान् पदार्थोंकाही ज्ञान होता है, सो आत्मज्ञान नहीं किन्तु मिथ्या भ्रांतिरूप ज्ञान है। सम्यक् अपरोक्ष अवाङ्मनसगोचरकरजो निजात्मज्ञान है।सोई सम्यक् ब्रह्मात्मा ज्ञान है,वास्तवसे इन दोनों वृत्तिरूप ज्ञानोंका निजात्मा द्रष्टा है, इसीसे कथन चिंतनसे

अगोचर है। जैसे स्वप्न नरोंके वाङ्मनसगोचर अवाङ्मनसगोचर दोनों ज्ञानोंका स्वप्न द्रष्टा है, दोनोंका विषय नहीं। हे पुत्र! जैसे शुद्ध स्फटिकमणि दूरस्थित रक्तके प्रतिबिंब सहित भासतीभी वास्तवसे शुद्ध स्फटिकमणिको लालरंगवाली जानना भ्रांति है।

जाग्रत् और स्वप्न दोनों तुल्यही हैं।

पुत्रने कहा हे पिता! स्वप्न अल्पकाल स्थायी है और जाग्रत् दीर्घकाल स्थायी है, स्वप्नका पदार्थ देखा पुनः वही नहीं देखा जाता और जाग्रत्का देखा पदार्थ, स्वप्न वा सुषुप्ति हुआ पीछे भी देखा जाता है-तो, स्वप्न जाग्रतको तुल्य कैसे कहा है? पिताने कहा हे पुत्र! जैसे रज्जुविषे सर्पकी दीर्घकाल पुरुषको प्रतीति हुई पुनः तिसी रज्जुविषे तिसी पुरुषको माला वा जलकी लकीर अल्पकाल प्रतीति होकर पुनः तिसी रज्जुविषे तिसी पुरुषको पुनः पूर्ववत् सर्प प्रतीति, दीर्घकाल माला दंड प्रतीति रहित तो तूही विचार कि, क्या भेद हुआ? कुछ नहीं हुआ। जैसे स्वप्नमें स्वप्नांतर होता है तो, प्रथम स्वप्नके देखे पदार्थ स्वप्नांतरके हुए भी वैसेही रहतेहैं और स्वप्नांतरके देखे पदार्थ प्रथम स्वप्नमें वही नहीं रहते यह अनुभव सिद्ध है। हे पुत्र! सर्व जाग्रतादि प्रपंच तुझ अधिष्ठानमें स्वप्न रज्जु सर्पवत् समानही कल्पित हैं किंचित् भेद नहीं।

आत्माही सर्व प्रकाशक है।

हे पुत्र! जैसे सूर्य नेत्रोंमें स्थित हुआ २ नेत्रोंको प्रकाशता और नेत्रद्वारा रूपकोभी प्रकाशता है, तैसेही तू चैतन्य मन प्राण देह इंद्रियादियोंमें स्थित हुआ २ मन इंद्रियादियोंको भी प्रकाशता है और मन इन्द्रियादियों द्वारा सर्व जगत्का व्यवहार सिद्ध करता है क्योंकि तुझ आत्मा भिन्न सर्व जड है। हे पुत्र! मन संकल्पद्वारा क्रमसे सर्व पदार्थोंसे चिंतनरूप संबंध करता है और यह आत्मा मनके पहुँ

चनेसे पहलेही मनविषे तथा नाम रूप पदार्थोंमें अस्ति भाति प्रियरूपसे प्राप्त है। जैसे वायुके वा वायुसे चलाया तृणके अन्य स्थान पहुँचनेसे पहलेही आकाश वायुमें तथा सर्व पदार्थोंमें प्राप्त है। जैसे स्वप्नमें स्वप्ननरोंके अन्य स्थानके पहुँचनेसे पहलेही स्वप्नद्रष्टा स्वप्ननरोंको हाजिर हुजूर है। जैसे जहाँ तरंग जावेगा जल आगेही लाधेगा। जैसे यह शरीर जहां जावेगा तहां आगेही पंचभूत लाधेंगे। हे पुत्र! अंतःकरणकी जो जो वृत्तियाँ, स्वतंत्र वा इंद्रियोंद्वारा, उत्पन्न होती हैं सो सो आत्माके प्रकाशकर प्रकाशित हुईं हुईं उत्पन्न होतीहैं। जैसे अग्निकर तपाये लोहके कूटनेसे जितनेक लोहके चिनगारे निकसते हैं, सो सर्व अग्निकर प्रकाशितही निकसते हैं।

आत्मा एकही है।

हे पुत्र! जैसे एकही सूर्य जलके अनेक पात्रोंमें अनेकरूप देखपडता है पर वास्तव एकही है, तैसे आत्मा तेरा स्वरूप अन्तःकरणादि उपाधिकर अनेकरूप हुआ भी वास्तव एक रूपही है। सत चित् आनंद स्वरूप निजात्माही दुःखोंसे रहित अपरोक्ष सुख मोक्ष स्वरूप है, अन्य अनात्म संसार दुःखरूप बंध है। आगे जो इच्छा होय सोई कर।

ज्ञानीको ध्यानकी कर्त्तव्यता अकर्त्तव्यता।

पुत्रने कहा ज्ञानवान्को भी ध्यान कर्त्तव्य है वा नहीं? पिताने कहा हे पुत्र! जब शुद्ध दर्पणसे सम्यक् अपना मुख देखा तो, कह पुनःमुखका ध्यान करना चाहिये कि, नहीं? पुनः दर्पणसे मुख देखे तो विलासमात्र है, कर्त्तव्य नहीं। हे पुत्र! प्रत्यगात्मा तुम्हारा स्वरूप स्वभावसेही बंध मोक्षादि विकल्पसे रहित है। परंतु सम्यक् आत्मज्ञान रहित पुरुष अपनेमें बंध मोक्षकी कल्पना करके पुनः तिनकी निवृत्तिप्राप्तिवास्ते अनेक प्रकारके यत्न करते हुए दुःख पाते हैं। तैसें

आपही आत्म विचारकर सुख पाते हैं । इससे आपही सुख दुःख कल्पता है और आपही मिटाता है तो यही मालिक रहा; जैसे आकाशके स्वरूपका ।अज्ञानी नीलता रजादि मलीनतासे आकाश को मलीन जानके, तिसकी निवृत्तिके वास्ते यत्न करे;परंतु सम्यक् आकाशके स्वरूपका ज्ञानी आकाशमें मलीनता जानता नहीं,इसी से यत्न करता नहीं ।

हे पुत्र ! जैसे पंच विषय सर्व ब्रह्मादि लोकोंमें एक सरीखे हैं और जैसे षोडशकालरूप सूक्ष्म शरीर सर्व ब्रह्मादिसे चींटीतक स्थूल शरीरोंमें एकही सरीखे हैं, तैसे यह मनादियोंका साक्षी आत्मा विष्णुसे चींटी पर्यंत निर्विकार असंग निर्विकल्प सत् चित् सुखरूप बंध मोक्षसे रहित एक सरीखा सर्वके हृदयमें स्थित है । इसीसे ग्रहण त्याग, आविर्भाव तिरोभाव अपना आप होनेसे होता नहीं ।

परम समाधि—परम पदार्थ ।

चित्तकी एकाग्रतारूप समाधि,चित्तके विक्षेपरूप असमाधि,दोनों का द्रष्टा आपको जानना यही परमसमाधि है । हे पुत्र ! मन सहित प्रतिबिंबरूप जीवको समाधि आदि कर्म करना,है वा नहीं करना? परंतु बिंबरूप सूर्य आत्माको नहीं करना, यह प्रत्यक्ष सिद्ध है । प्रतिबिंबकी समाधि क्या है ? चल अचल जलमें स्थित भी बिंबरूप जानना और प्रतिबिंबकी असमाधि क्या है ? आपको बिंबसे पृथक् जानना यही समाधि असमाधिका स्वरूप मालूम देता है । जो बिंब प्रतिबिंबके कर्तव्य आपमें माने तो; भ्रांति है । तू बिंबभूत आत्मा त्यागका त्यागकर, वैरागसे वैरागकर,समाधि असमाधिको सिद्ध करने वाला प्रथम स्वतःसिद्ध आपको जाननेवत् जान,जो सुखीवत् सुखी होवे । यही ब्रह्मरूप, अस्पर्श योगरूप, समाधि है । निर्विषाद सर्व को सुलभ अत्यंत हितकर है । यही ब्रह्मविदनका धन है । शास्त्र

विद्वान् और स्वरूप अनुभवके सम्यक् विचारसे सुलभ प्राप्त हैं; अधिकारियोंको।

आत्मा अनात्माका स्वभाव तथा बंध मोक्षक हेतु अकर्तव्यता।

हे पुत्र! आत्मा अनात्मा दो वस्तु हैं तिनके भिन्न भिन्न स्वभाव हैं। आत्मा अनात्मा नहीं होता और अनात्मा आत्मा नहीं होता है तम प्रकाशवत्। दोनोंके मध्यमें आत्मा वा अनात्मामेंसे किसीमें तुझको अहंप्रत्यय अवश्य करनाही पड़ेगा; क्योंकि तीसरी वस्तुका अभाव है। किसी न किसी पदार्थविषे अहं प्रत्यय किये विना मन माने नहीं। इससे तू सम्यक् विचार कर कह दोनोंके मध्यमें तू कौन है? आत्मा वा अनात्मा? जो तू आत्मा है तो, कार्य कारण रूप संघातादि अनात्मा, तथा तिसके धर्म जन्मादियोंका तुझ आत्माको द्रष्टा होनेसे, तुझे नहीं पहुचसक्के। जो तू अनात्मा है तो अनेक यत्नसे भी जन्मादि बंधन दूर होसक्के नहीं; क्योंकि दोनोंका स्वतः स्वभाव सिद्ध है। इससे दोनों रीतिसे तुझको बंध मोक्षकी निवृत्ति प्राप्ति वास्ते अनेक साधनोंका कर्तव्य निष्फल है। यही रीति द्रष्टा और दृश्यविषे प्रेरक प्रेर्य्यविषे, असत् सत् विषे, जड चैतन्य विषे, सुख और दुःख विषे, पूर्ण अपूर्ण विषे, संगी असंगी विषे, स्वभाविक निर्विकल्प सविकल्प विषे, संसारी असंसारी विषे वाङ्मनसगोचर विषे, अवाङ्मनसगोचर विषे, निर्विकार सविकार विषे, परमार्थ शुद्ध अशुद्ध विषे; इत्यादि सर्व पदार्थोंमें जोड़लेना। तात्पर्य यह कि, पूर्वोक्त विशेषणोंमें एक तो अनात्मादि कार्य कारण प्रपंच दृश्य कोटिका है और एक आत्मादि विशेषण ब्रह्मात्म कोटिका है। जो अर्थ आत्मा नात्मामें किया है सोई अन्यमें भी जानलेना।

हे पुत्र! सम्यक् विचारके कह—तू अब आपको क्या जानता है? पुत्रने कहा हे पिता! आत्मानात्मादि विचारका, निश्चय, मनन,

चिंतन, अहंप्रत्यय करना, अंतःकरणका स्वभाव है;मैं चैतन्य तो इस स्वभावसे रहित मन वाणीसे अवाच्य स्वयंप्रकाश रूप हूँ मुझमें जानने न जाननेका मार्ग नहीं। मुझ चैतन्यको किंचित्‌मात्र भी बंध मोक्षकी निवृत्ति प्राप्ति वास्ते कर्तव्य नहीं। यही हमारा निश्चय है। हे पुत्र! वाङ्मनसगोचरादि विशेषण सहित मनादि दृश्यको तथा तिनके संकल्पादि धर्मोंको अपना द्रष्टा स्वरूप मत मानियो।

कृष्ण और झूलनोत्सव।

(कृष्णका ध्यान)

क्षेत्रज्ञ कृष्ण आप हैं। क्षेत्र दृश्यरूप, क्षेत्रज्ञ कृष्णको, मत करियो। यह भक्ति भी अभक्ति है और पूजाभी अपूजा है। सम्यक् कृष्णकी पूजा यही जाननी कि, क्षेत्र क्षेत्रज्ञको जुदा २ जानना। हे पुत्र! मायारूप पृथ्वीविषे, तूला विद्यारूपी वृंदावनमें, इस संघातरूप मंदिरविषे, अन्तःकरणरूप हिंडोलेमें स्थित, क्षेत्रज्ञरूप तुझ कृष्णको, सत्व रज तम रूप डोरियोंसे, चिदाभासयुक्त अहंकाररूप जीव पुजारी, झुलानेवत् झुलारहा है और तू अनेक दैवी आसुरी गुणरूप पुष्पोंकी सुगंधि लेनेवत् लेरहा है नाम तिनको प्रकाश कर रहा है। मन चक्षुआदि इंद्रियरूप लोग, तेरे दर्शनकर प्रसन्न होते हैं नाम आप अपने विषयमें तुझ कृष्ण क्षेत्रज्ञकी सत्ता स्फूर्तिकर प्रवृत्ति निवृत्तिरूप व्यवहार करते हैं। शब्द स्पर्श रूप रस गंध विषयरूप भोग्य, नामरूप प्रपंचरूपी थालमें रखके, पूर्वोक्त जीव वा माया विशिष्ट शबलब्रह्म, चिदाभास सहित मायारूप ईश्वर महंत, तुझ कृष्णको सुख दुःखका अनुभवरूपी भोग लगाता है नाम तू चैतन्यही सुख दुःखादियोंका अनुभव करनेवाला है, अन्य जड नहीं। शरीरमें रोमावाली तुझ आगे वृक्षोंके बगीचे हैं। तुही क्षेत्रज्ञ कृष्ण, अवाङ्मनसगोचरकर कथन चिंतन करनेवाली ब्रह्म विद्यारूप,

बुद्धि राधासे तथा बुद्धिकी अनेक वृत्तियाँरूपी गोपियोंसे; पूर्वोक्त वृंदावनमें रास खेलरहा है, नाम सर्व कर्त्ता भोक्ता त्यागीभी, अकर्त्ता अभोक्ता, अत्यागी अपनी महिमामें स्थित है। पंचभूत तेरी पूजाके पात्र हैं। पंचकोश पूर्वोक्त मंदिरके किंवाड हैं। अस्ति भाति प्रियरूप सम्यक् अपरोक्ष निजात्मज्ञान मंदिरकी परिक्रमा है क्योंकि परिक्रमा करनेसे ठाकुर बीच आजाता है; तैसे सत् चित् आनंद स्वरूपसे भिन्न तुझ ब्रह्मात्माका स्वरूप है नहीं। श्रुति स्मृति विद्वानोंका अनुभव मंदिरमें घंटेके समान है। सूर्य चंद्रमा दोनों झाड़ोंके समान हैं। तारागण अंतर बाहर छोटे दीपकोंके तुल्य हैं। दिन रात्रि नगारेके समान हैं। जगत्का अत्यंताभाव दृढ निश्चय इस मंदिरकी शोभाहै। धर्मार्थ काम मोक्ष मंदिरके चारोंकोन हैं। विषयोंमें आरती मंदिरकी कांति है। पुत्र ईषणा, धन ईषणा, वित्त ईपणाका, त्यागरूप, मनोनाश, वासना क्षय और तत्त्व ज्ञानरूपी, ठाकुरके माथेमें तिलक है। अपने कार्य सहित माया अविद्यारूप मलसे मैं सत् चित् आनंद असंग हूँ। यह निश्चय ठाकुरका स्नान है और अंतर बाहर सर्व नामरूप मनादि दृश्यका मैं सत् चित् सुखरूप द्रष्टा आत्मा हूँ, यही निरंतर ब्रह्माकार वृत्तिरूप तुलसी ठाकुरपर है। अपने सहित सर्व हरिरूप जानना पूर्वक सर्व कायिक वाचिक मानसिक व्यवहारमें निष्कर्तव्यता चिंतन तुझ ठाकुरके भूषण हैं। मैं परिच्छिन्न नहीं तूही है, यही नमस्कार रूप स्तुति है। मुझ अस्ति भाति प्रियरूप आत्मामें, नामरूप जगत् हैही नहीं, यह दृढ निश्चय तुझ ठाकुरका चरणामृतहै। मैं आत्मा त्रिगुणातीत गुणोंका साक्षी हूं, यह निश्चय ठाकुरकी पानबीडी है। संसाररूप जड पुतलीकी चेष्टा करनेवाला आपको जाननाही तुम्हारी आरती है। मनरूपी वायुके फुर्णे अफुर्णेमें, मैं चैतन्य आकाशवत् सम हूं, यही तुझको पंखा होरहाहै। जैसे सूर्यकी किरण सूर्यसे अभिन्नहै, तैसे

नामरूप तुझ चैतन्यमें अध्यस्त होनेसे तुझसे अभिन्नही है, यही तेरे आगे धूप है । मन इंद्रियोंका दमनही मर्दन है । जो इस प्रकार ध्यान करता है, इसीलोकमें वा ब्रह्मलोकमें ज्ञानद्वारा मोक्षको प्राप्त होता है ।

मोक्ष किसको प्राप्त होता है ?

हे पुत्र ! सम्यक् आत्मज्ञानीकी सर्वचेष्टा समाधिरूपीही है,जैसे इस संघातकी सर्व चेष्टा पंचभूतरूपही है।आत्मज्ञानी मोक्षकी नहीं इच्छा करता भी मोक्षको पाता है । जैसे पक्का फल वृक्षसे न गिरनेकी इच्छा करता भी बलात्कारसे नीचे गिरपड़ता है । और ब्रह्मात्मा अज्ञानी मोक्षके लिये लाखों इच्छा करता भी मोक्षको नहीं पाता । जैसे कूपमें पडा पुरुष लाखों बार कूदनेसे बाहर नहीं निकसता है।इससे सम्यक देह अभिमान त्यागपूर्वक आत्मदर्शी हो ।

सम्यक् त्याग ।

पुत्रने कहा सम्यक त्याग क्या है ? हे पुत्र ! जैसे तरंग भूषण खिलौनेमें, भौतिक पदार्थ, घटपटादिमें; रज्जुके सर्पादि पदार्थोंमें, स्वप्न पदार्थोंमें; जल स्वर्ण, चीनी, पंचभूत, मृत्तिका, तंतु, रज्जु, स्वप्नद्रष्टा, आदिरूप सम्यक् विचारपूर्वक बुद्धि करनी, नाम जलादि कारणसे भिन्न तरंगादि कार्योंको मिथ्या वा अभाव वा जलरूप जानना ही तरंगादियोंका त्याग है । तैसे नाम रूप, कार्य कारण संघातरूप प्रपंचमें अस्ति भाति प्रियं रूप, आत्मबुद्धि करनी वा पूर्वोक्त आत्मासे भिन्न सर्व नामरूपको मिथ्या वा अत्यंताभाव जाननाही प्रपंचका परमत्याग है। एकको ग्रहण एकको त्याग करना इसका नाम त्याग नहीं क्योंकि जबतक शरीर है तबतक हजारों बार अनेक पदार्थोंका त्याग ग्रहण होता है। कार्यको कारण रूप जाननाही कार्यका परम-त्याग है, तैसे इस नामरूप प्रपंचका अस्ति भाति प्रियरूप आत्मा

विवर्त उपादान कारण है और नाम रूप कल्पित हैं, इससे आत्म रूपही है, कल्पित वस्तु अधिष्ठानसे भिन्न नहीं होती, इस निश्चयका नाम त्याग है।

। तीन प्रकारका निश्चय ।

हे पुत्र ! अपने सहित सर्व कार्य कारण प्रपंच अस्ति भाति प्रियरूप आत्माही है, इस विधिपक्षको ग्रहण कर। वा वाङ्मनसगोचर कार्य कारण संसारसे मैं सत् चित् आनंदरूप आत्मा अवाङ्मनसगोचर हूँ, इस निषेधीपक्षको ग्रहण कर। वा विधिनिषेध दोनों मन वाणीका कथन चिंतनरूप अनात्माका इससे दृश्य है; मैं चैतन्य विधिनिषेधसे रहित हूँ। मुझकरही विधिनिषेध सिद्ध होते हैं। मैं चैतन्य विधिनिषेधका विषय नहीं हूँ और विधिनिषेध भी मैंही हूँ; सर्व रूप होनेसे। इन तीनो निश्चयोंसे भिन्न और निश्चय तुझको भयका हेतु होगा तथा संसारका कारण होगा। आगे जो इच्छा हो सोई कर।

। मनुष्यमात्र आत्म तत्व पानेका अधिकारी है ।

हे पुत्र ! चारों वर्णाश्रम पुरुषके मल रहित सफेद वस्त्रोंपरही रंग चढता है, मलीनपर नहीं चढता। रंगको कुछ पक्षपात नहीं चाहे किसीका वस्त्र होवे। तैसे शम दम अमानित्वादि तथा सत संभाषणादि धर्मानुष्ठान कर,शुद्ध अंतःकरणमेंही,गुरु शास्त्रद्वारा निजात्मबोध होता है, अन्य कोई जाति निजात्मबोधमें कारण नहीं। यह सर्वके अनुभव सिद्ध है।

। साधन ।

(शास्त्रका असाधारण संकेत.)

हे पुत्र ! निष्काम कर्मोंके अनुष्ठानसे शुद्ध मनकर और सगुण वा निर्गुण उपासनाके अनुष्ठानसे निश्चल मन कर। पश्चात् ज्ञानरूपी रंग चढ़ेगा; अन्यथा नहीं चढ़ेगा। वा निरअहंकार सरलबुद्धि

आदि साधनसे गुरुभक्तिकर, गुरुसेवासेभी शुद्ध अन्तःकरण हुये पीछे ज्ञानरूप रंग लगेगा । यह शास्त्रका असाधारण संकेत है ।

ब्रह्म सगुण है वा निर्गुण ?

पुत्रने कहा हे पिता ! ब्रह्म सगुण है वा निर्गुण है ? पिताने कहा हे पुत्र ! एक किलेकाटी नाम करके जीव विशेष है, उसके एक दिनमें स्वाभाविक अनेक रंग बदलते हैं । तिसको न जानता हुआ नगरनिवासी पुरुषने, वनवासीसे पूछा कि, किलेकाटीका लाल रंग है वा सफेद; उसने कहा कि, लाल भी यही होता है और सफेद भी यही होता है । तैसेही हे पुत्र ! सत् चित् आनंदरूप तेरा स्वरूपही सगुण और निर्गुण दोनों रूप है, अन्य नहीं । मूर्ख विवाद करते हैं । हे पुत्र ! जो ईश्वर निर्गुण होवे तो, सगुण माननेवालोंको दंड देवे और जो ईश्वर सगुण होवे तो, निर्गुण माननेवालोंको दंड देवे । जो जीव ईश्वरका भेद होवे तो, अभेदवालोंको दंड होवे, जो अभेद होवे तो भेद माननेवालोंको दंड होवे । ऐसेही अन्यबातोंमें जोड लेना । इससैं तुझ सत् चित् आनंद प्रत्यक् आत्मासे भिन्न सर्व असत् जड दुःखरूप कल्पित है ।

गुप्त सिद्धान्त ।

हे पुत्र ! मैं वाणी बिना कहता हूं और तुम श्रोत्रोंबिना श्रवण करो । तूही जीव ईश्वरका तथा सर्व जगत्का सिद्धकर्त्ता है । तू नहीं होवे तो जीव ईश्वर जगत्को कौन जानताहै ? सो तेराही सब मनोतहै । आज तक किसीने भी जीवेश्वरका साक्षात्कार किया नहीं । यद्यपि शास्त्र प्रमाणसे साक्षात् विष्णु आदि मूर्तिमान् ईश्वर देखनेमें आये हैं । तथापि साक्षात्पंचभूत वा मायारूप अन्य पुरुषोंकी व्यक्तियोंको समानही उनका व्यक्ति तथा व्यवहार देखनेमें आया है । ईश्वर है वा नहीं, यह ईश्वर जाने । जो ईश्वर जगत्को रचके आप तिसमें प्रवेश हुआ है, सर्व ईश्व-

रही है, जो नहीं तो नहीं क्योंकि बुद्धि आदियोंका साक्षी अंतर्यामी, षट् भाव विकार रहित, सत सुख अव्यक्त, निज चैतन्य भिन्न सर्व जीवेश्वर मिथ्या जड है, सो चैतन्य तू है, जो चैतन्य तू न होवे तो मनादि जडके समान स्वपरको तू नजाने परन्तु तू मनादियोंको जानता है। इससे तूही चैतन्य सिद्ध हुआ। तूही मनादियोंको सिद्ध करता है, मनादि तुझको सिद्ध नहीं करते। तैसेही सूर्यादि सर्व पदार्थों में जान लेना। हे पुत्र! सुन सुनाके अपने ऊपर ईश्वरको तू क्यों थापता है? जैसे चक्रवर्ती राजा भ्रमसे अपने ऊपर अन्य राजा थापे तो भ्रम है। विचार देख तुझ मनादियोंके साक्षी चैतन्य, अंतर व्यापक आत्मासे, पृथक् ईश्वर किसी वैकुंठादि देशमें है नहीं क्योंकि ईश्वर पूर्ण है। सूखवत मिथ्या दृश्य पदार्थोंका आश्रय मतकर। इस मनादि दृश्यका द्रष्टा तूही सत् चित आनंद रूप आत्मा है। हे पुत्र! जो अनेक पुरुषोंके, मनकी कल्पना, दृश्य रूप अनेक वैकुंठादि देशमें, विष्णु आदि ईश्वरोंकी मनोत सफल होगा तो, सर्वके अनुभव सिद्ध सत् चित् आनंद साक्षी आत्मारूप ईश्वरकी मनोतमें तुझको फल क्यों न होगा? किंतु अवश्य होगा क्योंकि दोनों भावना शास्त्र प्रतिपाद्य हैं। अथवा दोनों भावना माया वा अंतःकरणके परिणाम हैं। यदि सत् हैं तो, दोनों भावना सत् हैं, असत् हैं तो, दोनों असत हैं। परंतु सर्वके अनुभव सिद्ध आत्मा रूप ईश्वरका लोप परोक्ष बातोंसे नहीं होता। बहिर्मुख बुद्धि मुमुक्षुको मनकी निश्चलतावास्ते कथन किया जो देश काल वस्तु भेद सहित विष्णुआदि ईश्वर, तिनका मिथ्यापना अर्थात् सम्यक् वाध्य ज्ञानकर होजाता है। तू अपने सत चित् आनंदरूप आत्माकोही ईश्वर जान। जो तू आपको ईश्वर माननेमें भय राखे तो, मत मान परन्तु "यह मनादियोंका साक्षी सत चित् आनंदरूप निजात्मा मैं हूँ" ऐसी भावना कर; जो वहीरूप होवे।

जो ऐसे नहीं जानेगा तो, असत् जड दुःखरूप माया तत्कार्य पदार्थोंमध्ये किसीको तू ईश्वर आत्मा निश्चय करेगा तो, अंतमें वही माया तत्कार्य असत् जड दुः स्वरूप होवेगी क्योंकि वैकुंठादि जानेका भावनाही कारण है तो, पूर्वोक्त रीतिसे निजात्माको ईश्वर जानना भी भावनाही है आगे जो इच्छा हो सो कर ।

। मनके रोकनेका उपाय ।

पुत्रने कहा हे पिता ! मनके रोकनेका उपाय कहो ? क्योंकि मन रुकेविना दुःख होता है, रोकनेसे सुख होता है ऐसे शास्त्रोंमें सुना है। पिताने कहा हे पुत्र ! जैसे घटाकाश वायुके रोकनेका उपाय पूछे और वायुके रुकने न रुकनेसे सुख दुःख माने तथा जैसे; स्वप्नद्रष्टा स्वप्ननरोंके मनके रोकनेका उपाय पूछे तथा रुकने न रुकनेसे हर्ष शोक माने । तैसे तेरा प्रश्न है । हे पुत्र ! आकाशके वायु बाहर जावे तो, घटाकाश वायुको रोके, परन्तु वायु आकाशसे बाहर जाता नहीं; अकाशके भीतरही वायु स्थित है; आकाशका कार्य होनेसे । आकाशसे वायुका बाहिर न जानाही वायुका रुकना है। सो स्वतः सिद्ध है । तथा वायुके रुकने न रुकनेसे आकाशको हानि लाभभी नहीं । तैसेही स्वप्नद्राष्टाके अंतर्भूतही स्वप्नसृष्टि है, सो बाहिर जावे नहीं, जो बाहर जावे तो रोकना चाहिये । इससे स्वप्न सृष्टिको स्वप्नद्रष्टाने स्वतःसिद्धही रोकरक्खा है,अब नवीन नहीं रोकना और स्वप्नके मन रुकने न रुकनेसे स्वप्नद्रष्टाको हानि लाभ भी नहीं। इत्यादि, और भी दृष्टांत जानके दार्ष्टांतमें जोड लेना। हे पुत्र ! मनादि प्रपंच तुझ सच्चिदानंद रूप आत्मामें रज्जु सर्पवत् कल्पित है; सो स्वतःही कल्पितवस्तुको अधिष्ठानने रोक रक्खा है, अधिष्ठानसे पृथक् कल्पित वस्तु भागे नहीं । हे पुत्र । जैसे सूर्यके आभास सहित तालाबका जल है तथा नालीका जल भी आभास सहित है तथा

केदारेंका जलभी सभासही है। इस बहिर्त्रिपुटीको पुरुष चाहे तोडदेवे, चाहे बनालेवे, चाहे न्यूनाधिक भाव करे, त्रिपुटीके सर्व न्यूनाधिक भावाभावको जानता है। इस जड त्रिपुटीका पुरुषही मालिक है यह अनुभव प्रत्यक्ष दृष्टांत है । तैसेही अंतर प्रमाता प्रमाण प्रमेयादि जड त्रिपुटिका तूही तुरीया आत्मा चैतन्यहीं मालिक है तथा त्रिपुटियोंका न्यूनाधिक भाव जानता हैं इससे त्रिपुटीका द्रष्टा तूही चैतन्य निर्विकार है। हे पुत्र! तू अपने पुत्रपने के अहंकारको त्याग, मैं पितानेका अहंकार त्यागता हूं मैं वाणी विना कहता हूं तू श्रोत्र विना सुन और कहे परंतु ऐसे कह जिससे पेर कहना, सुनना, सूघना, स्पर्श करना, देखना, रसलेना, ध्यानकरना, जाननादिव्यवहार बाकी न रहै अथवा सर्व कहना, सुनना, सूँघना, देखना, स्पर्श करना, रस लेना, ध्यान करना, जाननादि व्यवहार आजावे। जैसे पंचभूतोंके जाननेसे सर्व भौतिक पदार्थ जाने जाते हैं, ऐसेही पंचभूतों सहित माया तत्कार्य सर्व पदार्थ जिसके जाननेसे जाने जाते हैं ऐसा जानना सुनना चाहिये। इससे-

वृत्रासुर और इन्द्रकी लडाई।

हे पुत्र! तू इंद्र, अज्ञानरूपी वृत्रासुरको, विष्णुरूप गुरुकी सहायतासे, ज्ञानरूपी बज्र कर, हनन करैगा तो निर्भयराज्य भोगेगा।

अहल्या।

हे पुत्र! अहल्यारूपी अविद्यासे तू चैतन्य साक्षी इंद्र क्यों एकमेक होता है? विद्वानोंकी नेष्ठाको ग्रहण कर मूर्ख मत हो।

चन्द्रमाका बृहस्पतिकी स्त्रीका हरण और उससे बुधकी उत्पत्ति ।

हे पुत्र ! शमादि अनेक दैवी गुणोंरूप देवतों कर पूज्य; विवेकरूप बृहस्पतिकी ब्रह्मविद्या रूप स्त्री और चतुष्टय साधन सम्पन्न पापरूप तमसे रहित तुझ अधिकारीरूप चन्द्रमाके संगमसे, बोध रूपी बुध पुत्र उत्पन्न होवेगा तो, बंध मोक्षकी निवृत्ति प्राप्ति-वास्ते सर्व कर्तव्योंसे अकर्तव्य होवेगा । आगे जैसी इच्छा हो तैसे कर ।

सहज समाधि ।

पुत्रने कहा चित्तकी एकाग्रताबिना आनंद नहीं आता तो चित्त-की एकाग्रता करनी योग्य है। पिताने कहा हे पुत्र ! चित्तकी एकाग्रता स्वभावसेही आप होती रहती है, तैसे यत्न बिनाही हरवक्त नामरूपा-त्मक,सात्त्विकी राजसी,तामसी,पदार्थोंका वा अध्यात्म आधिभौतिक आधिदैविक पदार्थोंका,वा माया तत्कार्य रूप पदार्थोंका स्वाभाविकही चित्तकी एकाग्रता पूर्वकही ज्ञान होता रहताहै क्योंकि ज्ञानपूर्वकही, हमारी तुम्हारी, तथा सर्व जीवोंकी इष्ट अनिष्टमें प्रवृत्ति निवृत्ति होती रहती है । आनंदस्वरूप आत्माही सबका इष्ट है सो एक पदार्थोंका ज्ञान एक क्षण रहे वा दो क्षण रहे वा चार; वा आठ वा दश क्षण रहके पुनः दूसरे पदार्थका ज्ञान होता है । इसी तरह हर वक्त हर पदार्थका वृत्तिरूप ज्ञान अदल बदल होता रहता है। परंतु यह नियम देखनेमें आता है कि,किंचित्की एकाग्रता बिना पदार्थका ज्ञान होताही नहीं, किंतु क्षणमात्र वा दो क्षणमात्र वा चार क्षण एकाग्र बुद्धिसेही पदार्थका सम्यक् ज्ञान होता है । सो आनंद स्व-रूप तथा ज्ञान स्वरूप निजात्माही है अन्य पदार्थ नहीं हैं सो निजात्मा सर्व देशमें सर्वकालमें सर्ववस्तुमें आकाशके समान पूर्ण है। एक न एक वस्तुका,सर्वकालमें स्वाभाविक ज्ञान बना रहता है इससे यह सिद्ध हुआ कि, यत्न बिना स्वभाविक वृत्ति ज्ञानरूप चित्तकी

एकाग्रता सिद्ध हुई और चित्तकी एकाग्रता निमित्तक आत्मरूप सुखकी प्रगटता भी यत्न बिनाही सिद्ध हुई, कर्तव्य करनेसे नहीं। इसीवास्ते सम्यक् आत्मदर्शीको हरवक्त निर्यत्न सहज समाधि कही है। यह नहीं कि, चित्तके अफुर होनेसेही समाधि है, फुरनेसे नहीं, किंतु चित्तके फुरने अफुरनेसे भी पूर्वोक्त रीतिसे समाधिही है। हे पुत्र! जैसे वायुके दशोदिशाके फुरने अफुरनेका आकाशही विषय नाम संबंधी है क्योंकि आकाश व्यापक है। तैसे मनरूप वायुके दशोंदिशा फुरने अफुरनेका सत् चित् आनंदरूप आत्माही विषय नाम संबंधी है क्योंकि पूर्ण है। इससे सर्व प्रकारसे निष्कर्त्तव्यरूप मालाको फेरतेरहो। हे पुत्र! जैसे समुद्रकी झाल हमेशा होती रहती है, परंतु आकाश तिन झालमें आपको निष्कर्त्तव्य असंग अक्रिय विकाररहित मानता है; तैसे मनरूपी वृत्तियोंके फुरने अफुरनेरूप झालमें तू आकाशरूप आत्मा निष्कर्त्तव्य है, यह बात सबके अनुभव सिद्ध है।

ज्ञान अज्ञान आदि मननमात्र है।

हे पुत्र! जब तू पूर्व आपको अज्ञानी मानताथा, तब जैसे संघातका धर्म खान पान मान लज्जादि व्यवहार था; तैसेही अब ज्ञानकालमें भी होता है; कुछ अदल बदल नहीं हुआ। यह नहीं कि, पूर्व शिरपर बोझ था अब उतर गया है। कोई विलक्षणता हुई नहीं। इससे विचार देख ज्ञान अज्ञानादि केवल मननमात्र सिद्ध होते हैं। हे पुत्र! तू चैतन्यही निर्गुण ब्रह्मको मनरूप मंत्रीकर कल्पता है, तूही सगुण ब्रह्मको तथा तिसकी भक्तिको कल्पता है। तथा ज्ञान कर्म उपासना कल्पके आपको अधिकारी, अन्यको अन्यधिकारी कल्पता है। तूही पाप पुण्य धर्म्माधर्म्म बंध मोक्ष कल्पता है, तथा सत् असत्,

कर्तव्य अकर्तव्य, सुख दुःख, दैवी आसुरी, माया अविद्या, जीव ईश्वर, ब्रह्म, जड अजड, जीवेश्वरका भेदाभेद कल्पता है । इत्यादि सर्व पदार्थोंकी कल्पना अकल्पनाका तूही चैतन्य मालिक रहा। जो तू नहीं होवे तो कौन किसको जाने ? क्योंकि तुझ सत् सुख चैतन्यसे पृथक्क सर्व असत् जड दुःखरूप है। हे पुत्र! जिस जिसकी तू कल्पना करता है पुनः जिस जिसको तू जानता है; तथा ध्यान करता है सो तू नहीं; क्योंकि जो जाननेमें ध्यान करनेमें आवे, तिस तिससे तू न्यारा है।

मोक्षदायक जप ।

पुत्रने कहा तुम कौन हो ? पिताने कहा जो तू है। पुत्रने कहा तुम आये कहाँसे हो? पिताने कहा जहाँसे तू आया है। जावोगे कहां जहाँ तू जावेगा। करते क्या हो? जो तू करता है। भोगते क्या हो? जो तू भोगता है। तुम्हारे माता पिता कौन हैं? जो तेरे माता पिता हैं। तात्पर्य यह कि, जो तेरी सामग्री है, तथा सर्व जगत्की है, सोही हमारी है। जो तू ब्रह्मरूप है तो हम भी ब्रह्मरूप हैं। जो तू जीव है तो हम भी जीव हैं। जो कुछ तू जानता है सो हमभी जानते हैं जो तुझको अपमानादि अनिष्ट भान होते हैं, तथा-मानादि इष्ट भासते हैं, सोई हमको है। जो तेरे सुख दुःखके साधन हैं, सोई हमारे हैं। जो तुझको शब्दादि विषयोंका सर्वप्रकारसे अनुभव होता है, तैसेही हमको होता है। जो तेरे मन इंद्रियोंके स्वभाव हैं, सोई हमारे हैं। कहांतक गिनें, सर्व रूपसे जो तेरे संघातके स्वभाव हैं, सोही हमारे संघातके स्वभाव हैं। जो तू संघातका साक्षी है तो हम भी संघातके साक्षी हैं। सब में आतम उपमा जान। इसीसे "सर्वब्रह्म है" ऐसे शास्त्र कहते हैं। सर्व कल्पनाको छोडके सम निष्कर्त्तव्यरूप जो जप है

तिसी जपको जप। जो पूर्वोक्त रीतिसे इस जपके अर्थको सम्यक् जानता है सोही ज्ञानी है। जो अर्थको न जानके भी इस जपको प्रेमसे जपता है तो उपासनारूप भक्तिमान् कहाता है। राम राम वत् मनवाणीसे जो इस जपका कथन चिंतन करता है सो मन वाणाकी कर्म शारीरक कर्मवत् कहाता है।

हे पुत्र ! पूर्वोक्त ज्ञानका फल तो, अनुभव प्रत्यक्ष है। यदि राम राम जपका, विष्णु आदियोंके ध्यानरूप उपासनाका, वैकुंठादियोंकी प्राप्ति रूप, अदृष्ट फल, शास्त्रोक्तरीतिसे सत् होगा तो "मैं सत् चित् आनंदरूप आत्मा सर्व मनादियोंका द्रष्टा असंग त्रिगुणातीत हूँ, मुझ अवाङ्मनसगोचर आत्माको स्वभावसेही बंध मोक्षकी प्राप्ति निवृत्ति वास्ते किंचिन्मात्रभी कर्त्तव्य नहीं, वा सर्व अस्ति भाति प्रियरूप मुझ आत्माकेही होनेसे भी, मैं बंध मोक्षके कर्त्तव्यसे निष्कर्त्तव्य हूं", इस शास्त्रोक्त निर्गुण उपासनारूप जपका भी फल अवश्य होगा। जो गोलमाल होगा तो सर्वका होगा, एकका नहीं। जो पोल है तो सर्वमेंही पोल है। सत् है तो सबकाकथन चिंतन सत् है। यह नहीं कि, एक शास्त्र-सत्य है, अन्य असत् है।

हे पुत्र ! अत्यंत अपनेसे भिन्न, दूर वैकुंठादिमें, विष्णु आदि ईश्वरोंकी, दृढभावनारूप भजनसे प्राप्ति होती है तो अत्यंत अपनेसे अभिन्न, सच्चिदानंद निजात्माकी दृढभावनारूप भजनसे, क्यों न तद्रूपताकी प्राप्ति होगी ? किंतु अवश्य होगी। इससे " मैं सच्चिदानंद सर्व मनादियोंका साक्षी आत्मा हूं, वा मन-वाणीके विषय जाति गुण क्रियावान् पदार्थों सहित, मन वाणीसे मैं अवाङ्मनसगोचर हुआभी; अस्ति भाति प्रियरूप मैंही सर्वात्मा हूं, वा इत्यादि विकल्पोंसे रहित, मैं निर्विकल्प हूं " इस दृढ भावनारूप

भजनको कर,जो आगेही स्वतः वहीरूप हुये २ पुनः भावनाके वशसे वहीरूप होवेगा। जैसे घटाकाश तथा प्रतिबिंब यह भावनाकरे कि, हम महाकाश और बिंबरूप हैं, सो महाकाश तथा बिंबभावको आगेही प्राप्त हुये २ पुनः भ्रांतिकी निवृत्तिसे वहीरूप होते हैं। इसी वास्ते शास्त्रोंमें, निजस्वरूप आत्मवस्तुमें, कारण सहित संसाररूप दुःखोंकी निवृत्तिकी निवृत्ति और परमानंदकी प्राप्तिकी प्राप्ति कही है। जैसे गुडके स्वाभाविक स्वरूपमें कटुकताकी निवृत्तिकी निवृत्ति और मधुरताकी प्राप्तिकी प्राप्ति कही है।

शास्त्र प्रतिपाद्य कर्म मोक्षदायक है कि, नहीं ?

पुत्रने कहा हे पिता ! किसी शास्त्रमें कर्मोंका मोक्षका साधन कहा है, किसीमें नहीं। दोनोंमध्ये कौन ठीक है ? पिताने कहा हे पुत्र ! कर्म नाम करनेका है, सो कायिक वाचिक मानसिक संघातके कर्म करनेसेही, धर्म अर्थ काम मोक्ष नाम सुखकी प्राप्ति होती है, कुछ न करनेसे चारोंकी अप्राप्ति होती है। यह सर्वके अनुभव सिद्धहै। जैसे क्षुधारूप दुःखकी निवृत्ति और तृप्तिरूप सुखकी प्राप्ति, भोजनका करना रूप कर्मसेही होती है। इत्यादि जानलेना। आत्मानात्माका सम्यक् विचाररूपी ज्ञान मोक्षका साधन लिखा है सो भी मानसीकर्म है। यह नहीं कि, शारीरिकही कर्म है, मानसिक कर्म नहीं; किंतु जो संघातसे करिये तिसीका नाम कर्म है।इससे कर्मोंसेही सुखरूप मोक्ष प्राप्त होता है और सुखरूप आत्मा है, तिस आत्माकीभी संघातरूप कर्ममेंही उपलब्धी होती है, अन्यत्र नहीं।

दूसरी रीतिसे कर्मोंसे मोक्ष नहीं है, यह भी ठीक है क्योंकि मोक्ष सुखरूप आत्मा संघातकी चेष्टारूप कर्मकी उत्पत्ति स्थिति नाशके साक्षीरूप करके संघातकी चेष्टासे प्रथमही स्वतःसिद्ध है। इसवास्ते

आत्मा सुखरूप मोक्ष कर्मोंकर सिद्ध नहीं होता, यह भी ठीक है।

कर्त्तव्य।

हे पुत्र! सर्व शास्त्रोंमें स्वपक्ष मंडन परपक्षखंडन लिख रक्खा है, क्याजाने? किसशास्त्रकी बात सत् है, किसकी नहीं। कुछ अक्ल काम नहीं करसक्ती। इससे सर्व संमत मृत्यु यादपूर्वक, सत्संभाषणादि सद्गुणोंको, अपनी सामर्थ्य अनुकूल ग्रहण करना और असत् संभाषणादि असत् गुणोंका निजशक्ति अनुसार त्याग करना, ईश्वरको स्वस्वरूपकरके, वा भेदबुद्धिकरके अपने व्यवहारके अवसर अनुकूल कालमें, सचे दिलसे घडी वा दोघडी वा एकवक्त वा दो वक्त स्मरण करना। तात्पय यह कि, निजशक्ति मुवाफिक सगुण वा निर्गुण ईश्वरका, गुरुदत्त नाम उचारणादि पूर्वक स्मरण वा ध्यान करना और सचावटका व्यवहार करना। इतनेमें अकल्याण होवे तो होने दे। तात्पर्य यह कि, धर्मपूर्वक अपना हक़ किसीसे छोडना नहीं और अन्यायंपूर्वक दूसरेका लेना नहीं।

गृहस्थ तथा विरक्तका कर्त्तव्य तथा गृहस्थ आश्रमकी महिमा।

हे पुत्र! पूर्वोक्त प्रकारही सर्व गृहस्थ सज्जन पुरुषोंको उभय लोकके सुखका कारण है। सारादिन भजनमें रहना, यह गृहस्थ विमुख साधु पुरुषोंका काम है, गृहस्थोंका नहीं क्योंकि–चोर, यार, ठग, राजा, राजपुरुष, अभ्यागत, साधु, पशु, पक्षी, जीव, देवता, बेटी, भागिनी, आदि निजसंबंधी, ब्राह्मणादि, घाडवी जुल्मी, फकीर फ़ुकरा, लुचा, जुआरी, उठाईगीरा, भूत, पिशाच, प्रेत, डाकणी, इंद्रजाली, भ्रमावक्र कालवेलि, स्वांगी, झूँठे, मंत्री, तंत्री, रसायनी, वैद, वैश्या, कांजड, इत्यादि साधु असाधु हजारों जीव फोटक (मुफ्त) मालखानेवाले गृहस्थके आश्रय हैं। गृहस्थ विमुख साधु पुरुषोंके तो

आश्रय नहीं।साधुही उलटा गृहस्थके आश्रय है। खेती व्यापार नौकरी हुनरादि व्यवहार विना धन आकाशसे वा नदीमेंसे तो आता नहीं और न किसीको पूर्व आया है । धन विना कार्यकी सिद्धि होती नहीं । जो गृहस्थ व्यवहार नहीं करे और सारे दिन भजनही करता रहे तो पूर्वोक्त जीवोंकी तथा अपनी पालना कैसे होवै। जो व्यवहार करेगा तो हजारों तरहके हानि लाभका चिंतन रूप दलील भी तथा शरीर वाणीका व्यापार भी कहीं थोडा कहीं घणा करनाही पडेगा। इतना करनेसे भी नियम नहीं है कि, नफा वा नुकसान होवेगा।

इससे सम्यक् विचार देखिये तो गृहस्थोंको किंचित् काल भी सचे-दिलसे ईश्वरका भजन और सचावटका व्यवहार मोक्षदायक होवेगा; जो कोई न्यायकारी ईश्वर है तो जो ऐसा नहीं माने तो गृहस्थ लाचार है कोई परलोक तथा इसलोकके भय दूर करनेका उपाय है ही नहीं क्योंकि संघातके धर्म थोडे वा घने काम क्रोधादि तथा दर्शन स्पर्शादि संघातमें होवेंगे क्योंकि इनकाही शरीर है। यह भी ईश्वरका संकेत है। शब्दादि ग्राह्य विषय सर्वत्र हाजिरहुजूर है, तथा श्रोत्रादि इंद्रिय भी स्वस्व तिन विषयोंके ग्राहक सर्वत्र मौजूद होनेसे दोनोंका संबंध अनिवारण है;यह भी ईश्वरका संकेत है।इससे श्रोत्रादि इंद्रियकी स्वस्व विषयमें धर्मपूर्वक प्रवृत्ति होने देनी, यही पुरुषार्थरूप तप गृहस्थको मोक्षदायक होगा। अन्यथा कोई प्रकार तप बन सक्ता नहीं. क्योंकि जैसे जो काम क्रोध लोभ मोह अहंकार झूठ कपटादि छलसे, ठगी चोरी यारी आदि करते हैं, तथा इंद्रियोंकी स्वस्व विषयमें प्रवृत्ति काय-देसे बाहर अन्याय जुलमसे करते हैं तथा जो स्वपरके प्राणोंको पीडन करते हैं, तिनहींको राजा दंड देता है, अन्यको नहीं। यह नहीं कि, राजाकी स्तुति करनेवाले जुल्मीको दंड न होवे। किंतु जो कायदे बाहर जुल्मनहीं करे स्तुतिकरे, चाहे न करे राजा दंड उसको नहीं देगा।कायदा

छोडनाही जुल्महै। वा कायदा न तोडना राजाकी स्तुति है। राजाकी खैरख्वाही करेगा तो नेकनामीपूर्वक तिसका नतीजा आगेसे अधिक सुख होगा। सरकारी तर्फ मेहनत की हुई निष्फल नहीं होगी। यह नहीं कि, राजा सज्जनोंके धर्मरूप कायदे पूर्वक काम क्रोध लोभ मोह अहंकार करते हुये; तथा निज इंद्रियोंको सज्जनोंवत् स्वस्व विषयमें प्रवृत्ति निवृत्ति करते हुये; तथा खान पान शयन पहरान सवारी आदि करते हुये; तथा निज पुत्र स्त्री आदि अनुकूल मित्रोंसे प्रीति करते हुये; तथा निज धनको अन्याय युक्तिसे हर्त्ता चोर ठग दांभिक पुरुषोंसे अप्रीति रूपी द्वेष करते हुये, तथा व्यवहारमें किसीका न लिहाजरूपी अदया करते हुये; तथा दान तीर्थादि न करते हुये; राजा दंड देवेगा। किंतु यह पूर्वोक्त सबमेंसे करनेवाले भी अन्याई जुल्मी कोही दंड होता देखाहै, अन्यको नहीं। क्योंकि राजा भी ईश्वर ही है। यहीरीति परलोकमें ईश्वरकी भी होगी। जो ईश्वर अन्यथा है तो अन्याय अनीश्वरता है। तो परलोकमें रस्ता सुखी होनेका नहीं, क्योंकि मन इंद्रियादि संघातके गमनागमन बिना व्यवहार नहीं होता। कोई न कोई व्यवहार बिना धन प्राप्त नहीं होता। धनविना गृहस्थको सुख नहीं होता. क्योंकि धनकरके गृहस्थका चित्त स्थिर रहताहै। स्थिर चित्तमें किंचिन्मात्रभी भजन महान फलको देताहै। जो ईश्वर गृहस्थका, किंचित्काल निर्हंकार सहित सचेदिलसे भजन और सचावटका व्यंवहार मात्रही, मोक्षका साधन अंगीकार न करेगा तो, संसार खाताही उठ जावेगा। ऐसाभी कहीं लिखा नहीं कि, धर्मपूर्वक व्यवहार करते गृहस्थी नरकको जातेहैं; किंतु अन्यायी जुल्मीही नरकको जातेहैं यही लिखाहै। पूर्वभी जो ऋषि मुनि तथा अनेक सद्गृहस्थ हुये हैं क्या वह देखते, सूँघते, स्पर्श करते, रसलेते, सुनते, चलते, बोलते, मलमूत्र त्यागते, लेते देते, व्यवहार करते नहीं थे? क्या धन

संपादन नहीं करतेथे ? किंतु सब करतेथे । क्या पुत्रोत्पत्ति नहीं करतेथे ? क्या उनको स्त्रीपुत्रादि संबंधी अप्रिय लगतेथे ? वा अबके वक्तमें मन इंद्रियोंका क्या पूर्वसें स्वभाव बदलगयाहै ? सोभी बदला नहीं । विषयेंद्रिय संबंधजन्य सुख दुःखका अनुभव उनको क्या नहीं होताथा ? वा विलक्षण होता था ? ऐसे नहीं किंतु हम लोगोंके माफिकही होता होगा क्योंकि विषय इंद्रियोंके स्वभाव पूर्व और रीतिकेथे, अब बदल गये सो नहीं, किंतु ईश्वरने, इनका नियत एकही स्वभाव रक्खाहै, अन्यथा होता नहीं । ये भी नहीं पूर्व धन आकाशसे यत्न बिना गृहस्थोंको मिलताथा, अब व्यवहार करना पडताहै । जो पूर्व रीतिथी सोई अबहै । जो पूर्वोक्त सद्गृहस्थ सद्व्यवहारको करते हुये; सद्गतिको प्राप्त हुवेहैं तो अब वर्तमान गृहस्थ लोकभी पूर्वोक्त रीति अनुसार सद्व्यवहार करते हुये तथा विषय इंद्रियसंबंधजन्य सुख दुःखको अनुभव करते हुये, यथायोग्य कायदे बमूजिब काम क्रोध लोभ मोह अहंकारादि करते हुये तथा कायदे बमूजिब निज निज इंद्रियोंको स्वस्व विषयमें प्रवृत्ति निवृत्ति करते हुये तथा खान पान शयन पहरान सवारी आदि करते हुये तथा निज अनुकूल स्त्री पुत्र आदि मित्रोंसे प्रीति करतेहुये तथा निज धनके अन्यायसे हर्त्ता चौरादि दांभिक पुरुषों से अप्रीतिरूपी द्वेष करतेहुये तथा व्यवहारमें किसीका न लिहाज करते हुये तथा दान तीर्थादि न करते हुये; ईश्वर दंड देवेगा । किंतु यह पूर्वोक्त सब करनेवालेमेंसेभी अन्यायी जुलूमीकोही दंड होगा, अन्यको नहीं । सदाचारियोंकी तो निश्चय सद्गति होगी, क्योंकि गृहस्थ व्यवहारमें सचावटही महानतपहै, ईश्वरको परमप्रियहै और सद्गतिका कारणहै । कठिन तपस्या तो गृहस्थ विमुख विरक्तोंकोही योग्यहै और तिन विरक्त पुरुषोंकी श्रद्धा सहित सच्चे दिलसे सेवा करने

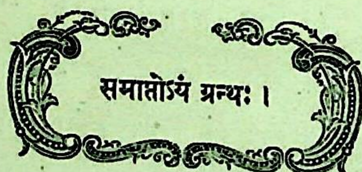
सेही तिनकी सर्व तपस्याका फल सद्गृहस्थोंको होगा, निंदक तिनके पापके भागी होंगे और महात्मा तो दोनोंसे विमुक्त हुये मोक्षपदको प्राप्त होते हैं। जैसे तूंबेके गलेमें पत्थर बांधा होय तो, जलके नीचे रहता है और कदाचित् पत्थर टूट जावे तो तूँबा जलके ऊपर आजाता है। हे सद्गृहस्थो ! विश्वासही बडी चीज है, देखिये मूढ गूजरी एक वक्तके सुननेसेही, राम नामकी नौका बनाके, नदीसे पार उतार होती थी। तो विश्वासही कारण हुआ अन्य साधननहीं। इससे आप लोगोंको भी विश्वास करना योग्यहै आगे जो इच्छा हो सोई कीजिये।

। अटल सिद्धांत ।

हे पुत्र ! सर्व जीवोंके हृदय देशसे पृथक् सत् चित् आनंद ईश्वर कहीं कचहरी लगाकर बैठा मालूम होता नहीं। जो है तो सर्व संघात तिसकी कचहरी है क्योंकि ईश्वर पूर्ण है। जो वैकुंठादि देशमेंही ईश्वर कहोगे तो पूर्ण अंतर्यामी ईश्वर कहा है, सो न हुआ। इससे जो कुछ है जीव, वा ईश्वर वा पुरुष, अल्ला, खुदा, सो इन संघातोंमेंही यह बुद्धि आदियोंका सत् चित् आनंद संज्ञावालाही स्पष्ट भान होता है। यद्यपि घटपटादियोंके ज्ञानसे वा ग्रहणसे आनंद भी भान होता है। इससे संघात पृथक् भी ईश्वरकी स्फूर्ति होती है। तथापि यह स्फूर्ति संघात संबंधपूर्वकही की जाती है अन्तःकरणादि संघात संबंध बिना घटादियोंमें स्फूर्ति नहीं। इससे जहाँ मनादि संघात हैं, तहाँही जीव ईश्वरादियों की तथा तिनके स्वरूप वा तटस्थ लक्षणादिकोंकी स्फूर्ति है पृथक् नहीं। इससे संघातों में ही चैतन्य अस्तिमात्रकी स्फूर्ति होती है, सो चैतन्य जीव है वा ईश्वर है, वा दोनों भावसे रहित है वा साक्षी आत्मा है पुरुष है वा अन्य है। इत्यादि अनेक कल्पना होती हैं। परन्तु तिस कल्पनासे हम सत् चित् आनंद अस्तिमात्र

पृथक् हैं, क्योंकि जिस जिसको हम जानतें हैं तथा जो जो कल्पना करते हैं, सो सो हम नहीं । हमारी तो मनादि कल्पना कर सक्ते नहीं इसीसे हम स्वयंप्रकाश हैं । यह अनुभव भी संघात संबंधी है पृथक् नहीं । कुछ हो परन्तु पूर्वोक्त सर्व मनादियोंका अस्तिमात्र अनुभवही हमारा स्वरूप है । हिसाबसे देखें तो पृथक् नहीं ।

॥ इति बाबा विशुद्धानंद कामलीवाला विरचित पक्षपातरहित श्रीअनुभवप्रकाशका अष्टमसर्ग समाप्त ॥ ८ ॥



खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-यन्त्रालय, खेतवाडी-बंबई.

॥ श्रीः ॥

किंचित् बहिरकथाका विचार।

ब्रह्माका अपनी पुत्रीके पीछे कामातुरहोकर दौडना।

मैत्रेयने कहा हे गुरो ! ब्रह्मा प्रजापति निजकन्याके पीछे कामातुर होके दौडा है;ऐसालिखा है सो कैसे जानना? मुनिने कहा हे साधो!जड मनइंद्रियादि नामरूप प्रजाका जो पति नाम स्वामी प्रेरक होवे सो, कहिये प्रजापति। सो यह लक्षण चैतन्य सत् सुखरूप आत्मामेंही घटता है। सो वृत्ति इद्बोध,बाध इद्वृत्ति,इस शास्त्र प्रमाणसे और निज- मायासे, नामरूप वृत्तिसहित; दृश्य जातिको, यह सच्चिदानन्द आत्माही उत्पन्न करता है। सो आत्मा कामादिवृत्ति आरूढ हुआ; चक्षु आदि इंद्रियद्वारा, बाहर जड घट पटादि दृश्यरूप निजकन्याके प्रकाशवास्ते, दृश्य समीप जाता है; जैसे कोठेसे; जल सहित सूर्यका वा आकाशका प्रतिबिम्ब, किंदारदेशमें जाता है, यही तिस कथा का अर्थ है।

महादेवका लिङ्ग बढाना।

हे गुरो ! महादेवने पार्वतीको लिङ्गपर चढाके लिङ्ग बढाया है और विष्णुने लिंगके द्वादशभाग चक्रसे किये हैं सो कैसे हैं?हे साधो ! इस मनादि व्यष्टि, समष्टि,स्थूल,सुक्ष्म, जड, रूप मिथ्या, दुःखरूप नाम; जगत्कूं प्रकाशे नाम जो सत्ता स्फुरण करे तिस सत् चित् सुख रूप वस्तुका नाम महादेव है। सो निज उपाधि मायासे असत् जड दुःखरूपात्मक यह संसाररूप लिंग खडा नाम उत्पन्न किया है और मायारूप पार्वतीकी योनि नाम कारणमें स्थापन किया है। अर्थ यह कि, पूर्वोक्त संसाररूप लिंगका उपादान कारण मायाहीहै। इससे लिंग अनंतकोटि योजनोंसे भी गिननेसे अनगिनत है। ज्ञान प्रथम,पूर्वोक्त लिंगका,अविवेक दृष्टि बुद्धि रूप गङ्का अंत कहना सो मिथ्या भाषण है और ज्ञानसे प्रथम लिंगको विवेक दृष्टि

बुद्धिरूप केतकीका अनंत कथन करना सो सत्यभाषण है । तिनको वर शापका अर्थ यह जानना, देह अभिमानपूर्वक पापरूप मलमें सन्मुखता और पूर्वोक्त पुण्यरूप महादेवके विचारद्वारा सन्मुखता। मुमुक्षुरूप देवतोंसे प्रार्थ्य विष्णुरूप गुरुने पूर्वोक्त जगद्रूप लिंगके द्वादश टुकडे विचाररूप चक्रसे किया । अर्थ यह है कि, पंच ज्ञानेंद्रिय पंच कर्मेंद्रिय एक अंतःकरण और एक माया यह द्वादश अध्यात्म हैं और द्वादशही इनके सूर्यादि आधिदैव और द्वादशही इनके शब्दादि विषय अधिभूत हैं । इतना मात्रही त्रिपुटीरूप संसार लिंग है। यद्यपि चौदह त्रिपुटी लिखी है तथापि द्वादशके अंतरभूतही निज बुद्धिसे जान लेना । वा यह तत्त्व अहंकार, तीनगुण, पंच महाभूत; एक इनका कारण माया, एक प्रतिबिंबरूप जीव; यह पूर्वोक्त संसाररूप लिंगके द्वादश टुकडे जानना । तात्पर्य यह कि, गुरुने शिष्योंको अनेक रीतिसे विधिपक्षकर और निषेधी पक्षकर प्रक्रियाओंसे नामरूप द्वैत संसारका अत्यंताभाव बोधन कर, शेष अद्वैत महादेवको निजात्मा स्वरूप बोधन किया । यही बद्विर कथाका अध्यात्ममें अर्थ है ।

जालंधर आख्यान ।

(विष्णु भगवान्का जालंधरकी स्त्रीका पातिव्रत नष्ट करना)

तैसेही ब्रह्मात्माकी अज्ञान जालंधर असुर है और काम क्रोधादि आसुरीसेनासहित इस शरीररूपी स्वर्गका राज्य करता है ।सत संभाषणादि देवतों सहित, निज शत्रु ब्रह्मात्मज्ञानरूप इंद्रको,स्वर्गसे निकास दिया है । आनात्मादि देहमें दृढनिश्चय बुद्धिरूप तिसकी स्त्री है देवतानरूप मुमुक्षुओंसे प्रार्थ्य गुरुरूपविष्णुने, अज्ञानरूप जालंधरके नाशके लिये पूर्वोक्त तिसकी स्त्रीको उपदेश कर; पूर्ववाली मिथ्या दृष्टि रूप पतिव्रत धर्मको, छुटाके सत् ब्रह्मात्मदृष्टि कराया । यही जालंधरकी कथाका अध्यात्म अर्थ है ।

छप्पन कोटि यादव।

तैसेही छप्पनकोटि यादव लिखा है सो कोटि नाम प्रकारका भी है इससे छप्पन गोत्र नाम प्रकारके यादव होनेसे छप्पन कोटि यादव ठीकही थे।

प्रत्येक नंदकी नौ नौ लक्ष गौं।

तैसे एक एक नंदकी नौ नौ लक्ष गऊ लिखी है, तैसेही उपनंदोंकी लिखी हैं सो लक्ष नाम चिह्न का है। काली पीली आदि-रंग वालियाँ नव प्रकार की गऊ एक घरमें होनी मुश्किल हैं सो नंदोंके घरमें थीं।

अक्षौहिणी।

तैसेही चौपट वत् किलेकी नाईं फौजका आकार होवे वा नेत्रवत् किलेकी नाईं फौजका आकार होके स्थित होवे सो अक्षौहिणी कहते हैं सो एकहजार फौजकाभी किला होता है और दश-हजारका भी होता है।

पद्मव्यूह।

तैसे पद्मवत् किलेके आकार फौज होवे तिसका नाम पद्मव्यूह है आगे यथा योग्य गनतीका हिसाब लगालेना। जिस गनतीसे विद्वानोंके अनुभवसे विरोध न आवे तैसे करलेना।

रावणके छप्पन कोटि बाजा बजानेंवाले।

तैसेही रावणके छप्पन कोटि बाजाबजानेवाले लिखे हैं, सो भी छप्पन प्रकारका बाजा जानलेना।

योजन।

तैसेही शास्त्रमें चार कोशका योजन लिखा है, तैसेही चार हाथका तथा चार फुटका भी लिखा है। योग्यतानुसार लगालेना और कुंभक-र्णादि शरीरोंका भी इसी हिसाबसे शरीर जानलेना। तात्पर्य यह है

तौल और मापका अनेक प्रकार, जिनसोंका निज निज देश अनुसारी संकेत जुदा २ न्यूनाधिक है ।

कर्णका सवामन सोना दान करना ।

तैसेही पूर्वोक्त तौल मापके हिसाबसेही कर्णका सवामन सुवर्ण देना भी जानलेना ।

तेतीस कोटि देवता ।

तैसेही देवतें तेतीस कोटि लिखे हैं और यह भी शास्त्रमें लिखा है कि, तेतीस प्रकारके प्रधान देवता हैं, अवांतर अनेक भेद हैं।

द्वारकामें ३ कोटि अस्सीलाख शाला ।

तैसेही द्वारकामें तीन कोटि अस्सीलाख शाला लिखीहैं। सो भी तीन प्रकारकी कर्मकाण्ड, उपासनाकांड और ज्ञानकांडकी, वा साधारण तीन प्रकारकी प्रधान शालाथीं और अनेक न्यायादि भिन्न भिन्न विषयके प्रतिपादक, शास्त्रके अनुकूल अस्सी प्रकारकी शालाथीं। तिन २ शाला स्थानों विषे अनुकूल चिह्नवाली ध्वजा पताका लगरहीथीं और द्वारकाकी बहिरशाला जुदी जानलेनी वा न्यूनाधिक होंयगी, परंतु अनुभवसे ऐसेही घटता है आगे ईश्वरजाने।

सुवर्णमयनगर ।

तैसेही द्वारका लंका आदि नगर सुवर्णके लिखे हैं सो भी धनाढ्योंके गृहके दरवाजोंमें सुवर्ण लिप्त तांबेके कलश लगे रहते हैं तथा देवमंदिरोंके शिखर तथा दरवाजोंपर कलश लगे रहते हैं और कहीं कहीं धनाढ्योंके मकानोंमें मीनेका काम हुआ करता है। जिन जिन राजनगरोंमें पूर्वोक्त कलशादि व्यवहार बहुत होवें सो नगर सुवर्णमय कहलाता है साक्षात् स्वर्णका नहीं हो सक्ता यही विद्वानोंके अनुभवमें जँचता है अन्य नहीं ॥ इति ।

खेमराज श्रीकृष्णदास, "श्रीवेंकटेश्वर" स्टीम् प्रेस-बंबई.

From:—The Gita Press, P. O. Gita Press (Gorakhpur) India.





